EC-01

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

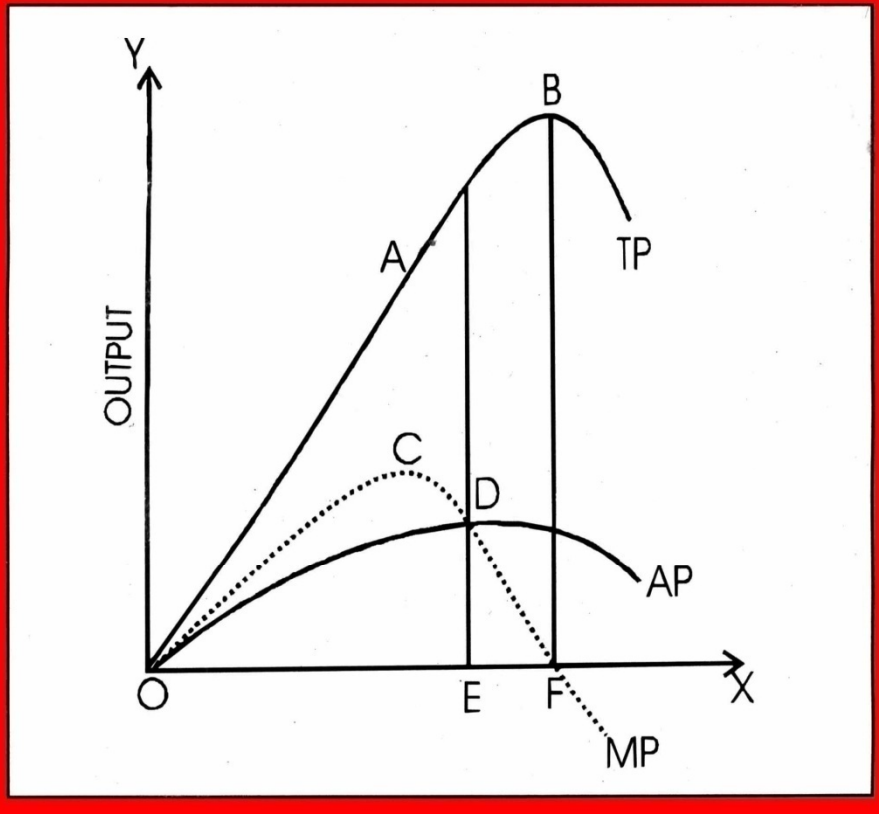

व्यष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त

EC-01

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

व्यष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

इकाई संख्या व इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
खण्ड-I परिचय	
इकाई 1- अर्थशास्त्र : परिचय एवं आर्थिक विश्लेषण की विधियाँ	7–22
इकाई 2- अर्थशास्त्र की केन्द्रीय समस्याएँ	23–35
इकाई 3- उपभोक्ता का व्यवहार/उपयोगिता विश्लेषण	36–56
इकाई 4- उपभोक्ता की सम्प्रभुता	57–62
खण्ड-II उदासीनता वक्र विश्लेषण	
इकाई 5- उदासीनता वक्र : विशेषताएँ, उपभोक्ता का संतुलन	63–82
इकाई 6- उदासीनता वक्र : आय उपभोग वक्र, कीमत उपभोग वक्र,आय और प्रतिस्थापन प्रभाव	83–97
इकाई 7- उदासीनता वक्र : मांग वक्र का निर्माण	98–112
खण्ड-III लोच एवं उत्पादन के नियम	
इकाई 8- मांग एवं पूर्ति की लोच की अवधारणा एवं मापन, आय लोच, तिरछी लोच	113–133
इकाई 9- उत्पादन फलन और परिवर्तनशील अनुपातों का नियम	134–147
इकाई 10- समोत्पाद वक्र, साधनों का न्यूनतम लागत संयोग एवं पैमाने के प्रतिफल	148–161
खण्ड-IV कीमत एवं उत्पादन निर्धारण	
इकाई 11- लागत वक्र एवं आगम वक्र	162–186
इकाई 12- पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उत्पादन तथा कीमत का निर्धारण	187–200
इकाई 13- एकाधिकार एवं कीमत विभेद	201–216
इकाई 14- एकाधिरात्मक प्रतियोगिता	217–223
खण्ड-V	
इकाई 15- वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त	224–232
इकाई 16- पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण	233–243
इकाई 17- रिकार्डो का लगान का सिद्धान्त , आधुनिक लगान सिद्धान्त, आभासी लगान	244–253
इकाई 18- ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त, तरलता पसंदगी सिद्धान्त	254–263
इकाई 19- लाभ के सिद्धान्त	264–277
इकाई 20- प्रारम्भिक कल्याणकारी अर्थशास्त्र	278–293

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच

कुलपति

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय कोटा (राजस्थान)

संयोजक / सदस्य

संयोजक

डॉ. जे. के. शर्मा

सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

सदस्य

1. **प्रो. सी.एस. बरला**
   सेवानिवृत्त आचार्य, अर्थशास्त्र
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
2. **प्रो. के. डी. स्वामी**
   आचार्य, अर्थशास्त्र
   जयनारायन व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
3. **डॉ. सी.आर. विश्नोई**
   सहआचार्य, अर्थशास्त्र
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
4. **प्रो. राम लाल वर्मा**
   सेवानिवृत्त आचार्य, अर्थशास्त्र
   जयनारायन व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
5. **प्रो. फरीदा शाह**
   आचार्य, अर्थशास्त्र
   मो. ला. सु. विश्वविद्यालय, उदयपुर
6. **डॉ. वी.वी. सिंह**
   सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
7. **प्रो. अंजु कोहली**
   आचार्य, अर्थशास्त्र
   मो. ला. सु. विश्वविद्यालय, उदयपुर
8. **प्रो. एम.के. घड़ोलिया**
   आचार्य, अर्थशास्त्र
   वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

संपादन तथा पाठ लेखन

संपादक

डॉ. वी.वी. सिंह

सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

पाठों के लेखक — इकाई सं.

1. **डॉ. सुनील दलाल** **(1,2,3,4,11,12)**
   सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र
   विद्या भवन रुरल इंस्टीट्यूट, उदयपुर
2. **डॉ. जे.के. शर्मा** **(8,9,10)**
   सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र
   वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
3. **डॉ. गोपेश भट्ट** **(16,17,18)**
   सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र
   बी.एस.आर. राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर
4. **श्री लोकेश भट्ट** **(5,6,7)**
   सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र
   जी. डी. राजकीय कन्या महाविद्यालय, अलवर
5. **डॉ. ए.पी. चौधरी** **(13,14)**
   सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र
   मो. ला. सु. विश्वविद्यालय, उदयपुर
6. **डॉ. उषा राठी** **(19,20)**
   सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र
   राजकीय बांगड़ महाविद्यालय, पाली

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच	**प्रो. (डॉ.) एम.के. घड़ोलिया**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक(अकादमिक)	प्रभारी पाठ्यसामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा	**संकाय विभाग**	**वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुनः उत्पादन फरवरी 2010 ISBN 13/978-81-8496-217-8

सर्वाधिकार सुरक्षित : इस सामग्री के किसी भी अंश को वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) के द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

कुलसचिव द्वारा वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा के लिये मुद्रित एवं प्रकाशित।

इकाई-1

अर्थशास्त्र : परिचय एवं आर्थिक विश्लेषण की विधियाँ

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 अर्थशास्त्र परिभाषा
  1.2.1 धन संबंधी परिभाषा
  1.2.2 कल्याण संबंधी परिभाषा
  1.2.3 दुर्लभता अथवा सीमितता प्रधान परिभाषा
  1.2.4 आधुनिक अथवा विकास केन्द्रित परिभाषा
1.3 व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र
  1.3.1 व्यष्टि अर्थशास्त्र
  1.3.2 समष्टि अर्थशास्त्र
  1.3.3 समष्टि अर्थशास्त्र का पृथक अध्ययन क्यों?
  1.3.4 समष्टि तथा व्यष्टि अर्थशास्त्र का परस्पर संबंध
1.4 आर्थिक स्थैतिकी तथा प्रावैगिकी
  1.4.1 स्थैतिक विश्लेषण
  1.4.2 आर्थिक प्रावैगिकी
  1.4.3 स्थैतिक एवं प्रावैगिकी अर्थशास्त्र की तुलना
1.5 अध्ययन की विधियाँ
  1.5.1 निगमन विधि
  1.5.2 आगमन विधि
1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 संदर्भ ग्रंथ
1.9 अभ्यासार्थ-प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ पायेंगे -

- अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु एवं अध्ययन क्षेत्र।
- व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र का अर्थ, उनकी विषय-वस्तु एवं उनमें अंतर।
- स्थैतिक एवं प्रावैगिक अर्थशास्त्र।
- आर्थिक विश्लेषण की विधियाँ-आगमन एवं निगमन विधि।

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से छात्रों का अर्थशास्त्र विषय से परिचय कराया जायेगा। किसी भी विषय के अध्ययन के प्रारम्भ में उस विषय की विषय-वस्तु उसकी प्रमुख शाखाओं एवं अध्ययन की विधियों की जानकारी, उस विषय का समग्र रूप विद्यार्थी के समक्ष प्रस्तुत करता है एवं उनमें विषय के गहन अध्ययन के लिए जिज्ञासा पैदा होती है। इकाई के प्रारम्भ में अर्थशास्त्र की विभिन्न परिभाषाओं के माध्यम से अर्थशास्त्र का परिचय देते हुए इसकी दो प्रमुख शाखाओं व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र का अर्थ एवं उनकी विषय-वस्तु के बारे में विस्तार से बताते हुए उनमें अंतर को स्पष्ट किया जायेगा। किसी भी विषय का क्रमबद्ध तरीके से अध्ययन कर तर्क सम्मत निर्णय एवं निष्कर्ष पर पहुँचने में अध्ययन की विधियाँ महत्वपूर्ण होती है अत: इसी इकाई में अध्ययन विधियों की विवेचना की जायेगी।

1.2 अर्थशास्त्र : परिभाषा

किसी शास्त्र को परिभाषित करना उसकी प्रकृति तथा विषय सामग्री को स्पष्ट रूप देना है। शास्त्र की निश्चित एवं वैज्ञानिक परिभाषा उनकी विषय सामग्री की सीमाओं को निश्चित करती है। जिसके भीतर रहकर उसका अध्ययन किया जा सकता है।

अर्थशास्त्र की परिभाषा के बारे में अर्थशास्त्रियों में गहरा मतभेद रहा है। अर्थशास्त्र के जन्म से लेकर अब तक इतनी अधिक परिभाषाएँ दी गयी है कि उनमें से किसी एक उचित परिभाषा का चुनाव करना कठिन है।

1.2.1 धन संबंधी परिभाषा

अधिकांश प्राचीन अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र को धन का विज्ञान मानते थे परन्तु एडम स्मिथ से पूर्व अर्थशास्त्र का अपना कोई अस्तित्व नहीं था और आर्थिक विचार अन्य शास्त्रों में ही गूँथे हुए थे। एडम स्मिथ ने सर्वप्रथम अर्थशास्त्र को एक पृथक विज्ञान के रूप में उभारने का सफल प्रयास किया और इसलिए एडम स्मिथ को अर्थशास्त्र का जनक कहा जाता है।

एडम स्मिथ ने सन् 1776 में प्रकाशित अपनी पुस्तक राष्ट्रों के धन का स्वरूप तथा कारणों की खोज' में अर्थशास्त्र को धन का विज्ञान कहा है। उनके अनुसार अर्थशास्त्र में इस बात का अध्ययन किया जाता है कि मनुष्य धन का उत्पादन एवं उपभोग किस प्रकार करता है। जे.बी. से के अनुसार अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो धन संबंधी नियमों का अध्ययन करता है। डेविड रिकार्डो ने धन के उत्पादन व उपयोग के स्थान पर धन के वितरण पर बल दिया।

इन परिभाषाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि अर्थशास्त्र की विषय सामग्री का केन्द्र बिन्दु धन है, मानवीय सुख का एकमात्र आधार धन है। साधारण व्यक्ति एक ऐसे आर्थिक मनुष्य की भाँति है जो निजी स्वार्थ से प्रेरित होकर ही आर्थिक क्रियाएँ करता हैं एवं व्यक्तिगत स्मृद्धि से ही राष्ट्रीय धन में वृद्धि होती है। अत: व्यक्तिगत एवं सामाजिक हितों में कोई विरोधाभास नहीं है ।

अर्थशास्त्र को धन का विज्ञान मानने से संबंधित परिभाषा से कई अर्थशास्त्री सहमत नहीं हुए। इनके अनुसार अर्थशास्त्र को केवल धन का विज्ञान कहकर मनुष्य की उपेक्षा की गई है। वास्तव मैं धन केवल एक साधन मात्र है और मनुष्य का कल्याण साध्य है। मनुष्य द्वारा धन

का अर्जन इसलिए किया जाता है जिससे वह जीवन-निर्वाह की आधारभूत समस्या का समाधान कर सकें। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है इसलिए वह केवल स्वहित से प्रेरित होकर अपने प्रयासों को धन प्राप्ति तक ही सीमित नहीं रखता बल्कि वह सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं राष्ट्रीय भावनाओं प्रेरित होकर भी कार्य करता है।

1.2.2 कल्याण संबंधी परिभाषा

एल्फ्रेड मार्शल प्रतिष्ठित समुदाय के ही एक अर्थशास्त्री थे, जिन्होने अर्थशास्त्र की धन संबंधी परिभाषाओं की हो रही आलोचनाओं एवं कमियों को ध्यान में रखते हुए अर्थशास्त्र को एक नये रूप में परिभाषित कर उसे सम्मानजनक स्थान दिलाने का प्रयास किया।

मार्शल के अनुसार "धन मनुष्य के लिए है, न कि मनुष्य धन के लिए।' इसलिए अर्थशास्त्र का मुख्य विषय मानव अथवा मानवीय कल्याण है और धन इस उद्देश्य की पूर्ति का एक साधन है। मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र जीवन के साधारण व्यवसाय के संबंध में मनुष्य की क्रियाओं का अध्ययन है। इसमें इस बात की जाँच की जाती है कि मनुष्य किस प्रकार धन कमाता है और उसे किस प्रकार व्यय करता है। इस प्रकार यह एक तरफ 'धन' का अध्ययन है तो दूसरी तरफ जो कि अधिक महत्वपूर्ण विषय है, मनुष्य के अध्ययन का एक भाग है। मार्शल के अर्थशास्त्र की परिभाषा को इस प्रकार प्रस्तुत किया -

अर्थशास्त्र जीवन के साधारण व्यवसाय में मानव जाति का अध्ययन है। यह व्यक्तिगत तथा सामाजिक क्रियाओं के उस भाग की जाँच करता है, जिसका कल्याण के लिए आवश्यक भौतिक साधनों की प्राप्ति और उनके उपयोग से निकटतम संबंध है। मार्शल के विचारों का उनके समकालीन अर्थशास्त्रियों - पीगू, कैनन, क्लार्क आदि ने समर्थन किया।

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि मार्शल ने धन के स्थान पर मनुष्य को प्रमुख स्थान दिया और इसलिए कहा कि अर्थशास्त्र जीवन के साधारण व्यवसाय का अध्ययन है। मार्शल का आशय उन क्रिया-कलापों से है जिनका संबंध धन कमाने तथा उसका प्रयोग करने से होता है। इस प्रकार मार्शल ने अर्थशास्त्र के प्रमुख विभागों- उपभोग, उत्पादन, विनिमय तथा वितरण आदि को स्पष्ट कर दिया क्योंकि ये हमारी आर्थिक क्रियाओं के मुख्य क्षेत्र है। संस्थापित अर्थशास्त्रियों - जिन्होंने अर्थशास्त्र को केवल वास्तविक विज्ञान माना, के विपरीत मार्शल के अर्थशास्त्र को एक आदर्श विज्ञान मानते हुए कहा कि एक अर्थशास्त्री का काम केवल खोज एवं व्याख्या करना ही नहीं है, बल्कि आर्थिक समस्याओं को सुलझाते हुए मानव कल्याण में निरन्तर वृद्धि करना है।

प्रो. रॉबिन्स ने अर्थशास्त्र की कल्याणवादी परिभाषा की कटु आलोचना करते हुए कहा कि इसने अर्थशास्त्र का क्षेत्र बहुत संकुचित कर दिया है, क्योंकि इसमें केवल भौतिक वस्तुओं का ही समावेश है और अभौतिक वस्तुओं की उपेक्षा कर दी गई है। उनके अनुसार अभौतिक साधनों से भी हमारे कल्याण में वृद्धि होती है - जैसे डॉक्टर, वकील व प्रोफेसर की सेवाएँ भी धन प्राप्ति का साधन है और उनसे मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति भी होती है। इसलिए भौतिक के साथ-साथ अभौतिक साधनों का अध्ययन भी अर्थशास्त्र का एक अनिवार्य विषय है। दूसरे, उन्होंने अर्थशास्त्र को केवल सामाजिक विज्ञान का नहीं वरन मानवीय विज्ञान भी माना है क्योंकि अर्थशास्त्र के कुछ नियम ऐसे हैं जो समाज में अथवा समाज के बाहर रहने वाले सभी व्यक्तियों पर समान रूप से लागू होते है। रोबिन्स ने मार्शल द्वारा आर्थिक क्रियाओं को भौतिक अभौतिक व साधारण-

असाधारण में बाँटने को भी अवैज्ञानिक माना है क्योंकि मानवीय क्रियाओं को अलग-अलग वर्गो में रखना संभव नहीं है।

1.2.3 दुर्लभता अथवा सीमितता प्रधान परिभाषा

प्रो. रॉबिन्स ने अर्थशास्त्र की परिभाषा परम्परागत लीक से हटकर एक नये एवं वैज्ञानिक तरीके से प्रस्तुत की। रॉबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो लक्ष्यों और वैकल्पिक प्रयोग वाले सीमित साधनों के परस्पर संबंधों के रूप में मानव व्यवहार का अध्ययन करता है।

रॉबिन्स की परिभाषा ने अर्थशास्त्र के अध्ययन को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया है। इस परिभाषा के तीन आधार हैं -

असीमित आवश्यकताएँ - मनुष्य की आवश्यकताएँ असीमित हैं। यदि एक आवश्यकता या इच्छा की पूर्ति होती है तो तुरंत नयी आवश्यकता या इच्छा उठ खड़ी होती है। मनुष्य के सामने हमेशा यह समस्या रहती है कि वह कैसे अधिक से अधिक अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करे एवं अपनी सन्तुष्टि को अधिकतम करे।

दुलर्भ साधन - मनुष्य के पास अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जो साधन है वे सीमित हैं।

ऐसी स्थिति में मनुष्य को यह चुनाव करना पड़ता है कि किन आवश्यकताओं की पूर्ति करे और किनको असन्तुष्ट छोड़ दिया जायें।

साधनों के वैकल्पिक प्रयोग - प्रत्येक साधन के कई वैकल्पिक उपयोग हैं, अर्थात् उनमें से प्रत्येक को कई भिन्न-भिन्न कार्यो में प्रयोग कर सकते हैं।

जब तक उपर्युक्त तीनों परस्थितियाँ उत्पन्न न हो तब कोई आर्थिक समस्या नहीं होती। यदि आवश्यकताएँ सीमित हो अर्थात् मनुष्य केवल प्राथमिक आवश्यकताओं - जो जीवन के लिए न्यूनतम आवश्यक है - तक सीमित रहें या आवश्यकताओं की तरह साधन भी असीमित हो या प्रत्येक साधन/वस्तु का एक ही उपयोग हो तो हमारे सामने कोई समस्या नहीं होगी। वास्तविकता में हम देखते हैं, व्यक्ति को हर समय चुनाव की समस्या का सामना करना पड़ता है क्योंकि उसकी आवश्यकताएँ अन्नत है एवं उन्हें पूरा करने के लिए उपलब्ध सीमित साधनों के वैकल्पिक उपयोग है। अत: अर्थशास्त्र को चुनाव का विज्ञान भी कहा जाता है। निःसन्देह रॉबिन्स की परिभाषा ने अर्थशास्त्र को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया है, क्योंकि उन्होंने विश्लेषणात्मक रीति का प्रयोग कर अर्थशास्त्र की सार्वभौमिकता को काफी हद तक बढ़ा दिया। इस परिभाषा का प्रमुख दोष यह है कि इसने अर्थशास्त्र को अव्यक्तिगत, नीरस तथा उद्देश्यों के प्रति तटस्थ बना दिया। अर्थशास्त्र को सामाजिक विज्ञान के स्थान पर मानवीय विज्ञान बना दिया। अर्थशास्त्र को केवल वास्तविक विज्ञान मानकर मानव कल्याण से उसके संबंध को विच्छेद कर दिया। आलोचकों की राय में उस विज्ञान का क्या फायदा जो मानव व्यवहार का अध्ययन तो करता हो परन्तु उसके भले-बुरे की अर्थात् कल्याण की चिन्ता न करता हो। यद्यपि रॉबिन्स की परिभाषा का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि सीमित साधनों से अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने का लक्ष्य सही अर्थो में अधिकतम कल्याण का ही प्रतीक है। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से इस परिभाषा में कल्याण का विचार शामिल है।

रॉबिन्स ने एक तरफ अर्थशास्त्र को चुनाव की समस्या कहकर उसके क्षेत्र को अत्यधिक विस्तृत कर दिया, वहीं दूसरी तरफ अर्थशास्त्र को दुलर्भता जनित समस्याओं के अध्ययन तक सीमित कर उसके क्षेत्र को संकुचित भी कर दिया। रोस्टोव तथा गेलब्रेथ जैसे विचारकों का मानना है कि बड़े पैमाने पर उत्पादन, बेरोजगारी, आर्थिक मन्दी जैसे समस्याओं का जन्म दुलर्भता के बजाय प्रचुरता के कारण होता है।

1.2.4 आधुनिक अथवा विकास केन्द्रित परिभाषा

आधुनिक परिभाषा - आधुनिक अर्थशास्त्रियों की राय में अर्थशास्त्र केवल सीमित साधनों से साध्यों को प्राप्त करने हेतु उपयुक्त आवंटन का ही अध्ययन नहीं करता, अपितु सीमित साधनों के परिणाम में वृद्धि करने के प्रयासों का अध्ययन भी करता है। दूसरे शब्दों में वर्तमान समय में आर्थिक विकास की समस्या को अर्थशास्त्र की विषय वस्तु में प्रमुखता के साथ सम्मिलित किया जा रहा है।

नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री प्रो. पॉल ए. सेम्युलसन के अनुसार अर्थशास्त्र इस तथ्य का अध्ययन है कि व्यक्ति और समाज, मुद्रा का प्रयोग करके या बिना मुद्रा प्रयुक्त किये, विभिन्न प्रयोगों में प्रयुक्त होने वाले दुर्लभ संसाधनों को एक समयावधि में विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में प्रयोग करने और समाज के विभिन्न व्यक्तियों एवं समूहों में वर्तमान व भावी उपभोग में प्रयोग करने का चुनाव करते हैं। सेम्युलसन ने साधनों की सीमितता के परिप्रेक्ष्य में मानव व्यवहार के चुनाव के पहलु को अर्थशास्त्र की केन्द्रीय समस्या माना है। साथ ही उन्होंने अपने विश्लेषण को प्रावैगिक बनाकर आर्थिक विकास की समस्या को अर्थशास्त्र की विषय वस्तु में शामिल कर लिया।

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि समय के साथ आर्थिक क्रियाओं की समझ में वृद्धि व ज्ञान के विस्तार से अर्थशास्त्र की परिभाषा में परिवर्तन होता रहा है। प्रत्येक परिभाषा थोड़े समय उपरान्त त्रुटिपूर्ण और अपूर्ण सिद्ध हो जाती हैं।

साररूप में यह कहना ही उपयुक्त होगा कि रॉबिन्स की परिभाषा सैद्धान्तिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से अधिक उपयुक्त है। जहाँ तक व्यावहारिक पक्ष का प्रश्न है, मार्शल की परिभाषा यथार्थवादी है। मानव कल्याण से प्रेरित विश्व में मार्शल की परिभाषा महत्वपूर्ण है। विकास केन्द्रित परिभाषाओं का अभी और विकास होना शेष है।

बोध प्रश्न - 1

(1) धन संबंधी परिभाषा बताइए।

(2) सीमितता प्रधान परिभाषा की व्याख्या कीजिए।

(3) विकास केन्द्रित परिभाषा समझाइए।

1.3 व्यष्टि तथा समष्टि अर्थशास्त्र (Micro and Macro Economics)

आर्थिक समस्याओं का विश्लेषण प्राय: दो तरीकों से किया जाता है - सूक्ष्म आर्थिक विश्लेषण एवं वृहत् आर्थिक विश्लेषण एवं इसी आधार पर अर्थशास्त्र की विषय सामग्री को दो

भागें में विभाजित किया गया है - व्यष्टि अर्थशास्त्र एवं समष्टि अर्थशास्त्र। इन शब्दों का प्रयोग सर्वप्रथम रेगनार फ्रिश (Regnar Frisch) ने किया।

अंग्रेजी का माइक्रो शब्द ग्रीक शब्द माइक्रोज से बना है, जिसका अर्थ है, लघु और मेक्रो शब्द मेक्रोज से जिसका अर्थ है विशाल। इस प्रकार अर्थशास्त्र में लघु इकाइयाँ जैसे - व्यक्तिगत उपभोक्ताओं, व्यक्तिगत फर्मो तथा व्यक्तिगत इकाइयों के छोटे समूहों जैसे उद्योग व बाजारों का अध्ययन किया जाता है। समष्टि अर्थशास्त्र में सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था तथा उसके विशाल समूहों जैसे राष्ट्रीय उत्पादन व आय, कुल रोजगार, कुल उपभोग, कुल निवेश का विश्लेषण किया जाता है। दूसरे शब्दों में, व्यष्टि अर्थशास्त्र, आर्थिक विश्लेषण का वह रूप है जो अर्थशास्त्र के एक छोटे से भाग का अध्ययन करता हैं जबकि समष्टि अर्थव्यवस्था में सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का एक साथ अध्ययन किया जाता है।

1.3.1 व्यष्टि अर्थशास्त्र

व्यष्टि अर्थशास्त्र में हम अर्थव्यवस्था की अनगिनत इकाइयों का सूक्ष्म विश्लेषण कर उनके सन्तुलन का अध्ययन करते हैं तथा साथ ही इन इकाइयों के अंतर संबंधों की विवेचना भी की जाती है। उदाहरणार्थ, व्यष्टि परक आर्थिक विश्लेषण में हम एक वस्तु के लिए एक व्यक्ति की मांग का अध्ययन करते हैं व इसकी सहायता से उस पदार्थ की बाजार मांग का पता लगाते हैं (अर्थात् उस वस्तु का उपयोग करने वाले विभिन्न व्यक्तियों के समूह की मांग का अध्ययन)। इसी प्रकार व्यक्तिगत फर्मो के कीमत एवं उत्पादन निर्धारण सम्बन्धी-व्यवहार का अध्ययन किया जाता है और पता लगाया जाता है कि मांग व पूर्ति की दशाओं में परिवर्तनों का उनकी क्रियाओं पर क्या प्रभाव पड़ता है?

व्यष्टि आर्थिक सिद्धान्त में हम यह मानकर चलते हैं कि साधनों की मात्रा निश्चित है और इसलिए मुख्य समस्या साधनों के विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में आवंटन है। साधनों के आवंटन से ही यह निश्चित होता है कि किस वस्तु का कितना व किस प्रकार उत्पादन किया जाये। एक स्वतन्त्र बाजार अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साधनों का आवंटन वस्तुओं तथा साधनों की कीमतों पर निर्भर करता है। इस प्रकार वस्तु कीमत तथा साधन कीमत सिद्धान्त व्यष्टि अर्थशास्त्र के क्षेत्र में सम्मिलित हैं।

वस्तु कीमत सिद्धान्त से हमें यह पता चलता है कि विभिन्न वस्तुओं की कीमतें कैसे निर्धारित होती है। इसी प्रकार साधन कीमत सिद्धान्त अथवा वितरण का सिद्धान्त हमें यह बताता है कि उत्पादन के साधनों - श्रम, भूमि, पूंजी, साहस एवं संगठन की कीमतें क्रमश: मजदूरी, लगान, ब्याज व लाभ का निर्धारण कैसे होता है।

वस्तु की कीमतें उस वस्तु की मांग एवं पूर्ति की शक्तियों पर निर्भर करती है। वस्तु की मांग उपभोक्ताओं के व्यवहार तथा वस्तु की पूर्ति उत्पादन तथा लागत की दशाओं और फर्म तथा उद्यमकर्ता के व्यवहार पर निर्भर होती है। इसलिए वस्तु एवं साधनों की कीमतों के निर्धारण को स्पष्ट करने के लिए मांग एवं पूर्ति की दशाओं का विश्लेषण करना आवश्यक होता है। अत: मांग सिद्धान्त तथा उत्पादन सिद्धान्त कीमत के दो उपविभाग हैं।

व्यष्टि अर्थशास्त्र में इस बात का भी अध्ययन किया जाता है कि साधनों का आवंटन कुशल है अथवा नहीं। साधनों के आवंटन में कुशलता से यह तात्पर्य है कि विभिन्न साधनों का

आवंटन इस प्रकार से किया जाये कि व्यक्तियों को अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हों। इस आर्थिक कुशलता के तीन पहलु हैं (जिनका अध्ययन आगे की इकाई में करेंगे) - उत्पादन में कुशलता, उपभोग कुशलता तथा आवंटन विषयक या उत्पादन निदेशन में कुशलता। आर्थिक कुशलता की समस्या कल्याणकारी अर्थशास्त्र की विषय वस्तु है जो व्यष्टि अर्थशास्त्र की तीसरी प्रमुख शाखा है। इस कुशलता का अर्थ यह है कि क्या वस्तुओं का जिस प्रकार उत्पादन व उपभोग किया जा रहा है उसे पुनर्व्यवस्थित करके किसी वस्तु की मात्रा में कमी किए बिना किसी अन्य वस्तु का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

व्यष्टि अर्थशास्त्र के सम्पूर्ण क्षेत्र अर्थात् विषय वस्तु को निम्न प्रकार से स्पष्ट कर सकते हैं -

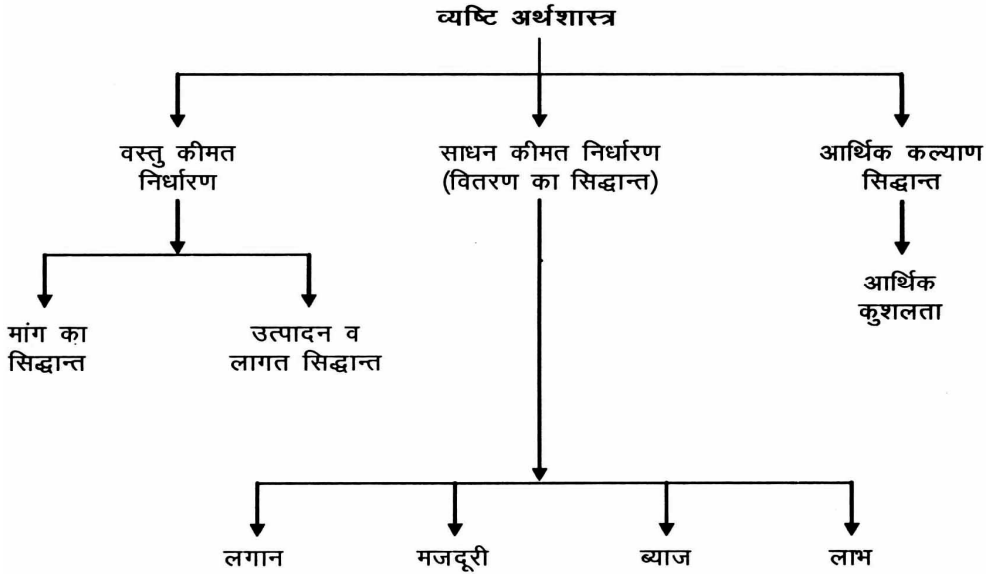

व्यष्टि अर्थशास्त्र में सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का सूक्ष्म अध्ययन किया जाता है अर्थात् इसमें अर्थव्यवस्था की व्यक्तिगत आर्थिक इकाइयों के व्यवहार, उनके परस्पर संबंध तथा संतुलन समायोजन का विश्लेषण किया जाता है जिससे समाज में साधनों के आवंटन का निर्धारण होता है। इसे सामान्य सन्तुलन विश्लेषण भी कहा जाता है। इसके साथ ही इसमें विशिष्ट या आंशिक सन्तुलन विश्लेषण भी किया जाता है, जिसका अर्थ है, अन्य दशाओं को स्थिर मानते हुए व्यक्तिगत आर्थिक इकाइयों के सन्तुलन का अध्ययन करना।

अर्थशास्त्र में व्यष्टि अर्थशास्त्र अथवा सूक्ष्म आर्थिक विश्लेषण का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक महत्व है। व्यष्टि अर्थशास्त्र से ही हमें पता चलता है कि मुक्त बाजार अर्थात् पूंजीवादी अर्थव्यवस्था जिसमें अनेकानेक उत्पादक व उपभोक्ता होते हैं, किस प्रकार हजारों वस्तुओं और सेवाओं में साधनों का आवंटन करते है, किस प्रकार उपभोग के लिए वस्तुओं और सेवाओं का वितरण होता है, वस्तुओं तथा साधनों की सापेक्ष कीमतें किस प्रकार निर्धारित होती है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था के वास्तविक विश्लेषण के साथ यह उन नीतियों का सुझाव भी देता है जिससे व्यक्तियों के कल्याण या उनकी सन्तुष्टि को अधिकतम करने के लिए आर्थिक व्यवस्था में से अकुशलता को कैसे दूर किया जा सकता है। व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण का उपयोग अर्थशास्त्र की व्यावहारिक शाखाओं जैसे लोक वित्त व अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र में किया जाता है।

1.3.2 समष्टि अर्थशास्त्र

आर्थिक विश्लेषण का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष समष्टि अर्थशास्त्र है, जिसे व्यापक अर्थशास्त्र या कभी-कभी सामूहिक अर्थशास्त्र भी कहा जाता है। इसमें अर्थशास्त्र का अध्ययन समग्र रूप से किया जाता है। इसके अंतर्गत विशाल समूहों जैसे कुल रोजगार, कुल राष्ट्रीय उत्पादन अथवा आय, सामान्य कीमत स्तर, कुल उपभोग, कुल निवेश आदि का अध्ययन किया जाता है। दूसरे शब्दों में, यह व्यक्तिगत आय से नहीं बल्कि राष्ट्रीय आय से, व्यक्तिगत कीमत से नहीं बल्कि कीमत स्तर से, व्यक्तिगत उत्पादन से नहीं बल्कि राष्ट्रीय उत्पादन से संबंधित है। इस प्रकार यह व्यक्तिगत इकाइयों - जैसे परिवार, फर्म या उद्योग का नहीं वरन् इन इकाइयों के औसत समूहों का अध्ययन है।

समष्टि परक आर्थिक विश्लेषण इन बातों की भी व्याख्या करता है कि राष्ट्रीय आय व रोजगार का स्तर किस प्रकार तय होता है, राष्ट्रीय आय, उत्पादन व रोजगार के स्तरों में उच्चावचन किन कारणों से होता है, दीर्धकाल में राष्ट्रीय आय की वृद्धि किन तत्वों पर निर्भर करती है । दूसरे शब्दों में समष्टि अर्थशास्त्र समस्त आर्थिक क्रियाओं के स्तर, उनके उच्चावचन तथा वृद्धि के निर्धारण का विश्लेषण करता है ।

1936 में प्रकाशित जे.एम. केन्ज की पुस्तक "A General Theory of Employment, Interest and Money" में आय व रोजगार के सामान्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। केन्ज का सिद्धान्त नव प्रतिष्ठित सिद्धान्त से भिन्न था एवं उसने आर्थिक सिद्धान्त में इतना मूलभूत परिवर्तन किया कि उनका समष्टि परक आर्थिक विश्लेषण केंन्जियन क्रांति, केन्जियन अर्थशास्त्र तथा नया अर्थशास्त्र के नाम से प्रसिद्ध हो गया। केंज ने यह बताया कि कुल मांग व कुल पूर्ति द्वारा राष्ट्रीय आय व रोजगार का स्तर कैसे निर्धारित होता है तथा अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार से पहले की स्थिति में भी कैसे सन्तुलन में होती है।

समष्टि अर्थशास्त्र कीमतों के सामान्य स्तर के निर्धारण तथा मुद्रा स्फीति की समस्या का भी अध्ययन करता है। समष्टि अर्थशास्त्र की एक और महत्वपूर्ण शाखा आर्थिक विकास का सिद्धान्त है। समष्टि अर्थशास्त्र कुल राष्ट्रीय आय के विभिन्न वर्गो, श्रमिकों, पूंजीपतियों, भूमिपतियों - में वितरण का भी अध्ययन करता है। संक्षेप में समष्टि परक आर्थिक विश्लेषण में निम्नांकित सिद्धान्त सम्मिलित किये जाते हैं :-

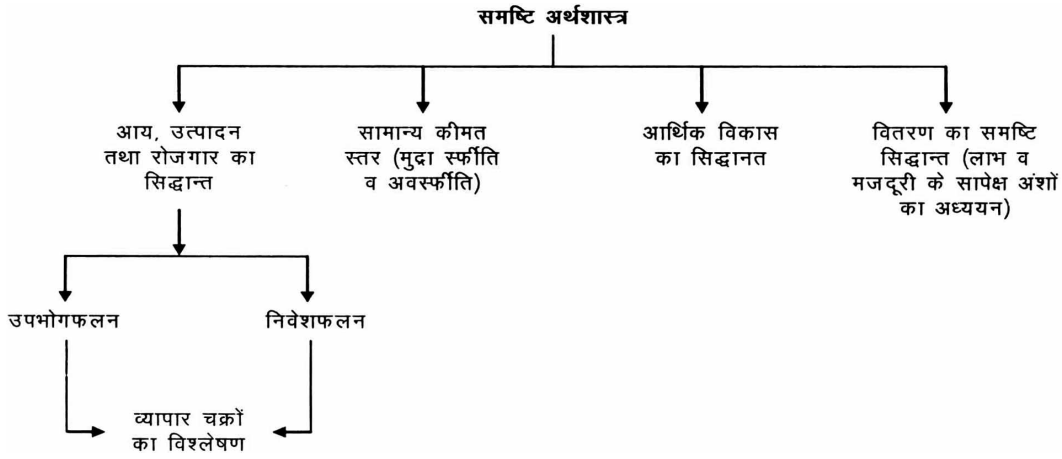

1.3.3 समष्टि अर्थशास्त्र का पृथक् अध्ययन क्यों?

अब एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था या इसके विशाल समूहों के पृथक् अध्ययन की आवश्यकता क्यों हैं? क्या हम व्यक्तिगत फर्मो का उद्योगों के व्यवहारों के अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षो को औसत के आधार पर समष्टि अर्थशास्त्र के चरों को नियन्त्रित करने वाले नियमों को प्राप्त नहीं कर सकते हैं? वास्तव में जो अर्थशास्त्र की इकाईयों के बारे में सत्य है आवश्यक नहीं कि वह समूह के बारे में भी सत्य हो। व्यष्टि परक तरीके से सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्था का विवेचन करना गलत है और इससे भ्रामक निष्कर्ष निकल सकते हैं।

आर्थिक क्षेत्र में ऐसे कई विरोधाभास देखने को मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि जो नियम इकाईयों के लिए सत्य हैं परन्तु समस्त समूह के लिए नहीं। जैसे बचत एक व्यक्ति के लिए सदा एक सद्गुण है परन्तु पूरी अर्थव्यवस्था के लिए एवं विशेष रूप से बेरोजगारी एवं मंदी की स्थिति में अवगुण बन जाती है क्योंकि समूचे समाज द्वारा अत्यधिक बचत से समस्त समर्थ मांग में कमी हो जाती है। जो अर्थव्यवस्था में मंदी एवं बेरोजगारी का कारण बनती है। ऐसे समष्टिपरक आर्थिक विरोधाभास के कारण तथा अर्थव्यवस्था के वास्तविक कार्यचालन को समझने के लिए सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का सामूहिक अध्ययन आवश्यक है।

1.3.4 समष्टि तथा व्यष्टि अर्थशास्त्र का परस्पर संबंध

वास्तव में व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र परस्पर निर्भर हैं, एक दूसरे के पूरक है, प्रतियोगी नहीं। ये आर्थिक विश्लेषण के दो वैकल्पिक रूप है। आर्थिक प्रणाली की क्रियाशीलता को समुचित ढंग से समझने के लिए दोनों का विवेक समस्त उपयोग आवश्यक है। उदाहरणार्थ, किसी एक फर्म द्वारा श्रम एवं अन्य कच्चे माल पर व्यय की गई राशि अथवा उसकी उत्पादन लागत उस विशेष फर्म की मांग से नहीं बल्कि समूची अर्थव्यवस्था की मांग से निर्धारित होती है। इसी प्रकार सामान्य कीमत स्तर के निर्धारण के व्याख्या के लिए वस्तुओं तथा साधनों की सापेक्ष कीमतों का सिद्धान्त आवश्यक है।

प्रोफेसर ऐकले के अनुसार समष्टि अर्थशास्त्र व्यक्तिगत व्यवहार के सिद्धान्तों के लिए आधार प्रदान करता है। दूसरी ओर समष्टि अर्थशास्त्र व्यष्टि अर्थशास्त्र को समझने में सहायक हैं।

बोध प्रश्न - 2

(1) व्यष्टि अर्थशास्त्र को परिभाषित कीजिए।

(2) समष्टि अर्थशास्त्र को परिभाषित कीजिए।

(3) व्यष्टि तथा समष्टि अर्थशास्त्र का परस्पर संबंध बताइए।

1.4 आर्थिक स्थैतिकी तथा प्रावैगिकी

आर्थिक स्थैतिकी एवं प्रावैगिकी अर्थशास्त्र की दो महत्वपूर्ण अध्ययन विधियाँ हैं । इन दोनों विधियों के अन्तर को स्पष्ट करने के लिए दो अवस्थाओं स्थिर तथा गत्यात्मक के अंतर को समझना आवश्यक है।

अर्थशास्त्र में एक चर को तब स्थिर माना जाता है जबकि समय परिवर्तन के साथ उस चर के मूल्य में कोई परिवर्तन न आये। दूसरी ओर चर को गत्यात्मक अथवा परिवर्तनशील तब माना जाता है जब समय के साथ-साथ उसके मूल्य में भी परिवर्तन हो।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि चर व्यष्टिपरक दृष्टिकोण से परिवर्तनशील हो परन्तु समष्टिपरक दृष्टिकोण से स्थिर हो। उदाहरणार्थ - व्यक्तिगत वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन हो परन्तु समय के दौरान सामान्य कीमत स्तर स्थिर हो। इसी तरह विशिष्ट चर स्थिर हो सकते हैं, जबकि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था परिवर्तनशील हो। जैसे अर्थव्यवस्था में निवल-निवेश का स्तर में परिवर्तन हो तब भी व्यक्तिगत फर्म अथवा उद्योग में निवल निवेश स्थिर हो सकता है।

1.4.1 स्थैतिक विश्लेषण

आर्थिक सिद्धान्त का प्रमुख कार्य आर्थिक चरों के मध्य में फलन संबंधों की व्याख्या करना है। यदि फलन संबंध उन चरों के मध्य स्थापित किया गया है जिनके मूल्यों का संबंध एक ही समय या एक ही समय अवधि से है तो इस विश्लेषण को स्थैतिक कहा जाता है। उदाहरण के लिए मांग का नियम ले सकते हैं। इस नियम के अनुसार अन्य बातें समान रहने पर किसी समय में मांग में कीमत परिवर्तन की विपरीत दिशा में परिवर्तन होता है। दोनों चरों का संबंध एक ही समय से होने के कारण इन संबंधों का विश्लेषण स्थैतिकी विश्लेषण बन जाता है।

स्थैतिक विश्लेषण की मान्यताएँ

स्थैतिक विश्लेषण में कुछ निर्धारक दशाओं तथा कारकों को स्थिर मानकर किसी समय में संबंधित चरों के संबंधों तथा उनके परस्पर समायोजन के परिणामों की व्याख्या की जाती हैं जैसे ऊपर दिये गये मांग के नियम में वस्तु की कीमत तथा मांग में संबंध रथापित करने के लिए हम उपभोक्ता की आय, संबंधित वस्तुओं की कीमत, उपभोक्ता की पंसद, रूचि, अधिमान, फैशन इत्यादि को हम स्थिर मान लेते हैं। ये कारक अथवा चर समय के साथ परिवर्तित होते हैं और उनमें परिवर्तन के कारण मांग फलन विवर्तित हो जाता है। परन्तु स्थैतिक विश्लेषण में हमारा कार्य, दिये हुए समय-बिन्दु पर वस्तु की कीमत एवं मांग के संबंध का निर्धारण करना है, इसलिए हम यह मान लेते हैं कि अन्य निर्धारक कारकों तथा दशाओं में परिवर्तन नहीं होता है।

स्थैतिक विश्लेषण के संबंध में एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि दी हुई दशाओं को उन चरों या इकाइयों के व्यवहारों से स्वतंत्र मान लिया जाता है, जिनके फलन संबंधों का अध्ययन किया जा रहा है। अर्थात् उपर्युक्त उदाहरण के संदर्भ में यह मान लिया जाता है कि वस्तु की कीमत व मांग में परिवर्तन का प्रभाव उपभोक्ता की आय, उसकी रूचि व अधिमानों, संबंधित वस्तुओं की कीमत आदि दशाओं पर नहीं पड़ता।

स्थैतिक विश्लेषण की उपयोगिता

निश्चित चरों के बीच संबंधों का अध्ययन करते समय अन्य दशाओं और कारकों को स्थिर मान लेने से जटिल आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन कार्य सरल हो जाता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वे क्रियाहीन हैं, परन्तु दिये हुए समय के लिए उनकी क्रियाओं को भुला देने से कार्य सरल हो जाता है।

तुलनात्मक स्थैतिकी

तुलनात्मक स्थैतिकी विश्लेषण एक प्रारम्भिक सन्तुलन अवस्था की उस अन्य सन्तुलन अवस्था जो कि दी हुई दशाओं में परिवर्तन के फलस्वरूप अन्ततः प्राप्त होती हैं, का तुलनात्मक अध्ययन है। तुलनात्मक स्थैतिकी उस समस्त पथ का विश्लेषण नहीं करती, जिससे कोई व्यवस्था एक संतुलित स्थिति से चल कर दूसरी स्थिति को प्राप्त करती है। इसमें केवल दो

भिन्न संतुलन की स्थितियों की तुलना की जाती है। दूसरे शब्दों में तुलनात्मक स्थैतिकी में हम गतिशील प्रक्रिया का अध्ययन विभिन्न साम्य-बिन्दुओं के रूप में करते है।

संक्षेप में, स्थैतिक विश्लेषण में हम समय परिवर्तन पर ध्यान नहीं देते और एक ही समय बिन्दु से संबंधित विभिन्न चरों में तात्कालिक संबंधों की स्थापना करते हैं। सामान्यत: यह समय रहित होता है, जिसमें प्रक्रिया की अवधि के विषय में कुछ भी नहीं बताया जाता, परन्तु इसे किसी भी समय अवधि में सत्य होना कहा जाता है। अर्थशास्त्र की बहुत सी विषय सामग्री जिनका विश्लेषण स्थैतिक आधार पर किया जाता है, उसमें मांग व कीमत का क्रियात्मक संबंध, सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम, स्वतन्त्र व्यापार का सिद्धान्त, तुलनात्मक लागत सिद्धान्त, लगान का सिद्धान्त, राष्ट्रीय आय का वितरण एवं सीमान्त विश्लेषण प्रमुख हैं।

1.4.2 आर्थिक प्रावैगिकी

जब विश्लेषण में प्रयुक्त विभिन्न चरों के मूल्यों का संबंध विभिन्न समय बिन्दुओं से हो तो इसको प्रावैगिक विश्लेषण अथवा आर्थिक प्रावैगिकी कहा जाता है। प्रो. शुम्पीटर के अनुसार "हम एक संबंध को प्रावैगिक तब कहते हैं यदि वह विभिन्न समय बिन्दुओं से संबंधित आर्थिक मात्राओं में संबंध स्थापित करता है। इस प्रकार यदि एक समय बिन्दु (t) पर वस्तु की जो मात्रा दी जाती है व पूर्व समय बिन्दु (t-1) की प्रचलित कीमत पर निर्भर है तो इसको प्रावैगिक संबंध कहा जाएगा।

इस प्रकार आर्थिक प्रावैगिकी में दिए हुए चरों के परस्पर संयोजन में समय तत्व को स्वीकार किया जाता है।

आर्थिक क्रियाओं में प्रावैगिक संबंधों के बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं। जैसे व्यष्टिपरक विश्लेषण में कीमत एवं वस्तु की पूर्ति के प्रावैगिक संबंधों को निम्न प्रकार दर्शा सकते हैं -

$St = f(P_{t-1})$

किसी वस्तु की (t) समय में बाजार में पूर्ति उस वस्तु की पूर्व समय (t-1) में प्रचलित कीमत पर निर्भर करती हैं।

इसी प्रकार समष्टि परक विश्लेषण में यदि हम यह मानकर चलें कि चरों की अर्थव्यवस्था में किसी दिये हुए समय (t) में उपभोग पूर्व समय (t-1) की आय पर निर्भर करता है, तो हम प्रावैगिक संबंध की बात कर रहे होते हैं - $C_t = f(Y_{t-1})$

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि आर्थिक प्रावैगिकी में समय तत्व महत्वपूर्ण है। इसी आधार पर प्रो. हिक्त ने आर्थिक प्रावैगिकी को परिभाषित करते हुए कहा है कि आर्थिक प्रावैगिकी अर्थशास्त्र की वह शाखा है जहाँ सभी आर्थिक मात्राओं को दिनांकित किया जाता है।

प्रावैगिकी व्यवस्था में परिवर्तन अथवा गति अन्तर्गत होती है, अर्थात् एक परिवर्तन से ही दूसरा परिवर्तन उत्पन्न होता है। प्रारम्भ में कोई बाह्य परिवर्तन हो सकता है, परन्तु इस प्रारम्भिक बाह्य परिवर्तन के उत्तर में, प्रावैगिकी व्यवस्था बिना किसी अन्य बाह्य परिवर्तन के स्वतन्त्र रूप से बढ़ती है एवं विगत स्थितियों से उत्तरोतर नई स्थितियाँ उत्पन्न होती रहती हैं। दूसरे शब्दों में प्रावैगिकी प्रक्रिया का विकास स्वयं जनित होता है।

प्रावैगिकी विश्लेषण में अन्य बातों के समान रहने नामक मान्यता का प्रश्न ही नहीं उठता। प्रावैगिकी ऐसी विधि है, जिसमें सभी परिवर्तनों, विलम्बनाओं, अनुक्रमों, संचयी परिणामों यहाँ तक कि सभी आशंसाओं को सम्मिलित किया जाता है। पुराने संतुलन के भंग होने व नये संतुलन की स्थापना से पूर्व की समय अवधि में जो आर्थिक समायोजन दृष्टिगोचर होते हैं यह पद्धति उन सभी का चित्रांकन करती है।

प्रावैगिकी विश्लेषण को एक उदाहरण से समझा जा सकता है। राष्ट्रीय आय का स्तर समस्त मांग वक्र तथा समस्त पूर्ति वक्र के संतुलन द्वारा निर्धारित होता है। अब यदि किसी कारण जैसे निवेश में वृद्धि होने से मांग में वृद्धि हो जाये तो समस्त मांग वक्र ऊपर की ओर विवर्तित हो जायेगा, जिसके कारण एक नया संतुलन बिन्दु स्थापित होगा और राष्ट्रीय आय का स्तर बढ़ जायेगा।

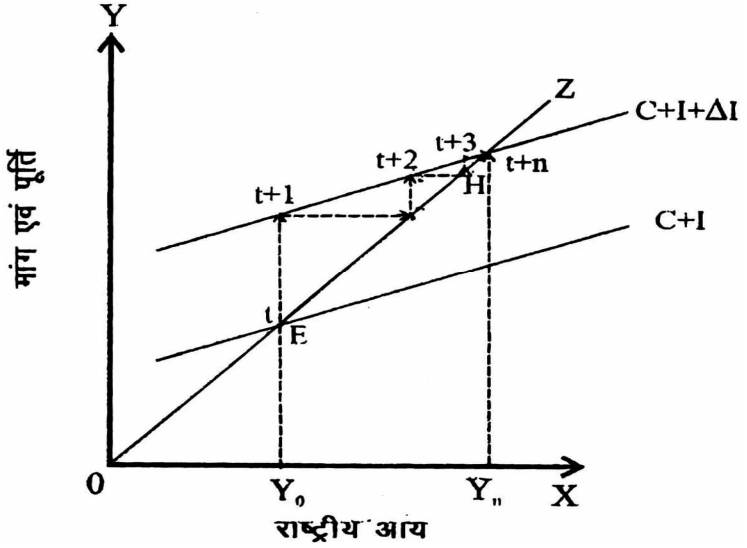

रेखाचित्र 1.1 : समष्टिपरक प्रावैगिक सन्तुलन

रेखाचित्र 1.1 में आय निर्धारण का एक सामान्य समष्टिपरक मॉडल प्रदर्शित किया गया है। समस्त मांग C+I वक्र द्वारा व्यक्त की गई है। OZ रेखा आय व्यय के संतुलन को दर्शाता हुआ वक्र है जो X अक्ष से 45° की रेखा है। समस्त मांग रेखा C+I, t समय में OZ रेखा को E बिन्दु पर काटती है। इस संतुलन पर राष्ट्रीय आय OYo पर निर्धारित होती है। अब यदि निवेश में ΔI से परिवर्तन होता है तो नयी मांग रेखा से व्यक्त होती है। निवेश में वृद्धि के परिणामस्वरूप आय बढ़नी प्रारंभ हो जाती है, परन्तु संतुलन H तक पहुँचने में समय लगेगा। t समय में निवेश में वृद्धि से t+1 समय में निवेश की मात्रा के बराबर राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी, अब यह आय वृद्धि उपभोग में बढ़ायेगी। इस बढ़ी हुई उपभोग मांग में वृद्धि को पूरा करने के लिए उत्पादन में वृद्धि की जायेगी, जिससे t+2 समय में आय में वृद्धि होगी। यह क्रम तब तक जारी रहेगा, जब तक नया संतुलन H प्राप्त नहीं कर लिया जाये, H बिन्दु पर राष्ट्रीय आय का स्तर OYn होगा।

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि एक संतुलन से दूसरे संतुलन तक पहुँचने में समय के साथ चरों की मात्रा में समायोजन होता है अत: आर्थिक प्रावैगिकी में चरों के समय निर्धारण के साथ उनमें फलनात्मक संबंध भी महत्वपूर्ण है। प्रावैगिक अर्थशास्त्र में मुख्य रूप से व्यापार चक्रों,

जनसंख्या वृद्धि, ब्याज का सिद्धान्त, लाभ व निवेश का सिद्धान्त, आर्थिक विकास एवं नियोजन आदि का अध्ययन किया जाता है।

1.4.3 स्थैतिक एवं प्रावैगिक अर्थशास्त्र की तुलना

(1) स्थैतिक अर्थशास्त्र एक समय रहित विचार है जबकि प्रावैगिक अर्थशास्त्र का संबंध समय के विभिन्न बिन्दुओं से होता है।

(2) स्थैतिक विश्लेषण साम्य का अध्ययन है जिसमें समायोजन की प्रक्रिया, समय व साम्य पथ पर ध्यान नहीं दिया जाता परन्तु प्रावैगिक विश्लेषण असाम्य का अध्ययन है। जिसमें समायोजन की प्रक्रिया, समयावधि एवं साम्य के मार्ग पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

(3) स्थैतिक अवस्था में गति हो जाती है परन्तु गति की दर इतनी निश्चित व नियमित होती है कि अर्थव्यवस्था के स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं होता। प्रावैगिक अवस्था में आधारभूत शक्तियाँ बदल जाती है जिससे अर्थव्यवस्था का स्वरूप पहले से भिन्न हो जाता है।

(4) स्थैतिक विश्लेषण अर्थव्यवस्था को खण्डों में बाँटकर अध्ययन करता है, जबकि प्रावैगिक विश्लेषण सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का अध्ययन है।

बोध प्रश्न - 3

(1) स्थैतिक विश्लेषण की मान्यताएँ बताइए।

(2) आर्थिक प्रावैगिकी की व्याख्या कीजिए।

1.5 अर्थशास्त्र की अध्ययन विधियाँ

अर्थशास्त्र में नियमों एवं सिद्धान्तों की खोज करने हेतु कुछ विधियों का उपयोग किया जाता है। सामान्यत: आर्थिक अन्वेषण में अर्थशास्त्री दो विधियों का उपयोग करते हैं -

1. **निगमन विधि (Deductive Method)**
2. **आगमन विधि (Inductive Method)**

1.5.1 निगमन विधि (Deductive Method)

इस विधि में हम सामान्य से विशिष्ट की ओर जाते हैं। इसके अंतर्गत मानव प्रकृति के कुछ सर्वमान्य आधार मूलक एवं स्वयंसिद्ध नियमों से तर्क द्वारा उपनियमों का निर्माण करते हैं। दूसरे शब्दों में, इस प्रणाली में मानसिक विश्लेषण द्वारा सामान्य नियमों से विशिष्ट नियम निकालते हैं। इस विधि को सबसे ज्यादा ब्रिटेन के अर्थशास्त्रियों ने उपयोग में लिया। इसे विश्लेषणात्मक, अमूर्त अथवा निगम्य विधि भी कहते हैं।

निगमन विधि की तीन अवस्थाएँ होती हैं -

1. पर्यवेक्षण द्वारा उन स्वयंसिद्ध नियमों या परिकल्पनाओं का चयन किया जाता है, जिनसे हमें निष्कर्ष निकाले जाते हैं।
2. दूसरी अवस्था में प्रारम्भिक परिकल्पना या नियम के आधार पर तर्क विधि द्वारा अनुमान अथवा निष्कर्ष निकाले जाते हैं।
3. तीसरी अवस्था मे पर्यवेक्षण द्वारा पुन: नव स्थापित निष्कर्षो का निदर्शन, परीक्षण एवं पुष्टिकरण किया जाता है।

उदाहरणार्थ - उपयोगिता ह्रास नियम के अनुसार जब कोई व्यक्ति किसी वस्तु की अधिकाधिक इकाइयों का उपयोग करता है तो प्रत्येक अगली इकाई से प्राप्त होने वाली उपयोगिता गिरती चली जाती है। यह एक स्वयं सिद्ध सत्य हैं इसे किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं हैं निगम्य तर्क विधि द्वारा इस नियम के आधार पर कई प्रकार के उप नियम निकाल सकते हैं, जैसे मुद्रा की एक निश्चित मात्रा से गरीबों की अपेक्षा अमीरों को कम उपायोगिता प्राप्त होती है। इसी का और आगे तार्किक विश्लेषण करें तो कह सकते है कि यदि प्रत्येक व्यक्ति अपनी आय का एक निश्चित प्रतिशत कराधान के रूप में सरकार को देता है तो निश्चय ही अमीरों पर कर का भार कम और गरीबों पर अधिक होगा। स्पष्टत: कर का बोझ उठाते समय अमीरों और गरीबों का त्याग एक समान नहीं होगा और यह स्थिति कराधान के महत्वपूर्ण समानता सिद्धान्त के भी विरूद्ध है। अतएव, कराधान में कर की दरें प्रगतिशील होनी चाहिये अर्थात् जितनी अधिक आय, कर की दर भी उतनी ही अधिक होनी चाहिये।

निगम्य तर्क विधि का प्रयोग करते समय हमें यथासम्भव सरल परिकल्पनाओं से अन्वेषण कार्य प्रारम्भ करना चाहिये और फिर शनै: शनै: अधिक जटिल उपकल्पनाओं को विश्लेषण मे शामिल करना चाहिये। इससे हमारा अन्वेषण कार्य सरल हो जायेगा। वास्तविक जगत एक अत्यन्त कठिन एवं जटिल चित्र प्रस्तुत करता है और इसी रूप में इसका अध्ययन करें तो किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचना मुश्किल होगा। परन्तु सरलतम रूप से अध्ययन प्रारम्भ करके धीरे-धीरे वास्तविक जगत की जटिलताओं का अध्ययन करें तो यथार्थपूर्ण अध्ययन करने में सफल हो जायेंगे।

निगमन प्रणाली अध्ययन की एक सरल प्रणाली है क्योंकि इसमें हम मानव व्यवहार से सम्बन्धित कुछ आधारभूत तथ्यों की सहायता से अनेक विशिष्ट परिणाम निकाल सकते हैं। इस विधि द्वारा निकाले गये निष्कर्ष अधिक निश्चित तथा स्पष्ट होते हैं। साथ ही इस तरह से प्रतिपादित नियम सर्वव्यापी एवं सर्वकालिक होते हैं। चूंकि ये नियम मनुष्य की सामान्य प्रकृति एवं स्वभाव पर आधारित है इसलिये उन्हें किसी भी देश, समाज या काल में लागू किया जा सकता है। इस विधि से प्राप्त निष्कर्ष निष्पक्ष होते हैं क्योंकि ये सामान्य सत्यों पर आधारित होते हैं एवं इन पर अनुसंधानकर्ता के विचारों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस विधि द्वारा आर्थिक घटनाओं के बारे में अधिक अच्छे ढंग से भविष्यवाणी भी की जाती हैं।

निगमन प्रणाली का प्रमुख दोष यह है कि इस विधि द्वारा आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन केवल स्थैतिक दशाओं में ही किया जा सकता है । इस विधि द्वारा प्रावैगिक आर्थिक विश्लेषण सम्भव नहीं हैं क्योंकि प्रावैगिक अर्थशास्त्र आर्थिक दशाओं को स्थिर नहीं मानता।

1.5.2 आगमन विधि (Inductive Method)

इस विधि में विशिष्ट से सामान्य की ओर जाते हैं, अत: ये निगमन विधि के ठीक विपरीत हैं। इसके अनुसार हम किसी आर्थिक घटना के बारे में इतिहास के अध्ययन अथवा पर्यवेक्षण द्वारा अनेक तथ्य एकत्र करते हैं और फिर इन तथ्यों के आधार पर सामान्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं। इस प्रणाली का विकास जर्मनी के ऐतिहासिक सम्प्रदाय के प्रमुख अर्थशास्त्रियों जैसे फ्रेडरिक लिस्ट, रोशर वेगनर आदि ने किया।

इस प्रणाली के भी तीन मुख्य भाग है। प्रथम - इतिहास के अध्ययन अथवा पर्यवेक्षण द्वारा तथ्यों को एकत्र करते हैं। दूसरे भाग में उन तथ्यों का वैज्ञानिक वर्गीकरण करके उनमें से सामान्य निष्कर्ष निकालते है। तीसरे भाग में इन निकाले हुए निष्कर्षो की सत्यता -की पुन: तथ्यों द्वारा जाँच करते है। आगमन विधि को ऐतिहासिक, अनुभवगम्य, उद्गम्य अथवा समन्वयमूलक विधि भी कहते हैं।

आगमन विधि के सामान्यत: दो रूप होते हैं -

1. परीक्षणात्मक रूप 2. सांख्यिकी रूप

1. **परीक्षण विधि -** इस विधि में नियन्त्रित दशाओं के अन्तर्गत किये गये प्रयोगों के आधार पर सामान्य सत्यों को प्रतिपादन किया जाता है। अर्थशास्त्र में इसका क्षेत्र सीमित है क्योंकि अर्थशास्त्री के पास प्रयोगशाला संबंधी वे सभी सुविधाएँ उपलब्ध नहीं जो किसी भौतिक शास्त्री या रसायन शास्त्री को उपलब्ध होती है। अर्थशास्त्रियों की मुख्य समस्या यह है कि उनका अध्ययन विषय भूतद्रव्य नहीं बल्कि मानव है। मनुष्य के व्यवहार का नियन्त्रित परिरिथतियों में अध्ययन करना संभव नहीं।
2. **सांख्यिकीय विधि -** इस विधि के अंतर्गत राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न खण्डों से संबंधित तथ्यों का संग्रह करते है। तत्पश्चात् उनका वर्गीकरण एवं सारणीय किया जाता है और सांख्यिकीय सूत्रों की सहायता से उनका विश्लेषण कर प्राप्त निष्कर्षो के आधार पर आर्थिक सिद्धान्तों एवं नियमों का निर्माण किया जाता है।

आगमन विधि से प्राप्त निष्कर्ष वास्तविकता के अधिक निकट होते हैं क्योंकि ये प्रयोग तथा सर्वेक्षण पर आधारित होते हैं। प्रावैगिक आर्थिक विश्लेषण में यह विधि अधिक उपयुक्त है। समष्टि अर्थशास्त्र की प्रमुख समस्याओं जैसे राष्ट्रीय आय, रोजगार, आर्थिक विकास आदि का अध्ययन केवल आगमन विधि द्वारा ही किया जा सकता है।

आगमन विधि का प्रमुख दोष यह है कि आकड़ों को एकत्रित करना, उनका वर्गीकरण एवं सारणीयकरण करना एवं सांख्यिकी विधि से विश्लेषण करने के लिए सांख्यिकी के उच्च स्तरीय ज्ञान की आवश्यकता होती है। इसलिए इस विधि का उपयोग वही कर सकता है। जिसे सांख्यिकी का पूर्ण ज्ञान हो। इस विधि से प्राप्त निष्कर्षो की विश्वसनीयता इस पर निर्भर करेगी कि आकड़े कितने सही या विश्वसनीय हैं। इस विधि से प्राप्त निष्कर्षो पर अनुसंधानकर्ता के व्यक्तिगत विचारों का बहुत प्रभाव होता है अत: इन निष्कर्षो की स्वीकार्यता सीमित होती है।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि वैज्ञानिक अनुसंधान में निगमन एवं आगमन दोनों विधियों का महत्वपूर्ण स्थान हैं। ये दोनों तर्कशास्त्र के दो रूप हैं जो एक दूसरे की प्रतियोगी न होकर पूरक एवं सहसंबंध है और सत्य की स्थापना में सहायक हैं।

1.6 सारांश

अर्थशास्त्र में हम मनुष्य के व्यक्तिगत एवं सामूहिक व्यवहार के उन पहलुओं का अध्ययन करते हैं जिनमें विभिन्न आर्थिक समस्याओं का समाधान अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करने के उद्देश्य से किया जाता है। अर्थशास्त्र के अध्ययन की दृष्टि से व्यष्टि अर्थशास्त्र व समष्टि अर्थशास्त्र दो प्रमुख शाखाएँ हैं जिनमें क्रमश: आर्थिक इकाईयों का व्यक्तिगत एवं समूह रूप में अध्ययन किया जाता है। जटिल आर्थिक क्रियाओं का विश्लेषण कर आर्थिक सिद्धान्त प्रतिपदान

करने के लिए आगमन एवं निगमन विधियों का उपयोग किया जाता है। साथ ही विभिन्न चरों की मात्राओं के बीच संबंधों के अध्ययन के लिए स्थैतिक एवं प्रावैगिकी विश्लेषण की विधियों का उपयोग किया जाता है।

1.7 शब्दावली

व्यष्टि अर्थशास्त्र, व्यष्टि स्थैतिकी, तुलनात्मक व्यष्टि स्थैतिकी, समष्टि प्रावैगिकी, समष्टि अर्थशास्त्र, समष्टि स्थैतिकी, तुलनात्मक समष्टि स्थैतिकी, समष्टि प्रावैगिकी, आगमन विधि, निगमन विधि, आर्थिक स्थैतिकी, आर्थिक प्रावैगिकी।

1.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दीजिये। (150 शब्दों में)

1. "अर्थशास्त्र धन का विज्ञान था, अब यह कल्याण का शास्त्र है।" विवेचन कीजिये)
2. "चयन की समस्या ही मूल आर्थिक समस्या है।" विवेचन कीजिये।
3. व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र को परिभाषित करते हुए इनकी विषय सामग्री के बारे में बताइये।
4. स्थैतिक और प्रावैगिक अर्थशास्त्र में अंतर समझाइये।

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर विस्तार में दीजिये - (500 शब्दों में)

1. "अर्थशास्त्र को परिभाषित करते समय रोबिन्स तर्क युक्त व मार्शल व्यावहारिक प्रतीत होते है।" समझाइये।
2. "वास्तव में निगमन एवं आगमन रीतियों में कोई विरोध नहीं है। दोनों ही आवश्यक और एक दूसरे की पूरक है।" विवचेन कीजिये।
3. व्यष्टि तथा समष्टि अर्थशास्त्र में अंतर स्पष्ट कीजिये तथा इनकी पारस्परिक निर्भरता को समझाइये।

1.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. आहुजा, एच. एल. - उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त
2. झिंगन एम. एल. - व्यष्टि अर्थशास्त्र
3. सेठ एम. एल. - अर्थशास्त्र के सिद्धान्त
4. सुन्दरम एवं वैश्य - व्यष्टि अर्थशास्त्र

इकाई - 2

अर्थव्यवस्था की केन्द्रीय समस्याएँ

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 अर्थव्यवस्था की मूलभूत केन्द्रीय समस्याएँ

- 2.2.1 क्या उत्पादन किया जाए? (साधनों के आवण्टन की समस्या)
- 2.2.2 उत्पादन कैसे किया जाए? (तकनीक के चुनाव की समस्या)
- 2.2.3 उत्पादन किसके लिए किया जाए? (वितरण की समस्या)
- 2.2.4 क्या साधनों का कुशलतापूर्वक उपयोग हो रहा हैं?
- 2.2.5 क्या समस्त साधनों का पूर्ण रूप से उत्पादन के लिए उपयोग हो रहा है? (रोजगार की समस्या)
- 2.2.6 क्या अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता अथवा राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो रही हैं (आर्थिक विकास की समस्या)

2.3 कीमत तंत्र

- 2.3.1 कीमत तंत्र एवं अर्थव्यवस्था की मूलभूत समस्याएँ

2.4 समाजवादी अर्थव्यवस्था एवं मूलभूत समस्याएँ

2.5 सारांश

2.6 शब्दावली

2.7 संदर्भ ग्रन्थ

2.8 अभ्यासार्थ प्रश्न (Unitend exercise)

(1) प्रत्येक खण्ड के अन्त में अभ्यास प्रश्न देना आवश्यक है ।

(2) Unit के अन्त में इन अभ्यास प्रश्नों के उत्तर इस इकाई में कहीं मिलेंगे, इंगित करना है ।

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अधययन के पश्चात् आप अर्थवयवस्था की मूलभूत समस्याओं के बारे में समझ सकेगें केन्द्रीय मूलभूत समस्याओं के समाधान के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगें कीमती तंत्र की विवेचना कर सकेगें । नियोजित अर्थव्यवस्था के बारे में जान सकेगें ।

2.1 प्रस्तावना

प्रत्येक देश को, चाहे वो विकसित हो या विकासशील या अविकसित, दुर्लभता के कारण उत्पन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता हैं । देशों की तुलना करने पर ऐसा लग सकता है कि विकसित देशो के पास विकासशील अथवा अविकसित देशों की तुलना में ज्यादा संसाधन है परन्तु

दुर्लभता के अवधारणा वास्तव में उस देश की असीमित आवश्यकताओं की तुलना में सीमित साधनों की ओर संकेत करती है । प्रत्येक देश की अपनी आवश्यकताएँ है और उनकी तुलना में संसाधन हमेशा कम है । इसी कारण प्रत्येक देश क्या उत्पादन किया जाये? कैसे किया जाये ? व किसके लिए किया जायें? जैसी-मूलभूत केन्द्रीय समस्याओं का सामना करता है और अपनी आर्थिक प्रणाली में इन समस्याओं का समाधान करने का प्रयास करता है ।

2.2 अर्थव्यवस्था की मूलभूत केन्द्रीय समस्याएँ

प्रथम इकाई में अर्थशास्त्र की परिभाषा एवं विषय-वस्तु का अध्ययन करते समय यह बताया गया कि अर्थशास्त्र में हम चुनाव की समस्या का सामना करते हैं । दूसरे शब्दों मे, व्यक्ति अपनी असीमित आवश्यकताओं को वैकल्पिक प्रयोग वाले सीमित साधनों से कैसे पूरा करता है, इस संबंधी व्यवहार का अध्ययन अर्थशास्त्री में करते हैं । किसी भी व्यक्ति एवं समाज की केन्द्रीय समस्या यही हैं कि दुर्लभ साधनो का विभिन्न प्रतिस्पर्धी साध्यों के बीच कैसे बंटवारा करें ।

दुर्लभता की मूल समस्या के कारण निम्नलिखित समस्याओं का सामना करना पड़ता हैं-

1. क्या उत्पादन किया जाये? समाज या देश किन वस्तुओं का कितनी मात्रा में उत्पादन करें एवं इन विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में संसाधनों का आवंटन किस प्रकार हों । इसे संसाधनों के आवण्टन की समस्या भी कहते हैं ।
2. कैसे उत्पादन किया जायें ? अर्थात विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में कौन सी उत्पादन की तकनीक का प्रयोग किया जायें । इसे तकनीकी के चुनाव की समस्या भी कह सकते हैं ।
3. उत्पादन किस के लिए किया जाये ? अर्थात कुल उत्पादित वस्तुओं का समाज के विभिन्न व्यक्तियों के बीच में वितरण किस प्रकार होता है । इसे राष्ट्रीय उत्पादन के वितरण की समस्या कहते हैं ।

उपर्युक्त तीन प्रश्न दुर्लभता की मूल समस्या के कारण उत्पन्न होते हैं तथा सभी अर्थव्यवस्थाएँ चाहे वे पूंजीवादी हो, समाजवादी हो या मिश्रित प्रकार की हों, उन्हें इन प्रश्नों का समाधान करना होता है । पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में चूंकि संसाधनों के ऊपर निजी स्वामित्व होता है अत: बाजार, कीमत प्रणाली के माध्यम से इन प्रश्नों का समाधान करता हैं । इसके विपरीत समाजवादी अर्थव्यवस्था में संसाधनों पर सामूहिक स्वामित्व अर्थात संसाधन राज्य के अधीन, होते हैं अत: केन्द्रीय योजना के माध्यम से यह तय किया जाता है कि क्या उत्पादन किया जायें? कैसे किया जायें व उसका वितरण कैसे हों? मिश्रित अर्थव्यवस्था में कुछ क्षेत्र जहाँ निजी क्षेत्र को कार्य करने की अनुमति है संसाधनों का आवण्टन बाजार में कीमत प्रणाली के माध्यम से होता है जबकि बाकी क्षेत्रों में केन्द्रीय योजना के माध्यम से आवण्टन होता है । अब इन प्रश्नों को थोड़ा और विस्तार से समझते हैं ।

2.2.1 क्या उत्पादन किया जाये? या साधनों के आवण्टन की समस्या

प्रत्येक अर्थव्यवस्था को यह निर्णय करना होता है कि क्या उत्पादन किया जायें? इसका तात्पर्य यह है कि किन वस्तुओं का उत्पादन किया जायें व कितनी मात्रा में किया जाए । अर्थव्यवस्था में उपलब्ध संसाधन आवश्यकताओं की अपेक्षा कम हैं इसलिए विभिन्न वस्तुओं एवं

सेवाओं का उत्पादन किया जाये और किनका नही । यदि अर्थव्यवस्था किसी एक वस्तु का अधिक मात्रा में उत्पादन करने का निश्चय करती है तो उसे किन्ही दूसरी वस्तुओं का उत्पादन कम करना पड़ेगा । इस परिस्थिति को हम उत्पादन संभावना वक्र की सहायता से समझ सकते हैं ।

एक उत्पादन सम्भावना वक्र दो वस्तुओ (X,Y) के विभिन्न संयोगों को बताता है जिनका उत्पादन उपलब्ध संसाधनों को कुशलतापूर्वक आवण्टन करते हुए तकनीकी रूप से कुशल विधि का उपयोग करते हुए किया जा सकता हैं । उत्पादन सम्भावना वक्र निम्न मान्यताओं पर निर्भर हैं-

1. केवल दो वस्तुएँ X (उपभोक्ता वस्तुओ) और Y (पूंजीगत वस्तुओं) विभिन्न अनुपातों में उत्पादित की जाती है !
2. दोनों में से कोई एक या दोनों वस्तुएँ उत्पादित करने के लिए समान साधन प्रयोग किए जा सकते हैं ।
3. साधनों की पूर्तिया स्थिर है ।
4. उत्पादन की तकनीकें दी हुई है और स्थिर है ।
5. अर्थव्यवस्था के संसाधन पूर्ण रोजगार में लगे हैं और तकनीकी तौर पर दक्ष हैं ।
6. समय अवधि अल्प हैं ।

उपर्युक्त मान्यताओं के साथ उत्पादन संभावना अनुसूची को निम्न तालिका से दर्शा सकते हैं ।

तालिका 2.1

उत्पादन संभावना अनुसूची

संभावना	X का उत्पादन	Y का उत्पादन
P	0	250
B	100	230
C	150	200
D	200	150
P1	250	0

उपर्युक्त उत्पादन समभावना अनुसूची को निम्न रेखाचित्र से प्रदर्शित किया जा सकता है

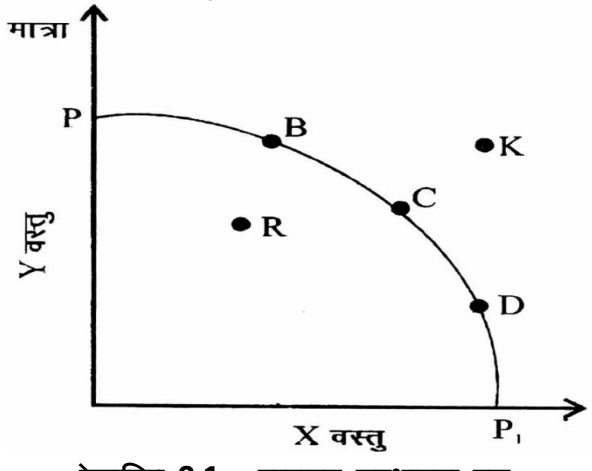

रेखाचित्र 2.1 : उत्पादन सम्भावना वक्र

उत्पादन संभावना अनुसूची को ग्राफ पर रेखांकित करने पर चित्र में दर्शाए अनुसार वक्र प्राप्त होता है । PP1 वक्र उत्पादन सम्भावना वक्र है जो दोनों वस्तुओ के विभिन्न संयोगों को बताता है । प्रत्येक संभावना वक्र उत्पादन संयोगों का बिन्दु पथ है जो कि साधन की एक निश्चित मात्रा से प्राप्त किया जा सकता है । उत्पादन संभावना वक्र यह दर्शाता है कि जब एक वस्तु का उत्पादन बढ़ाया जाता है तो दूसरी वस्तु का उत्पादन कम करना पड़ेगा । उत्पादन सम्भावना वक्र मूल बिन्दु के नतोदर होता है जिसका अर्थ यह कि वस्तु X की अतिरिक्त इकाइयाँ प्राप्त करने के लिए Y की उत्तरोत्तर अधिक इकाइयों का त्याग करना पड़ता है । उत्पादन संभावना वक्र के भीतर किसी भी संयोग R का अर्थ है कि समाज उपलब्ध साधनों का पूरा उपयोग नहीं कर रहा है ।

उत्पादन संभावना वक्र बाहर स्थित किसी बिन्दु K का अर्थ है इस संयोग के उत्पादन के लिए पर्याप्त साधन नही है ।

2.2.2 वस्तुओं का उत्पादन कैसे किया जाए? अर्थात् उत्पादन तकनीकों के चुनाव की समस्या

उत्पादन कैसे किया जायें? से तात्पर्य यह है कि वस्तुओं का उत्पादन किस विधि से अथवा तकनीक से किया जाये । वस्तु उत्पादन की अनेक वैकल्पिक तकनीकें होती हैं और अर्थव्यवस्था को उन्हीं में से किसी एक तकनीक का चुनाव करना होता है । सामान्यत: तकनीकों को दो भागों में बांटते हैं - श्रम गहन तकनीक एवं पूँजी गहन तकनीक । उत्पादन की विभिन्न तकनीकों मे साधनों का भिन्न-भिन्न मात्रा में प्रयोग किया जाता है । श्रम गहन तकनीक मे अधिक श्रम और पूँजी तथा पूंजी प्रधान तकनीक में पूंजी अधिक तथा अपेक्षाकृत कम श्रम का उपयोग किया जाता है । उत्पादन कैसे किया जाये अथवा तकनीकी के चुनाव को और अधिक स्पष्ट रूप से ऐसे कहा जा सकता है कि एक वस्तु के उत्पादन के लिए साधनों के कौनसे संयोग का उपयोग करना है । साधनो की दुर्लभता यह आवश्यक कर देती है कि वस्तुओं का उत्पादन कुशलता से किया जाए । विभिन्न तकनीकों में से उत्पादन की उस तकनीक को चुना जायेगा उत्पादन लागत कम हो ।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि आर्थिक साधन असमान रूप से दुर्लभ हैं अर्थात कुछ साधन दूसरों की अपेक्षा अधिक दुर्लभ हैं । अत: यह समाज के हित में है कि उत्पादन के वे तरीके अपनाए जाएँ जिनमें अपेक्षाकृत पर्याप्त साधनों का अधिकतम उपयोग करें और अपेक्षाकृत दुर्लभ साधनों का कम से कम प्रयोग करें ।

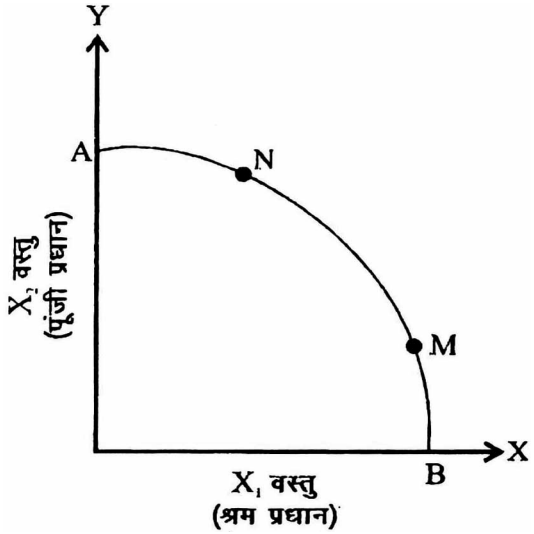

रेखाचित्र 2.2 : उत्पादन संभावना बक्र एवं तकनीक का चुनाव

अर्थव्यवस्था की इस दूसरी केन्द्रीय समस्या को समझने के लिए उत्पादन सम्भावना वक्र का प्रयोग परीक्ष रूप में कर सकते हैं । किसी वस्तु के उत्पादन में संसाधनों को किस अनुपात में जोड़ा जायें यह उत्पादन के तरीके या तकनीक के चुनाव की समस्या है । माना कि X1 श्रम प्रधान और X2 पूंजी प्रधान वस्तु है । रेखाचित्र में ox अक्ष पर श्रम प्रधान वस्तु X1 तथा OY अक्ष पर पूंजी प्रधान वस्तु X2 को लिया गया हैं । AB उत्पादन संभावना वक्र है । यदि हम इसके N बिन्दु पर हैं तो इसका तात्पर्य है, तुलनात्मक रूप से हम पूंजीगत वस्तु X2 का अधिक उपयोग कर रहे है । इसके विपरित M बिन्दु यह दर्शा रहा है कि अर्थव्यवस्था श्रम गहन तकनीक का अपेक्षाकृत अधिक उपयोग कर X1 वस्तु का अधिक उत्पादन कर रही है ।

2.2.3 किसके लिए उत्पादित किया जायें? अर्थात समाज में वस्तुओं का वितरण किस प्रकार हों (राष्ट्रीय उत्पादन की समस्या)

राष्ट्रीय उत्पादन का वितरण कैसे हों? से तात्पर्य यह है कि वस्तुओं एवं सेवाओं की कुल उत्पादन मात्रा को समाज के सदस्यों में कैसे वितरित किया जायें । राष्ट्रीय उत्पादन का वितरण मौद्रिक आया के वितरण पर निर्भर करता है । जिनकी मौद्रिक आय अधिक है उनकी क्रय शक्ति अधिक होगी और इसलिए वे वस्तुओं और सेवाओं अधिक मात्रा में प्राप्त करेंगे । जिनकी मौद्रिक आय कम है उनकी वस्तुओं को खरीदने की क्षमता कम होगी और इसलिए उन्हें कम वस्तुएँ व सेवाएं प्राप्त होंगी ।

अब प्रश्न यह उठता है कि समाज के विभिन्न व्यक्तियों में मौद्रिक आय का विभाजन कैसे हों? समाज के व्यक्तियों की मौद्रिक आय उनके स्वामित्व में उपलब्ध संसाधनों-भूमि, श्रम एवं पूंजी को उत्पादन के लिए उपलब्ध कराने के कारण होती है । श्रम, भूमि और पूंजी उत्पादन के विभिन्न साधन हैं और राष्ट्रीय उत्पादन अथवा आया को उत्पादित करने में अपना-अपना योगदान दे रहे हैं और अपने इस योगदान के बदले में कीमत अथवा पारिश्रमिक प्राप्त करते हैं । साधनों को प्राप्त आय उत्पादनकर्त्ता के लिए साधनों की सेवाएँ प्राप्त करने की कीमत है । अत: वितरण का सिद्धान्त वास्तव में साधनों की कीमत निर्धारण का सिद्धान्त है ।

स्पष्ट है कि साधनों की कीमत सिद्धांत के रूप में वितरण सिद्धांत आय के कार्यात्मक वितरण का विवेचन करता है न कि आय के वैयक्तिक वितरण का क्योंकि इसमें केवल इस बात की व्याख्या की जाती है कि साधनो की कीमतें जैसे श्रमिकों की मजदूरी, भूमि का लगान, पूंजी पर ब्याज तथा उद्यमकर्त्ता के लाभ किस प्रकार निर्धारित होते हैं । एक व्यक्ति को प्राप्त आय इस बात पर निर्भर करेगी कि उसने स्वयं उत्पादन में कितना योगदान किया व कितनी मात्रा में भूमि, पूंजी आदि साधनों का स्वामी है । उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व एवं अधिकार में होना पूंजीवादी प्रणाली का प्रमुख अंग है । इसलिए समाज में सम्पति का वितरण आय में वयैक्तिक वितरण को विशद रूप से प्रभावित करेगा । सामान्यतया पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में संसाधनों (सम्पति) के वितरण में अत्यधिक असमानता पायी जाती है । इसी कारण आय कें वितरण में भी अनुपात में असमानता पायी जाती है ।

वितरण की समस्या की भी व्याख्या उत्पादन संभावना वक्र के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से की जा सकती है । जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है कि आय का वितरण संसाधनों के वितरण एवं उनकी कीमतों पर निर्भर करता है । साधन की कीमत साधन बाजार में साधन की सापेक्ष दुर्लभता पर निर्भर करती है । भारत जैसे श्रम की अधिकता वाले देश में श्रम की मजदूरी कम होगी तथा पूंजी दुर्लभ होने से ब्याज दर ऊँची होगी । उत्पादन संभावना वक्र से एक मोटा अनुमान आय के वितरण के बारे में लगाया जा सकता है ।

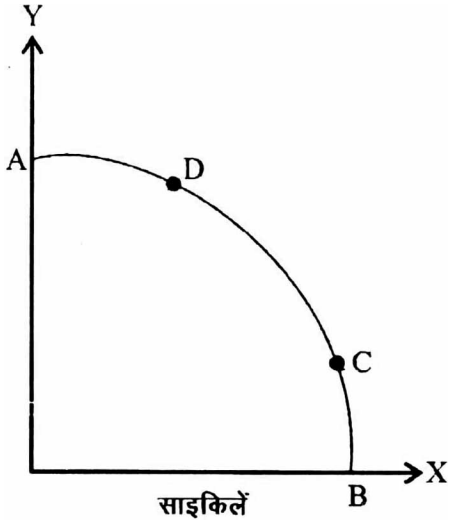

रेखाचित्र 23. उत्पादन सम्भावना वक्र एवं आय का वितरण

साथ में दिये गये उत्पादन संभावना वक्र AB साइकिल एवं कारों के उत्पादन को दर्शाता है । यदि अर्थव्यवस्था उत्पादन संभावना वक्र के C बिन्दु पर उत्पादन करती है जहाँ साइकिलों का उत्पादन कारों की तुलना में अधिक हो रहा है तो यह माना जा सकता है कि आय के वितरण में काफी समानता है । इसके विपरीत D बिन्दु यह दर्शाता है कि कारों का उत्पादन साइकिलों की अपेक्षा ज्यादा हो रहा है तो यह आय के वितरण में असमानता का घातक है !

उपर्युक्त तीन मूलभूत समस्याओं के साथ कुछ और भी महत्वपूर्ण प्रश्न हैं जिनका समाधान आवश्यक होता हैं । ये हैं :-

2.2.4 क्या साधनों का कुशलता पूर्वक उपयोग हो रहा हैं

जैसा की ऊपर बताया गया है कि साधन दुर्लभ हैं इसलिए यह वांछनीय है कि उनका कुशलतापूर्वक उपयोग हो । क्या उत्पादन करें, कैसे करें व उसका वितरण कैसे हों? इन प्रश्नों के बाद यह जानना समुचित होगा कि क्या उत्पादन एवं वितरण कुशलतापूर्वक हो रहा हैं । उत्पादन कुशल तब कहलायेगा जब उत्पादन के साधनों को विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में इस प्रकार प्रयोग किया जा रहा हो कि उनके विभिन्न वस्तुओं में पुनरावण्टन से किसी वस्तु के उत्पादन को घटाए बिना दूसरी वस्तु के उत्पाद बढ़ाना संभव न हो । उत्पादन और साधनों का आवण्टन अकुशल होगा यदि किसी वस्तु का उत्पादन घटाऐं बिना दूसरी वस्तु का उत्पादन बढ़ाना संभव हो।

इसी प्रकार राष्ट्रीय उत्पादन का वितरण अकुशल होता है यदि व्यक्तियों में वस्तुओं के पुनर्वितरण से किसी व्यक्ति की संतुष्टि को किसी अन्य व्यक्ति की संतुष्टि घटाऐं बिना, बढ़ाया जा सकता हों

साधनों एवं वस्तुओं का कुशलता पूर्वक आवण्टन एवं वितरण समाज के अधिकतम कल्याण को सुनिश्चित करता है । समग्र रूप में किसी भी अर्थव्यवस्था में आर्थिक क्रियाओं का मुख्य उद्देश्य समाज अथवा देश के आर्थिक कल्याण को अधिकतम करना होता है । अत: उत्पादन एवं वितरण की कुशलताओं एवं अकुशलताओं का अध्ययन कल्याणकारी अर्थशास्त्र की प्रमुख विषय-वस्तु है ।

आर्थिक कुशलता एक वृहत अवधारणा है जिसके तीन प्रमुख घटक हैं-

1. तकनीकी कुशलता
2. आवंटन विषयक कुशलता
3. उपभोग अथवा वितरण विषयक कुशलता

तकनीकी कुशलता से यह तात्पर्य है कि फर्म, उद्योग अथवा सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था द्वारा अपने संसाधनों का पूर्णरूप से अधिकतम उत्पादनशीलता से प्रयोग कर अधिकतम उत्पादन की अवस्था को प्राप्त करना है । जब यह तकनीकी कुशलता प्राप्त होती है तो फिर साधनों के पुन: आवंटन से एक वस्तु के उत्पादन में वृद्धि किसी अन्य वस्तु का उत्पादन घटाए बिना संभव नहीं होती ।

आवंटन विषय कुशलता का यह अर्थ है कि अर्थव्यवस्था अपने उपलब्ध साधनों से वस्तुओं के उस संयोग का उत्पादन कर रही होती है जिसको. उपभोक्ता चाहते हैं अर्थात वस्तु उत्पादन का ढाँचा उपभोक्ताओं के अधिमान के अनुरूप होता है । आवंटन विषयक कुशलता करके कुछ लोगों की संतुष्टि में वृद्धि करना किन्हीं अन्य की संतुष्टि में कमी किये बिना संभव नहीं होगा ।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जब किसी समाज ने तकनीकी कुशलता प्राप्त कर ली हो तो यह आवश्यक नहीं हक उसनें आवंटन विषयक कुशलता भी प्राप्त की हो । तकनीकी कुशलता के साथ यदि उत्पादन का ढाँचा उपभोक्ता के अधिमानों के अनुरूप नहीं है तो आवंटन विषयक कुशलता प्राप्त नहीं होगी । आवंटन विषयक अकुशलता की स्थिति में उपभोक्ताओं के प्राथमिकता क्रम में उच्च स्थान वाली वस्तुओं की पूर्ति कम होगी और निम्न प्राथमिकता वाली वस्तुएँ ज्यादा

उपलब्ध होंगी । ऐसी स्थिति अवांछनीय होगी । अत: यह कहा जा सकता है कि समाज को उपलब्ध संसाधनों से न केवल अधिकतम संभव उत्पादन करना है बल्कि साधनों को विभिन्न वस्तुओ तथा सेवाओं के उत्पादन में इस प्रकार आवंटित करना है जो उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं तथा अधिमाना के अनुरूप हों ।

आर्थिक कुशलता का तीसरा पहलू उपभोक्ताओं में वस्तुओं व सेवाओं के अनुकूलतम वितरण से संबन्धित है । इसे वितरण विषयक कुशलता अथवा उपभोग-विषयक कुशलता कहा जाता है । इसका तात्पर्य यह है कि उत्पादित वस्तुओं का समाज के विभिन्न उपभोक्ताओं में इस प्रकार से वितरण हो कि उसके बाद किसी भी पुनर्वितरण द्वारा किसी उपभोक्ता की संतुष्टि में कमी किये बिना अन्य किसी उपभोक्ता की संतुष्टि में वृद्धि करना संभव हों ।

अत: आर्थिक कुशलता प्राप्त करने में हमें उपर्युक्त तीनों कुशलताओं को प्राप्त करना होगा ।

2.2.5 क्या समस्त साधनों का पूर्ण रूप से उत्पादन के लिए प्रयोग हो रहा हैं? अर्थात रोजगार की समस्या

अर्थशास्त्र की विषय वस्तु एवं मूलभूत समस्याओं की विवेचना में यह बात प्रमुखता से उभरी की आवश्यकताओं एवं इच्छाओं की तुलना में उन्हें पूरा करने के लिए उपलब्ध संसाधनों की मात्रा सीमित है । ऐसे मे साधनों के पूर्ण उपयोग की चर्चा करना आश्चर्य जनक लग सकता है क्योंकि जब साधन दुर्लभ हों तो यह अपेक्षित है कि समाज के लोगों की अधिकतम संतुष्टि के लिए उपलब्ध सभी साधनों का पूर्ण उपयोग किया जायेगा । लेकिन अर्थव्यवस्थाओं में, विशेषकर पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में ऐसी स्थितियाँ बनती हैं जब भारी मात्रा में श्रम-शक्ति एवं उत्पादन के अन्य साधनों का पूर्ण उपयोग नहीं होता । ऐसा स्थिति को अर्थव्यवस्था में मंदी की स्थिति से जाना जाता हैं । पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में जब समस्त प्रभावी मांग में कमी होती है तब एक ओर श्रमिकों में व्यापक बेरोजगारी फैल जाती है वहीं दूसरी ओर कारखानों व अन्य उत्पादन केन्द्रो का उत्पादन कम हो जाता है अथवा उन्हें पूरी बंद करना पड़ता है । इंग्लैण्ड के सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री जें एम. केन्ज ने 1930 की मंदी का व्यापक अध्ययन कर साधनों के व्यापक पैमाने पर बेकार पड़े रहने के कारणों की व्याख्या अपनी पुस्तक "General Theory of Employment, Interest and Money" में प्रस्तुत की । केन्ज के विश्लेषण से आर्थिक सिद्धांत का विषय क्षेत्र विस्तृत हुआ तथा पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के कार्यकरण के संबंध में हमारी जानकारी में वृद्धि हुई । केन्द्र द्वारा प्रेरित आर्थिक सिद्धांत की इस शाखा में समूची अर्थव्यवस्था में कुल रोजगार, राष्ट्रीय आय तथा सामान्य कीमत सिद्धांत का अध्ययन किया जाता है जिसे समष्टिपरक आर्थिक सिद्धांत कहते हैं । इसके तहत उन तत्वों की विवेचना की जाती है जिनके द्वारा राष्ट्रीय आय के स्तर का निर्धारण एवं उसमें उतार-चढ़ाव अर्थात् व्यावसायिक चक्र उत्पन्न होते हैं ।

2.2.6 क्या अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता अथवा राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो रही हैं? अर्थात आर्थिक विकास की समस्या

उपर्युक्त सभी प्रश्नों अथवा समस्याओं के साथ ही यह जानना भी महत्वपूर्ण है कि समय के साथ अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता में किस प्रकार परिवर्तन हो रहे हैं ? क्या अर्थव्यवस्था

की उत्पादन क्षमता बढ़ रही हैं, स्थिर है अथवा घट रही है । अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता में वृद्धि का अर्थ यह है कि वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्तरोत्तर अधिक उत्पादन करना संभव हो सकेगा । उत्पादन क्षमता में वृद्धि के फलस्वरूप उत्पादन एवं राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने को आर्थिक विकास कहा जाता है ।

विकसित अर्थव्यवस्थाओं में व्यापार चक्रों के रूप में आने वाली आर्थिक स्थिरता एवं विकासशील एवं पिछडे देशों में दरिद्रता एवं बेरोजगारी दूर करने के प्रयासों के परिणाम स्वरूप अर्थशास्त्रीयों में विकास को समस्या का अध्ययन करने की रूचि जागृत हुई एवं जिससे कई आर्थिक विकास मॉडल अस्तित्व में आयें ।

आर्थिक विकास की समस्या के अध्ययन में यह हम यह जानने की कोशिश करते हैं कि राष्ट्रीय आय के कितने भाग का लोगों द्वारा उपभोग किया जाता है और कितना बचाया जाता है ताकि उसे निवेश के माध्यम से पूंजी निर्माण कार्यो में लगाया जा सके । यदि किसी समय अर्थव्यवस्था में उत्पादित होने वाले समस्त उत्पादन का उपभोग कर लिया जायें तो बचत शून्य होगी एवं फलस्वरूप निवेश एवं पूंजी निर्माण की दर भी शून्य हो जायेगी । ऐसी स्थिति में आर्थिक विकास न केवल रूक जायेगा अपितु भविष्य में राष्ट्रीय उत्पादन और आय घट जायेंगें ।

उपभोग और निवेश के बारे में निर्णय करने का अर्थ यह है कि वर्तमान वर्ष में उपलब्ध साधनों से कितनी मात्रा में उपभोक्ता वस्तुएँ एवं कितनी मात्रा में पूंजीगत वस्तुओं का उत्पादन किया जाये । किसी देश की पूंजीगत वस्तुओं में शुद्ध वृद्धि: भविष्य में राष्ट्रीय आय व उत्पादन मे वृद्धि का सूचक है । अत: स्पष्ट है कि पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि या निवेश बढ़ाने के लिए कुछ उपभोग का त्याग करना पड़ेगा । दूसरे शब्दों में उपभोग एवं बचत (निवेश) के निर्णय वर्तमान और भविष्य के चयन की समस्या है ।

एक अर्थव्यवस्था की ये सभी केन्द्रीय समस्याएं परस्पर संबंधित और निर्भर हैं । पहली चार समस्याएं अर्थात साधनो का आवंटन, तकनीकी का चुनाव, वितरण की समस्या एवं आर्थिक कल्याण व्यष्टि अर्थशास्त्र से संबंधित हैं एवं स्थैतिक प्रकृति की हैं जबकि रोजगार की समस्या एवं आर्थिक विकास की समस्या समष्टि अर्थशास्त्र से सम्बद्ध हैं तथा प्रावैगिक प्रकृति की हैं । इन समस्याओं का हल पूंजीवादी समाज में कीमत तंत्र के माध्यम से तथा समाजवादी व्यवस्था में नियोजन के माध्यम से किया जाता है जिसके विवेचन हम आगे. कर रहे है ।

बोध प्रश्न- 1

1. वस्तुओं व उत्पादन कैसे किया जाये? बताइए
2. राष्ट्रीय उत्पादन के वितरण की समस्या के बारे में समझाइए

2.3 कीमत तंत्र

पूंजीवादी या मुक्त अर्थव्यवस्था में जिससे कीमत प्रणाली संबंध रखती है, उत्पादन के साधन निजी स्वामित्व में होते हैं । व्यक्तियों को अपनी इच्छानुसार सम्पति प्राप्त करने, उसका उपयोग करने, उसे बेचने या पट्टे पर देने का अधिकार है । उन्हें परस्पर स्वीकृत कीमत पर सौदे करने की स्वतंत्रता है । प्रत्येक व्यक्ति उपभोक्ता, उत्पादक और साधन स्वामी के रूप में पर्याप्त स्वतंत्रता के साथ आर्थिक क्रियाओं में भाग लेता है । इस प्रकार की अर्थव्यवस्था में कीमत तंत्र,

जो कि पारस्परिक विनिमय तथा समन्वय की प्रणाली है, आर्थिक क्रियाओं की कुशलतापूर्वक व्यवस्था और पथ-प्रदर्शन करती है ।

एक प्रतियोगी बाजार में वस्तुओं और सेवाओं की पूर्ति और मांग द्वारा कीमत तंत्र कार्य करता है। कीमतें अनेक वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन को निर्धारित एवं नियोजित करती हैं, वस्तुओं तथा सेवाओं के वितरण में सहायता देती हैं, वस्तुओं की पूर्ति को नियमित और आर्थिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त करती हैं ।

2.3.1 कीमत तंत्र एवं अर्थव्यवस्था की मूलभूत समस्याएँ

क्या और कितना उत्पादन करना हैं? इस समस्या का विवेचन पूर्व में किया जा चुका है । यही हम यह बताने का प्रयास करेंगे कि कीमत तंत्र से इसका हल कैसे होता है ।

वास्तव में, उपभोक्ता को अनेक प्रकार की वस्तुओं में से चुनाव करना पड़ता है । कुछ वस्तुओं के लिए विशेष इच्छा का अर्थ है कि उपभोक्ता उसके लिए अधिक कीमत देने को तैयार है । इसके विपरीत जिन वस्तुओं के प्रति उपभोक्ता की रूचि कम हैं, कम कीमत देन को तैयार होगा । इस प्रकार उपभोक्ता कीमत के द्वारा बाजार में वस्तुओं के प्रति अपनी पसंद एवं मांग को प्रकट करता है । उत्पादनकर्त्ता बाजार में कीमत माध्यम से प्रकट हुए अधिमानों के आधार पर यह तय करेगा कि वह क्या उत्पादन करें । चूंकि उत्पादनकर्त्ता का उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना है अतएव वह उन वस्तुओं का उत्पादन करेगा जिनमें उपभोक्ताओं की अत्यधिक रूचि है व जिसके लिए वह ऊँची कीमत देने को तैयार है तथा उन वस्तुओं का कम उत्पादन करेगा जिनकी कीमतें कम है अर्थात् जिनमें उपभोक्ताओं की कम रूचि हैं ।

वस्तुओं की कीमतें एवं उनमें होने वाले परिवर्तन उत्पादक एवं उपभोक्ता के लिए पथ-प्रदर्शन का कार्य करती है । यदि किसी वस्तु की कीमत बढ़ने लग जाये तो यह उपभोक्ता के लिए संकेत होगा कि वह उस वस्तु को कम मात्रा में खरीदें । इसके विपरीत बढ़ती कीमत उत्पादक को प्रेरित करेगी कि वह उस वस्तु का ज्यादा उत्पादन करे । ऊँची कीमत एवं अधिक लाभ नए उत्पादकों को भी आकर्षित करेंगी । परिणामस्वरूप साधन स्वामी अपने साधनों को ऊँची कीमत वाले उद्योग में लगा देंगे । इस प्रकार उस वस्तु का अधिक उत्पादन होने लग जायेगा और जब पूर्ति मांग से अधिक हो जायेगी तो कीमतें पुन: गिरने लगेगी । इसके विपरीत कम कीमत वाली वस्तु के उत्पादन से साधन हटते हैं तो अन्ततः उसका उत्पादन कम होने लग जायेगा एवं मांग के पूर्ति से अधिक होने की स्थिति में उसकी कीमतें बढ़ने लगेंगी । यह प्रवृत्ति तब तक चलेगी जब तक वस्तुओं की मांग व पूर्ति में संतुलन स्थापित नहीं हो जाता । इस प्रकार मांग एवं पूर्ति की शक्तियाँ बाजार में निरन्तर क्रियाशील रहती है एवं मांग एवं पूर्ति के संतुलन से तय होने वाली कीमतें उत्पादकों का पथ-प्रदर्शन करेंगी कि वे क्या उत्पादन करें व कितना उत्पादन करें ।

कीमत तंत्र का अगला कार्य वस्तुओं के उत्पादन में प्रयुक्त होने वाली तकनीक के चुनाव का है । साधन सेवाओं को मिलने वाला प्रतिफल उनकी कीमत है अर्थात मजदूरी, लगान, ब्याज एवं लाभ उत्पादन के साधनो की कीमतें हैं जो उद्यमी देता है ।

दक्षतम उत्पादन क्रिया का प्रयोग प्रत्येक उत्पादक का लक्ष्य होता है । आर्थिक दृष्टि से दक्षतम उत्पादन क्रिया वह है जो न्यूनतम लागत से वस्तुओं का उत्पादन करती है । उत्पादन

तकनीक का चुनाव वास्तव में साधनों के संयोग का चुनाव है जो साधन सेवाओं की सापेक्ष कीमतों और उत्पादन की वस्तुओं की मात्रा पर निर्भर करता है ।

उत्पादक, उत्पादन लागत को घटाने के उद्देश्य से महँगे साधनों को सस्ते साधनो से प्रतिस्थापित करता है । यदि श्रम की अपेक्षा पूंजी सस्ती है तो उत्पादक पूंजी गहन तकनीक का चुनाव करेगा एवं इसके विपरीत परिस्थिति में श्रम गहन तकनीक को चुनेगा । इस प्रकार हम देखते हैं कि साधनों की कीमतें यह तय करती हैं कि उत्पादन कैसे किया जायें ।

कीमतें आय के वितरण को निर्धारित करने में भी मदद करती हैं । मुक्त अर्थव्यवस्था में वस्तु वितरण एवं आय वितरण एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं यह प्रणाली पारस्परिक विनिमय की प्रणाली है जिसमें प्राय: वही व्यक्ति उपभोक्ता भी है और उत्पादक साधन स्वामियों से साधनों की सेवाएँ प्राप्त करने के लिए उन्हें भुगतान करता है एवं वस्तुएँ बेचने के बदले पुन: भुगतान प्राप्त करता है । उत्पादक के लिए जो लागत है, साधनो के लिए वह आय है एवं उपभोक्ता के लिए खर्च है वह उत्पादकों की आय है । इस प्रकार उत्पादक से उपभोक्ता से पुन: उत्पादक की ओर आय का प्रवाह होता रहता है । आय के इस प्रवाह में कीमतें महत्वपूर्ण हैं ।

कीमत प्रणाली अर्थव्यवस्था के संसाधनों का पूर्ण उपयोग करने में भी सहायक होती हैं । संसाधनों के पूर्ण उपयोग से अभिप्राय पूर्ण रोजगार से है । इस स्थिति को बचत व निवेश की समानता द्वारा व्यक्त किया जाता है । एक वृद्धिशील अर्थव्यवस्था में बचत और निवेश में समानता ब्याज दरों के माध्यम से स्थापित की जाती हैं यदि बचत की तुलना में निवेश कम है तो ब्याज दरों में कमी के माध्यम से निवेश बढ़ाया जाता है एवं उसे बचत के स्तर पर लाया जाता है ।

कीमतें आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाली प्रमुख कारक हैं । कीमत तंत्र के माध्यम से सुधार, नव-प्रवर्तन और विकास की प्रेरणा मिलती हैं । ऊँची कीमतों एवं लाभ से प्रेरित होकर औद्योगिक संस्थाएँ और उद्यमी इस बात के लिए प्रोत्साहित होते हैं कि अच्छी तकनीकों का विकास और उनमें निरन्तर सुधार हेतु अन्वेषण और प्रायोगीकरण पर अधिक व्यय करें । अर्थव्यवस्था कीमतों के माध्यम से ही अपने आपकों इच्छाओं, साधनों और तकनीकों में परिवर्तन के अनुकूल ढालती है । निःसंदेह, आर्थिक विकास बहुत से अन्य कारकों पर भी निर्भर करता है, फिर भी, स्थिरता के साथ आर्थिक विकास में कीमतें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं ।

इस प्रकार मुक्त पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में मांग एवं पूर्ति के माध्यम से कार्यशील कीमत तंत्र प्रमुख संगठनात्मक शक्ति का काम करता है । कीमत तंत्र, किस वस्तु की और कितनी मात्रा में उत्पादन किया जाये, इसका निर्धारण करता है । यह प्रणाली साधन सेवाओं का प्रतिफल तय करती है और साधनों का उपयुक्त दिशाओं में आवंटन करके आय के समान वितरण का प्रयास करती है । यह वस्तुओं के वितरण, संसाधनों के पूर्ण उपयोग एवं आर्थिक वृद्धि का प्रमुख साधन है ।

बोध प्रश्न - 2

1. कीमत तंत्र को परिभाषित कीजिए
2. रीयत तंत्र से उत्पादन की समस्या का समाधान कैसे होता हैं? व्याख्या कीजिए ।

2.4 समाजवादी अर्थव्यवस्था एवं मूलभूत समस्याएँ

एक समाजवादी या नियोजित अर्थव्यवस्था में बाजार का कार्य केन्द्रीय आयोजन प्राधिकरण करता है क्योंकि उत्पादन के सभी संसाधनों का स्वामित्व एवं नियंत्रण सरकार द्वारा होता है । इसलिए क्या उत्पादित करना हैं? कैसे उत्पादित करना हैं ? आदि प्रश्नों का समाधान एक केन्द्रीय योजना के ढाँचें के अन्तर्गत किया जाता है । किस प्रकार की वस्तुएँ कितनी मात्राओं में उत्पादित होगी, इसका निर्णय आयोजित अधिकारी द्वारा नियत किए गए उद्देश्यों, लक्ष्यों और प्राथमिकताओं के आधार पर किया जाता है । विभिन्न वस्तुओं की कीमतें भी इसी अधिकारी द्वारा तय की जाती है । उपभोक्ताओं का चुनाव उन वस्तुओं तक सीमित होता हैं जिन्हें आयोजक उत्पादित करने और पेश करने का निर्णय लेते हैं ।

वस्तुओं को कैसे उत्पादित करना है, इसका निर्णय भी केन्द्रीय आयोजन के माध्यम से होता है । साधनो का विभिन्न उत्पादनों में आवंटन एवं उत्पादन का पैमाना केन्द्रीय आयोजन द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार होता है । इन नियमों के लिए मार्गदर्शक तत्व हैं- उत्पादन का ऐसे ढंग से संयोजन करना कि औसत लागत न्यूनतम हो एवं उस पैमाने को चुने जो सीमांत लागत को कीमत के बराबर करें । क्योंकि सभी साधनों पर सरकार का स्वामित्व है इसलिए ये संसाधन उन कीमतों पर विभिन्न उद्योगों को दिये जायेंगे जो उनकी सीमान्त लागत के बराबर होती है । यही कीमतें लेख कीमतें हैं एवं उनका केवल प्राचालिक प्रयोग (Parametric Use) है ।

किसके लिए उत्पादन किया जाए की समस्या का भी केन्द्रीय योजना अधिकारी योजना के उद्देश्यों के अनुरूप समाधान करता है । इस संबंध में निर्णय करते समय सामाजिक अधिमानों को अधिक महत्व दिया जाता है । ऐसी वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन को अधिक महत्व दिया जाता है जिनकी अधिक लोगों को आवश्यकता होती है । वस्तुओ का वितरण लोगों की न्यूनतम आवश्यकताओं के आधार पर सरकारी दुकानों द्वारा निश्चित कीमतों पर होता है ।

योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था में कीमत तंत्र नियमित तथा नियंत्रित होता है । कीमतों की भूमिका लेखों के आधार तक सीमित है । कीमत तंत्र का कार्य उचित लागत लेखों के माध्यम से अर्थव्यवस्था में अधिकतम उत्पादक दक्षता सुनिश्चित करना और लोगों को पर्याप्त प्रेरणाएँ प्रदान करना है । वस्तुओं की कीमतों की भूमिका सामाजिक अधिमानों को व्यक्त करने तक सीमित है । इस प्रकार समाजवादी अर्थव्यवस्था में कीमत तंत्र की मुक्त अर्थव्यवस्था की तुलना में सीमित भूमिका है क्योंकि राज्य उत्पादन एवं वितरण के सभी -साधनों का स्वामित्व, नियंत्रण एवं नियमन करता हैं ।

2.5 सारांश

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सभी प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं को समान मूलभूत केन्द्रीय समस्याओं का सामना करना पड़ता है । व्यष्टिगत एवं समष्टिगत आर्थिक विश्लेषण के आधार पर इन समस्याओं का अध्ययन किया जा सकता है । प्रत्येक अर्थव्यवस्था अपनी प्रकृति के अनुसार इन समस्याओं का समाधान करती है । पूंजीवादी मुक्त अर्थव्यवस्था में बाजार द्वारा कीमत प्रणाली के माध्यम से इन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया जाता है जबकि समाजवादी नियोजित अर्थव्यवस्था में केन्द्रीय आयोजन के माध्यम से समाधान प्राप्त करते हैं । समाधान चाहे कीमत प्रणाली से प्राप्त हो या नियोजन द्वारा उनकी सफलता तभी मानी जायेगी

जबकि ये समाधान साधनों के आवंटन में कुशलता को निश्चित करें, न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन करें, आय के वितरण में समानता हो, साधन पूर्ण रूप से रोजगार में लगे हों, लोगों का अधिकतम आर्थिक कल्याण हो एवं अर्थव्यवस्था निरन्तर प्रगति करें अर्थात उसकी उत्पादन क्षमता में लगातार वृद्धि होती रहे ।

2.6 शब्दावली

दुर्लभता कुशलता	वितरण विषयक
संसाधन / उत्पादन के साधन	कुशलता
साधनो का आवंटन	आर्थिक कल्याण
उत्पादन तकनीक; श्रम गहन	आय का वितरण
तकनीक, पूंजीगत तकनीक	बाजार
उत्पादन सम्भावना वक्र	कीमत तंत्र / कीमत प्रणाली
साधन कीमत	आर्थिक आयोजन
आर्थिक कुशलता तकनीकी	समाजवादी या नियोजित अर्थव्यवस्था

2.7 अभ्यासार्थ -प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नो के उत्तर संक्षेप में दीजिये - (15० शब्दों में)

1. अर्थव्यवस्था की प्रमुख केन्द्रीय समस्याओं को संक्षेप में बताइये ।
2. आर्थिक कुशलता की अवधारणा को समझाइये ।
3. कीमत तंत्र पर एक टिप्पणी लिखिये ।

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर विस्तार से दीजिये- (500 शब्दों में)

1. मुक्त पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में कीमत प्रणाली किस प्रकार केन्द्रीय समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करती है? समझाइये ।
2. आर्थिक नियोजन द्वारा केन्द्रीय समस्याओं के समाधान पर प्रकाश डालिये ।

2.8 संदर्भ - ग्रंथ

1. आहुजा, एच. एल-उच्चतर आर्थिक सिद्धांत
2. झिंगन एम. एल. -व्यष्टि अर्थशास्त्र
3. सेठ एम. एल.- अर्थशास्त्र के सिद्धांत
4. सुन्दरम एवं वैश्य -व्यष्टि अर्थशास्त्र

इकाई - 3

उपभोक्ता का व्यवहार : उपयोगिता विश्लेषण

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 उपयोगिता

- 3.2.1 उपयोगिता एवं सन्तुष्टि
- 3.2.2 उपयोगिता गणनावाचक एवं क्रमवाचक दृष्टिकोण

3.3 उपयोगिता का गणनावाचक विश्लेषण या सीमान्त उपयोगिता विश्लेषण

- 3.3.1 विश्लेषण की मान्यताएँ
- 3.3.2 सीमान्त उपयोगिता एवं कुल उपयोगिता
- 3.3.3 सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम
- 3.3.4 सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम की मान्यताएँ
- 3.3.5 सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम का महत्व

3.4 उपभोक्ता का सन्तुलन एवं सम-सीमान्त उपयोगिता नियम

3.5 मांग तथा मांग का नियम

- 3.5.1 मांग का अर्थ एवं परिभाषा
- 3.5.2 मांग फलन
- 3.5.3 मांग-तालिका
- 3.5.4 मांग वक्र
- 3.5.5 मांग का नियम
- 3.5.6 मांग के नियम के क्रियाशील होने के कारण
- 3.5.7 मांग के नियम के अपवाद
- 3.5.8 मांग मे वृद्धि या कमी तथा मांग में विस्तार या संकुचन सारांश

3.7 शब्दावली

3.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.9 संदर्भ ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :-

1. उपभोक्ता उपभोग संबंधी निर्णय किस प्रकार लेता है, संतुलन अथवा साम्य की स्थिति को कैसे प्राप्त करता है? यह जान सकेंगे ।
2. उपभोक्ता के व्यवहार की व्याख्या करने के लिए उपयोगिता विश्लेषण का गणनावाचक एवं क्रमवाचक दृष्टिकोण, समझ सकेंगे ।

3. सीमान्त उपयोगिता ह्रासमान नियम का विवेचन कर सकेंगे ।
4. मार्शल के सम सीमान्त उपयोगिता नियम के आधार पर उपभोक्ता के संतुलन की व्याख्या कर सकेंगे ।
5. मांग का अर्थ, मांग को निर्धारित करने वाले घटक, मांग का नियम एवं मांग वक्र के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में उपभोक्ता व्यवहार के विभिन्न पहलुओं के अध्ययन से वस्तु की मांग एवं उससे संबंधित मांग के नियम की व्याख्या करेंगे । उपभोक्ता अपनी सीमित आय से विभिन्न आवश्यकताओं की संतुष्टि करने का प्रयास करता है । उपभोक्ता को निर्णय लेना होता है कि वह कौनसी वस्तुओं का, कितनी मात्रा में उपभोग करें कि वह अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त कर सकें ।

उपभोक्ता के चयन संबंधी व्यवहार को समझने के लिए दो महत्वपूर्ण अवधारणाओं से आपका परिचय करायेंगे । एल्फ्रेड मार्शल ने उपयोगिता विश्लेषण के गणनावाचक दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया, जबकि जे.आर हिक्स एवं आर.जे.डी. एलन ने क्रमवाचक दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया ।

उपभोक्ता के व्यवहार के विश्लेषण से हम यह जानने का प्रयास करेंगे कि उपभोक्ता द्वारा किसी वस्तु की मांग किन कारकों से प्रभावित होती है । उपभोक्ता के मांग फलन को स्पष्ट करते हुए मांग का नियम जो कि वस्तु की मांग की गई मात्रा एवं वस्तु की कीमत के बीच सबंध को व्यक्त करता है, की व्याख्या करते हुए इस नियम को क्रियाशील होने के कारणों पर प्रकाश डालेंगे ।

3.2 उपयोगिता

उपभोक्ता विभिन्न उपभोग्य वस्तुओं का उपभोग कर सन्तुष्टि प्राप्त करता है । उपभोग एक प्रक्रिया है जिसका परिणाम उपभोक्ता की सन्तुष्टि है, जो एक मनावैज्ञानिक उत्पाद है । अर्थशास्त्र में इसे उपयोगिता के रूप में परिभाषित किया जाता है । उपयोगिता से अभिप्राय किसी वस्तु एवं सेवा की किसी मानवीय आवश्यकता को सन्तुष्ट करने की शक्ति से है । उपयोगिता की अवधारणा एक आत्मनिष्ठ (Subjective) धारणा है । यह व्यक्ति की आन्तरिक भावनाओं से संबंधित है। इसका कोई रूप नहीं होता और न ही यह किसी भौतिक वस्तु में निहित होती है । उपयोगिता तो, वास्तव में, वस्तु के उपभोक्ता की मानसिक दशा पर निर्भर करती है । जॉन रोबिन्सन के अनुसार उपयोगिता वस्तु का वह गुण है जिनके कारण व्यक्ति इन्हें खरीदना चाहता है और यह तथ्य कि लोग वस्तुओं को खरीदना चाहते हैं, यह दर्शाता है कि उनमें उपयोगिता है । कोई वस्तु किसी उपभोक्ता को बहुत अधिक सन्तुष्टि प्रदान करती है परन्तु किसी अन्य उपभोक्ता के लिए वह अनुपयोगी हो सकती है । अर्थात् भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के लिए उसी वस्तु की उपयोगिता अलग-अलग होगी । यहाँ यह स्पष्ट करना उचित होगा कि उपयोगिता और लाभदायकता समानार्थी शब्द नहीं हैं । हो सकता है कि कोई वस्तु लाभदायक न हो परन्तु किसी व्यक्ति विशेष के लिए उपयोगी हो सकती है । उदाहरण के लिए, शराब स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है परन्तु शराबी के लिए इसकी बहुत उपयोगिता है । साथ ही, उपयोगिता शब्द का

कोई नैतिक अथवा वैधानिक आधार नहीं है । बिना लाइसेन्स हथियार रखना गैर कानूनी है परन्तु अपराधियों के लिए ऐसे हथियारों की अत्याधिक भूमिका हैं ।

3.2.1 उपयोगिता एवं सन्तुष्टि

उपयोगिता एवं सन्तुष्टि में भी अंतर किया जाता है । उपयोगिता का अर्थ अपेक्षित / अनुमानित उपयोगिता (Expected utility) है जबकि सन्तुष्टि का अभिप्राय प्राप्त उपयोगिता से है । उपभोक्ता उपयोगिता के बारे में उस समय विचार करता है जब वह किसी वस्तु को खरीदने की सोच रहा होता है, लेकिन सन्तुष्टि वह उस समय अनुभव करता है जब वह वस्तु का उपभोग कर रहा होता है या कर चुका होता है । दूसरे शब्दों में उपयोगिता वास्तविक उपभोग पर निर्भर नहीं करती । किसी वस्तु की उपभोक्ता के लिए उसका उपयोग किये बिना भी उपयोगिता हो सकती है परन्तु उसको सन्तुष्टि, उसका उपभोग करने के 'बाद ही मिलेगी । यह भी संभव है किसी वस्तु को खरीदते समय जितनी उपयोगिता की अपेक्षा हो, उपभोग करने पर कम या अधिक सन्तुष्टि मिले । सन्तुष्टि पूर्ण रूप से अमापनीय है परन्तु उपयोगिता को अप्रत्यक्षत: मापा जा सकता है । इस प्रकार उपयोगिता एवं सन्तुष्टि में अंतर किया जाता है परन्तु उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन करने में हम यह मान्यता ले लेते हैं कि उपयोगिता एवं सन्तुष्टि पर्यायवाची शब्द है, इनमें कोई अंतर नहीं है । अर्थात् अपेक्षित उपयोगिता एवं प्राप्त उपयोगिता बराबर होती है ।

3.2.2 उपयोगिता गणनावाचक एवं क्रमवाचक दृष्टिकोण

उपयोगिता के संबंध में एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या उपयोगिता को मापा जा सकता है ? उपयोगिता को मापने के संबंध में अर्थशास्त्रियों में दो स्पष्ट विचारधाराएँ हैं - गणनावाचक दृष्टिकोण (Cardinal Approach) एवं क्रमवाचक दृष्टिकोण (Ordinal Approach) गणनावाचक एवं क्रमवाचक - ये दोनों शब्द गणित से लिये गए हैं । गणित में 1, 2, 3,4..... इत्यादि संख्याएँ गणनावाचक संख्याएँ हैं । इनमें प्रत्येक संख्या का एक निश्चित आकार है, इसलिए विभिन्न संख्याओं की तुलना की जा सकती है । जैसे 3 संख्या व से तीन गुनी है या 5 संख्या 3 से 2 ज्यादा है । इसके विपरीत जब संख्याओं को क्रमानुसार रखा जाता है - प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ ..... तो इन्हें क्रमवाचक संख्याएँ कहते हैं । इन संख्याओं का क्रम निश्चित है परन्तु इनके आकार का पता नहीं होता अत: यह बताना मुश्किल होता है कि विभिन्न संख्याओं के बीच आकार सम्बन्ध क्या है । पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी संख्याएँ क्रमश: 10,20,30,40 या 10, 30, 45, 70 या कुछ भी इसी तरह की संख्याएँ हो सकती है ।

उपयोगिता को गणनावाचक मानने वाले अर्थशास्त्रियों में मार्शल प्रमुख है । मार्शल का मानना है कि उपयोगिता को निश्चित रूप से मापा जा सकता है और उसकी परस्पर तुलना करना भी सम्भव है । उदाहरण के लिए यदि किसी उपभोक्ता को सेब से 10 इकाई उपयोगिता एवं संतरे से 5 इकाई उपयोगिता मिलती है तो इसका अर्थ यह हुआ कि संतरे की तुलना में सेब से दुगुनी उपयोगिता प्राप्त हो रही है ।

उपयोगिता अथवा तुष्टिगुण को मापने संबंध में भी दो मत हैं । प्रथम मत के अनुसार उपयोगिता को केवल सिद्धान्त में मापयोग्य माना जाता है अर्थात् उपयोगिता के संख्यात्मक स्तर की केवल कल्पना ही की जा सकती हैं । इस मत के समर्थक उपयोगिता को काल्पनिक इकाईयों

में मापते हैं, जिसको उन्होंने यूटिलस (Utils) का नाम दिया । दूसरे मत के अनुसार उपयोगिता की मापनीयता न केवल सैद्धान्तिक है, बल्कि व्यावहारिक भी है । अर्थात्, वास्तविक व्यवहार में उपयोगिता को मापा जा सकता है, यह केवल काल्पनिक मात्रा नहीं हैं । मार्शल का स्पष्ट मत है कि उपयोगिता को मुद्रा के रूप में मापा जा सकता है । उनके अनुसार मुद्रा सामान्य क्रय शक्ति को प्रतिनिधित्व करती हैं और इसीलिए उपयोगिता प्रदान करने वाली समस्त वैकल्पिक वस्तुओं पर इसका अधिकार होता है । "मार्शल के मतानुसार किसी वस्तु के उपभोग से वंचित रहने के स्थान पर व्यक्ति किसी वस्तु की एक इकाई को प्राप्त करने के लिए जो मुद्रा देने को तैयार रहता है, उसी को वस्तु की उपयोगिता माना जा सकता है । "

आधुनिक अर्थशास्त्रियों, जिनमें हिक्स, ऐलन, पैरेटो आदि प्रमुख है, का मानना है कि उपयोगिता का सही माप करना सम्भव नहीं है । इन अर्थशास्त्रियों ने मार्शल के गणनावाचक दृष्टिकोण की निम्न आधार पर कड़ी आलोचना की है -

1. तुष्टिगुण एक मनोवैज्ञानिक विषय है जिसे किसी वस्तुगत पैमाने से नहीं मापा जा सकता ।
2. प्रत्येक मनुष्य की रूचियों, अभिरूचियों तथा स्वभाव में अंतर पाया जाता है, इसलिए एक ही वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता अलग-अलग हुआ करती है । उदाहरणार्थ - शराब पीने वाले व्यक्ति के लिये शराब की उपयोगिता है, लेकिन नहीं पीने वाले के लिए वह एक बेकार वस्तु है ।
3. मुद्रा, उपयोगिता के माप का सही पैमाना नहीं है क्योंकि इसका अपना मूल्य स्थिर नहीं है ।
4. मुद्रा, उपयोगिता का सही माप इसलिए भी नहीं है क्योंकि यदि एक निर्धन व्यक्ति साइकिल खरीदने में असमर्थ है तो इसका यह अर्थ नहीं कि उसके लिए साइकिल की कोई उपयोगिता नहीं है ।

अत: प्रो.पीगू के अनुसार मुद्रा से केवल इच्छा की तीव्रता को मापा जा सकता है, लेकिन उपयोगिता को नहीं । उपयोगिता की गणना में उपर्युक्त कठिनाईयों के कारण आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने क्रमवाचक दृष्टिकोण का प्रतिपादन करते हुए कहा कि उपयोगिताओं को मापा नहीं जा सकता । उनके अनुसार उपयोगिताओं की मात्रा को मापे बिना भी उपभोक्ता व्यवहार के सिद्धान्त की व्याख्या की जा सकती है । उपयोगिता की क्रमवाचक धारणा हमें यही बताती है कि उपभोक्ता सन्तरे की तुलना में सेब को वरीयता देता है लेकिन सेब एवं संतरे से प्राप्त उपयोगिता की तुलना कर हम यह नहीं कह सकते कि वह सेब को कितनी वरीयता देता है ।

बोध प्रश्न - 1

(1) उपयोगिता की परिभाषा बताइए ।

(2) उपयोगिता एवं संतुष्टि में अंतर समझाइए ।

3.3 उपयोगिता का गणनावाचक विश्लेषण या सीमान्त उपयोगिता विश्लेषण

3.3.1 विश्लेषण की मान्यताएँ

उपभोक्ता के व्यवहार के गणनावाचक दृष्टिकोण के आधार पर विश्लेषण के प्रारम्भ में उन मान्यताओं का उल्लेख करेंगे, जो इस विश्लेषण का आधार हैं ।

1. उपयोगिता का परिमाणात्मक माप सम्भव है और इसको गणनावाचक संख्याओं में व्यक्त किया जा सकता है । अर्थात्, व्यक्ति किसी वस्तु से प्राप्त सन्तुष्टि या तुष्टिगुण को गणनावाचक अंकों में व्यक्त कर सकता है ।
2. उपयोगिता या तुष्टिगुण स्वतंत्र होते हैं । इस मान्यता से यह अभिप्राय है कि उपभोक्ता को किसी एक वस्तु से जो सन्तुष्टि मिलती है वह उपभोग की गई अन्य वस्तुओं की मात्राओं पर निर्भर नहीं करती, बल्कि वह तो केवल वस्तु की उपभोग की गई मात्रा पर ही निर्भर करती है।
3. मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता को स्थिर माना गया है । वस्तुओं के सीमान्त तुष्टिगुणों को मुद्रा में मापना तभी संभव है, जब मुद्रा का सीमान्त तुष्टिगुण स्वयं स्थिर रहे । अतएव मुद्रा के स्थिर सीमान्त तुष्टिगुण (उपयोगिता) की मान्यता मार्शल के विश्लेषण के लिए महत्वपूर्ण है ।
4. उपभोक्ता विवेकशील है, जो वस्तुओं की इकाईयों का माप, गणन, चुनाव और तुलना करता है और उपयोगिता को अधिकतम करने का उद्देश्य रखता है ।
5. उपभोक्ता को वस्तु की उपलब्धता और उनकी गुणवत्ताओं के बारे में पूर्णज्ञान हैं ।
6. यह विभिन्न वस्तुओं की कीमतों को जानता है और उनकी कीमतों में परिवर्तन उपयोगिताओं को प्रभावित नहीं करते ।

3.3.2 सीमान्त उपयोगिता एवं कुल उपयोगिता

यह हमारे सामान्य अनुभव की बात है कि मनुष्य अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए किसी वस्तु की एक से अधिक इकाईयों का उपयोग करता है । ऐसी स्थिति में उस वस्तु की अंतिम इकाई का सीमान्त इकाई और उससे मिलने वाली उपयोगिता को सीमान्त उपयोगिता कहते है । प्रो. एली के अनुसार "किसी व्यक्ति के पास किसी वस्तु के स्टॉक की सीमान्त इकाई के तुष्टिगुण को, उस व्यक्ति के लिए वस्तु विशेष का सीमान्त तुष्टिगुण कहा जायेगा । " **प्रो. बोल्डिंग के अनुसार "किसी वस्तु की दी हुई मात्रा की सीमान्त उपयोगिता कुल उपयोगिता में होने वाली वह वृद्धि है जो उसके उपभोग में एक और इकाई के बढाने के परिणाम स्वरूप होती है ।**''

किसी वस्तु की सभी इकाईयों के उपभोग से उपभोक्ता को जो उपयोगिता प्राप्त होती है. उसे कुल -उपयोगिता कहते हैं । उदाहरणार्थ, यदि उपभोक्ता वस्तु की '0' इकाईयों का उपभोग करता है तो '0' इकाईयों से प्राप्त उपयोगिताओं के योग को कुल उपयोगिता कहेंगे ।

कुल उपयोगिता एवं सीमान्त उपयोगिता की अवधारणा एवं उनके बीच के संबंध को निम्नतालिका से स्पष्ट किया जा सकता है

तालिका - 3.1

सेब की संख्या	कुल उपयोगिता	सीमांत उपयोगिता
1	12	-
2	22	10
3	30	08
4	36	06

5	40	04
6	41	01
7	41	00
8	39	-02
9	34	-05

जब एक उपभोक्ता सेब खरीदता है तो वह 1,2,3, 4... आदि इकाईयों में लेता है । 2 सेबों में 1 की अपेक्षा, 3 सेबों में 2 की अपेक्षा और 4 सेबों में 3 की अपेक्षा अधिक उपयोगिता होती है । उपभोक्ता उनकी उपयोगिता के अवरोही क्रम में सेबों का चुनाव करता है । पहला सेब उसे अधिकतम सन्तुष्टि देता है जो 12 के बराबर है । दूसरे सेब में 10, तीसरे से 8 और चौथे से 6 के बराबर सन्तुष्टि प्राप्त हुई । उपभोक्ता द्वारा ली गई एक वस्तु की विभिन्न इकाईयों की उपयोगिताओं का जोड़ कुल उपयोगिता प्रकट करता है । उदाहरण के लिए दो सेबों की उपयोगिता 22 (12+10), तीन की 30 (12+10+8), चार की 36 (12+10+8+6) कुल उपयोगिता है । वस्तु की एक इकाई के अतिरिक्त उपभोग से जो उपयोगिता में वृद्धि होती हैं उसे सीमान्त उपयोगिता कहते हैं । दो सेबो से मिलने वाली उपयोगिता 22 है एवं तीन सेबों से मिलने वाली उपयोगिता 30 है अर्थात् तीसरे सेब से मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता 10 (30-20) होगी ।

उपर्युक्त तालिका से यह भी स्पष्ट है कि उपभोक्ता सेब की इकाईयों का उपभोग जैसे-जैसे बढ़ाता जाता है, प्रत्येक अगली इकाई से मिलने वाली उपयोगिता बराबर घटती जाती है । लेकिन कुल उपयोगिता बढती जा रही है । हालांकि कुल उपयोगिता के बढ़ने की दर घटती हुई है । उपर्युक्त तालिका में 6 इकाईयों तक सीमान्त उपयोगिता घनात्मक है अतएव कुल उपयोगिता भी बढ़ रही है । सातवीं सेब की सीमान्त उपयोगिता शून्य है एवं उपभोक्ता यदि इसके बाद भी सेब का उपभोग जारी रखता है तो उसे उपयोगिता के स्थान पर अनुपयोगिता मिलेगी एवं सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक हो जायेगी । कुल उपयोगिता एवं सीमान्त उपयोगिता के इस संबंध को निम्न रेखाचित्र द्वारा दर्शाया जा सकता है ।

रेखाचित्र का ऊपरी भाग कुल उपयोगिता को दर्शा रहा है । सेब की सातवीं इकाई पर कुल उपयोगिता । अधिकतम पर पहुँचती है एवं उसके बाद गिरने लगती है । रेखाचित्र के नीचे वाले भाग में सेब की उत्तरोत्तर इकाइयो से प्राप्त घटती हुई सीमांत उपयोगिता को दर्शाया गया है ! सातवी इकाई पर जब कुल उपयोगिता अधिकतम है, तो सीमान्त उपयोगिता शून्य हो जाती है । इसके बाद सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक हो जाती है ।

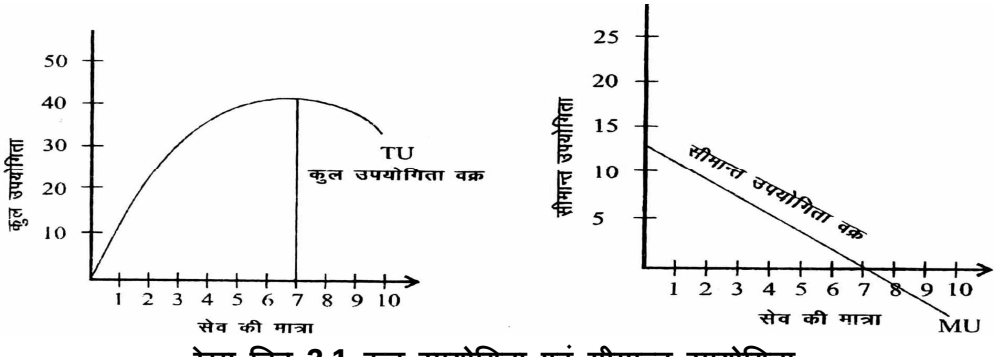

रेखा चित्र 3.1 कुल उपयोगिता एवं सीमान्त उपयोगिता

3.3.3 सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम

सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम उपभोग का एक महत्वपूर्ण नियम है । इस नियम का सर्वप्रथम उल्लेख आस्ट्रियन अर्थशास्त्री एच.एच. गौसन ने किया, जिस कारण इसे गौसन का प्रथम नियम भी कहते हैं । ब्रिटिश अर्थशास्त्री विलियम स्टेनले जेवन्स प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने मूल्य निर्धारण सम्बन्धी विषय पर इस नियम के प्रभाव का उल्लेख किया । इस नियम की विस्तृत व्याख्या का श्रेय एलफ्रेड मार्शल को दिया जाता है ।

यह नियम इस तथ्य पर आधारित है कि मनुष्य की आवश्यकता विशेष की पूर्ण सन्तुष्टि की जा सकती है । प्रत्येक आवश्यकता शुरू-शुरू में काफी तीव्रता लिये होती है, किन्तु जब हमें उस वस्तु की अधिकाधिक इकाईयाँ प्राप्त हो जाती हैं तो उनकी तीव्रता में कमी होती चली जाती है । अन्ततः एक ऐसी स्थिति भी आ जाती है जब उस वस्तु की मांग घटकर शून्य रह जाती है क्योंकि वस्तु की पूर्ण सन्तुष्टि प्राप्त हो जाने के कारण, हम वस्तु का और अधिक उपयोग करना बंद कर देते है । अतः अनुभव से यह पता चलता है कि जैसे-जैसे किसी वस्तु की आवश्यकता की तीव्रता घटती जाती है, वैसे-वैसे वस्तु की अगली इकाईयों से प्राप्त होने वाली उपयोगिता भी घट जाती है । दूसरा तथ्य जिस पर यह नियम आधारित है, वह यह है कि विभिन्न विशिष्ट आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए विभिन्न वस्तुएँ पूर्ण प्रतिस्थापन नहीं है । जब एक व्यक्ति एक वस्तु की अधिकाधिक इकाईयों का प्रयोग करता है तो उस वस्तु की उस विशिष्ट आवश्यकता के लिए तीव्रता कम हो जाती है । परन्तु यदि इस वस्तु की इकाईयाँ अन्य आवश्यकताओं की सन्तुष्टि में प्रयुक्त की जा सकती है और उनसे उतनी ही सन्तुष्टि प्राप्त होती है, जितनी प्रथम आवश्यकता की पूर्ति से हुई तो उस वस्तु का सीमान्त तुष्टिगुण कभी कम नहीं होता ।

नियम की परिभाषा -

मार्शल के अनुसार "किसी मनुष्य के पास किसी वस्तु की मात्रा में वृद्धि होने से जो अतिरिक्त लाभ (सन्तुष्टि) उसे प्राप्त होता है, तो अन्य बातों के समान रहने पर, वह वस्तु की मात्रा में प्रत्येक वृद्धि के साथ-साथ घटता जाता है । "प्रो. बोल्डिंग के शब्दों में" अन्य सभी वस्तुओं के उपभोग को स्थिर रखते हुए जैसे-जैसे उपभोक्ता किसी वस्तु के उपभोग को बढ़ाता जाता है, वैसे-वैसे ही परिवर्तनशील वस्तु की सीमान्त उपयोगिता घटती चली जानी चाहिये । "

उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि वस्तु की उपभोग की जाने वाली मात्रा और उससे प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता में विपरीत सम्बंध है । आधुनिक अर्थशास्त्री नियम के इस रूप में थोड़ा संशोधन करते हुए कहते हैं कि कुछ दशाओं में ऐसा भी हो सकता है कि शुरू-शुरू में वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई का उपभोग करने से मिलने वाली उपयोगिता, पहले वाली इकाई की उपयोगिता से अधिक हो । अतः उन्होंने एक सीमा के बाद या एक निश्चित बिन्दु के बाद सीमान्त उपयोगिता के घटने की प्रवृत्ति पर जोर दिया । वास्तव में, एक सीमा या बिन्दु के बाद सीमान्त उपयोगिता का घटना अवश्यम्भावी है और अपने इसी गुण के कारण ही यह नियम उपभरोग का सार्वभौमिक नियम कहलाता है ।

सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम, पूर्व में दी गई तालिका (नं. 3.1) एवं रेखाचित्र (3.1) से स्पष्ट होता है । सेब की पहली इकाई से अधिकतम उपयोगिता प्राप्त हो रही । सेब की मात्रा में उतरोत्तर वृद्धि अर्थात् दूसरी, तीसरी, चौथी.... इकाईयों से मिलने वाली उपयोगिता क्रमशः कम

होती जा रही है । रेखाचित्र के नीचे वाले भाग में सीमा न उपयोगिता वक्र को दर्शाया गया है, जो बायें से दायें नीचे गिरती हुई रेखा है, जो घटती सीमान्त उपयोगिता को व्यक्त कर रही है ।

3.3.4 सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम की मान्यताएँ

इस नियम के क्रियाशील होने की कुछ अनिवार्य शर्ते है अर्थात् इस नियम की कुछ मान्यताएँ हैं जिसके अंतर्गत ही यह नियम लागू होता है अन्यथा नहीं । नियम की प्रमुख मान्यताएँ निम्नलिखित हैं -

1. वस्तु की सभी इकाईयाँ गुण एवं आकार में एक समान होनी चाहिये ।
2. उपभोग प्रक्रिया के दौरान उपभोक्ता की रूचि, आदत, फैशन, स्वभाव तथा आय समान रहनी चाहिये ।
3. वस्तु की इकाईयों का उपभोग निरन्तर होना चाहिये ।
4. वस्तु के मूल्य में कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिये ।
5. वस्तु के स्थानापन्न वस्तुओं का मूल्य भी समान रहना चाहिये ।
6. उपभोक्ता की मानसिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिये ।
7. वस्तु का उपभोग उपयुक्त इकाईयों में होना चाहिये ।

3.3.5 सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम का महत्व

यह नियम अर्थशास्त्र के आधार मूलक नियमों में से हैं । वास्तव में उपभोग के नियमों की यह नींव है । युक्ति संगत उपभोक्ता चयन के अध्ययन में सीमान्त उपयोगिता हास नियम एक आधार धारणा है । इस नियम के महत्व के प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित है

1. यह मांग के नियम की व्याख्या करता है ।
2. उपभोक्ता की बचत का सिद्धान्त इसी नियम पर आधारित है ।
3. सम सीमान्त उपयोगिता नियम भी इसी पर आधारित है ।
4. यह नियम आधुनिक कर प्रणाली का आधार है ।
5. यह नियम विनिमय-मूल्य तथा प्रयोग मूल्य को स्पष्ट करता है ।

बोध प्रश्न - 2

1. सीमान्त उपयोगिता विश्लेषण की मान्यताएँ बताइए ।
2. सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम का महत्व समझाइए ।

3.4 उपभोक्ता का सन्तुलन एवं सम सीमान्त उपयोगिता नियम

उपभोक्ता उस समय सन्तुलन में होता है, जब वह अपने व्यय से अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करता है । सन्तुलन से अभिप्राय विश्रामावस्था अथवा अपरिवर्तनशील अवस्था से होता है । उपभोक्ता उस समय सन्तुलनावस्था को प्राप्त होता है जब उसमें अपनी व्यय परियोजना में किसी प्रकार का परिवर्तन करने की कोई प्रवृति नहीं पायी जाती ।

अब प्रश्न यह है कि उपभोक्ता अधिकतम संतुष्टि किस प्रकार प्राप्त कर सकता है? इसके लिए उपभोक्ता सबसे पहले अपनी आवश्यकता की सभी वस्तुओं को उनकी उपयोगिता के क्रम में सजा लेता है और उन पर उसी क्रम से मुद्रा खर्च करता है । जो वस्तु उसे मुद्रा के बदले

जितनी अधिक उपयोगिता देती है उसे पहले खरीदता है और जो वस्तु जितनी कम उपयोगिता रखती है उसे उतना ही बाद में खरीदता है । यदि उपभोक्ता अपना व्यय इसी क्रम में करता रहे तो यह निश्चित है कि उसे सभी वस्तुओं से मिलने वाली उपयोगिता अधिकतम होगी । इसका कारण यह है कि इस ढंग से व्यय करने पर मुद्रा की अंतिम इकाई की उपयोगिता सभी वस्तुओं के लिए समान या लगभग समान होगी और उपभोक्ता मिलने वाली संतुष्टि अधिकतम हो जायेगी।

उपभोक्ता द्वारा उपर्युक्त ढंग से व्यय करने को ही अर्थशास्त्र में सम सीमान्त उपयोगिता नियम कहते है । गणनावाचक उपयोगिता विश्लेषण में इसका महत्वपूर्ण स्थान है । इस नियम की सहायता से ही उपभोक्ता के सन्तुलन को समझाया जाता है । यह नियम गौसन का दूसरा नियम, प्रतिस्थापन का नियम आदि नाम से भी जाना जाता है ।

गौसन के शब्दों में "सम-सीमान्त उपयोगिता नियम उपभोक्ता के उस व्यवहार को स्पष्ट करता है, जिसे दी हुई अनेक वस्तुओं और सेवाओं में अपनी सीमित आय को, व्यय करने के लिए चुनाव करना होता है । " मार्शल के अनुसार ' 'यदि किसी व्यक्ति के पास कोई ऐसी वस्तु (मुद्रा) है जिसे वह अनेक प्रयोगों में लगा सकता है तो वह उस वस्तु को विभिन्न प्रयोगों में इस प्रकार बाँटेगा कि उसकी सीमान्त उपयोगिता सभी प्रयोगों में समान बनी रहे, क्योंकि यदि वस्तु की सीमान्त उपयोगिता किसी एक प्रयोग में दूसरे प्रयोग की अपेक्षा अधिक है तो वह निश्चित रूप से दूसरे प्रयोग से वस्तु की कुछ मात्रा हटाकर पहले प्रयोग में लगाने से अधिक लाभ (सन्तुष्टि) प्राप्त कर सकता है । " अर्थात् सम-सीमान्त उपयोगिता नियम हमें यह बताता है कि उपभोक्ता अपनी मौद्रिक आय को विभिन्न वस्तुओं में इस प्रकार वितरित करेगा कि प्रत्येक वस्तु पर व्यय किए गए अंतिम रूपये से प्राप्त उपयोगिता समान हो । दूसरे शब्दों में, उपभोक्ता उस समय सन्तुलन में होगा, जब प्रत्येक वस्तु पर व्यय की गई मुद्रा से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता समान हो । एक वस्तु पर किए गए मौद्रिक व्यय के प्राप्त सीमान्त उपयोगिता को उस वस्तु की एक इकाई से प्राप्त उपयोगिता को उसकी कीमत से विभाजित कर ज्ञात किया जा सकता है । अर्थात्

$$MU_E = \frac{MU_X}{P_X}$$

यहाँ MU_E वस्तु X पर मौद्रि व्यय की सीमान्त उपयोगिता है ।

MU_X वस्तु X की सीमांत उपयोगिता तथा

अत: उपभोक्ता संतुलन में होगा जबकि

$$\frac{MU_X}{P_X} = \frac{MU_y}{P_y} = \text{.....} \frac{MU_n}{P_n}$$

अर्थात X, Y..... N वस्तुओं पर व्यय किये गये अंतिम रूपयों से प्राप्त सीमांत उपयोगिता बराबर है । नियम का उदाहरण तथा रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण

माना कि एक उपभोक्ता के पास 8 रूपये है जिन्हें वह दो वस्तुओं X व Y (जिनकी कीमत समान है) पर तालिका मे दिए हुए क्रम के अनुसार व्यय करता है । तालिका में मुद्रा की प्रत्येक इकाई को X व Y पर व्यय करने से प्राप्त सीमांत उपयोगिता दी हुई है ।

तालिका 3.2

मुद्रा की इकाईयाँ	व्यय से प्राप्त सीमांत उपयोगिता	
1	X वस्तु	Y वस्तु
2	20(1)	16(3)
3	14(4)	9(8)
4	10(6)	4
5	9(7)	3
6	6	2
7	2	1
8	1	0

(कोष्ठक मे मुद्रा की इकाइयों को व्यय करने का क्रम दिया है)

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि उपभोक्ता पहले दो रूपये X पर, तीसरा Y पर, चौथा X पर, पाँचवा Y पर, छठा एवं सातवा X पर तथा आठवां Y पर व्यय कर रहा है । इस प्रकार वह X व Y पर व्यय किये गये अन्तिम रूपये से प्राप्त उपयोगिता को बराबर कर रहा है । X पर व्यय किये गये पाँचवे रूपये तथा Y पर व्यय किये गये तीसरे रूपये से प्राप्त सीमांत उपयोगिता बराबर है अर्थात 9 के बराबर है । इस प्रकार उपभोक्ता अपने 8 रूपयों में से 5 रूपये X पर तथा 3 रूपये Y पर खर्च कर अपनी कुल उपयोगिता को अधिकतम करता है । अर्थात्

X वस्तु से प्राप्त उपयोगिता = 20+18+14+10+9=71

Y वस्तु से प्राप्त उपयोगिता = 16+12+9= 37

कुल उपयोगिता = 71+37=108

यह जानने के लिए क्या यही उपभोक्ता के सन्तुलन की स्थिति है अर्थात क्या व्यय के इसी ढंग से उपभोक्ता को अधिकतम सन्तुष्टि मिल रही है? हम देखते है कि क्या व्यय योजना में परिवर्तन से कुछ उपयोगिता बढ़ती है? माना कि उपभोक्ता X वस्तु से पाँचवा रूपया हटाकर Y वस्तु पर व्यय करता है । इस परिवर्तन से उसे 9 के बराबर उपयोगिता की हानि होगी परन्तु Y पर व्यय बढ़ने से 4 के बराबर उपयोगिता में वृद्धि होगी । यदि वह 4-4 रूपये दोनों पर व्यय करता है तो उसे उपयोगिता में 5 (9-4) के बराबर हानि होगी । ऐसी स्थिति में कुछ उपयोगिता 103 के बराबर होगी । इसी प्रकार बताया जा सकता है कि X पर 6 व Y पर 2 रूपये खर्च करने पर भी कुल उपयोगिता में कमी होगी क्योंकि X पर 6 रूपये खर्च करने से उपयोगिता में 4 का लाभ होगा परन्तु Y पर एक रूपया कम खर्च करने से 9 का नुकसान होगा । अत: X पर 5 व Y पर 3 रूपये का व्यय ही ऐसी स्थिति है जहाँ उपभोक्ता के लिए कुल उपयोगिता अधिकतम है ।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि X व Y पर व्यय किये गये अन्तिम रूपये से प्रात सीमांत उपयोगिता व्यय के अन्य स्तरों - जैसे X पर 7 व Y पर 6 रूपये या X पर 8 व Y पर 7 रूपये-पर भी बराबर है परन्तु इन दोनों स्थितियो में व्यय दी हुई आय से अधिक है अत: संभव नहीं है ।

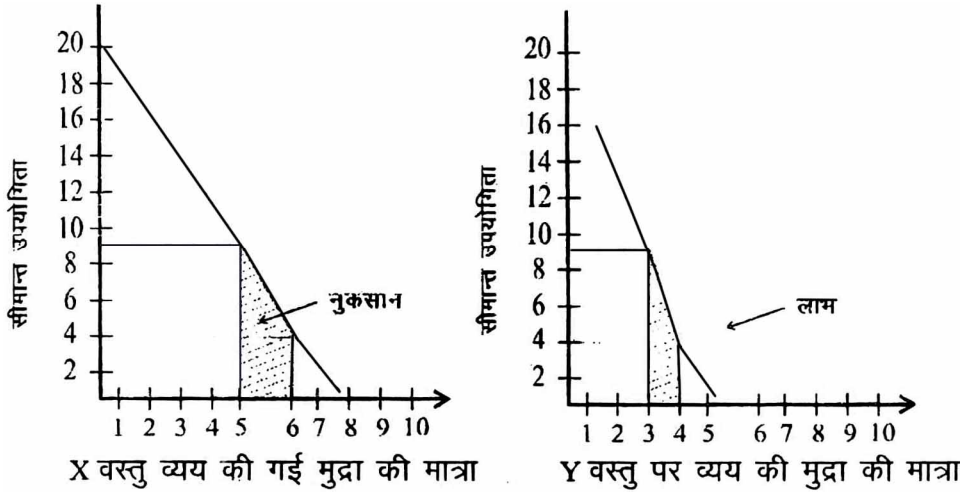

रेखा चित्र 3.2 (अ) एवं (ब)

सम-सीमान्त तुष्टिगुण का नियम: उपभोक्ता का सन्तुलन

उपर्युक्त रेखाचित्र से स्पष्ट है कि उपभौकता उस समय सन्तुलन में होगा जबकि वह वस्तु X पर 5 रूपये व y पर 3 रूपये व्यय करे । इसके अतिरिक्त व्यय के कोई अन्य ढ़ाँचा इससे अधिक सन्तुष्टि प्रदान नहीं करेगा । सम-सीमान्त उपयोगिता नियम को प्रतिस्थापन का नियम भी कहा जाता है क्योंकि उपभोक्ता अपनी सन्तुष्टि को अधिकतम करने के उद्देश्य से कम उपयोगी वस्तु का अधिक उपयोगी वस्तु से प्रतिस्थापन करता है ।

नियम की मान्यताएँ

(1) चूंकि यह नियम सीमान्त उपयोगिता हास नियम पर आधारित है अत: उपयोगिता हास नियम की सभी मान्यताएँ इस नियम पर लागू होती है ।

(2) मुद्रा की क्रय शक्ति एवं सीमान्त उपयोगिता स्थिर रहती है ।

(3) मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है इसलिए वह अपनी सीमित आय को सोच समझकर व्यय करता है ।

(4) उपभोक्ता व्यय की सीमान्त उपयोगिताओं को ज्ञान रखता है ।

नियम की सीमाएँ

(1) मनुष्य के विवेवशील या आर्थिक मानव होने की मान्यता पूर्णत: सत्य नहीं है । व्यावहारिक जीवन में ऐसी अनेक बाधाएँ है जिनके कारण उपभोक्ता युक्तियुक्त ढंग से व्यवहार नहीं कर सकता । चयनों की बहुलता के कारण उपयोगितओ का सही-सही मूल्यांकन सम्भव नहीं । कई बार उपयोक्ता के पास उपयोगिताओं की तुलना करने के लिए आवश्यक जानकारी का अभाव होता है ।

(2) सम सीमान्त उपयोगिता नियम तभी पूर्णत: कार्यशील होता हे जब मुद्रा एवं इससे खरीदी जाने वाली वस्तुएँ भी छोटी इकाइयों में विभाज्य हो । यदि वस्तुएँ बड़े आकार की है और छोटी-छोटी इकाइयों में अविभाज्य है तो ऐसी परिस्थिति में सीमान्त उपयोगिता के समानीकरण की प्रक्रिया लगभग असम्भव सी हो जायेगी ।

(3) उपभोक्ता के बजट की अवधि निश्चित नहीं होती । यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि उपभोक्ता के पास साधनों की एक निश्चित मात्रा है जसे वह एक निश्चित समय

अवधि में व्यय करता है । इतना ही नहीं, अनेक ऐसी वस्तुएँ भी होती है जिन्हें किसी एक बजट अवधि में खरदी जाता है परन्तु उनका उपयोग अगली बजट अवधियों में भी किया जाता है । ऐसी स्थिति में उपभोक्ता के लिए एक बजट अवधि में सीमित आय से अधिकतम सन्तुष्टि की गणना मुश्किल हो जायेगी ।

(4) कभी-कभी बाजार में कतिपय उपयोगी वस्तुएँ उपलब्ध नहीं होती अतएव उपभोक्ताओं को उनके स्थापना पर कम उपयोगी वस्तुएँ खरीदनी पड़ती है ।

(5) वस्तुओं के मूल्यों में परिवर्तन होता रहता है जिसके कारण उपभोक्ता की उपयोगिता संबंधी गणनाएँ बेकार सिद्ध होती है ।

(6) पूरक वस्तुओं का उपयोग एक निश्चित अनुपात में ही किया जाता है ऐसी स्थिति में अधिकतम सन्तुष्टि नियम को लागू नहीं किया जा सकता ।

3.5 मांग तथा मांग का नियम

मांग का नियम उपयोगिता-विश्लेषण का अभिन्न अंग है । इस नियम का अध्ययन करने से पूर्व हम मांग के अर्थ एवं उसके स्वरूप को स्पष्ट करेंगे ।

3.5.1 मांग का अर्थ एवं परिभाषा

प्रो. बेन्हम के अनुसार, " किसी निश्चित कीमत पर किसी वस्तु की मांग से अभिप्राय वस्तु की उस मात्रा से है जिसे उस कीमत पर प्रति समय इकाई खरीदा जाता है ।" इस परिभाषा में दो बातें प्रमुख है - पहली मांग से अभिप्राय सदैव किसी कीमत पर मांग से होता है एवं दूसरी मांग से अभिप्राय सदैव प्रति इकाई समय से होता है ।

यहाँ यहभी उल्लेखनीय है कि माँग से अभिप्राय इच्छा अथवा आवश्यकता नहीं है । इच्छा तब तक माँग नही बनती जब तक उस इच्छा को पूर्ण करने के लिए हमारे पास साधन नहीं है और हम उन साधनों का प्रयोग करने के लिए तत्पर नहीं है । दूसरे शब्दों में, मांग के लिए निम्नलिखित तीन तत्वों का होना जरूरी है-

(अ) किसी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा होना,

(ब) इच्छा पूर्ति हेतु साधनों का होना तथा

(स) साधनों को व्यय करने की तत्परता होना ।

उदाहरण के लिए, उपभोक्ता की कार के लिए इच्छा हो सकती है लेकिन जब तक उसके पास 2 लाख रूपये नहीं है और वह इस राशि को व्यय करने के लिए तत्पर नहीं होता तब तक उसकी यह इच्छा मांग का रूप धारण नहीं कर सकती ।

3.5.2 मांग फलन

एक दिये हुए बजार एवं एक दी हुई समयावधि में किसी वस्तु की मांग फलन उस वस्तु की खरीदी जाने वाली मात्राओं एवं उन मात्राओं को निर्धारित करने वाले कारकों के परस्पर संबंध को व्यक्ता करता है ।

$D_x = f\left(P_x, P_y, P_z, Y, T\right)$ यहाँ Dx वस्तु X की मांगी गयी मात्रा है, Px वस्तु X की कीमत, Py व Pz संबन्धित वस्तुओं की कीमत, Y उपभोक्ता की आय तथा रूचि, अधिमान, फैशन आदि है।

मांग को निर्धारित करने वाले कारक

(1) वस्तु की कीमत

यह मांग को निर्धारित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण तत्व है । वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर वस्तु की मांग भी बदल जाती है । प्राय: कीमत घटने पर मांग बढ़ती है और कीमत बढ़ने पर मांग घट जाती

(2) उपभोक्ता या क्रेता की आय

एक उपभोक्ता किसी वस्तु की कितनी मांग करेगा यह उसकी आय पर भी निर्भर करता है । सामान्यतया उपभोक्ता की आय बढ़ने पर वह वस्तु की अधिक मांग करेगा तथा आय के कम होने पर मांग भी कम हो जायेगी । हीन या घटिया वस्तुएँ इसका अपवाद है ।

(3) संबंधित वस्तुओं की कीमतें

संबंधित वस्तुएँ दो प्रकार की होती है । (अ) स्थानापन्न वस्तुएँ जैसे चाय व कॉफी (ब) पूरक वस्तुएँ जैसे मक्खन व ब्रेड । किसी वस्तु की मांग का उसकी स्थानापन्न वस्तु की कीमत से धनात्मक तथा पूक वस्तु की कीमत से ऋणात्मक संबंध होता है ।

(4) उपभोक्ता की रूचि

अधिमान, आदत, फैशन, रिवाज इत्यादि भी वस्तु की मांग को प्रभावित करती है ।

3.5.3 मांग-तालिका

मांग तालिका, एक निश्चित समय में किसी वस्तु की उन विभिन्न मात्राओं की सूची है जो किसी व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा विभिन्न मूल्यों पर खरीदी जाती है । इस प्रकार मांग-तालिका किसी वस्तु की विभिन्न कीमतों तथा उन पर 'मांगी गयी मात्राओं' के बीच फलनात्मक संबध को व्यक्त करती है ।

मांग-तालिका दो प्रकार की होती है -

(अ) **व्यक्तिगत मांग-तालिका**

यह तालिका किसी वस्तु की उन विभिन्न मात्राओं का व्यौरा या सूची है जो किसी एक क्रेता या उपभोक्ता-विशेष द्वारा बाजार में विभिन्न कीमतों पर खरीदी जाती है ।

तालिका 3.3

व्यक्तिगत मांग-तालिका

वस्तु X की कीमत रूपयेप्रति इकाई	मांगी गई मात्रा, इकाइयाँ
16	11
15	12
14	14
13	15

12	17

(ब) बाजार मांग तालिका

किसी वस्तु की बाजार मांग उस वस्तु की व्यक्तिगत मांग-मात्राओं का योग होता है । यह किसी वस्तु की वह कुल मांग है जो सारे बाजार में सभी क्रेताओं की मांगो को जोड़ने से प्राप्त होती है । बाजार मांग-तालिका का निर्माण दो विधियों से किया जा सकता है-

(i) बाजार में सभी उपभोक्ताओं की मांग तालिकाओं को जोड़कर, या

(ii) किसी औसत उपभोक्ता की मांग-तालिका को, उपभोक्ताओ की कुल संख्या से गुणा करके बाजार मांग तालिका का निर्माण करना ।

तालिका 3 .4

बाजार मांग-तालिका

वस्तु x की कीमत	प्रथम विधि				दूसरी विधि		
	मांगी गई मात्रा A द्वारा B द्वारा C द्वारा			कुल योग	औसत उपभोक्ता की मांग	उपभोक्ताओं की संख्या	कुल माँग
16	1	2	0	3	1	100	100
15	2	3	1	6	3	100	300
14	4	5	2	11	4	100	400
13	5	7	4	16	6	100	600

व्यक्तिगत मांग तालिका की अपेक्षा बाजार मांग तालिका अधिक समतल तथा सतत होती है । इसका कारण यह है कि व्यक्ति का व्यवहार असामान्य हो सकता है परन्तु व्यक्तियों के समूह का व्यवहार सामान्य होगा । बाजार मांग तालिका की व्यावहाकि उपयोगिता अधिक है । मूल्य नीति, करारोपण नीति तथा आर्थिक नीति के निर्धारण में बाजार मांग तालिका महत्वपूर्ण है । व्यक्तिगत मांग-तालिका की तुलना में बाजार मांग तालिका धन की असमानताओं व व्यक्तियों के दृष्टिकोणों में अंतर के कारण, निर्माण करना कठिन है ।

3.5.4 मांग वक्र

मांग वक्र, मांग तालिका का रेखीय प्रदर्शन है । जब मांग-तालिका को रेखाचित्र द्वारा व्यक्त किया जाता है तो उसे मांग वक्र कहते है । इस प्रकार मांग-वक्र, किसी वस्तु की विभिन्न कीमतों पर उसकी मांगी जाने वाली मात्राओं के बीच पाये जाने वाले संबंध को स्पष्ट करता है ।

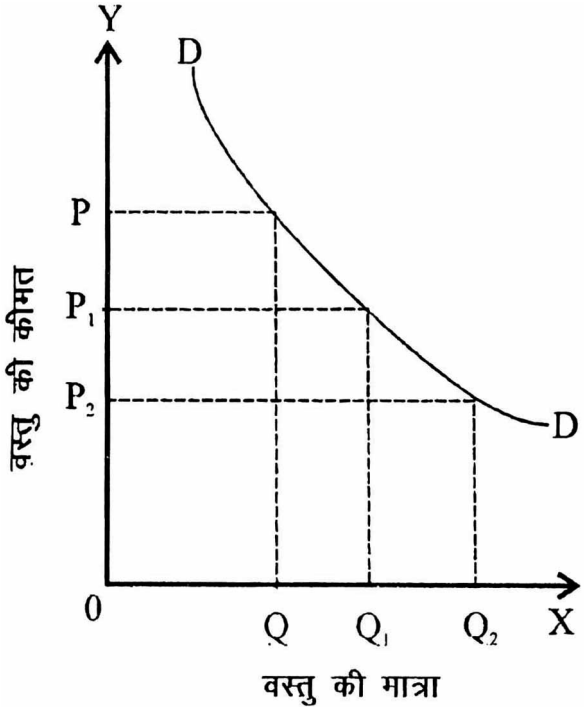

रेखाचित्र 3.3. मांग वक्र

चित्र में D D मांग वक्र है जो बायें से दायें नीचे की ओर गिरता हुआ है जिसका अर्थ यह है कि मांग तथा कीमत में विपरीत सम्बन्ध है अर्थात कीमत बढ़ने पर मांग घटती है और कीमत घटने पर मांग बढ़ती है । जब वस्तु की कीमत OP है तो मांग OQ मात्रा के बराबर है जब कीमत घटकर OP1 है तो मांग बढ़कर OQ1 हो जाती है । इसी तरह कीमत के OP2 तक घट जाने पर मांग OQ2 के बराबर हो जाती है ।

3.5.5 मांग का नियम

इसे क्रय का प्रथम नियम भी कहा जाता है । यह नियम वस्तु की कीमत और बाजार में मांग की गयी उसकी मात्रा के बीच संबंध को व्यक्त करता है । इस नियम को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है - अन्य बातों के समान रहने पर, किसी वस्तु या सेवा की कीमत में वृद्धि होने पर उसकी मांग घटती है तथा कीमत में कमी होने पर उसकी मांग बढ़ती है । अतएव मांग का नियम कीमत तथा मांगी गयी मात्रा में विपरीत संबंध को बताता है ।

मार्शल के अनुसार, " वस्तु की जितनी अधिक मात्रा बेचने के लिये उपलब्ध होती है, उसे उतना ही कम मूल्य पर बेचना पड़ता है जिससे कि ग्राहक मिल सके । "

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री सेम्यूलसन के अनुसार लोग कम मूल्य पर अधिक वस्तुएँ खरीदते हैं और अधिक मूल्य पर कम वस्तुएँ खरीदते है ।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मांग का नियम एक गुणात्मक कथन है न कि परिमाणात्मक कथन । इसका तात्पर्य यह है कि प्रस्तुत नियम केवल मांग में परिवर्तन की दिशा को बताता है अर्थात् केवल यह बताता है कि मांग कम होगी या अधिक । यह मांग में परिवर्तन के परिमाण

को नहीं बताता अर्थात यह नहीं बताता कि मांग कितनी मात्रा में कम होगी और कितनी मात्रा में अधिक।

मांग के नियम में 'अन्य बातों के समान रहने पर' वाक्यांश का उपयोग किया गया है वह इसलिये कि मांग के नियम द्वारा वस्तु की कीमत व मांग में दर्शाया गया संबंध इन दी हुई परिस्थितियों में ही सच है । इस वाक्यांश में वे सभी मान्यताएँ निहित है जिनके आधार पर इस नियम का निर्माण किया गया है । ये विभिन्न मान्यताएँ इस प्रकार है

(1) लोगों की आय में कोई परिवर्तन नहीं होता अर्थात् आय स्थिर है ।
(2) वस्तु से संबंधित वस्तुआं की कीमतों में भी कोई परिवर्तन नहीं होता ।
(3) उपभोक्ताओं की रूचि व स्वभाव में परिवर्तन नहीं होना चाहिये ।
(4) किसी नयी स्थानापन्न वस्तु का उपभोक्ता का पता नहीं चलना चाहिये ।
(5) भविष्य में वस्तुओं के मूल्य में अधिक परिवर्तन होने की सम्भावना नहीं होनी चाहिये ।
(6) वह वस्तु ऐसी नहीं होनी चाहिये कि जिसके प्रयोग से समाज में प्रतिष्ठा मिलती हो क्योंकि प्रतिष्ठामूल कवस्तुएँ प्राय: धनी लोगों द्वारा ऊँचे मूल्यों पर अधिक मात्रा में खरीदी जाती है।

3.5.6 मांग के नियम के क्रियाशील होने के कारण

सामान्यतया मांग वक्र बायें से दायें नीचे की ओर गिरता हुआ वक्र होता है जो इस बात का प्रतीय है कि कीमत पर वस्तु की मांग अधिक की जाती है । हम प्रश्न कर सकते है कि कीमत कम होने पर वस्तु की मांग क्यों बढ़ती है? अथवा मांग वक्र की प्रवृत्ति दायें नीचे की आरे झुकने की क्यों होती है? इसके मुख्य कारण इस प्रकार है -

(1) उपयोगिता हास नियम का लागू होना

मांग का नियम सीमान्त उपयोगिता हास नियम पर आधारित है । इस नियम के अनुसार वस्तु की मात्रा मे प्रत्येक वृद्धि के साथ उससे प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता घटने लगती है । दूसरे शब्दो में, सीमान्त उपयोगिता वक्र नीचे को गिरता हुआ होता है । एक उपभोक्ता तब तक वस्तु का क्रय करता है जब तक कि उस वस्तु से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता वस्तु की बाजार कीमत के बराबर नहीं हो जाती । इस स्थिति में उपभोक्ता को अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होगी । अत: कीमत तथा सीमान्त उपयोगिता में समानता सन्तुलन की आवश्यक शर्त है । जब वस्तु की कीमत गिर जाती है तो सीमान्त उपभोक्ता वक्र के नीचे की ओर झुके होने के कारण यह आवश्यक है कि उपभोक्ता उस वस्तु की अधिक मात्रा क्रय करे जिससे कि वस्तु की सीमान्त उपयोगिता गिर कर उसकी कीमत के समान हो जाये । इसका यह अर्थ है कि हासमान सीमान्त उपयोगिता वक्र का अभिप्राय नीचे को गिरते हुए मांग वक्र से है अर्थात् कीमत के घटने पर वस्तु की अधिक मात्रा का क्रय किया जायेगा ।

(2) आय प्रभाव

जब किसी वस्तु की कीमत में कमी होती है तो उपभोक्ता की आय अथवा क्रयशक्ति (वास्तविक आय) में वृद्धि हो जाती है । दूसरे शब्दों में, कीमत के घटने का उपभोक्ता को वस्तु की उतनी ही मात्रा खरीदने के लिए अब कम मुद्रा व्यय करनी पड़ेगी । फलस्वरूप वास्तविक आय में हुई वृद्धि से वह उस वस्तु की अधिक मात्रा खरीद सकेगा या किसी अन्य वस्तु को खरीदेगा या बढ़ी हुई आय के आंशिक हिस्से से इस वस्तु की अधिक मात्रा खरीदेगा एवं बाकि से अन्य वस्तुएँ

खरीदेगा। इसे हम आय प्रभाव कहते है । यह आय प्रभाव घनात्मक, ऋणात्मक अथवा शून्य हो सकता है । कीमत में कमी के फलस्वरूप हुई वास्तविक आय में वृद्धि से यदि उपभोक्ता उस वस्तु की अधिक मात्रा खरीदते है तो आय प्रभाव घनात्मक माना जायेगा । यदि बढ़ी हुई समस्त वास्तविक आय को वह किसी अन्य वस्तु पर खर्च करता है तो आय प्रभाव शून्य होगा और यदि वस्तु विशेष की मांग बढ़ने के बजाय कम हो जाती है तो आय प्रभाव ऋणात्मक होगा ।

(3) प्रतिस्थापन प्रभाव

उपभोक्ता के व्यवहार की यह सामान्य प्रवृत्ति है कि वह महंगी वस्तु की तुलना में सस्ती को वरीयता देता है अथवा महंगी वस्तु को सस्ती से प्रतिस्थापित करता है । जब वस्तु विशेष की कीमत कम होती है तो इसका तात्पर्य यह है कि अन्य वस्तुओं, जिनकी कीमत में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, की तुलना में यह वस्तु सस्ती हो गयी है । परिमाण स्वरूप लोग इस वस्तु विशेष का अन्य वस्तुओं के स्थान पर प्रतिस्थापन करने लगेंगे । इस कारण इस वस्तु विशेष की मांग बढ़ जायेगी । इसे ही प्रतिस्थापन प्रभाव कहते है ।

(4) क्रेताओं की संख्या में वृद्धि या कमी

जब किसी वस्तु विशेष की कीमत घटती है तो कुछ ऐसे व्यक्ति जो पहले उस वस्तु को नहीं खरीद पा रहे थे, अब खरीदने लगते हैं जिससे वस्तु की मांग बढ़ जाती है । इसके विपरीत जब वस्तु की कीमत बढ़ती है तो कुछ व्यक्तियों के लिए बढ़ी हुई कीमत पर वस्तु को खरीदना कठिन हो जाता है जिससे मांग घट जाती है । ऊपर दिये गये तर्को के आधार पर मांग के नियम की क्रियाशीलता को समझा जा सकता है ।

3.5.7 मांग के नियम के अपवाद

प्रो. बेनहम ने मांग के नियम के कुछ अपवाद भी बताये है जहाँ वस्तु की कीमत व मांग में विपरीत संबंध नहीं पाया जाता ।

(1) गिफिन का विरोधाभास

मांग के नियम का सबसे महत्वपूर्ण चुनौती गिफिन वस्तुओं के संदर्भ में मिलती है । गिफिन वस्तुएँ प्राय: निम्न कोटि की या घटिया वस्तुओं को कहते हैं । जैसे गेहूँ की तुलना में बाजरा या देसी घी की तुलना में वनस्पति घी निम्न श्रेणी की वस्तुएँ मानी जायेगी । ब्रिटने के अर्थशास्त्री सर राबर्ट गिफिन ने सबसे पहले यह बताया कि निम्न कोटि की वस्तुओं पर मांग का नियम लागू नहीं होता अर्थात ऐसी वस्तुओं की कीमत गिरने पर उनकी मांग बढ़ती नहीं बल्कि कम हो जाती है । इस तरह के व्यवहार को गिफिन के नाम से गिफिन का विरोधाभास' कहा जाता है ।

इस विरोधाभास को एक उदाहरण से समझते हैं- एक निर्धन उपभोक्ता है जो अपनी आय का काफी बड़ा भाग बाजरे जैसे खाद्य पदार्थ पर खर्च करता है । माना कि बाजरे की कीमत गिर जाती है । स्वाभाविक है कि उपभोक्ता को बाजरा खरीदने पर अब कम खर्च करना पडेगा । मौद्रिक आय के स्थिर रहने की स्थिति में उसकी वास्तविक आय बढ़ जायेगी । इस बढ़ी हुई वास्तविक आय (या क्रयशक्ति) का उपयोग उपभोक्ता श्रेष्ठ वस्तु जैसे गेहूँ आदि खरीदने पर करेगा । फलस्वरूप बाजरे की कीमत में कमी के बावजूद बाजरे की मांग घटा देगा । इसके विपरीत यदि बाजरे की कीमत बढ़ जाती है एवं उपभोक्ता की मौद्रिक आय तथा अन्य वस्तुओं

की कीमतें अब उसकी वास्तविक आय कम हो गयी है । अब यदि बाजरे की कीमत में वृद्धि के कारण वह बाजरे की मांग घटाता है तो सम्भव है उसे भूखा रहना पड़े क्योंकि बाजरा उसके उपयोग की प्रमुख वस्तु है । इसलिए बाजरे की मांग घटाना उसके लिए सम्भव नहीं है । चूंकि बाजरे पर व्यय किये जाने वाली पूर्व राशि से, उसे कीमत वृद्धि के कारण अब बाजरे की कम मात्रा प्राप्त होगी इसलिए उसके सामने केवल एक ही रास्ता है कि वह अन्य वस्तुओं पर किये जाने वाले व्यय में कटौती करके बाजरे की मांग को बढ़ा दे ।

इस विरोधाभास की व्याख्या अनय एवं प्रतिस्थापन प्रभाव के माध्यम से भी की जा सकती है । कीमत कम होने की स्थिति में प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण मांग बढ़ती है एवं कीमत में वृद्धि होने पर मांग घटती है अतएव प्रतिस्थापन प्रभाव हमेशा ऋणात्मक होता है । आय प्रभाव घनात्मक, ऋणात्मक अथवा शून्य हो सकता है । सामान्य वस्तुओं के लिए आय प्रभाव घनात्मक होता है अर्थात आय बढ़ने पर मांग बढ़ती है परन्तु निम्न श्रेणी की वस्तुओं के लिए अपरिवर्तित रहे या घट जाये । वस्तु की कीमत कम होने की स्थिति में प्रतिस्थापन प्रभाव हमेशा उसकी मांग में वृद्धि करेगा लेकिन यदि ऋणात्मक आय प्रभाव प्रतिस्थापन प्रभाव से अधिक शक्तिशाली है तो कुल प्रभाव में मांग बढ़ने के बजाय कम हो जाती है ।

यहाँ यह स्पष्ट करना भी उचित होगा कि सभी गिफिन वस्तुएँ निम्न श्रेणी की होती है परन्तु सभी निम्न श्रेणी की वस्तुएँ गिफिन वस्तुएँ नहीं होती । ऐसा इस कारण है कि सभी निम्न श्रेणी की वस्तुओं का आय प्रभाव ऋणात्मक होता है परन्तु वह इतना कमजोर होता है कि प्रतिस्थापन प्रभाव को कमजोर नहीं कर सकता । केवल गिफिन वस्तुओं के मामले में ही ऋणात्मक आय प्रभाव इतना शक्तिशाली होता है कि प्रतिस्थापन प्रभाव को निष्प्रभावी कर देता है।

(2) प्रतिष्ठामूलक वस्तुएँ

प्रतिष्ठामूलय वस्तुएँ वे होती हैं जिनका आन्तरिक मूल्य कुछ नहीं होता परन्तु उनका उपयोग धनी लोगों द्वारा केवल इसलिये किया जाता है कि उनसे उनकी सम्पन्नता का प्रदर्शन होता है । ऐसी वस्तुओं पर मांग का नियम लागू नहीं होता । ऐसी प्रतिष्ठामूलक वस्तुओं जैसे हीरे, जवाहरात की कीमत कम होने पर मांग घट जायेगी क्योंकि इनका उपयोग करना सम्पन्नता का प्रतीक नहीं रहा और उनका उपयोग आम लोग भी करने लगे है । यह सम्भव है कि ऐसी वस्तुओं की कुल मांग कम न हो पर धनी वर्ग के लिए अवश्य घट जायेगी ।

(3) उच्च मूल्य की वस्तुएँ

मांग का नियम ऐसी वस्तुओं पर भी कार्यशील नहीं होता जिनके गुणों का मूल्यांकन उपभोक्ता उसकी कीमत देखकर करते है । सौन्दर्य प्रसाधन से संबंधित वस्तुओं जैसे क्रीम, पाउडर, लिपिस्टिक की प्रत्येक कीमत वृद्धि के बाद मांग बढ़ जाती है क्योंकि उपभोक्ताओं को यह लगता है कि ऊँची कीमत वाली वस्तुएँ ही अच्छी होती है ।

(4) भविष्य में किसी वस्तु की दुर्भलता अथवा मूल्य वृद्धि की आशंका हो तब भी यह नियम लागू नहीं होता । भविष्य में वस्तु की कमी एवं मूल्य वृद्धि की सम्भावना की स्थिति में उपभोक्ता वर्तमान में भी बढ़ी हुई कीमतों पर अधिक मांग करने लग जाते है ।

(5) यह नियम अनिवार्यताओं पर लागू नहीं होता

यह कहा जाता है कि अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करना जरूरी होता है इसलिए कीमत परिवर्तन का प्रभावन इन वस्तुओं पर नहीं पड़ता अर्थात इनकी मांग यथा स्थिर बनी रहती है ।

3.5.8 मांग में वृद्धि या कमी तथा मांग का विस्तार या संकुचन

'मांग' एवं 'मांगी गयी मात्रा' इन दोनों में अंतर है । मांग की मात्रा में होने वाले परिवर्तनों को मांग का विस्तार या संकुचन कहा जाता है, जबकि मांग में होने वाले परिवर्तनों को मांग में वृद्धि या कमी कहा जाता है । मांगी गयी मात्रा का संबंध वस्तु की कीमत से होता है अत: इससे सीधा या अभिप्राय: यह है कि कीमत परिवर्तन के कारण मांग की गई मात्रा में विस्तार या संकुचन होगा । ऐसी स्थिति में कीमत परिवर्तन के साथ मांग की मात्रा में परिवर्तन होगा लेकिन मांग वक्र वही रहेगा । अर्थात उपभोक्ता एक ही मांग वक्र पर रहते हुए कीमत के साथ मात्रा में बदलाव करता है ।

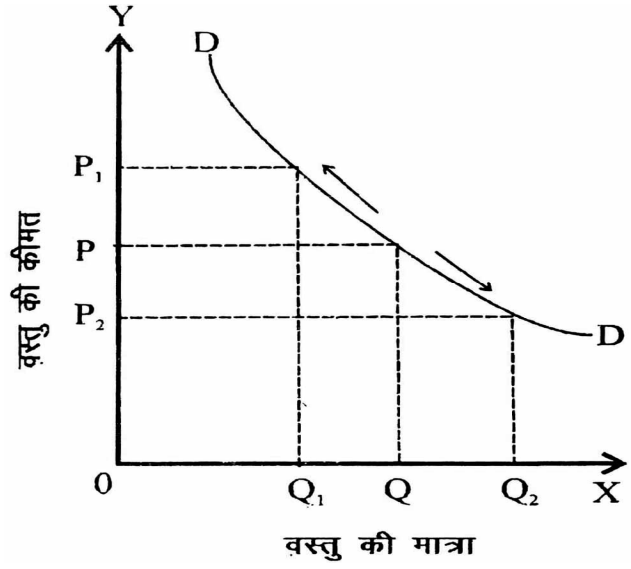

रेखाचित्र 3 .4 : मांग या विस्तार एवं संकुचन

रेखाचित्र 3.4 : मांग का विस्तार एवं संकुचन

रेखाचित्र 3.4 में DD मांग वक्र है । OP कीमत पर OQ मात्रा की मांग की जा रही है । यदि कीमत बढ़कर OP1 हो जाती है तो मांगी गयी मात्रा घटकर OQ1 हो जाती है, यदि कीमत घटकर OP2 हो जाती है तो उपभोक्ता OQ2 मात्रा की मांग करेगा, इसे मांग में विस्तार कहेंगे ।

मांग में वृद्धि या कमी मांग में परिवर्तन के कारण होती है । मांग को निर्धारित करने वाले कारकों का उल्लेख करते हुए बताया था कि मांग वस्तु की कीमत उपभोक्ता की आय, रूचि, फैशन, अन्य संबंधित वस्तुओं की कीमत इत्यादि पर निर्भर करती है । मांग के नियम को स्थापित करते समय हमने वस्तु की कीमत के अलावा अन्य सभी कारकों को दिया हुआ मान लिया था । अब यदि इन कारकों में, जिन्हें हमने स्थिर माना, कोई परिवर्तन होता है एवम् उसकी वजह से मांग में जो परिवर्तन होता है उसे मांग में वृद्धि या कमी कहेगे । वस्तु की कीमत के अतिरिक्त अन्य कारकों में बदलाव के फलस्वरूप हमें एक नया मांग वक्र मिलता है जो पुराने मांग वक्र के उपर या नीचे स्थित हो सकता है ।

मांग में वृद्धि की स्थिति मांग वक्र दायी और ऊपर की तरफ हटता है एवं इस स्थिति में उपभोक्तागत दी हुई कीमत पर वस्तु की अधिक मांग करते है । इसके विपरीत जब मांग में कमी होती है तो मांग वक्र बांयी ओर नीचे खिसकता है जिसका अर्थ है उसी कीमत पर पहले की अपेक्षा वस्तु की कम मांग करना ।

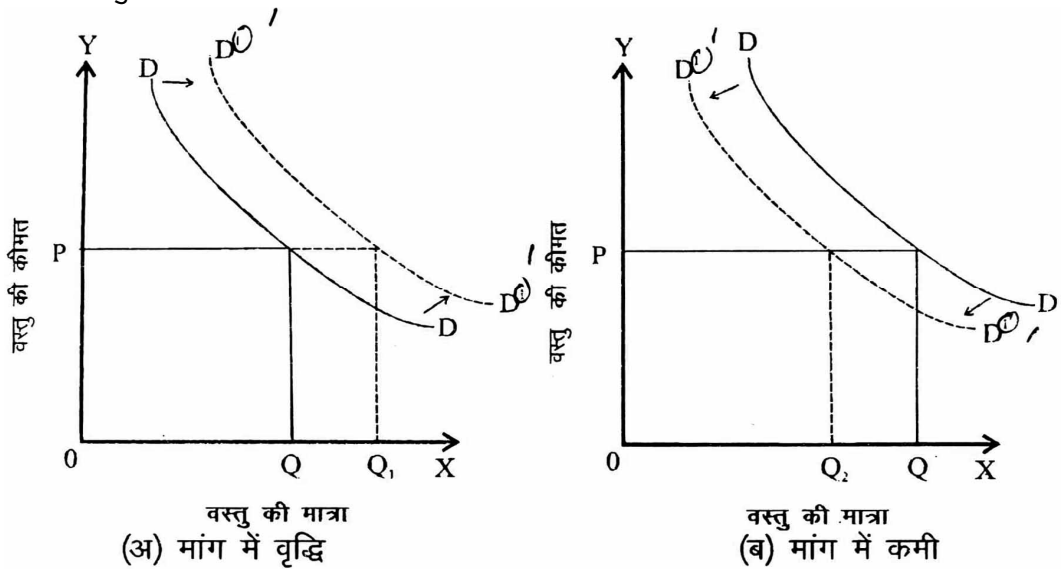

रेखाचित्र 3 .5 : मांग में वृद्धि एवं कमी

उपर्युक्ता दोनों रेखाचित्र में DD मूल मांग वक्र है और OP कीमत पर वस्त की OQ मात्रा की मांग की जा रही थी । रेखा चित्र (अ) मांग में वृद्धि को दर्शा रहा है अत: नया मांग वक्र D'D' जो मूल मांग वक्र के दायीं ओर ऊपर की ओर है । इस D'D' मांग वक्र पर OP कीमत पर उपभोक्ता OQ1 मात्रा मांग रहा है जो OQ से ज्यादा है । रेखाचित्र 3.5 (ब) में D'D' मांग वक्र मूल मांग वक्र की बांयी ओर नीचे की तरफ है जो मांग में कमी को बताता है । जब मांग में कमी हो रही है तो उपभोक्ता OP कीमत पर OQ2 मात्रा मांग रहा है जो OQ से कम है ।

3.6 सारांश

उपभोक्ता के उपभोग्य वस्तुओं के चयन संबंधी व्यवहार एवं निर्णय प्रक्रिया को उपयोगिता विश्लेषण से समझाने का प्रयास किया गया है । इस विश्लेषण के आधार पर ही उपभोक्ता के सन्तुलन एवं मांग के नियम को भी विवेचना इस इकाई में की गई है । उपयोगिता विश्लेषण में उपभोक्ता के व्यवहार की जाँच के लिए आत्म परीक्षण विधि का उपयोग किया गया है एवं सम्पूर्ण विश्लेषण इस मान्यता पर आधारित है कि उपयोगिता की वस्तुनिष्ठ तरीके से परिमाणात्मक माप संभव है ।

आधुनिक अर्थशास्त्री उपयोगिता से संबंधित इस मान्यता पर गंभीर रूप से आपत्ति करते हुए कहते है कि उपयोगिता एवं मनोवैज्ञानिक तथ्य है जिसे किसी भी वस्तुनिष्ठ तरीके से नहीं मापा जा सकता एवं मुद्रा उपयोगिता को मापने का सही पैमाना नहीं हो सकता क्योंकि इसका स्वयं का मूल्य अस्थिर है । गणनावाचक दृष्टिकोण की ऐसी ही व्यावहारिक मान्यताओं के कारण आधुनिक अर्थशास्त्री इसकी आलोचना करते है एवं उपभोक्ता के व्यवहार की व्याख्या करने के लिए क्रमवाचक दृष्टिकोण पर आधारित तटस्थता वक्र या उदासीन वक्र विश्लेषण प्रस्तुत करते है।

3.7 शब्दावली

उपयोगिता
कुल उपयोगिता
सीमान्त उपयोगिता
उपयोगिता का गणनावाचक दृष्टिकोण
उपयोगिता का क्रमवाचक दृष्टिकोण
सीमान्त उपयोगिता हास नियम
सम सीमान्त उपयोगिता नियम
उपभोक्ता का संतुलन
मांग मांग तालिका मांग वक्र
मांग का नियम
आय प्रभाव
प्रतिस्थापन प्रभाव
निम्न वस्तुएँ
गिफिन वस्तुएँ गिफिन का विरोधाभास

3.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर 500 शब्दों में दीजिये ।

1. मांग का नियम क्या है? मांग के नियम के क्रियाशील होने के कारणों की व्याख्या कीजिये ।
2. उपयोगिता विश्लेषण के आधार पर उपभोक्ता के सन्तुलन की व्याख्या कीजिये ।
3. सीमान्त उपयोगिता हास नियम की परिभाषा एवं व्याख्या कीजिये ।
4. उपयोगिता विश्लेषण के गणनावाचक दृष्टिकोण का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिये ।
5. मांग के नियम को प्रतिपादित करते हुए उसकी व्याख्या कीजिये । इस नियम के अपवादों का भी उल्लेख कीजिये ।

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 150 शब्दों में दीजिये ।

1. कुल उपयोगिता एवं सीमान्त उपयोगिता से क्या तात्पर्य है?
2. उपयोगिता के गणनावाचक एवं क्रमवाचक दृष्टिकोण में अंतर स्पष्ट कीजिये ।
3. मांग में विस्तार एवं संकुचन से क्या आशय है ?
4. गिफिन के विरोधाभास पर टिप्पणी लिखिये ।
5. आय प्रभाव एवं प्रतिस्थापन प्रभाव को समझाइये ।

3.9 संदर्भ-ग्रन्थ

1. आहुजा, एच. एल.- उच्चतर आर्थिक सिद्धांत
2. झिंगन, एम.एल. - व्यष्टि अर्थशास्त्र
3. सेठ, एम.एल. - अर्थशास्त्र के सिद्धान्त
4. सुन्दरम एवं वैश्य- व्यष्टि अर्थशास्त्र

इकाई - 4

उपभोक्ता की सम्प्रभुता

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 उपभोक्ता की सम्प्रभुता की अवधारणा

4.3 उपभोक्ता की सम्प्रभुता की सीमाएँ

4.4 उपभोक्ता की सम्प्रभुता की वांछनीयता

4.5 सारांश

4.6 शब्दावली

4.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.8 संदर्भ - ग्रंथ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

1. उत्पादन संबंधी निर्णयों में उपभोक्ता के व्यवहार अर्थात उसकी पसंद या अधिमान की भूमिका के बारे में समझ सकेंगें ।
2. उपभोक्ता अपनी पसंद को किस प्रकार व्यक्त करता है यह जान सकेंगे ।
3. उपभोक्ता की सम्प्रभुता की अवधारणा की सीमाओं एवं इसकी वांछंनीयता की विवेचना कर सकेंगे ।

4.1 प्रस्तावना

इस इकाई में अर्थव्यवस्था में साधनों के आवण्टन में उपभोक्ता की पसंद एवं अधिमानों की भूमिका की विवेचना की जायेगी । पूंजीवादी स्वतंत्र अर्थव्यवस्था में कोई भी ऐसी ऐजेन्सी नहीं है जो यह बताये कि किस वस्तु का उत्पादन करना है । उत्पादनकर्त्ता, उपभोक्ताओं की रूचि, पसंद अथवा अधिमान, जो कीमत प्रणाली के माध्यम से बाजार में अभिव्यक्त होता है, के आधार पर निर्णय लेते हैं कि किस वस्तु का उत्पादन करना चाहिए । उपभोक्ता की रूचियों को नजर अंदाज कर के लिए गये उत्पादन के निर्णय से उत्पादनकर्ता को हानि की पूरी संभावना हैं क्योंकि उस उत्पादन बाजार से मांग नहीं होने अथवा कम मांग होने से बिक्री प्रभावित होगी । अत: उत्पादन संबंधी निर्णय में उपभोक्ता की रूचि सर्वोपरी होने के कारण ही उसे राजा कहा जाता है ।

4.2 उपभोक्ता की सम्प्रभुता अवधारणा

उपभोक्ता की सम्प्रभुता की अवधारणा पूंजीवादी अर्थव्यवस्था से संबंधित है । ऐसा माना जाता है कि पूंजीवाद के अन्तर्गत उपभोक्ता राजा होता है । वह अपनी मौद्रिक आय को अपनी रूचियों के अनुसार व्यय करने के लिए स्वतन्त्र होता है । जिस ढंग से उपभोक्ता अपनी मौद्रिक आय को व्यय करता है, उसी से उसके अधिमानो का प्रकटीकरण होता है । यही अधिमान अर्थव्यवस्था में उत्पादन के स्वरूप एवं उसकी मात्रा को नियमित एवं नियंत्रित करते हैं । वास्तव

में यह उपभोक्ता ही है जो विभिन्न वस्तुओ के प्रति अपनी पसंद, नापसंद, रूचि के आधार पर आर्थिक संसाधनों के वितरण को निर्देशित करता है ।

अर्थव्यवस्था में सम्पूर्ण उत्पादन उपभोक्ताओं की विभिन्न आवश्यकताओं एवं मांगों को पूरा करने के लिए किया जाता है । अत: उत्पादन संबंधी निर्णय लेने से पूर्व उत्पादनकर्त्ता के लिए यह आवश्यक है कि वह उपभोक्ता की आवश्यकताओं के स्वरूप का अध्ययन कर उनकी पसंद, रूचि या अधिमान से स्वयं को अवगत रखे । उपभोक्ता के अधिमानों की उपेक्षा कर उत्पादन संबंधी निर्णय लेने में इस बात की पूरी सम्भावना है कि उत्पादक ऐसी वस्तुओ का उत्पादन कर ले जिससे उपभोक्ताओं को सन्तुष्टि नहीं मिलती हैं । ऐसी दशा में उस वस्तु की बाजार में मांग नहीं होगी एवं उसकी वजह से अंतँत: उत्पादन बाजार में नहीं बिकेगा और उत्पादक को हानि होगी । इसी कारण उपभोक्ता एक स्वामी, राजा एवं सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न है जो समूची पूंजीवादी अर्थव्यवस्था पर शासन करता है ।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उपभोक्ता की पसंद, रूचि, अधिमान अथवा मांग का प्रकटीकरण कीमत प्रणाली के माध्यम से होता है । कीमत प्रणाली के अध्ययन एवं उसकी पूरी जानकारी से ही उत्पादक को उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं के स्वरूप की जानकारी प्राप्त होती है । दूसरे शब्दो में, उत्पादनकर्त्ता को यह ज्ञात होता है कि उपभोक्ता किस वस्तु की कितनी मांग कर रहा है एवं उसके लिए कितनी कीमत देने के लिए तैयार है । इस जानकारी को आधार बनाकर उत्पादनकर्त्ता अपने लिए निर्णय लेता है कि उसे कौनसी वस्तु कितनी मात्रा में उत्पादित करनी है ।

मानाकि दो वस्तुएँ X व Y है । किसी समय ऐसा होता है कि उपभोक्ता X की तुलना में Y को अधिक प्राथमिकता देने लगता है । परिणामत: X की मांग में कमी आयेगी एवं Y की मांग में बढ़ोतरी होने लगेगी । X वस्तु की मांग में कमी होने से उसकी कीमतें गिरने लगेंगी वहीं Y की कीमतें बढ़ने लगेगी । X व Y की मांग में परिवर्तन एवं उसके परिणामस्वरूप आये कीमत में परिवर्तन से उत्पादन के साधनों का X व Y के बीच पुनर्वितरण होगा । X की गिरती हुई कीमतों से X के उत्पादनकर्ता को हानि होगी लेकिन Y की कीमतें बढ़ने से Y के उत्पादनकर्ताओं के लाभ बढेंगे । ऐसी स्थिति में जो साधन X वस्तु के उत्पादन में लग रहे थे वे Y वस्तु के उत्पादन में लगेंगे ताकि Y की बढ़ी हुई मांग को पूरा किया जा सके ।

इस प्रकार कीमत संयन्त्र द्वारा प्रतिबिम्बित उपभोक्ता की पसंद एवं अधिमान न केवल उत्पादन की मात्रा एवं इसके स्वरूप को प्रभावित करते हैं, बल्कि समय-समय पर विभिन्न उधोग धन्धों मे उत्पादन-साधनो का पुनर्वितरण भी करते हैं ।

प्रत्येक निवेशक अपने निवेश से अधिकतम लाभ कमाना चाहता है इसलिए वह अपनी पूंजी को उस उद्योग में लगाना चाहेगा जिसमें उसे अधिकतम प्रतिफल मिले । इस प्रकार उद्योग का चुनाव करते समय निदेशक सामान्यत: कीमत प्रणाली से मार्गदर्शन प्राप्त करता है । अत: कहा जा सकता है कि चुनावों की स्वतन्त्रता के आधार पर उत्पादन क्रियाओं को संचालित करने की इस शक्ति को ही उपभोक्ता की सार्वभौमिकता या सम्प्रभुता कहते हैं । आर्थिक चुनावों के क्षेत्रों मे उपभोक्ता की स्थिति मतदाता के समान है । आर्थिक चुनाव में उपभोक्ता उतने ही मत दे सकता है जितनी मुद्रा व्यय करने के लिये उसके पास हे । उपभोक्ता अपनी मुद्रा को आवश्यक या विलासिता की वस्तु अच्छी या खराब वस्तु पर खर्च करता हैं तो ऐसी ही वस्तुओं का उत्पादन

किया जायेगा । वास्तव में, उपभोक्ता का चुनाव ही, चाहे वह मूर्खतापूर्ण हो या विवेकपूर्ण, हमारी आर्थिक क्रियाओं का संचालन करता है ।

अत: निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में कीमत संयंत्र (प्रणाली) द्वारा प्रतिबिम्बित यह उपभोक्ता का चयन ही है जो उत्पादन के स्वरूप एवं उसकी मात्रा को निर्धारित करता हैं । इसी कारण उपभोक्ता को राजा कहा जाता है ।

बोध प्रश्न - 1

1. उपभोक्ता की सम्प्रभुता की अवधारणा समझाइए

4.3 उपभोक्ता की सम्प्रभुता की सीमाए

सिद्धान्तत: पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता सर्वोपरी होता है परन्तु व्यवहार में कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं उत्पन्न हो जाती हैं जो उपभोक्ता की चयन की स्वतन्त्रता को सीमित कर देती हैं । उपभोक्ता की स्वतन्त्रता को सीमित करने वाली दशाएँ निम्नलिखित हैं-

1. उत्पादक शक्तियाँ

उपभोक्ता की प्रभुता अर्थव्यवस्था में उपलब्ध संसाधनों से सीमित होती है । यदि अर्थव्यवस्था में किसी वस्तु विशेष के निर्माण के लिए आवश्यक संसाधनों की कमी है तो उस मात्रा तक उपभोक्ता सीमित हो जाती है । उपभोक्ता निश्यय ही उस वस्तु को चाहता है परन्तु अर्थव्यवस्था में साधनों की अनुपलब्धता से उस वस्तु का उत्पादन नहीं हो सकता । विकसित देशों की तुलना में पिछड़े देशों मे इस कारण उपभोक्ता की प्रभुता अधिक सीमित होती है ।

2. तकनीकी जानकारी की अवस्था

अर्थव्यवस्था में वस्तुओं का उत्पादन उपलब्ध तकनीकी ज्ञान पर निर्भर करता है । उपलब्ध तकनीकी से जिन वस्तुओं का उत्पादन किया जा सकता है उनसे ही उपभोक्ता को सन्तुष्ट रहना पड़ेगा । दूसरे शब्दों में, उपभोक्ता को ऐसी वस्तुएँ नहीं प्राप्त हो सकती जिसका वर्तमान तकनीक से नहीं किया जा सकता ।

3. क्रय शक्ति

उपभोक्ता की क्रयशक्ति, जो उसकी मौद्रिक आय से निर्धारित होती है, उसके द्वारा खरीदी जाने वाली वस्तुओं को सीमित कर देती है । उपभोक्ता अपनी सीमित मौद्रिक आय से विभिन्न वस्तुओं की असीमित मात्रा नही खरीद सकता अत: इस सीमा तक उसकी प्रभुता सीमित हो जाती है । इस संदर्भ में निर्धन उपभोक्ता की, धनी उपभोक्ता की तुलना में चयन स्वतन्त्रता बहुत अधिक सीमित होती है ।

4. राज्य द्वारा प्रतिबन्ध

राज्य द्वारा यदि किसी प्रकार का उपभोग पर प्रतिबन्ध लगाया जाता है, तो उस सीमा तक उपभोक्ता की प्रभुता सीमित हो जाती है क्योंकि राज्य द्वारा लगाये गये प्रतिबन्ध उपभोक्ता की वस्तुओं का चुनाव करने की स्वतन्त्रता का हनन करते है । उदाहरणार्थ सार्वजनिक स्वास्थय के लिए हानिकारक नशीले पदार्थो के उत्पादन व बिक्री पर राज्य द्वारा प्रतिबन्ध लगाये जाने पर उपभोक्ता की प्रभुता कम हो जाती है ।

5. कराधान

राज्य द्वारा लगाये जाने वाले विभिन्न कर उपभोक्ता की क्रय शक्ति को कम करते हैं जिसके कारण उपभोग की स्वतन्त्रता भी सीमित हो जाती है ।

6. व्यावसायिक एकाधिकार

बाजार के प्रतियोगी होने की स्थिति में उपभोक्ता अधिक उपभोग की स्वतन्त्रता का भोग करता है क्योंकि प्रतियोगी बाजार में बहुत से उत्पादनकर्ता होते हैं जो विभिन्न किस्म की वस्तुओं का उत्पादन करते हैं । विभिन्न वस्तुओं की उपलब्धता उपभोक्ता के चयन क्षेत्र का विस्तार करती हैं । इसके विपरीत प्रतियोगिता के अभाव में अर्थात एकाधिकार की स्थिति में उपभोक्ता की उपभोग स्वतन्त्रता नगन्य हो जाती है । एकाधिकारी द्वारा जो कुछ भी बेचा जाता है, उपभोक्ता को उसे स्वीकार करना पड़ता है और साथ ही मुँहमांगी कीमत भी देनी पड़ती है । इस प्रकार उत्पादन के किसी भी स्तर पर पाया जाने वाला एकाधिकार उपभोक्ताओं की उपभोग क्षमता पर कुठाराघात करता है ।

7. फैशन तथा रिवाज

उपभोक्ताओं द्वारा की जाने वाली मांग उस समय प्रचलित फैशन तथा निवाज पर भी निर्भर करती है । सामान्य व्यक्ति समाज में स्वीकार्य रीति-रिवाज एवं फैशन के अनुसार ही वस्तुओं का चयन करता है, भले ही उसे वे वस्तुएँ पसन्द न हों । उसमें प्रचलित रिवाजों के विरूद्ध जाने का साहस नहीं होता । अत: इस दृष्टिकोण से समाज मे प्रचलित रीति रिवाज एवं फैशन उपभोक्ताओं की प्रभुता को सीमित कर देते !

8. प्रमापीकृत उत्पादन

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में सामान्यत: प्रमापीकृत वस्तुओं का व्यापक पैमाने पर उत्पादन होता है जिसमें व्यक्तिगत स्वादों की उपेक्षा की जाती है । ऐसी स्थिति में उपभोक्ताओं के लिए कोई विशेष चयन की स्वतन्त्रता नहीं रहती ।

9. विज्ञापन

पूंजीवादी एवं औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशों में विज्ञापन एवं विक्रय के विभिन्न तौर तरीके, उपभोक्ता के चयन को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । प्रतियोगी उत्पादकों द्वारा प्रसार के विभिन्न माध्यमों का उपयोग अपनी वस्तुओं के प्रचार के लिये किया जाता है । निरन्तर व बार-बार किये जाने वाला उच्चस्तरीय प्रचार अप्रत्यक्षत: उपभोक्ता की चुनाव स्वतन्त्रता एवं प्रभुता को सीमित करता है । वस्तुत: आज के तकनीकी युग में प्रत्यक्ष उत्पादन का स्थान परोक्ष उत्पादन ने ले लिया है । आधुनिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता की मांग पहले नहीं होती बल्कि पहले वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है और फिर विज्ञापन द्वारा वस्तु की मांग उत्पन्न कर दी जाती है ।

10. राशनिंग

युद्धकाल या ऐसी ही किसी संकट की अवस्था में मांग व पूर्ति के संतुलन को ठीक करने हेतु पूंजीवादी देशों में भी आवश्यक वस्तुओं की राशनिंग कर दी जाती है । राशनिंग के अंतर्गत प्रत्येक नागरिक को आवश्यक वस्तुओं की निश्चित मात्रा, निर्धारित अवधि के उपरान्त दी जाती है । निर्धारित कोटे से अधिक खरीदने की किसी भी नागरिक को अनुमति नहीं दी जाती । परिणामत: उपभोक्ता की प्रभुता का गंभीर रूप से हनन होता है ।

11. उपभोक्ताओं की अज्ञानता

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का यह मानना था कि उपभोक्ता को बाजार का पूर्ण ज्ञान होता है लेकिन वास्तविकता में उपभोक्ता को बाजार सम्बन्धी बहुत कम जानकारी होती है । वस्तुओं की गुणवत्ता एवं मूल्य सम्बन्धी अनभिज्ञता के कारण विवेकपूर्ण निर्णय संभव नहीं होता, अत: उपभोक्ता की सम्प्रभुता सीमित हो जाती है ।

बोध प्रश्न -2

1. उपभोक्ता की शक्तियों को सीमित करने में राशनिंग की भूमिका बताइए ।
2. उपभोक्ता की शक्तियाँ विज्ञापन द्वारा कैसे प्रभावित होती हैं? समझाइए

4.4 उपभोक्ता की प्रभुता की वांछनीयता

उपभोक्ता को चयन की कितनी स्वतंत्रता होनी चाहिये इस विषय पर अर्थशास्त्रियों में गंभीर मतभेद है । अर्थशास्त्रियों का एक सम्प्रदाय उपभोक्ताओं को वस्तुओं के चुनाव मे पूर्ण स्वतंत्रता की बात का समर्थन करता है । उनकी राय में राज्य को उपभोक्ताओं के उपभोग संबंधी निर्णयों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये । यह सत्य है कि वस्तुओं का चुनाव करते समय उपभोक्ता कई गलतियाँ कर सकता है परन्तु इन्हें आवश्यक बुराई मानते हुए अधिक महत्व नहीं दिया जाना चाहिये । इसके विपरीत उपभोक्ता की संप्रभुता की अवधारणा का विरोध करने वाले अर्थशास्त्रियों का मानना है कि उपभोक्ताओं को परिहार्य गलतियाँ करने देने का कोई औचित्य नहीं है । उपभोक्ता को ऐसी गलतियों से बचाने हेतु उसका समुचित निर्देशन एवं मार्गदर्शन किया जाना चाहिये । उपभोक्ता की संप्रभुता का विरोध करने वाले मुख्यत: समाजवादी अर्थशास्त्री हैं । वे उपभोक्ताओं को चयन संबंधी पूर्ण स्वतंत्रता देने के विरूद्ध हैं उन्होंने उपभोक्ता की चुनाव स्वतंत्रता या उपभोक्ता की संप्रभुता के विरूद्ध निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये-

1. पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता की संप्रभुता की धारणा एक भ्रम है । वास्तव में एक औसत उपभोक्ता को पूंजीवादी समाज में चयन की कोई स्वतंत्रता नहीं होती । पूंजीवादी समाज में भयंकर आर्थिक असमानताएँ पायी जाती हैं । धनी वर्ग के हाथों में सम्पति का केन्द्रीकरण होता है । वे तो चयन की स्वतंत्रता का भोग करते हैं परन्तु बहुसंख्यक निर्धन वर्ग के लिए क्रयशक्ति के अभाव में चयन की कोई स्वतंत्रता नहीं होती । उनकी इच्छाएँ एवं आवश्यकताएँ बहुत होती हैं परन्तु क्रयशक्ति के अभाव में व उन्हें बाजार में व्यक्त नहीं कर पाते । ऐसी स्थिति में उत्पादनकर्त्ता उन्ही वस्तुओं का उत्पादन करेंगे जिनकी मांग धनी वर्ग करता है ।
2. समाजवादियों का दूसरा तर्क यह है कि उपभोक्ता को उपभोग करने की यदि पूर्ण स्वतंत्रता दे दी जाये तो देश के आर्थिक साधनों का समुचित एवं मितव्ययतापूर्ण उपयोग नहीं कर सकेगा । इसका कारण यह है कि उपभोक्ता के चयन प्राय: अयुक्तिक (Irrahionel) होते है । साधनों का आवंटन आवश्यक के बजाय अनावश्यक या कम जरूरी वस्तुओं के पक्ष में हो सकता है ।
3. समाजवादी लेखकों की राय में यह आवश्यक है कि सार्वजनिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाली वस्तुओं जैसे शराब या अन्य नशीली वस्तुओं के हानिकारक प्रभावों से नागरिकों को बचाया जाये । इन वस्तुओं के मामलों में उपभोग-स्वतंत्रता देना उपभोक्ताओं के लिए खतरनाक सिद्ध होगा ।

4.5 सारांश

उपभोक्ता की संप्रभुता की धारणा को लेकर अर्थशास्त्रियों में मतभेद है । प्रतिष्ठित एवं नव प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री जो पूंजीवादी व्यवस्था के समर्थक हैं उपभोक्ता को उपभोग हेतु वस्तुओं के चयन में अधिकतम स्वतंत्रता देने के पक्षधर हैं । इसके विपरीत समाजवादी अर्थशास्त्री उपभोक्ता के वस्तु चयन अधिकार को सीमित रखना चाहते हैं क्योंकि उनकी राय में उपभोक्ता कई कारणों से युक्तियुक्त निर्णय लेने में असमर्थ हैं । व्यावहारिक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि उपभोक्ता सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न नहीं हो सकता परन्तु उत्पादन सम्बन्धी निर्णयों में उसकी इच्छा को नजर अंदाज भी नहीं किया जा सकता है ।

4.6 शब्दावली

उपभोक्ता की संप्रभुता, कीमत प्रणाली

4.7 अभ्यासार्थ - प्रश्न

निम्न प्रश्नों के उत्तर 15० शब्दों में दीजिये ।

1. उपभोक्ता की संप्रभुता से क्या आशय हैं?
2. "पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत उपभोक्ता राजा होता है । ' इस कथन की व्याख्या कीजिये ।
3. उपभोक्ता की चयन स्वतंत्रता की सीमाओं का उल्लेख कीजिये ।

4.8 संदर्भ ग्रंथ

एल. सेठ अर्थ शास्त्र के सिद्धान्त

इकाई - 5

उदासीनता वक्र : विशेषताएं, एवं उपभोक्ता का सन्तुलन (Indifference Curve : Characteristics and Consumer's Equilibrium)

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 उदासीनता वक्र

5.2.1 परिभाषा एवं अर्थ

5.2.2 उदासीनता अनुसूची

5.2.3 उदासीनता मानचित्र

5.3 उदासीनता वक्र विश्लेषण की मान्यताएं

5.4 सीमान्त प्रतिस्थापन की दर अवधारणा

5.5 ह्रासमान सीमान्त प्रतिस्थापन दर का सिद्धान्त

5.6 उदासीनता वक्रों की विशेषताएँ

5.7 कीमत रेखा या बजट रेखा

5.7.1 केवल उपभोक्ता की आय में परिवर्तन का प्रभाव

5.7.2 केवल वस्तु X की कीमत में परिवर्तन का प्रभाव

5.7.3 केवल वस्तु Y की कीमत में परिवर्तन का प्रभाव

5.8 उपभोक्ता का संतुलन

5.8.1 उपभोक्ता सन्तुलन की शर्ते

5.8.2 उपभोक्ता संतुलन की शती की व्याख्या

5.9 सारांश

5.10 संदर्भ ग्रंथ

5.10.1 निम्न प्रश्नों के उत्तर 500 शब्दों में दीजिये

5.10.2 निम्न प्रश्नों के उत्तर 15० शब्दों में दीजिये

5.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

(1) उदासीनता वक्र का अर्थ, मान्यताएं एवं इनकी उपयोगिता समझ पायेंगे ।

(2) उस्मान सीमान्त प्रतिस्थापन दर में सिद्धान्त की विवेचना कर सकेंगें ।

(3) कीमत रेखा एवं उपभोक्ता संतुलन की जानकारी प्राप्त कर सकेंगें ।

5.1 प्रस्तावना

हिक्स एवं ऐलन नामक अर्थशास्त्रियों ने उदासीनता वक्र दृष्टिकोण प्रस्तुत किया । यह विचारधारा पयोगिता विश्लेषण की परिमाणात्मक उपयोगिता की मान्यता के स्थान पर क्रम सूचक दृष्टिकोण को प्रस्तुत लती है । इस दृष्टिकोण का विकास तथा मुख्य आर्थिक विचारधारा के साथ इसका एकीकरण 1930 की आर्थिक दी तक नगण्य था परन्तु 1934 में प्रो. ऐलन तथा ने "मूल्य सिद्धान्त का पुनःनिर्माण नामक लेख में उदासीनता वक्र विश्लेषण को वैज्ञानिक रूप प्रदान किया' । प्रो. हिक्स ने 1930 में अपनी पुस्तक "मूल्य एवं पूंजी" । उदासीनता वक्रों का विस्तृत प्रयोग किया । तत्पश्चात् हिक्स ने अपनी पुस्त "Rivision of Demand Theory" । उदासीनता वक्रों का विस्तृत प्रयोग किया । हिक्स उपभोक्ता के व्यवहार के अध्ययन का आधार क्रमसूचक प्राथमिकता है जिसके अनुसार उपभोक्ता के विभिन्न सन्तुष्टि स्तरों की परिमाणात्मक अन्तरों से स्पष्ट नहीं किया जा सकता है बल्कि उपभोक्ता अपने वरीयता क्रम को ध्यान में रखकर विभिन्न संयोगों से प्राप्त सन्तुष्टि स्तरों को क्रमवाचक संखयाएं (Ordinal Number) देकर एक क्रम बनाता है ये संख्याऐं केवल यह स्पष्ट करती है कि उपभोक्ता किस संयोग से कम सन्तुष्टि प्राप्त कर रहा है और किस संयोग से अधिक । किन्तु इन क्रमवाचक संख्याओं से सन्तुष्टि स्तरों का अन्तर मात्रात्मक रूप में ज्ञात नहीं किया जा सकता है ।

वस्तुत: प्रो. हिक्स एवं ऐलन से पूर्व कुछ अर्थशास्त्री उदासीनता वक्र विश्लेषण की मूल विचारधारा का प्रतिपादन कर चुके थे सर्वप्रथम प्रो. राजवर्थ ने 1881 में स्पर्धात्मक एवं पूरक वस्तुओं की व्याख्या के लिए उदासीनता वक्र का विचार प्रस्तुत किया था । तदुपरान्त प्रो. पैरेटों ने इस विश्लेषण के लिए क्रम वाचक संख्याओं की मान्यता का विकास किया । इसी क्रम में रूस के अर्थशास्त्री प्रो. स्लटस्की का नाम आता है किन्तु प्रो. हिक्स व ऐलन ने ही उदासीनता वक्र विश्लेषण को वैज्ञानिक एवं क्रमबद्ध आधार देकर पूर्णरूप से विकसित किया ।

5.2 उदासीनता वक्र

उदासीनता वक्र वस्तुओं के विभिन्न संयोगों से सम्बन्धित उपभोक्ता के व्यवहार की व्याख्या करता है । उपभोक्ता का व्यवहार उसकी उदासीनता अनुसूची से प्रदर्शित किया जाता है उपभोक्ता की समान संतुष्टि देने वाली दो वस्तुओं के विभिन्न संयोग उदासीनता अनुसूची के अंग होते है । इसी सूची को ग्राफ के रूप में प्रदर्शित करके उदासीनता वक्र प्राप्त किया जाता है । वक्रों की परिभाषा अलग-अलग अर्थशास्त्रियों में अपने ढंग से अलग-अलग दी है ।

5.2.1 परिभाषा एवं अर्थ -

प्रो. जें. के. सिमथ के अनुसार यह विभिन्न वस्तुओं के उन संयोगों को प्रदर्शित करने वाले बिन्दुओं का मार्ग है जिनके बीच व्यक्ति उदासीन रहता है इसलिए इसे उदासीनता वक्र कहतें है । चूंकि उदासीनता वक्र के प्रत्येक बिंदु पर प्रदर्शित दो वस्तुओं के संयोगों से समान संतुष्टि मिलती है । इसलिए इसे समान संतुष्टि वक्र भी कहते है । उदासीनता वक्र पर स्थिति प्रत्येक बिन्दु वस्तुओं के ऐसे संयोगों को प्रदर्शित करता है जिससे उपभोक्ता को समान संतुष्टि मिलती है । फलस्वरूप उपभोक्ता उन संयोगों में चुनाव के सम्बन्ध में तटस्थ रहता है । वक्र पर व्यक्त

किया गया कोई एक संयोग उपभोक्ता के लिए उतना ही महत्व रखता हैं जितना कि उस वक्र पर स्थित अन्य कोई संयोग ।

प्रो. बोल्डिंग के अनुसार, "समान प्राथमिक क्रम दर्शाने वाली रेखाएं उदासीनता वक्र कहलाती है क्योंकि वे वस्तुओं के ऐस संयोगों को बताती है जो एक दूसरे से न तो अच्छे होते है और न बुरे।

प्रो. फर्ग्यूसन के अनुसार "एक उदासीनता वक्र निर्दिष्ट बजटों या वस्तुओं के संयोगों का ऐसा बिन्दु पथ है । जिससे प्रत्येक से उपभोक्ता को समान कुल उपयोगिता प्राप्त होते है या जिनके प्रति उपभोक्ता उदासीन है' ' लेफ्टविच में मत में, "यदि हम दो वस्तुओं (x तथा y) के विभिन्न संयोग इस प्रकार लें कि उनमें से सभी से उपभोक्ता को वहीं कुल उपयोगिता प्राप्त हो तो उपभोक्ता इन सभी संयोगों के प्रति समभाव प्रदर्शित करेगा । अर्थात उदासीनता वक्र एक समान ऊचाई वाली या कूदूर रेखा है । है जिसके सभी बिन्दुओं पर उपभोक्ता को एक ही सन्तुष्टि का स्तर प्राप्त होता है अत: वह इन संयोगों के चुनाव के सम्बन्ध में उदासीन रहता है ।

5.2.2 उदासीनता अनुसूची

उदासीनता वक्र दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों से सम्बन्धित उपभोक्ता के व्यवहार की व्याख्या करता है । उपभोक्ता का व्यवहार उसकी उदासीनता अनुसूची से प्रदर्शित किया जाता है । उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि देने वाली वस्तुओं के विभिन्न संयोग उदासीनता अनुसूची के अंग होते है इसी उदासीनता को ग्राफ के रूप में प्रदर्शित करके उदासीनता वक्र प्राप्त किया जाता है ।

वाटसन के शब्दों में, ' 'उदासीनता अनुसूची दो वस्तुओं के संयोगो की अनुसूची है जिसको इस प्रकार व्यस्थित किया जाता है कि उपभोक्ता उन संयोगों के प्रति उदासीनता होता है और किसी एक को अन्य की तुलना में वरीयता नहीं देता । "

प्रो. मेयर्स के अनुसार उदासीनता अनुसूची वह अनुसूची है जो कि दो वस्तुओं के ऐसे विभिन्न संयोगों को बताती है जिनसे किसी व्यक्ति को समान सन्तोष प्राप्त होता है यदि इस तटस्थता अनुसूची को एक रेखा के रूप में प्रदर्शित किया जाए तो तटस्थता रेख प्राप्त हो जाती हैं। "

इस प्रकार उदासीनता वक्र रेखा का प्रत्येक बिन्दु दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगो के साथ साथ सन्तुष्टि के समान स्तर को बताता है ।

सारणी 5.1 - उदासीनता अनुसूची

संयोग	वस्तु की इकाई X	वस्तु
A	1	25
B	2	20
C	3	16
D	4	13
E	5	11
F	6	10

उपरोक्त विचारधारा के एक काल्पनिक अनुसूची के आधार पर स्पष्ट किया गया हैं -

उदासीनता अनुसूची में उपभोक्ता के छः संयोगों को दिखाया गया है जिनके मध्य उपभोक्ता उदासीन है । चाहे वह संयोग A को चुने या किसी अन्य B,C,D,E अथवा F को संयोग उसे समान सन्तुष्टि प्रदान करते हैं । यदि इस उदासीनता अनुसूची का एक रेखाचित्र में निरूपित किया जाए तो हमें निम्न चित्रानुसार उदासीनता वक्र प्राप्त होता हैं ।

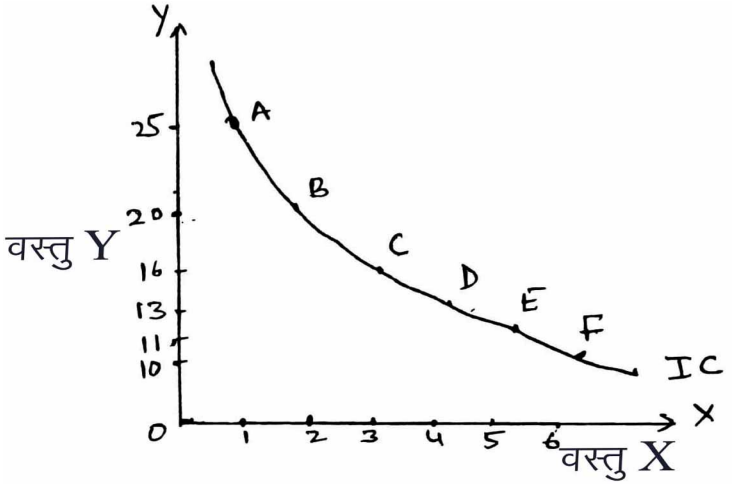

चित्र 5. 1 उदासीनता वक्र

उपरोक्त चित्र 5.1 में IC एक उदासीनता वक्र है यह वस्तु X एवं वस्तु Y ऐसे विभिन्न संयोगों का बिन्दु पथ है जो उपभोक्ता को समान संतुष्टि देते है । अनुसूची में उपभोक्ता के पास वस्तु X की 1 ईकाई तथा वस्तु Y की 25 इकाई उपलब्ध है तो संयोग 4 बनाती हैं, अन्य संयोग B, संयोग C, संयोग D, संयोग E तथा संयोग F उपभोक्ता को प्रथम संयोग A के समान संतुष्टि देते है ऐसी स्थिति में उपभोक्ता इन संयोगों के प्रति तटस्थ या उदासीन है ।

5.2.3 उदासीनता मानचित्र

उदासीनता वक्र सन्तुष्टि के एक निश्चित स्तर को बताता है सन्तुष्टि में परिवर्तन वक्र की स्थिति में परिवर्तन उत्पन्न करता है । सन्तुष्टि स्तर में परिवर्तन होने पर उदासीनता रेखा अपनी स्थिति से बाये या दायें स्थानान्तरित होती है विभिन्न सन्तुष्टि स्तरों सूचक विभिन्न उदासीनता वक्रों से मिलकर उदासीनता मानचित्र बनता है ।

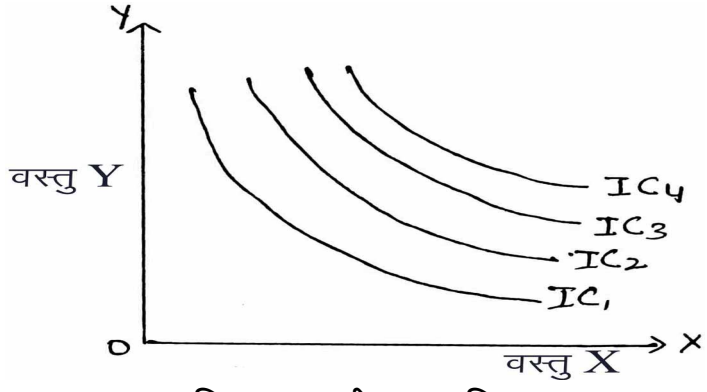

चित्र 5.2 उदासीनता मानचित्र

चित्र 5.2 में चार उदासीनता वक्र IC1, IC2, IC3, IC4 प्रदर्शित किये गये है IC4 उच्चतम उदासीनता वक्र है जो अधिकतम सन्तुष्टि को बताता है तथा ICE निम्नतम सन्तुष्टि स्तर को प्रदर्शित करता है इस आधार पर स्पष्ट है कि उंचा उदासीनता वक्र सदैव ऊँचे सन्तुष्टि स्तर को बताता है ।

(बोध प्रश्न) - 1

(i) उदासीनता वक्र में समझाइए

(ii) उदासीनता मानचित्र की व्याख्या कीजिए

5.3 उदासीनता वक्र विश्लेषण की मान्यताएँ

उदासीनता वक्र उपभोक्ता के अधिमानों के सम्बन्ध में कुछ मान्यताओं पर आधारित होते हैं । ये मान्यताएं इस प्रकार होती हैं -

(1) उपभोक्ता का विवेकपूर्ण व्यवहार- उपभोक्ता एक विवेकशील प्राणी है जो अपने सीमित साधनों की सहायता से अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने का प्रयास करता है । वह अनेक उपलब्ध संयोगों मे से उस संयोग को चुनता है जो उसे अधिकतम सन्तुष्टि देता है ।

(2) क्रमवाचक दृष्टिकोण - उदासीनता वक्र विश्लेषण इस मान्यता पर आधारित है कि उपभोक्ता संयोगों से प्राप्त संतुष्टि को एक वरीयता क्रम प्रदान कर सकता है सन्तुष्टि एक मानचित्र वृत्ति है जिसको मापना असम्भव हैं !

(3) उपभोक्ता का संगत व्यवहार - इस मान्यता के अनुसार यदि उपभोक्ता उपभोग के लिए उपलब्ध दो संयोग A और B में उदासीन है तथा संयोग B तथा संयोग C में भी उदासीन है तो वह संयोग A और संयोग C में भी उदासीन होगा ।

(4) घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थान दर - इस मान्यता के अनुसार उपभोक्ता यदि उपभोक्ता की एक वस्तु की मात्रा बढाता चला जाता है तो प्रत्येक अतिरिक्त इकाई के बदले वह दूसरी वस्तु की कम मात्रा का त्याग करने को तैयार होता है ।

(5) वस्तु की कीमतें, उपभोक्ता की आदत, रूचि एवं आय में कोई परिवर्तन नहीं होता ।

(6) दुर्लभ क्रम बद्धता - यह मान्यता यह बताती है कि उपभोक्ता दों संयोगों के मध्य उदासीन हो सकता है किन्तु प्राप्त संयोगों में से एक संयोग को अन्य की तुलना में नहीं चुन सकता है ।

(7) सकर्मता की मान्यता - इसका अभिप्राय यह है कि यदि एक परिस्थिति में उपभोक्ता ने संयोग A को संयोग B की तुलना में चुना है तथा संयोग B को संयोग में चुना है तो निश्चित रूप से C की तुलना में को चुनेगा ।

(8) वस्तुएँ एकरूप तथा विभाज्यनीय होती है ।

5.4 सीमान्त प्रतिस्थापन दर अवधारणा

सीमान्त प्रतिस्थापन की दर यह बताती है कि जब किसी उपभोक्ता के पास दो वस्तुएँ हो तो वह एक वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु को किस दर पर त्यागने या लेने को तैयार होता है । जिससे उपभोक्ता का कुल सन्तुष्टि स्तर समान बना रहे । उदासीनता वक्र विश्लेषण का यह एक महत्वपूर्ण उपकरण है ।

लेफ्टविच के शब्दों में "X की Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर (MRSxy) वस्तु Y की वह मात्रा है जिसका वस्तु x की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई को प्राप्त करने के लिए त्याग किया जायेगा। "

उदासीन अनुसूची की सहायता से सीमान्त प्रतिस्थापन की दर अवधारणा को निम्न प्रकार समझाया जा सकता है

सारणी 5.2 प्रतिस्थापन की सीमान्त दर

संयोग	वस्तु X	वस्तु Y	सीमान्त प्रतिस्थापन की दर (X की Y के लिए)
A	1	20	-
B	2	16	4
C	3	13	3
D	4	11	2
E	5	10	1

उपर्युक्त उदासीन अनुसूची में प्रारम्भ में संयोग A में उपभोक्ता के पास वस्तु X की एक इकाई और वस्तु Y की बीस इकाईया हैं अब वह उपभोक्ता वस्तु X की एक अतिरिक्त इकाई प्राप्त करने के लिए वस्तु Y की चार इकाईयां त्यागने को तैयार होता है अर्थात वह संयोग A के बजाय संयोग B को प्राप्त करने के लिए वस्तु X की एक इकाई के बदले वस्तु Y की चार ईकाइयां दे देता है ऐसा करने में उसकी सन्तुष्टि स्तर में कोई परिवर्तन नहीं होता है अर्थात इस अवस्था में वस्तु Y को वस्तु X के लिए प्रतिस्थापन करने की सीमान्त दर चार है ।

सारणी 5.2 में जब उपभोक्ता संयोग B से C पर आता है तो वस्तु Y की एक अतिरिक्त इकाई के लिए वस्तु Y की तीन इकाइयां त्यागने को तैयार होता है अत: प्रतिस्थापन की सीमान्त दर तीन है इसी प्रकार जब संयोग C से D तथा Dसे E को प्राप्त होता है तो प्रतिस्थापन की सीमान्त दर क्रमश दो और एक है अर्थात वस्तु X की वस्तु Y के लिए प्रतिस्थापन दर घट रही है इस आधार पर स्पष्ट है कि सीमान्त प्रतिस्थापन की दर घटती हुई होती है जो की तटस्थता वक्र के ढाल को बताती है ऐसी स्थिति में वह मूल बिन्दु के उन्नतोदर होता है । अब प्रश्न यह है कि सीमान्त प्रतिस्थापन की दर को उदासीनता वक्र के किसी बिन्दु पर कैसे जाना तथा मापा जाय? इसे निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट रूप से समझाया जा सकता है ।

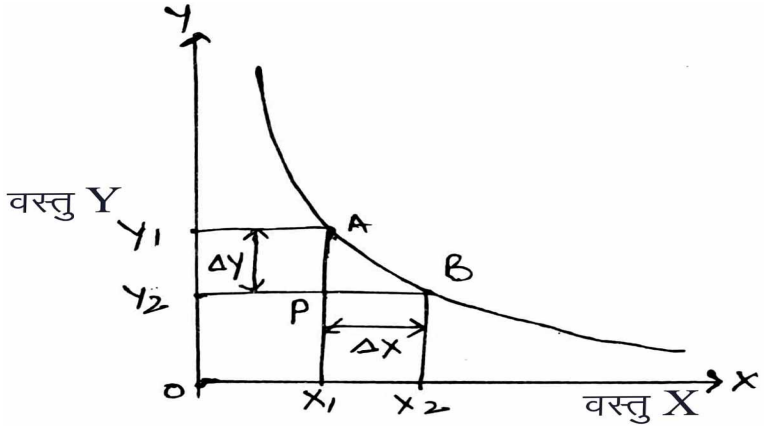

चित्र 5.3 सीमांत प्रतिस्थापना दर का निर्धारण

चित्र 5.3 मे उदासीनता वक्र IC पर दो संयोग A तथा B प्रदर्शित किये गये है दोनों संयोग एक ही उदासीनता वक्र होने के कारण समान संतुष्टि स्तर को दर्शाते है उपभोक्ता बिन्दु A से B तक पहुंचने के लिए वस्तु X की X इकाई प्राप्त करते हुए वस्तु Y की Y इकाइयों का परित्याग कर रहा है ! Y वस्तु की कमी Y तथा X वस्तु की वृद्धि +X. X की Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर -Y : X प्रदर्शित करती है ।

चित्र मे

MRSxy=AP/PB

अर्थात MRSxy =-Y / X (ऋणात्मक चिन्ह घटती सीमांत प्रतिस्थापना दर को बतलाता है !)

यदि दोनों बिन्दु A तथा B आपस में उदासीनता वक्र पर बहुत निकट हो तब A तथा B बिन्दुओं को मिलाती है यह स्पर्श रेखा RS चित्र 5.3 में अक्ष के साथ कोण बनाती है ।

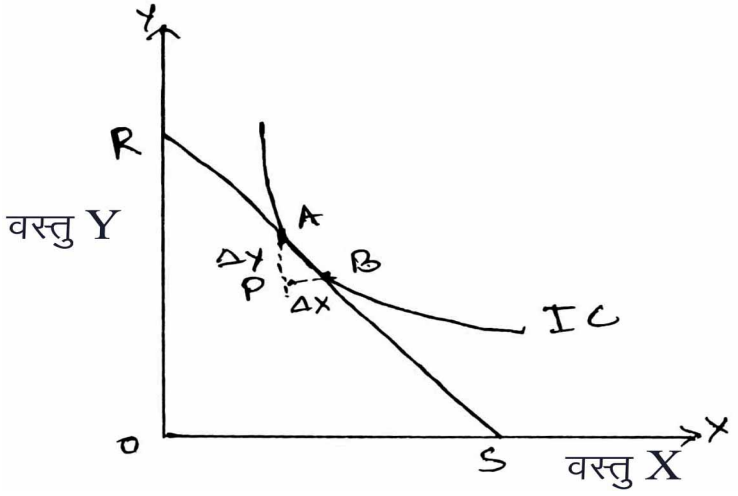

चित्र 5.4 : सीमान्त प्रतिस्थापन दर का निर्धारण

जैसा कि रेखाचित्र 5.3 में दिखाया गया है समकोण त्रिभुज APB में AB/PB, कोण ABP के स्पर्शज्या के कोण के बराबर है इसलिए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है

MRSxy = AP/PB = Y /X = कोण ABP का स्पर्शज्या

चित्र 5.3 में कोण ABP = कोण RSO

अत: MRSxy = कोण RSO का स्पर्शज्या

परन्तु कोण RSO का स्पर्शज्या OR/OS के बराबर है ।

कोण RSO का स्पर्शज्या उदासीन वक्र के बिन्दु A अथवा B पर खींची गई स्पर्श रेखा RS के ढाल के बराबर है इसलिए यह स्पष्ट है कि

MRSxy = कोण RSO का स्पर्शज्या = बिन्दु A पर अथवा B पर उदासीनता वक्र का ढाल = OR/OS उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि यदि हमें उदासीनता वक्र के किसी बिन्दु पर प्रतिस्थापन की सीमान्त दर ज्ञात करनी हो तो हम ऐसे उदासीनता वक्र के उस बिन्दु पर स्पर्श रेखा खींचकर उसकी ढाल का माप करके कर सकते है और यह ढाल उस २यर्श रेखा के प्र अक्ष के साथ वाले कोण के स्पर्शज्या द्वारा मापी जाती है ।

5.5 ह्रासमान सीमान्त प्रतिस्थापन दर का सिद्धान्त

सीमान्त प्रतिस्थापन दर के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि जब. किसी एक वस्तु की मात्रा अधिक प्रयोग कीया जाए तो उपभोक्ता इस वस्तु को प्राप्त करने के लिए अन्य दूसरी वस्तु की घटती मात्रा ही त्यागने के लिए तैयार होगा । ऐसा इस कारण होता है कि जैसे जैसे किसी वस्तु की उपभोग मात्रा में वृद्धि उपभोक्ता की उस वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा कम प्रबल होती जाएगी । अर्थशास्त्र की भाषा में इस उपभोग व्यवहार या मनोवृति को ह्रासमान की सीमांत प्रतिस्थापन दर का सिद्धान्त कहते है । पूर्व अध्याय में मार्शल द्वारा प्रस्तुत मांग के उपयोगिता विश्लेषण मे जिस विचार को ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता का नियम व्यक्त करता है उसी विचार को हिक्स द्वारा प्रस्तुत उदासीनता वक्र विश्लेषण में दासमान सीमान्त प्रतिस्थापन दर का सिद्धान्त स्पष्ट करता है । इसे निम्न रेखा चित्र 5.5 में प्रदर्शित किया गया है ।

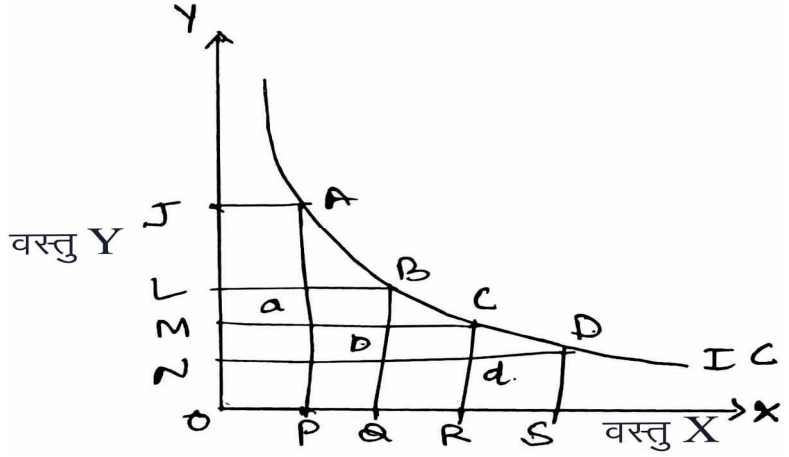

चित्र 5.5 : ह्रासमान सीमान्त प्रतिस्थापन की दर सिद्धान्त

उपरोक्त चित्र 5.4 में स्पष्ट है कि जब उपभोक्ता बिन्दु A से बिन्दु B पर आता है तो ab (अर्थात X)वस्तु Xकी मात्रा प्राप्त करने के लिए वह वस्तु Y की Aa (अर्थात Y)वस्तु Y की मात्रा परित्याग करता है अर्थात बिन्दु

MRSxy = Aa/aB

इसी प्रकार बिन्दु C पर

MRSxy =Bb/bc

बिन्दु D पर

MRSxy =Cd/dD होगी ।

जैसा कि चित्र में प्रदर्शित है

aB = bC = dD है

तथा Aa > Bb > cd हैं ।

अतः

MRSxy बिन्दु B> MRSxy बिन्दु C> MRSxy बिन्दु D

अर्थात वस्तु X की वस्तु Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर घटती हुई होती है । परिणामस्वरूप उदासीनता वक्र मूल बिन्दु के उन्नतोदर (Convex) होता है ।

इस नियम के कुछ अपवाद हैं

(1) यदि वस्तुएँ एक दूसरे की पूर्ण स्थानान्तरण है तो उनके मध्य सीमान्त प्रतिस्थापन की दर स्थिर होगी और उदासीनता वक्र एक सीधी रेखा होगी यदि वह अक्ष x के साथ 45 का कोण बनाती है । तो सीमान्त प्रतिस्थापन की दर 1 होगी ।

(2) यदि वस्तुएं पूर्ण पूरक है तो उनके मध्य सीमान्त प्रतिस्थापन की दर शून्य होगी क्योंकि उदासीनता वक्र L आकार का होता है क्योंकि वस्तुएं सदैव एक निश्चित अनुपात में प्रयोग की जाती है ।

बोध प्रश्न -

(i) उदासीनता वक्र विश्लेषण की मान्यताएँ बताइए

(ii) सीमान्त प्रतिस्थापन दर की अवधारणा समझाइए

5.6 उदासीनता वक्रों की विशेषताएँ

उदासीनता वक्र यह बतलाते है कि विभिन्न संयोगों से उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि मिलती है यह द्विअक्षीय चित्र (Two Dimensional diagram) है तटस्थता वक्र में एक वस्तु को x - अक्ष तथा दूसरी वस्तु को y अक्ष पर दिखाते है इस अन्तर्गत हम त्रिअक्षीय चित्र (Three dimensional diagram) के द्वारा तीन वस्तुओं को भी प्रदर्शित कर सकते है किन्तु ऐसी स्थिति में उसे उदासीनता सतह (Indifference Surface) कहते है इसके द्वारा तीन वस्तुओं के ऐसे विभिन्न संयोग व्यक्त करते है जिनसे उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्राप्त होती है । लेकिन यह विश्लेषण काफी जटिल होता है अत: सरलता के लिए उदासीनता वक्र विश्लेषण में दो वस्तुओं के विभिन्न संयोग ही व्यक्त करते हैं । इन वक्रों की निम्नलिखित प्रमुख विशेषताऐ होती है ।

5.6.1 उदासीनता वक्रों का ढाल ऋणात्मक होता है -

उदासीनता वक्र ऊपर बायें से नीचे दाहिनी और झुके हुए होते हैं कुल सन्तुष्टि स्तर स्थिर के लिए यह आवश्यक है कि उपभोक्ता जैसे जैसे एक वस्तु की मात्रा बढ़ाता है वैसे वैसे उसे दुसरी वस्तु की मात्रा कम करनी पड़ती है दोनो वस्तुओं की मात्रा बढ़ाने पर या वस्तु की मात्रा स्थिर रखकर दूसरी वस्तु की मात्रा बढाने पर कुछ सन्तुष्टि आवश्यक रूप से बढेगी ही समान सन्तुष्टि के लिए तो उदासीनता वक्र दाहिनी और झुकेगा ही। तभी उपभोक्ता तटस्थता वक्र के विभिन्न बिन्दुओ के बीच उदासीनता व्यक्त कर सकता है । इसे निम्न चित्र 5 .6 द्वारा व्यक्त किया जा सकता है ।

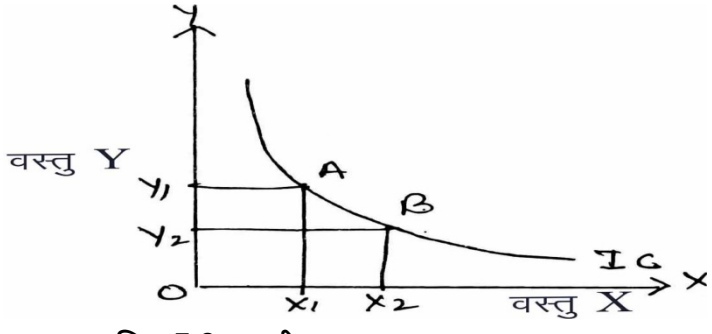

चित्र 5.6 उदासीनता वक्र ऋणात्मक ढाल -

5.6.2 उदासीनता वक्र मूल बिन्दु से उन्नोतोदर होते हैं -

सामान्यत: उदासीनता वक्र एक सरल रेखा के रूप में नहीं होते । इनका ऊपरी बायां भाग सापेक्षिक रूप से अधिक ढालू (Relalive Steep) होता है और नीचे बायां भाग सापेक्षिक रूप से समतल (relalively Horozantal) होता है क्योंकि उपभोक्ता जैसे जैसे वस्तु X का उपभोग बढ़ने हेतु वस्तु Y का परित्याग करता जाता है वस्तु Y की परित्याग की जाने वाली इकाइयां या प्रतिस्थापन की सीमान्त दर में कमी होती जाती है अर्थात वस्तु Y के लिए वस्तु X की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर MRSxy वस्तु Y की वह मात्रा जिसे उपभोक्ता वस्तु X की एक अतिरिक्त इकाई को प्राप्त करने के लिए देने का उद्यत होता है वह घटती जाती है परिणाम स्वरूप उदासीनता वक्र मूल अनोदर (Cnvex) होते है नीचे से उन्नतोदर को ऊपर से नतोदर (Concave) कहते है निम्न चित्र द्वारा इसे स्पष्ट रूप से समझाया जा सकता है !

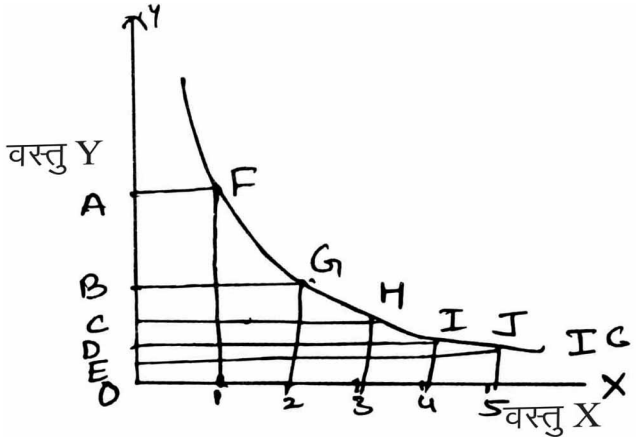

चित्र 5 .7 - उदासीनता बक उन्नोतोदर

चित्र 5.7 में स्पष्ट है कि उपभोक्ता जब वस्तु y की मात्रा त्याग करके वस्तु X की मात्रा बढ़ाता है तो प्राप्त संयोग क्रमश: F, G, H, I व J प्राप्त होते है लेकिन वस्तु Y के प्रतिस्थान की दर क्रमश: घटती जाती है वस्तु X की प्रत्येक इकाई के लिए वस्तु Y की मात्रा AB>BC>CD>ED लगातार घट रही है इस कारण से उदासीनता वक्र मूल बिन्दु से उन्नतोदर होते हैं । यदि प्रतिस्थापन की दर स्थिर रहती है तो उदासीनता वक्र एक सरल रेखा का रूप धारण कर लेता है जैसा कि निम्न चित्र 5.7 में प्रदर्शित किया गया है ।

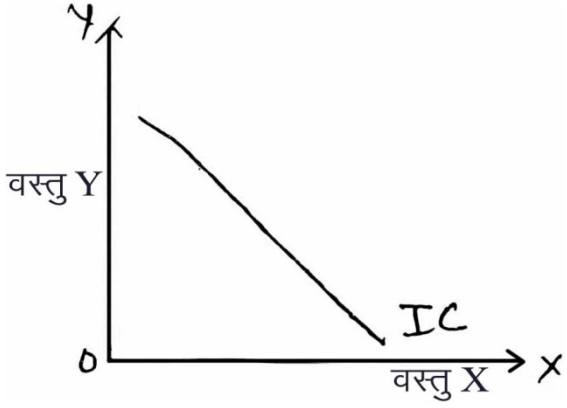

चित्र 5.8 - सरल रेखीय उदासीनता वक्र

लेकिन यदि दोनों वस्तुएं पूर्ण स्थानापन्न (Perfectly Substitut) वस्तुएं है तो उदासीनता वक्र Y अक्ष तथा X अक्ष के साथ 45० का कोण बनाती हुई एक सरल रेखा होगी व्यवहार में ऐसी स्थिति सामान्यत: नहीं पाई जाती है ।

यदि दो वस्तुएं एक दूसरे की पूर्णपूरक (Perfectly Compalimentany) होती है तो उदासीनता वक्र का आधार दो सरल रेखाओं के रूप में एक दूसरे के साथ 90० का कोण बनाती हुई होती है अर्थात प्रत्येक रेखा एक अक्ष के समानान्तर होती है जैसा की निम्न चित्र 5.8 में प्रदर्शित हैं ।

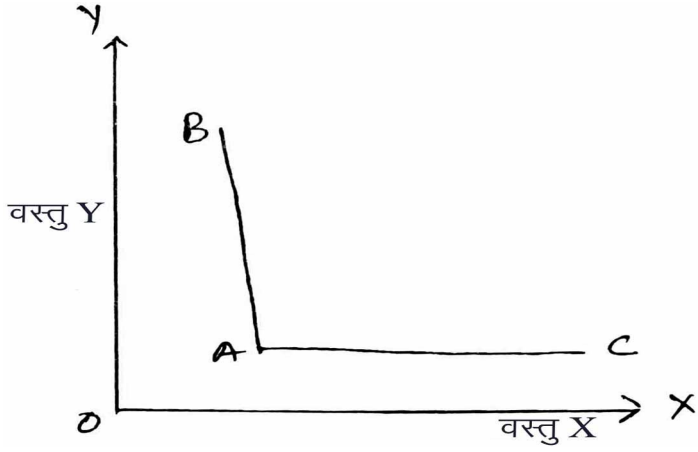

चित्र 5 .9 -समकोणीय उदासीनता वक्र

जैसा की चित्र 5.9 से प्रदर्शित है कि वस्तुओं के पूर्ण पूरक होने पर उदासीनता वक्र समकोणीय होते है सामान्यत: व्यवहार में यह स्थिति नही पायी जाती है ।

5.6.3 दो वक्र एक दूसरे को नहीं काटते

दो उदासीनता वक्र दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों से प्राप्त भिन्न सन्तुष्टि स्तर को प्रदर्शित करते है दो वक्रों के काटने के बिन्दु पर दोनों समान सन्तुष्टि को बताते है जो कि असम्भव है इसे निम्न प्रकार चित्र 5.10 द्वारा स्पष्ट रूप से समझाया जा सकता है -

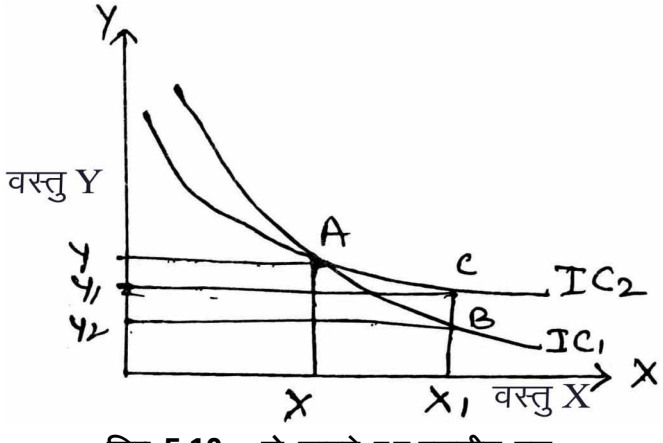

चित्र 5.10 - दो काटते हुए उदासीन वक्र

उदासीनता वक्र IC_1 तथा IC_2 अगर दोनो A बिन्दु पर काटें तो बिन्दु A पर IC_1 तथा IC_2 दोनों उदासीनता वक्रो से समान सन्तुष्टि मिलती है लेकिन यह असम्भव है क्योंकि

उदासीनता वक्र IC_2 उदासीनता वक्र IC_1 तुलना में अधिक सन्तुष्टि का घोतक है । इसको गणितीय रूप में भी बताया जा सकता है

उदासीनता वक्र IC_1 के बिन्दु A व बिन्दु B पर समान सन्तुष्टि मिलनी चाहिए अत:

$$OX = OY = OX_1 = OY_1 \quad \text{.....(1)}$$

इसी प्रकार उदासीनता वक्र IC_2 के बिन्दु A तथा बिन्दु C पर समान सन्तुष्टि मिलनी चाहिए । अत:

$$OX + OY = OX_2 + OY_2 \quad \text{.....(2)}$$

समीकरण (1) तथा समीकरण (2) से स्पष्ट है कि

$$OY_2 = OY_1$$

परन्तु यह असम्भव है क्योंकि अक्ष Y पर OY_1 मात्रा OY_2, मात्रा से अधिक है । $OY_1 = OY_2$ इस आधार पर स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि दो उदासीनता वक्र एक दूसरे को नहीं काट सकते हैं ।

5.6.4 ऊंचे उदासीनता वक्र पर सदैव अधिक सन्तुष्टि प्राप्त होती है -

ऊंचे उदासीनता वक्र पर उपभोक्ता को सदैव अधिक उपयोगिता प्राप्त होती है क्योंकि इसके प्रत्येक बिन्दु पर उपभोक्ता निचले उदासीनता वक्र की अपेक्षा X वस्तु एवं Y वस्तु दोनों अथवा दोनों में से कम से कम एक की अधिक इकाईयां प्राप्त होती है यही कारण है कि उपभोक्ता उदासीनता वक्रों के मानचित्र में उच्चतम वक्र पर जाना चाहेगा । लेकिन वह किस उदासीनता वक्र पर जायेगा । यह उसके पास उपलब्ध साधनों की मात्रा पर निर्भर करता है । निम्न चित्र 5.1.1 में तीन उदासीनता वक्र प्रदर्शित किये गये हैं

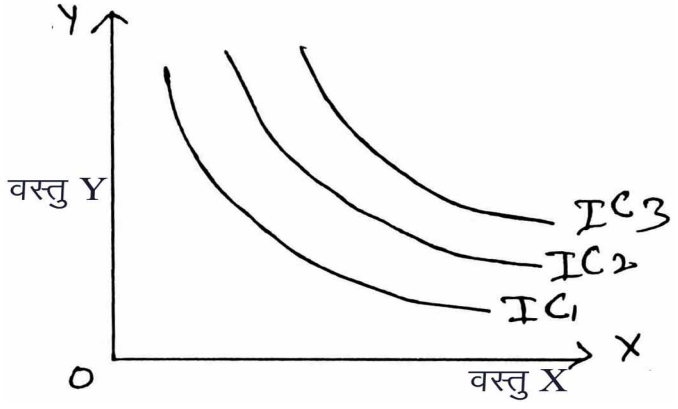

चित्र 5.11 उदासीनता वक्र मानचित्र

उदासीनता वक्र की तुलना में IC2 व IC1 की तुलना में IC3 अधिक सन्तुष्टि स्तर को प्रदर्शित करता है अत: हम कह सकते है कि उच्चतम उदासीनता वक्र उच्च संतुष्टि स्तर को बतलाता है ।

बोध प्रश्न -3 उदासीनता वक्र की विशेषताएं बताइए

5.7 कीमत रेखा या बजट रेखा

एक उपभोक्ता अपने वास्तविक क्रय का निर्धारण दो घटकों में ध्यान में रखकर करता हैं-

(i) आय स्तर (Income Level),

(ii) उपभोग वस्तुओं कीमतें (Prices of Consmption Goods)

एक उपभोक्ता की इच्छाएं एवं आवश्यकताएँ असीमित होती है । संतुष्टि का ऊंचे से ऊंचा स्तर प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता उदासीनता मानचित्र के ऊंचे से ऊंचे उदासीनता वक्र को प्राप्त करने की इच्छा रखता है किन्तु उपभोक्ता के उपभोग की सीमा उपभोक्ता की आय एवं उपभोग वस्तुओं की कीमतों द्वारा नियंत्रित होती है। उपभोक्ता की आय एवं वस्तुओं की कीमतों से उपभोग की जो सीमा रेखा तैयार होती है उसे कीमत रेखा अथवा बजट रेखा(Price Line Or Budget line)

कीमत रेखा के अभिप्राय को एक काल्पनिक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है-मान लिजिए एक उपभोक्ता की आय 50 रूपये है जिसे वह दो वस्तुओं द्र तथा प्र पर व्यय करना चाहता है जिनकी प्रति इकाई कीमतें क्रमश: 5 रूपये तथा 1० रूपये हैं । दी गई आय एवं कीमतों की परिसीमा में उपभोक्ता अपने चयन के लिए छ: संयोग बना सकता है जिसे तालिका 3 में दिखाया गया है ।

सारणी 53 उपभोग संयोग

संयोग बिन्दु	वस्तु X	वस्तु Y
R	0	5
P	2	4
Q	4	3
K	6	2
T	8	1
S	10	0
Z.....	दी गई आय एवं वस्तु कीमतों के अन्तर्गत अप्राप्य संयोग	

उपर्युक्त तालिका यह बताती है कि उपभोक्ता अपनी सीमित आय से संयोग बिन्दु R, P, Q, T, K अथवा S खरीद सकता है । अगर उपभोक्ता सम्पूर्ण आय X वस्तु पर व्यय करता है तो वह अधिकतम 10 इकाई खरीद सकता है । इसके विरीत, यदि उपभोक्ता सम्पूर्ण व्यय वस्तु Y पर व्यय करता है तो वह अधिकतम 5 इकाई खरीद सकता है । चित्र 15 में ये स्थितियाँ क्रमश: बिन्दु S तथा बिन्दु R पर दिखायी गयी है । इन दोनों बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा ही कीमत रेखा कहलाती है । उपभोक्ता इस सीमा रेखा के बाहर किसी संयोग बिन्दु पर उपभोग नहीं कर सकता क्योंकि वह उसकी रेखा या बजट रेखा के अन्तर्गत नहीं आता चित्र में यह स्थिति बिन्दु Z पर दिखायी गयी है जो उपभोक्ता की पहुँच के बाहर हैं ।

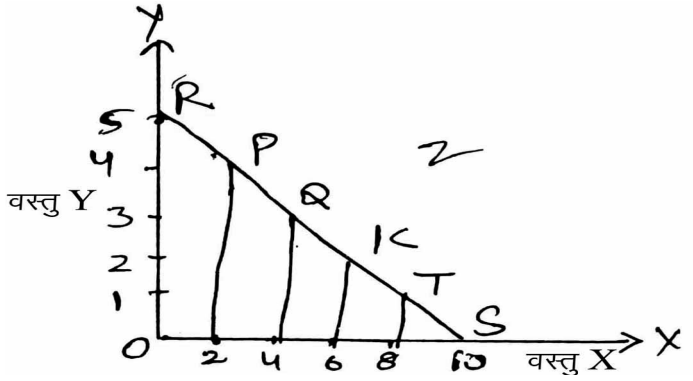

चित्र 5.12 कीमत रेखा

इस प्रकार कीमत ऐसे बिन्दुओं का बिन्दु पथ है जो उपभोक्ता की दी गई आय एवं उपभोग वस्तुओं की कीमतों के आधार उपभोक्ता द्वारा दो वस्तुओं के प्राप्य संयोग के रूप में प्राप्त किये जा सकते हैं ।

कीमत रेखा RS का ढाल

= tan of RSX

= tan of (180-RSX)

= tan of RSO

= - tan of RSO

= RO/OS (क्योंकि tan$= लम्ब/आधार)

= - आय/P_y { चित्र मे RO=5

आय / P_x क्योंकि RO = आय /P_y

= 50/10 = 5}

= -P_x /P_y

अर्थात कीमत रेखा का ढाल दो उपभोग वस्तुओं X तथा Y के कीमत अनुपात को बताता है । कीमत रेखा में तीन प्रकार के पविर्तन उपस्थित हो सकते हैं -

5.7.1 केवल आय परिवर्तित हो जबकि वस्तु की कीमतें स्थिर रहें ।

प्रारम्भिक कीमत रेखा R_1, S_1 हैं । आय कम होने पर जबकि P_x तथा P_y स्थिर है, कीमत रेखा मूल बिन्दु की ओर समानान्तर रूप से स्थानान्तरित होंगी क्योंकि अब उपभोक्ता पूर्व की भाँति दोनों वस्तुओं की कम इकाइया उपभोग कर पायेगा (R_2S_2)

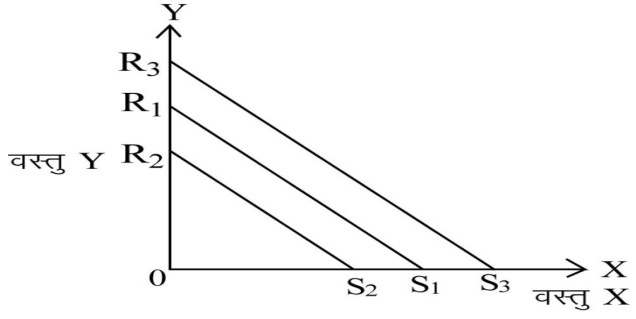

चित्र 5.1.3 कीमत रेखा में प्रतिस्थापन

इसके विपरीत आय बढने पर नई कीमत रेखा R3 S3 होगी क्योंकि आय बढ़ने पर उपभोक्ता दोनों वस्तुओं की अधिक इकाईयां खरीद सकेगा और कीमत रेखा मूल बिन्दु से समानान्तर दूरी पर हटती चली जायेगी ।

बोध प्रश्न -3

(i) वीयत रेखा की परिभाषा बताइए

5.7.2 यदि आय तथा y वस्तु की कीमत P_y स्थिर रहें तथा X वस्तु की कीमत P_x में परिवर्तन हों-

प्रारम्भिक कीमत रेखा RS है तथा रेखा का ढलना P_x / P_y है । यदि P_x में कमी होती है तो रेखा का ढलान कम होता है क्योंकि आय और Py स्थिर है और जिसके फलस्वरूप कीमत रेखा X अक्ष पर मूल बिन्दु से दूर स्थानान्तरित होगी जबकि Y अक्ष पर बिन्दु R यथावत् रहता है इसके विपरीत Px में वृद्धि होने पर रेखा का ढाल Px/Py में वृद्धि होती है और रेखा X अक्ष पर मूल बिन्दु की ओर स्थानान्तरित होती हैं

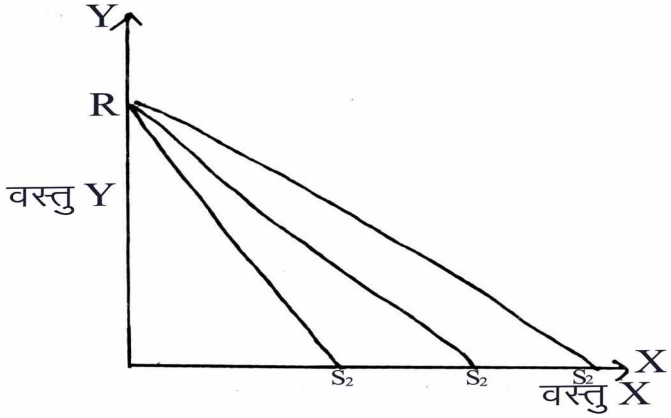

चित्र 5. 14 कीमत रेखा मे घूर्णन

5.7.3 यदि आय तथा X वस्तु की कीमत Px स्थिर हो तथा y वस्तु की कीमत Py में परिवर्तन हों -

-चित्र 5.14 में कीमत रेखा की प्रारम्भिक अवस्था RS हैं ।

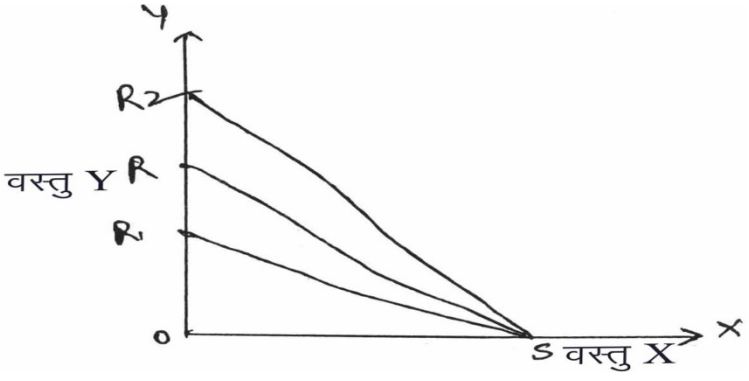

चित्र 5.15 कीमत रेखा में घूर्णन

रेखा का ढाल P_x/P_y के बराबर है ! आय तथा P_x के स्थिर रहते हुए P_y मे वृद्धि कीमत रेखा के ढाल P_x/P_y को घटायेगी जिसके फलस्वरूप कीमत रेखा Y अक्ष पर मूल बिन्दु की ओर हटती चली जयगी जबकि X अक्ष का बिन्दु Sयथावत रहता है ! इसके विपरीत P_y मे कमी कीमत रेखा के ढाल को बढ़ाएगी और रेखा Yअक्ष से दूर स्थानान्तरित होगी !

5.8 उपभोक्ता का सन्तुलन

सन्तुलन की अवस्था में उपभोक्ता अपनी उपभोग प्रवृति में परिवर्तन का इच्छुक नहीं होता । एक उपभोकता सन्तुलन की अवस्था में तब होता है जबकि वह अपनी सीमित आय एवं दी गई वस्तु कीमतों के अन्तर्गत वस्तुओं का एक ऐसा संयोग खरीदता है जिससे उसे अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो । इस प्रकार उपभोक्ता के सन्तुलन को उपभोक्ता की आय एवं वस्तुओं की कीमतें प्रभावित करती है ।

उदासीन वक्र विश्लेषण में उपभोक्त के सन्तुलन की स्थिति कुछ मान्यताओं पर आधारित हैं, जो इस प्रकार है

(1) उपभोक्ता के पास व्यय करने के लिए एक निश्चित आय होती है, जिसमें कोई परिवर्तन नहीं होता ।

(2) उपभोक्ता दो वस्तुएं X और Y का उपभोग करता है

(3) वस्तु X और वस्तु Y की कीमतें स्थिर होती हैं और उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता ।

(4) वस्तुएं X और Y समरूप और विभाज्य है ताकि इन वस्तुओं से विभिन्न संयोग बनाये जा सकें ।

(5) उपभोक्ता की समय विशेष में रूचि एवं आदत स्थिर होती है ताकि एक उदासीनता मानचित्र एक वरीयता क्रम को दिखाया जा सके ।

(6) उपभोक्ता विवेकशील प्राणी हैं, विवेकशील से अभिप्राय यह है कि उपभोक्ता अपने सन्तुष्टि स्तर को अधिकतम करना चाहता है । इस प्रकार उदासीनता वक्र विश्लेषण में उपभोक्ता उच्चतम उदासीनता वक्र पर पहुँच कर अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने का प्रयास करता है ।

(7) बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता हैं ।

5.8.1 उपभोक्ता सन्तुलन की शर्ते -

दी गई आय एवं कीमतों की दशा में उपभोक्ता अधिकतम सन्तुष्टि का स्तर उस दिशा में प्राप्त करेगा जब:

(1) कीमत रेखा (अथवा बजट रेखा) उदासीनता वक्र को स्पर्श करें (Price line should be tanget to the indifference Curve)

दूसरे शब्दों में, वस्तु X की वस्तु Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर X वस्तु की कीमत एवं Y वस्तु की कीमत के अनुपात के बराबर हों; अर्थात MRSxy = Px/Py

(2) स्थायी सन्तुलन के लिए सन्तुलन के बिन्दु पर उदासीनता वक्र मूल बिन्दू की ओर उन्नतोदर होना चाहिए।(For stable equilibrium indifference curve shoulde convex to the origin at the point of equilibrium)

दूसरे शबदों में,

स्थायी सन्तुलन के लिए सन्तुलन के बिन्दु पर सीमान्त प्रतिस्थापन दर (अर्थात् MRSxy) ऋणात्मक होनी चाहिए ।

5.8.2 शर्तो की व्याख्या

चित्र 5.16 में एक उपभोक्ता का मानचित्र प्रस्तुत किया जाता है जिसमें कीमत रेखा RS तथा चार उदासीनता वक्र IC1, IC2, ic3 तथा IC4 विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करते हैं । कीमत रेखा RS वस्तुओं के उन विभिन्न संयोगों को प्रकट करती जो कि उपभोक्ता अपनी दी हुई मौद्रिक आय तथा दोनों वस्तुओं की दी हुई कीमतों पर क्रय कर सकता है । उपभोक्ता की उपभोग सीमा रेखा RS है क्योंकि इस रेखा के बाहर कोई भी उदासीनता वक्र उसके उपभोग क्षेत्र के बाहर है । उदासीनता वक्र IC4 का बिन्दु K उपभोक्ता का उपभोग बिन्दु नहीं बन सकता क्योंकि यह कीमत रेखा RS के बाहर है ।

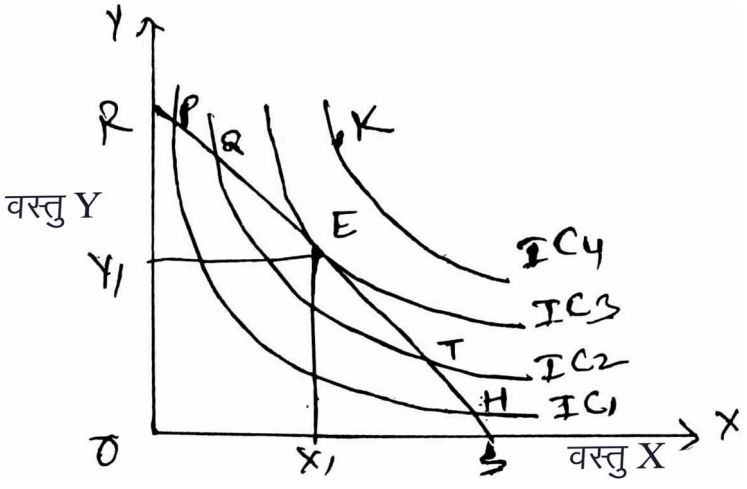

चित्र 5.16 उपभोगता का संतुलन

उदासीनता वक्र ICI पर दो संयोग बिन्दु p तथा y की तुलना में उदासीनता वक्र IC2 के दो संयोग बिन्दु तथा T उपभोक्ता को अधिक सन्तुष्टि देंगे क्योंकि वक्र IC2 पहलें वक्र IC1 की तुलना में उंचे सन्तुष्टि स्तर को बताता है । अत: उपभोक्ता बिन्दु P तथा बिन्दु H की अपेक्षा बिन्दु Q तथा बिन्दु T पर उपभोग करना पसन्द करना करेगा । पुन: उदासीनता वक्र IC3 का बिन्दु E, बिन्दु Q तथा T की तुलना में उपभोक्ता को अधिक सन्तुष्टि देगा । सबसे उंचा उदासीनता वक्र, जिस पर उपभोक्ता कीमत रेखा RS के साथ पहुंच सकता है, IC3 है जो कीमत रेखा RS को स्पर्श करता है । वस्तुओं का कोई अन्य संयोग जो कीमत रेखा RS पर स्थित है, सदैव उपभोक्ता को बिन्दु है की तुलना में कम सन्तुष्टि देगा । कोई भी वक्र कीमत

रेखा को केवल एक बिन्दु पर ही स्पर्श कर सकता है । अत: बिन्दु E ही अन्तिम उपभोग बिन्दु है जहाँ कीमत रेखा RS उदासीनता वक्र IC3 को स्पर्श कर रही है ।

सन्तुलन की इस पहली शर्त को सीमान्त प्रतिस्थापन दर के शब्दों में भी व्यक्त किया जा सकता है :

"सन्तुलन बिन्दु E पर उदासीनता वक्र का ढाल एवं कीमत रेखा का ढाल आपस में बराबर होते हैं । (At the point of equilibrium. The slope of indifference curve should be equal to the slope of price line)

चित्र 5.16 में कीमत रेखा RS का ढाल

=tan of RAX

=tan of (180-RSO)

=tan RSO

=-RO/OS

बिन्दु E पर उदासीनता वक्र का ढाल वस्तु X की Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर के बराबर होता हैं ।

अर्थात् MRSxy= - y/x

समीकरण (1) के अनुसार,

कीमत रेखा ढाल =RS/OS

= - आय / Py

= आय / Px

= - Px/Py

समीकरण (1) तथा (2) के वितरण से स्पष्ट है कि उपभोक्ता के सन्तुलन की स्थिति में,

कीमत रेखा का ढाल= उदासीनता वक्र का ढाल

अथवा Px/Py =MRSxy

अर्थात् उपभोक्ता के सन्तुलन की दशा में वस्तु X की y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर उन वस्तुओं की कीमतों के बराबर होती है ।MRSxy का ऋणात्मक चिन्ह घटती सीमान्त प्रतिस्थापन दर (Diminishing Marginal rate of Substitution) को सूचित करता है (जिसकी व्याख्या हम उपभोक्ता सन्तुलन की दूसरी शर्त के रूप में कर रहे हैं ।)

उपभोक्ता सन्तुलन की प्रथम शर्त आवश्यक तो है किन्तु पर्याप्त नहीं । प्रथम शर्त के पूरा होते हुए भी यह आवश्यक नहीं हैं कि प्राप्त सन्तुलन का बिन्दु स्थायी सन्तुलन (Stable Equilibrium) का बिन्दु ही हो । जब तक उदासीनता वक्र पर मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर नहीं होगा । वह बिन्दु अन्तिम सन्तुलन बिन्दु नहीं हो सकता । इस अवस्था को चित्र 5.16 की सहायता से स्पष्ट किया गया है ।

चित्र 5.16 में उदासीनता वक्र IC1 कीमत रेखा RS को बिन्दु P पर स्पर्श करता है । बिन्दु P पर उदासीनता वक्र मूल बिन्दु की ओर अवनतोदर (Concave) है । इस दशा में उपभोक्ता की सन्तुष्टि पहली शर्त पूरी होते हुए भी, अधिकतम नहीं है । जब उदासीनता वक्र मूल वक्र की ओर अवनतोदर होता है तो सीमान्त प्रतिस्थापन दर घटती हुई नहीं होती बल्कि बढती

हुई होती है । चित्र 5.6 में बिन्दु p की तुलना में बिन्दु K तथा T पर सन्तुष्टि अधिक है । क्योंकि ये बिन्दु उंचे उदासीनता वक्र क्रमशः IC2 तथा IC3 पर है जो सन्तुष्टि के ऊंचे स्तर को बताते हैं । अतः उपभोक्ता सन्तुलन की अन्तिम एवं आवश्यक शर्त यह है कि सन्तुलन बिन्दु पर उदासीनता वक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर (Convex) होना चाहिए । दूसरे शब्दों में, सन्तुलन बिन्दु पर MRSxy घटती हुई होनी चाहिए (MRSxy should be diminishing at point of the Equilibrium)

इस प्रकार स्पष्ट है कि उपभोक्ता के स्थायी सन्तुलन के लिए दोनों शर्ते एक साथ पूरी होनी चाहिए-

(1) सन्तुलन बिन्दु पर उदासीनता वक्र कीमत रेखा को स्पर्श करें ।

(2) सन्तुलन बिन्दु पर उदासीनता वक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर (Convex) हो ।

5.9 सारांश

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर स्पष्ट है कि उपयोगिता एक मनोवैज्ञानिक अवधारणा है अतः क्रमवाचक दृष्टिकोण के आधार पर उदासीनता वक्र एवं बजट रेखा की सहायता से उपभोक्ता के संतुलन का निर्धारण सरलता से संभव है लेकिन उनके लिए निम्न दो शर्ते सन्तुष्ट होना आवश्यक है -

(1) दी हुई बजट रेखा या कीमत रेखा का किसी उदासीनता वक्र से स्पर्श करना अथवा दूसरे शब्दों में प्रतिस्थापन की सीमांत दर का दो वस्तुओं की कीमत अनुपात के बराबर होना उपभोक्ता के सन्तुलन की आवश्यक शर्त तो है परन्तु पर्याप्त शर्त नहीं ।

(2) एक अन्य शर्त यह भी है कि संतुलन के बिन्दु पर उदासीनता वक्र मूल बिन्दु की ओर आवश्यक रूप से उन्नतोदर (Convex) होना चाहिए अर्थात् वस्तु X की वस्तु Y के लिए प्रतिस्थापन की सीमांत दर घट रही हो ।

5.10 शब्दावली

उदासीनता वक्र - वह वक्र जो दो वस्तुओं के ऐसे विभिन्न संयोगों का व्यक्त करता है जिन से उपभोक्ता को समान संतुष्टि प्राप्त होती है और उनके चयन में वह तटस्थ रहता है ।

क्रम वाचक दृष्टिकोण - वह विश्लेषण जो वरीयता क्रम पर आधारित हो ।

सीमान्त प्रतिस्थापन दर - वह दर जो यह बतलाती है कि एक वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु को किस दर पर त्यागने या लेने को उपभोक्ता तैयार है ।

बजट रेखा - वह रेखा जो दो वस्तुओं के ऐसे विभिन्न अधिकतम संयोगों को प्रदर्शित करती है । जिन्हे उपभोक्ता वस्तु की दी हुई कीमत के आधार पर अपनी सीमित आय से खरीद सकता है ।

5.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.11.1 निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर 500 शब्दों में दीजिये -

प्रश्न संख्या - 1 - उदासीनता वक्र क्या हैं? उनकी विशेषताओं को चित्र की सहायता से समझाइये।

प्रश्न संख्या - 2- उदासीनता वक्र तथा बजट रेखा को परिभाषित कीजिये एवं इनकी सहायता से उपभोक्ता के सन्तुलन की चित्र द्वारा व्याख्या कीजिये ।

5.11.2 निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर 200 शब्दों में दीजिये -

प्रश्न संख्या - 1 - उदासीनता वक्र मानचित्र व सीमान्त प्रतिस्थापन की दर अवधारणा समझाइये।

प्रश्न संख्या - 2- उदासीनता वक्र मूल बिन्दु के उन्नतोदर होते है !स्पष्ट कीजिए

प्रश्न संख्या -3 - बजट रेखा में तथा वस्तुओं की कीमतों में होने वाले परिवर्तन प्रभाव चित्र द्वारा स्पष्ट कीजिए ।

5.12 संदर्भ ग्रंथ

आहूजा, एच. एल (2006)	:	उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि. नई दिल्ली
नाथूरामका, लक्ष्मी नारायण (2006)	:	व्याष्टि अर्थशास्त्र, कालेज बुक हाउस, जयपुर
बारला, सी. एस. (2005)	:	व्यष्टि अर्थशास्त्र, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर

इकाई - 6

उदासीनता वक्र : कीमत उपभोग वक्र, आय उपभोग वक्र, और प्रतिस्थान प्रभाव

Price Consumption Curve & Income Consumption Curve and Income effect & Substitution effect

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 कीमत प्रभाव

6.2.1 कीमत उपभोग वक्र

6.2.2 मांग की लोच एवं कीमत उपभोग वक्र

6.3 आय प्रभाव

6.3.1 आय का उपभोग वक्र

6.3.2 वस्तु की प्रकृति एवं आय उपभोग वक्र

6.4 प्रतिस्थापन प्रभाव

6.4.1 हिक्स का दृष्टिकोण

6.4.2 स्ल्टस्की का दृष्टिकोण

6.5 कीमत प्रभाव आय प्रभाव व प्रतिस्थापन प्रभाव का सम्बन्ध

6.6 कीमत प्रभाव को विभाजित करने के लाभ

6.7 सारांश

6.8 शब्दावली

6.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.10 सन्दर्भ ग्रंथ

6.0 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप उदासीनता वक्र की सहायता से वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने से उसकी मांग पर पड़ने वाले प्रभाव को समझ सकेंगे ।

उपभोक्ता की आप में परिवर्तन होने से उसकी उपयोग मात्रा पर पड़ने वाले प्रभाव को जान सकेंगे प्रतिस्थापन प्रभाव के बारे में समझ सकेंगे

6.1 प्रस्तावना

पूर्व इकाई में उपभोक्ता सन्तुलन अध्ययन इस मान्यता के आधार में प्रस्तुत किया था कि उपभोक्ता की आय दी हुई होती है तथा वस्तुओं की कीमते यथा स्थिर रहती है । परन्तु

व्यवहार में आय तथा वस्तुओं की कीमते परिवर्तनशील रहती है । मार्शल के उपयोगिता विश्लेषण का मुख्य दोष यही था कि उसमें आय में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप मांग में होने वाले परिवर्तनों पर ध्यान नहीं दिया था जबकि हिक्स ने आय प्रभाव की तथा कीमत प्रभाव की तथा कीमत प्रभाव की व्याख्या स्पष्ट रूप से की है और कीमत उपभोग वक्र तथा आय उपभोग वक्र की अवधारणा प्रस्तुत की जिनके आधार पर उपभोक्ता के व्यवहार को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है ।

6.2 कीमत प्रभाव

कीमत प्रभाव के अन्तर्गत उपभोक्ता की मोद्रिक आय को स्थिर मान लिया जाता है जबकि वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन होते रहते है वस्तु की कीमत में परिवर्तन का प्रभाव उपभोक्ता के साम्य पर पड़े बिना नहीं रह सकता है इसे स्पष्ट करने के लिए कीमत उपभोग वक्र का प्रयोग किया जाता है

6.2.1 कीमत उपभोग वक्र

जब किसी वस्तु की कीमत में कमी या वृद्धि होती है तो उपभोक्ता की सन्तुष्टि में भी परिवर्तन होगा अर्थात् वस्तु की कीमत के कम होने पर उपभोक्ता का साम्य स्तर पूर्व के स्तर की तुलना में एक उंचे उदासीनता स्तर पर पहुंच जाता है । इसके विपरित यदि वस्तु की कीमत बढ़ती है तो उसके कारण उपभोक्ता का साम्य स्तर पूर्व की तुलना में नीचे उदासीनता वक्र पर आ जाएगा । जबकि उपभोक्ता की आय में कोई क्षतिपूरक परिवर्तन नहीं किया जाता है । इसे कीमत प्रभाव कहते है इसे चित्र 6.1 व तथा चित्र 6.2 द्वारा निम्न प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है ।

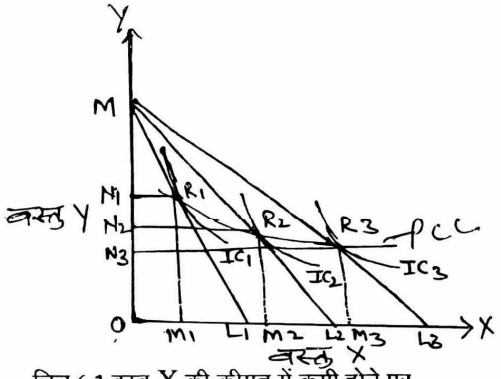

चित्र 6.1 वस्तु X की कीमत में कमी होने पर नीचे की ओर झुकता PCC

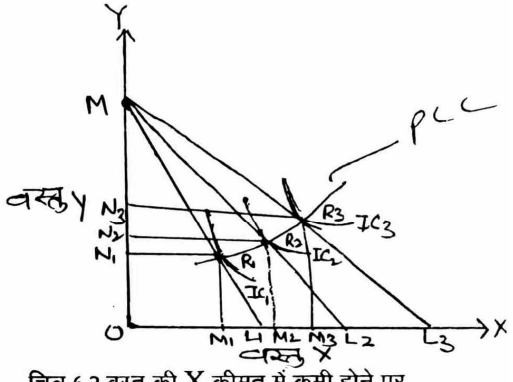

चित्र 6,2 वस्तु की X कीमत में कमी होने पर उपर की ओर बढता PCC

उपरोक्त चित्र 6.1 मे वस्तु **X** व वस्तु **Y** तथा उपभोक्ता की दी हुई मोद्रिक आय को बजट रेखा $\mathbf{ML_1}$ व्यक्त करती है और उपभोक्ता उदासीनता वक्र $\mathbf{IC_1}$, के बिन्दु $\mathbf{R_1}$ पर संतुलन में है । इस साम्य अवस्था में वह वस्तु **X** की $\mathbf{OM_1}$ तथा वस्तु **Y** की **ON1** मात्रा क्रय करता है कल्पना कीजिये कि वस्तु **X** की कीमत घट जाती है जबकि वस्तु **Y** की कीमत तथा मौद्रिक आय समान रहती है तो परिणामस्वरूप बजट रेखा परिवर्तित होकर **ML2**, हो जायेगी और उपभोक्ता उंचे तटस्थता वक्र $\mathbf{IC_2}$ के बिन्दु $\mathbf{R_2}$ पर संतुलन में होगा इस स्थिति में वह वस्तु **X**

की **ON2** मात्रा और वस्तु **Y** की $\mathbf{OY_2}$ मात्रा क्रय कर रहा है अर्थात वस्तु **X** की कीमत के घटने के फलस्वरूप पहले से अधिक संतुष्ट हो गया है कल्पना कीजिए कि वस्तु **X** की कीमत और घट जाती है जिससे बजट रेखा परिवर्तित होकर $\mathbf{ML_3}$ हो जाती है बजट रेखा $\mathbf{ML_3}$ उपभोक्ता उदासीनता वक्र $\mathbf{IC_3}$ के बिन्दु $\mathbf{R_3}$ पर संतुलन में है जहां वस्तु **X** की मांग मात्रा $\mathbf{ON_3}$ और वस्तु **Y** की $\mathbf{OY_3}$ मात्रा प्राप्त कर रहा है इस प्रकार प्राप्त विभिन्न बिन्दुओं $\mathbf{R_1, R_2, R_3}$ को परस्पर मिलाया जाता है तो एक वक्र प्राप्त होता है जिसे कीमत उपभोग वक्र कहते है यह वक्रही कीमत प्रभाव को प्रकट करता है यह इस बात को प्रदर्शित करता है कि उपभोक्ता की रूचियों एवं आय स्थिर रहने पर वस्तु प्र की कीमत में परिवर्तन से उपभोक्ता द्वारा वस्तु **X** की क्रय मात्रा पर क्या प्रभाव पड़ता है रेखाचित्र 6.1 में नीचे झुका हुआ कीमत उपभोग वक्र प्रदर्शित किया गया है जो इस बात को प्रदर्शित करता है कि जब वस्तु **X** की कीमत घटती है तो उपभोक्ता द्वारा उसकी अधिक मात्रा क्रय करता है और वस्तु **Y** की कम मात्रा । लेकिन कीमत उपभोग वक्र के अन्य भी कई रूप हो सकते है रेखाचित्र 6.2 में उपर को चढता हुआ कीमत उपभोग वक्र दिखाया गया है जो यह बतलाता है कि जब वस्तु **X** की कीमत घटती है तो दोनों वस्तुओं **X** तथा **Y** की मांग मात्रा बढ़ती है । कीमत उपभोग वक्र के दोनों अन्य रूप निम्न चित्रों मे प्रदर्शित किये गये है।

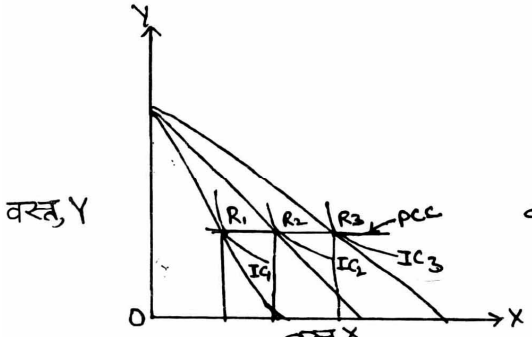

चित्र 6.3 क्षैतिज के समान्तर PPC

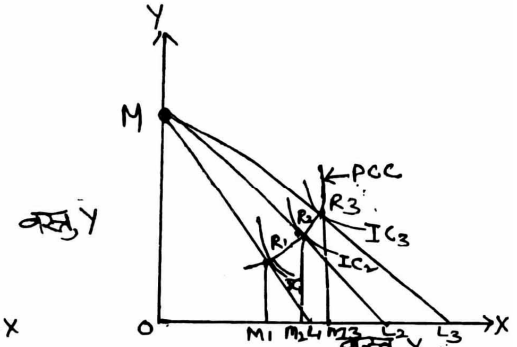

चित्र 6.4 पीछे की ओर मुडता PPC

चित्र 6.3 में प्रदर्शित **PPC** क्षैतिज अक्ष के समानान्तर है जो इस बात को प्रदर्शित करता है कि वस्तु **X** की कीमत घटती है तो इसकी खरीदी गई मात्रा बढ़ती है लेकिन वस्तु **Y** की मांग मात्रा अप्रभावित रहती है ।

जैसा की चित्र 6.4 में प्रदर्शित है **PPC** पीछे की ओर मुड़ रहा है यह इस बात को इंगित करता है कि जब वस्तु **X** की कीमत घटती है तो इसकी मांग मात्रा भी घट जाती है हम आगे यह पढ़ेगे की यह मांग के नियम का अपवाद है ऐसी वस्तुओं को गिफिन वस्तु कहते हैं ।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि कीमत उपभोग वक्र विभिन्न प्रकार के होते है ।

6.3.2 मांग की लोच तथा कीमत उपभोग वक्र :-

जैसा की उपरोक्त विश्लेषण में प्रदर्शित किया गया है कि कीमत उपभोग वक्र की आकृति कई प्रकार की हो सकती है लेकिन इसका मांग की लोच से गहरा सम्बन्ध होता है जब कीमत उपभोग वक्र क्षैतिज अक्ष के समान्तर होता है तो मांग की लोच ईकाई के बराबर होती है । और

कीमत उपभोग वक्र जब उपर की ओर उठता हुआ होता है तो मांग की लोच ईकाई के बराबर होती है । और कीमत उपभोग वक्र जब उपर की ओर उठता हुआ होता है तो मांग की लोच ईकाई से अधिक होती है । तथा जब नीचे की ओर झुका हुआ होता है तो मांग की लोच इकाई से कम होती है यह निम्न चित्रों की सहायता से स्पष्ट हो जाता है ।

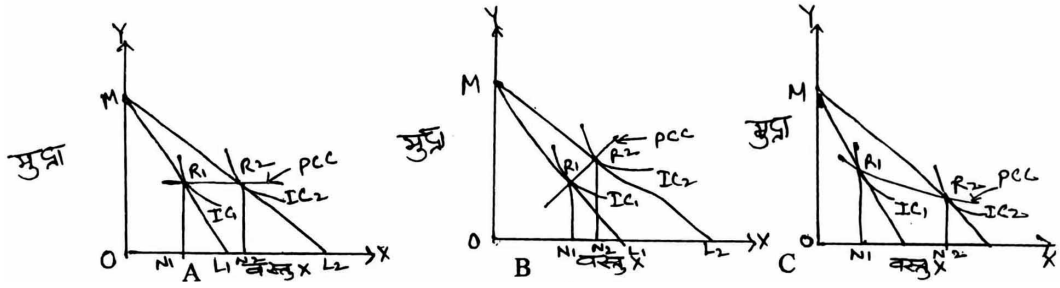

चित्र 6.5 मांग की लोच ब कीमत उपयोग बक का परस्पर सम्बन्ध

चित्र 6.5 **A. B** व **C** में **Ox** अक्ष पर वस्तु **X** तथा **OY** अक्ष पर मुद्रा मापी गयी है ML_1 प्रारम्भिक कीमत रेखा है कीमत रेखा है वस्तु **X** की कीमत घटने पर कभी कीमत रेखा ML_2 हो जाती है तब उपभोक्ता का सन्तुलन प्रारम्भ में R_1 पर और कीमत घटने पर R_2 होता है उसके पास कुल राशि है **OM** पर वह वस्तु **X** की **ON1** मात्रा खरीदता है तथा मुद्रा की R_1 N_1 राशि अपने पास राशि रखता है अर्थात ON_1 मात्रा प्राप्त करने के लिए **MP** मुद्रा का कुल व्यय करता है कीमत के घटने पर वस्तु की क्रय मात्रा बढ़कर ON_2 हो जाती है लेकिन कुल व्यय MP_1 स्थिर बना रहता है परिणाम स्वरूप मांग की लोच इकाई होती हैं ।

चित्र 6.5 **C** में कीमत के घटने पर कुल व्यय R_1 N_1 से घटकर R_2 N_2 हो जाता है जो मांग की लोच ईकाई से कम होने का सूचक हैं ।

चित्र 6.5 **B** में कीमत के घटने पर कुल व्यय R_1 N_1 से बढ़कर R_2 N_2 हो जाता है जो मांग की लोच ईकाई से अधिक होने का सूचक है ।

इस प्रकार कीमत उपभोग वक्र की सहायता से मांग की लोच जानी जा सकती है ।

बोध प्रश्न - 1

1. वस्तु की वरीयता का उपभोक्ता पर क्या प्रभाव पड़ता हैं?
2. वरीयत उपभोग वक्र के बारे में समझाइए ।

6.4 आय प्रभाव

वस्तुओं की कीमतें तथा उपभोक्ता की रूचियों और आय स्थिर रहने पर यदि उसकी मौद्रिक आय में परिवर्तन होता है तो उपयोग की मात्रा भी प्रभावित होती है इसे आय प्रभाव कहते है परिणाम स्वरूप उपभोक्ता का साम्य भी प्रभावित होता है इसे स्पष्ट करने के लिए आय उपभोक्ता वक्र का उपयोग किया जाता है ।

6.4.1 आय उपभोग वक्र

जब उपभोक्ता की आय में कमी या वृद्धि होती है तो उपभोक्ता की सन्तुष्टि में भी परिवर्तन होगा अर्थात उपभोक्ता की आया में वृद्धि होने पर उपभोक्ता का साम्य स्तर पूर्व की

तुलना में एक ऊँचे उदासीनता स्तर पर पहुंच जाता है इसके विपरीत यदि उपभोक्ता की आय में कमी हो जाती है तो उपभोक्ता का साम्य स्तर पूर्व की तुलना में नीचे उदासीनता वक्र पर आ जाएगा । इसे आय प्रभाव कहते है इसे चित्र 6.6 द्वारा निम्न प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है।

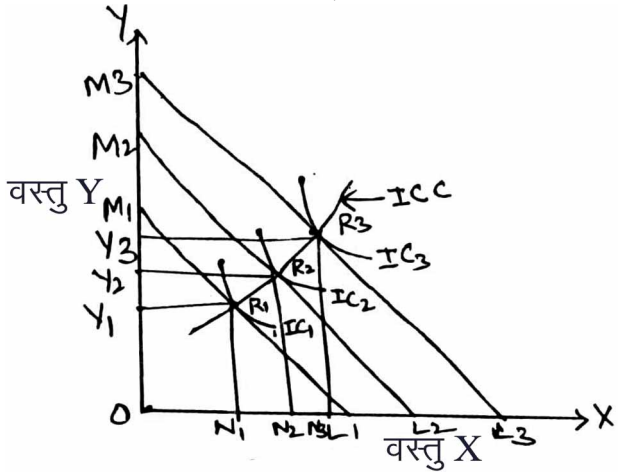

चित्र 6.6 आय उपभोग वक्र

चित्र 6.6 में प्रदर्शित है कि वस्तुओं की कीमते तथा आय दी हुई होने पर बजट रेखा $M_1 L_1$ प्रकट होती है तो उपभोक्त उदासीनता वक्र IC_1 के बिन्दु R_1 पर साम्य में है और इस साम्य अवस्था में वह वस्तु **X** की ON_1 मात्रा और वस्तु **Y** की OY_1 मात्रा क्रय कर रहा है अब कल्पना किजिये कि उपभोक्ता कि आय में वृद्धि होती है जिससे उपभोक्ता दोनों वस्तुओं की अधिक मात्राएं क्रय कर सकेगा जिसके परिणाम स्वरूप बजट रेखा उपर की ओर प्रतिस्थापित हो जाएगी और वह प्रथम बजट रेखा के समान्तर होगी । अब हम यह कल्पना करते है कि उपभोक्ता की आय इतनी बढ़ती है कि जिससे नयी बजट रेखा $M_2 L_2$ बनती है । उपभोक्ता की आय वस्तु **X** में L_1L_2 और वस्तु **Y** में M_1M_2 बढ़ी है इस प्रकार बजट रेखा M_2L_2 पर उपभोक्ता उदासीनता वक्र IC_2 के बिन्दु R_2 पर साम्य मैं हैं और इस संतुलन अवस्था में वह वस्तु **Y** की OY_2 मात्रा तथा वस्तु **X** की ON_2 मात्रा क्रय कर रहा है । इस प्रकार हम देखते है उपभोक्ता की आय में वृद्धि के परिणाम स्वरूप उसके द्वारा दोनों वस्तुओ की खरीदी गई मात्राएं बढ गई है क्योंकि उपभोक्ता उचें उदासीनता वक्र IC_2 पर साम्य में है इसलिए अब पहिले से उसकी संतुष्टि बढ़ जाएगी । यदि उपभोक्ता की आय में ओर वृद्धि होती है तो और संतुष्टि के स्तर में वृद्धि हो जायेगी । जैसा कि चित्र 6.6 में स्पष्ट है उसका साम्य स्तर IC_3 के बिन्दु R_3 पर हो जायेगा । इस प्रकार विभिन्न साम्य बिन्दु R_1 R_2 R_3 आदि को मिलाया जाता है । जो कि विभिन्न आय के स्तरों पर उपभोक्ता के साम्य को व्यक्त करते है तो हमे एक वक्र प्राप्त होता है जो आय उपभोक्ता वक्र कहलाता है । यह वक्र आय प्रभाव को प्रकट करता है । जो इस बात को प्रदर्शित करता है कि दोनों वस्तु की कीमत स्थिर रहने पर उपभोक्ता की आय में परिवर्तन से वस्तु **X** व वस्तु **Y** की क्रय मात्रा पर क्या प्रभाव पड़ता है।

6.4.2 वस्तु की प्रकृति एवं आय उपभोग वक्र

आय प्रभाव धनात्मक व ऋणात्मक दोनों प्रकार का हो सकता है । आय प्रभाव धनात्मक तब होता है जब उपभोक्ता की आय में वृद्धि होने से उसके द्वारा वस्तु का उपभोग अथवा मांग बढ़ जाती है यह एक सामान्य बात है ऐसी स्थिति में आय उपभोग वक्र ऊपर की ओर अग्रसर होता है जैसा कि चित्र 6.6 मे प्रदर्शित किया गया है । इन वस्तुओं को सामान्य वस्तु कहते है लेकिन जब आय प्रभाव ऋणात्मक होता है तब उपभोक्ता की आय में वृद्धि होने पर भी वस्तु का उपभोग अथवा मांग घट जाती है ऐसी वस्तुओं को हीन वस्तु कहते हैं ऐसी स्थिति मे उपभोक्ता उच्च कोटि की वस्तु का उपभोग बढ़ा देता है ।

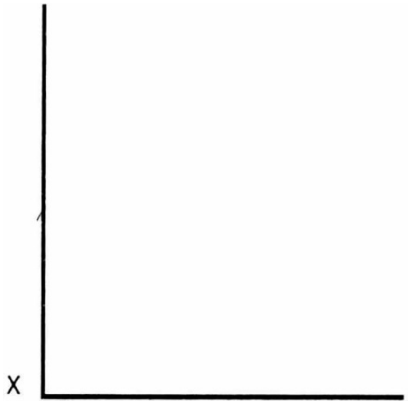

चित्र 6.7 वस्तु **Y** हीन वस्तु होने पर **ICC** वक्र

ऋणात्मक आय प्रभाव के सम्बन्ध में दो स्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं-

(1) जब वस्तु **X** श्रेष्ठ वस्तु तथा वस्तु: निम्न वस्तु हों ।

इसे चित्र द्वारा निम्न प्रकार प्रदर्शित कर सकते है ।

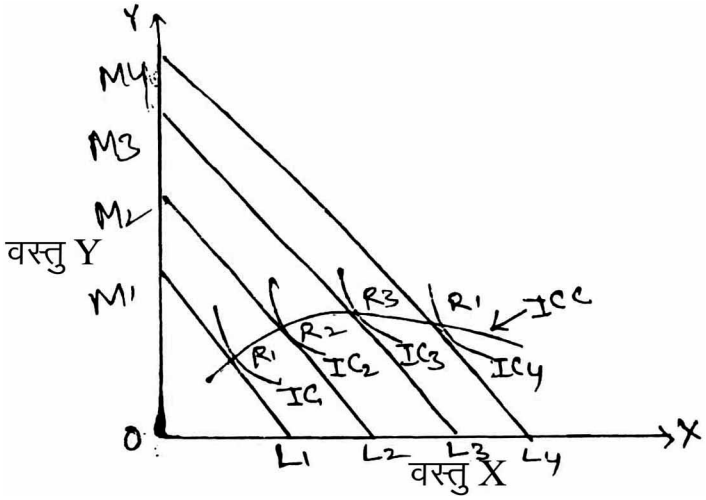

चित्र 6.7 ऋणात्मक आय प्रभाव जबकि वस्तु Y निम्न वस्तु है

जब वस्तु **Y** निम्न वस्तु होती है तो उपभोक्ता की आय में वृद्धि होने के कारण कुछ समय पश्चात् वस्तु **Y** के उपभोग को कम करेगा तथा वस्तु **X** के उपभोग को बढ़ायेगा उपरोक्त चित्र 6.7 में **ICC** से स्पष्ट है कि इसका ढाल बिन्दु **R2** तक धनात्मक है अर्थात कीमत रेखा

M2L2 तक वस्तु **Y** निम्न वस्तु नही है किन्तु इसके उपरान्त आय में वृद्धि के कारण प्रतिस्थापित कीमत रेखा **M3L3**तक वस्तु **Y** को निम्न वस्तु बना देती है तथा **ICC** वक्र बिन्दु **R2** के पश्चात ऋणात्मक ढाल युक्त हो जाता है परिणामस्वरूप वस्तु **X** श्रेष्ठ एवं वस्तु **Y** निम्न वस्तु हो जाती है ।

(2) जब वस्तु **Y** श्रेष्ठ वस्तु एवं वस्तु **X** निम्न वस्तु हो तो इसे चित्र द्वारा निम्न प्रकार प्रदर्शित कर सकते हैं ।

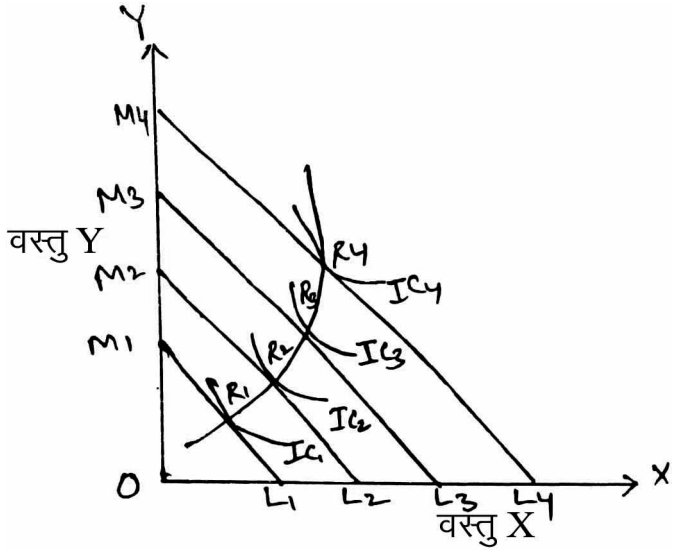

चित्र 6 .8 ऋणात्मक आय प्रभाव वस्तु X निम्न वस्तु है ।

जब वस्तु **X** निम्न वस्तु होती है तो उपभोक्ता की आय में वृद्धि के कारण कुछ समय पश्चात वस्तु **X** के उपभोग को कम करेगा तथा वस्तु **Y** के उपभोग को बढ़ायेगा उपरोक्त चित्र 6.8 में **ICC** से स्पष्ट है कि इसका ढाल बिन्दु **R2** तक धनात्मक है अर्थात कीमत रेखा **M2 L2** तक वस्तु X निम्न वस्तु नहीं है किन्तु इसके उपरान्त आय में वृद्धि होने पर कीमत रेखा प्रतिस्थापित होकर **M3 L3**हो जाने पर वस्तु **X** निम्न वस्तु बन जाती है तथा **ICC** वक्र बिन्दु **R2** के पश्चात ऋणात्मक ढाल युक्त हो जाता है परिणामस्वरूप वस्तु **Y** श्रेष्ठ एवं वस्तु **Y** निम्न वस्तु हो जाती है ।

ऋणात्मक आय प्रभाव की दोनों ही स्थितियों में एक बात ध्यान देने योग्य है । मे दोनों ही परिस्थितियों में बिन्दु **R2** के बाद ही वस्तु निम्न वस्तु बन रही है अर्थात एक निश्चित आय स्तर के बाद ही कोई वस्तु निम्न वस्तु बनती है । इसका अभिप्राय यह है कि एक निश्चित आय स्तर तक निम्न वस्तु भी उपभोक्ता के लिए श्रेष्ठ वस्तु होती है ।

बोध -प्रश्न 2

1. आय में परिवर्तन से उपभोक्ता पर क्या प्रभाव पड़ता हैं?
2. ऋणात्मक आय प्रभाव के बारे में समझाइए ।

6.5 प्रतिस्थापना प्रभाव

उपभोक्ता अपनी मनोवैज्ञानिक प्रकृति के कारण सदैव तुलनात्मक रूप से सस्ती वस्तु का अधिक उपभोग करने का प्रयास करता है जब आय के समान रहने पर दो वस्तुओं में से एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन होता है तब वस्तुओं की सापेक्षित कीमतों में परिवर्तन होता है तथा उपभोक्ता मंहगी वस्तु को तुलनात्मक रूप से सस्ती वस्तु द्वारा प्रतिस्थापित करता है दूसरे शब्दों में जब दो वस्तुओं में से किसी एक वस्तु की कीमत में कमी होती है तब उपभोक्ता महंगी वस्तु के स्थान पर सस्ती वस्तु द्वारा प्रतिस्थापित करता है यह प्रतिस्थापन प्रभाव कहलाता है । इसके कारण वस्तुओं के उपभोग के संयोग में परिवर्तन होने पर भी उपभोक्ता की सन्तुष्टि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है । अर्थात् उपभोक्ता की वास्तविक आय अपरिवर्तित रहती है । प्रतिस्थापन प्रभाव के विषय में दो प्रकार की अवधारणाएं प्रस्तुत की गयी है :-

(1) हिक्स का प्रतिस्थापन प्रभाव (2) स्लट्स्की का प्रतिस्थापन प्रभाव

6.5.1 प्रतिस्थापन प्रभाव: हिक्स का दृष्टिकोण

हिक्स के अनुसार प्रतिस्थापन प्रभाव में मौद्रिक आय में क्षतिपूर्ति परिवर्तन इस प्रकार किया जाता है कि उपभोक्ता कीमत परिवर्तन से पूर्व के अपने उदासीनता वक्र पर बना रहे । दूसरे शब्दों में हिक्स के दृष्टिकोण के अनुसार प्रतिस्थापन प्रभाव में उपभोक्ता एक ही उदासीनता वक्र पर एक संयोग बिन्दु से दूसरे संयोग बिन्दू पर स्थानान्तरित हो जात है जिसके कारण उसका सन्तुष्टि का स्तर बना रहता है । हिक्स के प्रतिस्थापन प्रभाव को चित्र 6.9 में दिखाया गया है । उपभोक्ता के आरम्भिक सन्तुलन की स्थिति को बिन्दु **p** पर दिखाया गया है । जहाँ उपभोक्ता कीमत रेखा **PS** तथा उदासीनता वक्र **RS** तथा उदासीनता वक्र **IC** के साथ सन्तुलन में है । बिन्दु **P** पर आरम्भिक सन्तुलन की दशा मे उपभोक्ता वस्तु **X** तथा **Y** वस्तु की क्रमश: **OA** तथा **OC** मात्राएं उपभोग कर रहा है ।

अब यदि **Y** वस्तु की कीमत तथा उपभोक्ता की मोद्रिक आय के स्थिर रहने पर वस्त **X** की कीमत में कमी होती है तब निम्नलिखित दशाएँ एक साथ उत्पन्न होगी :

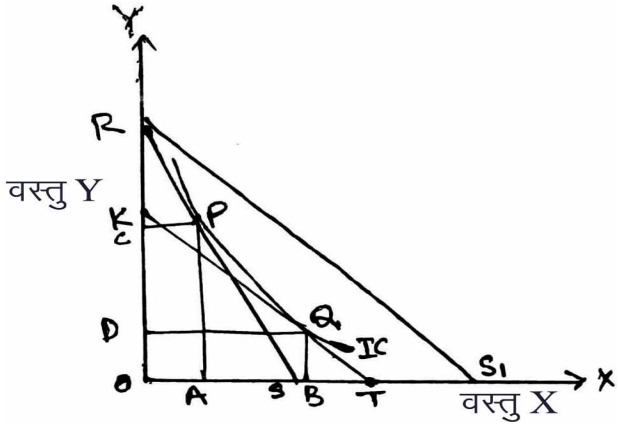

चित्र 6.9-प्रतिस्थापन प्रभाव (हिक्स का दृष्टिकोण)

(1) कीमत रेखा **RS** के स्थान पर **RISI** हो जायेगी ।

(2) उपभोक्ता की वास्तविक आय में वृद्धि हो जायेगी ।

(3) वस्तु **Y** की कीमत स्थिर होने पर भी वस्तु **Y** सापेक्षत: वस्तु **X** की तुलना में महँगी हो जायेगी ।

प्रतिस्थापन प्रभाव में क्योंकि केवल वस्तुओं की सापेक्ष कीमतों के परिवर्तन का अध्ययन किया जाता है अत: वस्तु **X** की कीमत में कमी के कारण बढ़ी हुई वास्तविक आय को घटाकर ठीक उसी स्तर पर लाया जाता है जिसे कीमत परिवर्तन से पूर्व उपभोक्ता को प्राप्त था । प्रारम्भिक आय स्तर प्राप्त करने के लिए नयी कीमत रेखा **R1 S1** को मूल बिन्दु की ओर समानान्तर रूप से इस प्रकार खिसकाया जात है कि खिसकायी गई कीमत रेखा को **KT** दिखाया गया है जो प्रारम्भिक उदासीनता वक्र **IC** को बिन्दु **Q** पर स्पर्श करती हैं । बिन्दु **P** तथा **Q** एक ही उदासीनता वक्र के दो बिन्दु है जो उपभोक्ता को एक समान सन्तुष्ट देतें हैं । चित्र 6.9 से स्पष्ट है कि वस्तुओं की कीमतों में सापेक्षिक परिवर्तन एवं वास्तविक आय में क्षतिपूर्ति समायोजन के बाद उपभोक्ता बिन्दु **Q** पर वस्तु **X** की **OB** मात्रा तथा वस्तु **Y**की **OD** मात्रा खरीदता है । दूसरे शब्दों में वस्तु **X** के सापेक्षत: महँगा हो जाने के कारण उपभोक्ता वस्तु **X** का उपभोग **OA** से बढ़ाकर **OB** तथा वस्तु **Y** का उपभोग **OC** से घटाकर **OD** कर देता हैं । बिन्दु **P** से बिन्दु **Q** तक गमन प्रतिस्थापन प्रभाव के हिक्स के दृष्टिकोण को बताता है ।

6.5.2 प्रतिस्थापन प्रभाव: स्लट्स्की का दृष्टिकोण

अर्थशास्त्री स्लट्स्की ने प्रतिस्थापन प्रभाव का एक आंशिक परिवर्तित रूप प्रस्तुत किया है। इस रिति में प्रतिस्थापन प्रभाव ज्ञात करने के लिए वास्तविक आय को स्थिर रखने के लिए उपभोक्ता की मौद्रिक आय को इस प्रकार परिवर्तित किया जाता है कि उपभोक्ता कीमत परिवर्तन से पूर्व के अपने प्रारम्भिक संयोग को खरीद सकें । इस रीति में प्रतिस्थापन प्रभाव ज्ञात करने के लिए मोद्रिक आय में समायोजन लागत-अन्तर के आधार पर किया जाता है । दूसरे शब्दों में उपभोक्ता की मौद्रिक आय में परिवर्तन पूर्व-कीमत पर वस्तु की क्रय की गई मात्रा की लागत तथा परिवर्तित कीमत पर उसी मात्रा को क्रय करने की लागत अन्तर के बराबर किया जाता है । स्लट्स्की द्वारा प्रतिपादित प्रतिस्थापना प्रभाव को चित्र 6.10 व 6.11 में समझाया गया है।

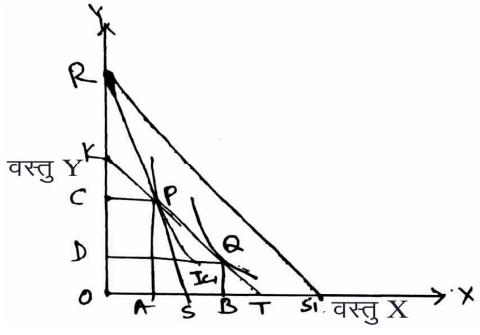

चित्र 6.10- X वस्तु के मूल्य में कमी

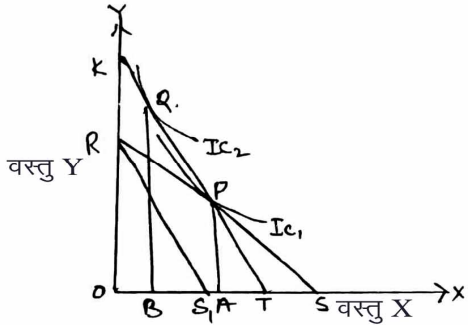

चित्र 6.11 - X वस्तु के मूल्य मे वृद्धि

चित्र 6.10 में पूर्व कीमत रेखा **RS** है जो **X** वस्तु की कीमत में कमी के बाद **RS1** हो गयी है । प्रारम्भिक अवस्था में उपभोक्ता उदासीनता वक्र **IC1** के बिन्दु **P** पर सन्तुलन की अवस्था में है और **X** वस्तु की इकाई तथा **Y** वस्तु की **OC** ईकाई प्रयोग कर रहा है । **X** वस्तु की कीमत में कमी के बाद उपभोक्ता की वास्तविक आय को स्थिर रखने के लिए नयी कीमत रेखा

न **RS1** को मूल बिन्दू की और समान्नान्तर रूप से इस प्रकार खिसकाया जाता है । कि परिवर्तित कीमत रेखा पुराने सन्तुलन बिन्दु **P** से गुजरे । इस स्थिति में उपभोक्ता अगर चाहे तो पूर्व संयोग **P** को खरीद सकता है । अन्तिम कीमत रेखा **KT** है । उपभोक्ता पूर्व संयोग **P** को खरीद तो सकता है । किन्तु यह बिन्दु उसके सन्तुलन का बिन्दु नहीं होगा क्योंकि कीमत रेखा **KT** की सहायता से उपभोक्ता एक उँचे उदासीनता वक्र **IC2** के बिन्दु **Q** पर सन्तुलन की अवस्था में होगी । नयी परिस्थिति में जबकि वस्तु **X** सापेक्षत: वस्तु **Y** की तुलना में सस्ती हो गई है उपभोक्ता वस्तु **X** का उपभोग **OA** से बढ़ाकर **OB** कर देता है तथा वस्तु **Y** के सापेक्षत: महँगा हो जाने के कारण वस्तु **Y** का उपभोग **OC** से घटाकर **OD** कर देता है । स्लट्स्की के अनुसार प्रतिस्थापन प्रभाव में उपभोकता वस्तुओं का उनकी सापेक्ष कीमतों के परिवर्तन के कारण परिवर्तित संयोग एक उँचे उदासीनता वक्र पर प्राप्त करता । चित्रए6.10 में बिन्दु **P** से **Q** तक गमन प्रतिस्थापन प्रभाव का परिणाम है ।

इसके विपरित चित्र 6.11 में वस्तु की कीमत वृद्धि से सम्बन्धित स्लट्स्की का प्रतिस्थापन प्रदर्शित किया गया है । इस परिस्थिति में **X** वस्तु की वृद्धि के बाद उपभोक्ता की वास्तविक आय को स्थिर रखने के लिए कीमत रेखा **RS1** को मूल बिन्दु से दूर समानान्तर रूप से इस प्रकार हटाया जाता है कि उपभोक्त पूर्व संयोग **P** को खरीद सके किन्तु उपभोक्ता **P** बिन्दु पर संतुलन की अवस्था में नहीं होगा । क्योंकि वह परिवर्तित कीतम रेखा **KT** प्राप्त होने पर उचे उदासीनता वक्र **IC2** के बिन्दु **Q** पर सन्तुष्टि के ऊंचे स्तर को प्राप्त कर सकेगा । बिन्दु **P** से **Q** का गमन स्लट्स्की का प्रतिस्थापन प्रभाव हैं ।

दोनो ही स्थितियों में स्पष्ट है कि स्लट्स्की प्रतिस्थापन प्रभाव में उपभोक्ता एक उंचे उदासीनता वक्र पर पहुंच जाता है अर्थात स्लट्स्की का प्रतिस्थापन प्रभाव उपभोक्ता की सन्तुष्टि में वृद्धि करता है ।

6.6 कीमत प्रभाव, आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव

प्रो. हिक्स के अनुसार, एक वस्तु के मूल्य में किसी उस वस्तु की माँग को दो प्रकार से प्रभावित करती हैं -

प्रथम, यह उपभोक्ता की वास्तविक आय में वृद्धि करके उसकी स्थिति सुधारती है और इसका प्रभाव उपभोक्ता की माँग पर ठीक उसी प्रकार पड़ता है जैसा उपभोक्ता की मौद्रिक आय की वृद्धि का । इसे हिक्स ने आय प्रभाव का नाम दिया ।

द्वितीय, यह सापेक्षित मूल्यों में परिवर्तन करती है अत: वास्तविक आय के परिवर्तन के अतिरिक्त उपभोकता में एक वस्तु से दूसरी वस्तु को स्थानापन्न करने की प्रवृति उत्पन्न होती है। जिसे प्रो. हिक्स ने प्रतिस्थापन प्रभाव का नाम दिया ।

इस प्रकार

कीमत प्रभाव = आय + प्रतिस्थापन

कीमत प्रभाव का उपर्युक्त दो घटकों में विभाजन दो रीतियों की सहायता से किया जा सकता हैं.

1. हिक्स - ऐलन की रीति द्वारा

2. स्लटस्की की रीति द्वारा

6.6.1 हिक्स ऐलन रीति मे प्रतिस्थापन प्रभाव के अन्तर्गत उपभोक्ता पूर्व के उदासीनता वक्र पर रहता है । इस स्थिति को चित्र 6.12 की सहायता से दिखाया गया है ।

चित्र 6.12 में प्रारम्भिक स्थिति के अन्तर्गत कीमत रेखा $\mathbf{R_1S}$ दिखायी गयी है । उपभोक्ता की दी हुई आय तथा दी हुई वस्तुओं की कीमतों के अन्तर्गत उपभोक्ता उदासीनता वक्र $\mathbf{IC_1}$ के बिन्दु **P** पर सन्तुलन की अवस्था में है । जब वस्तु **X** की कीमत में कमी होती है तो नई कीमत रेखा $\mathbf{R_1S_1}$ के साथ उपभोक्ता ऊंचे उदासीनता वक्र $\mathbf{IC_2}$ के बिन्दु R पर सन्तुलन प्राप्त करता है । बिन्दु **P** से बिन्दु **R** का गमन कीमत प्रभाव प्रदर्शित करता है जिसे कीमत उपभोग वक्र **PCC** से दिखाया गया है । किन्तु उपभोक्ता **P** से **R** तक सीधे नहीं पहुंचता है । बल्कि पहले **P** से **Q** तथा उसके बाद बिन्दु **Q** से **R** तक पहुंचता है । वस्तु **X** की कीमत में कमी होने के कारण उपभोक्ता की वास्तविक आय में वृद्धि हो जाती है जिसे आय क्षतिपूर्ति परिवर्तन की सहायता से पुन उसी सन्तुष्टि स्तर पर ले आया जाता है । चित्र 6.12 में यह स्थिति कीमत रेखा **KT** की सहायता से प्रदर्शित की गयी है । उपभोक्ता वस्तु **X** के सापेक्ष मूल्य में कमी के कारण उसी उदासीनता वक्र $\mathbf{IC_1}$ के बिन्दु **P** से बिन्दु **Q** तक स्थानान्तरित हो जाता है जिसे प्रतिस्थापन प्रभाव कहते हैं । यदि अब उपभोक्ता की मौद्रिक आय में कमी, जो आय क्षतिपूरक परिवर्तन में घटायी गयी थी (चित्र 6.12 में क्षतिपरक परिवर्तन वस्तु **X** के लिए $\mathbf{TS_1}$ तथा वस्तु **Y** के लिए $\mathbf{R_1}$ $\mathbf{K_1}$ दिखाया गया हैं)

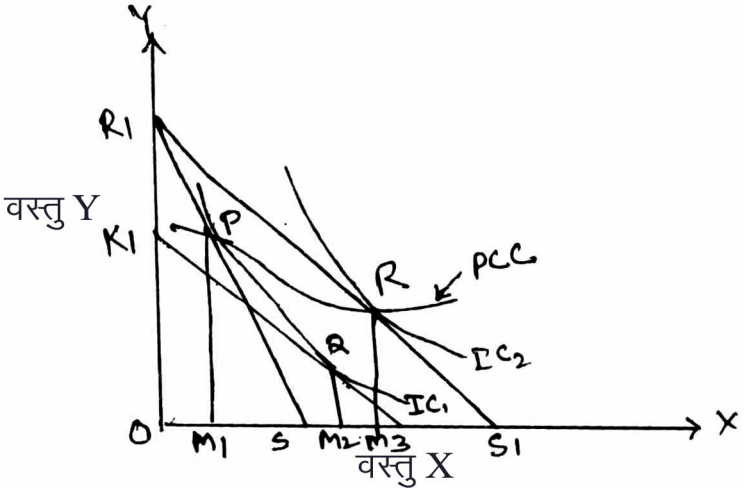

चित्र 6.12 - कीमत प्रभाव का विभाजन हिक्स - एलेन रीति

चित्र 6.12 कीमत प्रभाव का विभाजन हिक्स-एलेन रीति(**X** बस्तु को कीमत कम होने पर) उपभोक्ता को वापस कर दी जाय तो उपभोक्ता एक उचे उदासीनता वक्र **IC2** के बिन्दु **R** पर पहुच जाता है जो एक ऊंचे संतुष्टि स्तर को दिखाता है ! उपभोक्ता का बिन्दु **Q**से बिन्दु **R** तक गमन आय प्रभाव प्रदर्शित करता है !

इस प्रकार,

	कुल कीमत प्रभा	=	प्रतिस्थापन प्रभाव	+	आय प्रभाव
अथवा	बिन्दु **P** से **R** तक गमन		बिन्दु **P** से **Q** तक गमन		बिन्दु **Q** से **R** तक गमन

अथवा (M_3-M_1) = (M_2-M_1) + (M_3-M_2)

अथवा M_1-M_3 = M_1-M_2 दूरी + M_2-M_3 दूरी

कीमत प्रभाव का विभाजन **X** वस्तु की कीमत वृद्धि के फलस्वरूप इसकी मांग मे कमी आती है ! कीमत मे वृद्धि के कारण उपभोगता संतुलन बिन्दु **P** से **R** तक पहुचता है जिसके कारण वस्तु **X** की मांग घटकर OM_1 से OM_1 हो जाती है दूसरे मे M_1 M_3 मांग कम हो जाती है! इसमे **P** से **Q** का गमन प्रतिस्थापन प्रभाव है क्योकि **X** वस्तु की कीमत बढ़ जाने पर आय क्षतिपूरक परिवर्तन से वास्तविक आय को स्थिर रखने के लिए कीमत रेखा R_1S_1 को मूल बिन्दु सा दूर खिसकाकर **KT** किया गया है! अब अगर क्षतिपूरक परिवर्तन मे दी गयी मोद्रिक आय को उपभोक्ता बिन्दु **Q** से बिन्दु **R** पर एक नीचे उदासीनता वक्र पर आ जाता है । **Q** से **R** तक गमन आय प्रभाव है ।

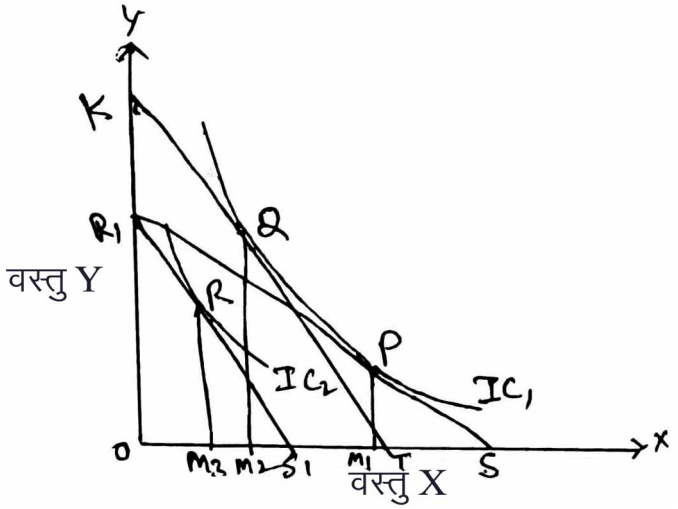

चित्र- 6.13 कीमत प्रभाव विभाजन (Xवस्तु की कीमत वृद्धि में) हिक्स -ऐलन रीति

इस प्रकार,

	कुल कीमत प्रभाव	=	प्रतिस्थापन प्रभाव	+	आय प्रभाव
अथवा	बिन्दु **P** से **R** तक गमन	=	बिन्दु **P** से **Q** तक गमन	+	बिन्दु **Q** से **R** तक गमन
अथवा	$(M_1 - M_3)$	=	$(M_1 - M_2)$	+	**(M2-M3)**
अथवा	$M_3 - M_1$ दूरी	=	$M_2 - M_1$ दूरी	+	**M3-M2** दूरी

6.6.2 कीमत प्रभाव के विभाजन की स्लट्स्की रीति

चित्र 6.14 में प्रदर्शित है कि वस्तु **X** में कीमत कमी के फलस्वरूप उपभोक्ता की कीमत रेखा **R1S** परिवर्तित होकर **R1S1** हो रही है जिसके कारण उपभोक्ता बिन्दु **P** से बिन्दु **R** तक कीमत प्रभाव के अन्तर्गत स्थानान्तरित हो रहा है । वस्तु **X** की कीमत में कमी से उपभोक्ता की वास्तविक आय में वृद्धि होगी । प्रतिस्थापन प्रभाव ज्ञात करने के लिए उपभोक्ता की मौद्रिक आय को इतना कम किया जाता है । कि उपभोक्ता बिन्दु **P** पर वस्तुओं को खरीद सके । परिवर्तित **KT** कीमत रेखा पहली कीमत रेखा **R1S1** के समानानान्तर है । काल्पनिक कीमत रेखा **KT** पर

उपभोक्ता बिन्दु **Q** पर सन्तुलित होता है1 जो उंचे उदासीनता वक्र **IC2** पर है । बिन्दु **P** से बिन्दु **Q** तक का गमन प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण है । यदि अब उपभोक्ता से छीनी गयी मौद्रिक आय (वस्तु **Y** के सन्दर्भ में **R1K)** वापस कर दी जाये तो उपभोक्ता बिन्दु **Q** से बिन्दु **R** तक गमन करता है जो आय प्रभाव प्रदर्शित करता है ।

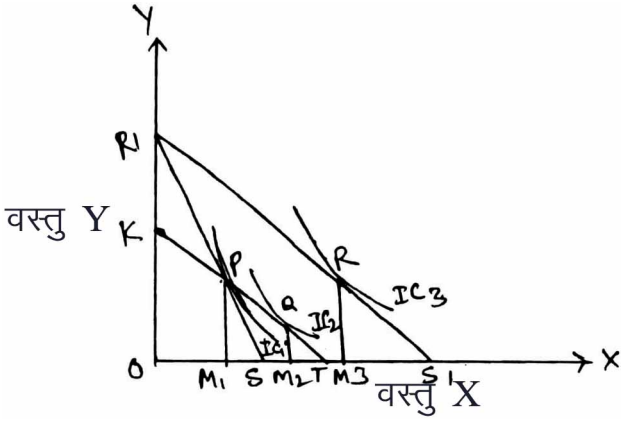

चित्र 6.13 - कीमत प्रभाव विभाजन स्लट्स्की रीति-X
वस्तु की कीमत कम होने पर

इस प्रकार,

	कुल कीमत प्रभाव	=	प्रतिस्थापन प्रभाव	+	आय प्रभाव
अथवा	बिन्दु **P** से **R** गमन	=	बिन्दु **P** से **Q** तक गमन	+	बिन्दु **Q** से **R** तक गमन
अथवा	**(M_3 - M_1)**	=	**(M_2 - M_1)**	**+**	**(M_3 - M_2)**
अथवा	**M_1 - M_3** दूरी	=	**M_2 - M_3** दूरी	+	**M_2 - M_3** दूरी

6.7 कीमत प्रभाव को आय था प्रतिस्थापन प्रभावो मे विभाजित करने का लाभ

कीमत प्रभाव को आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभावों के योग के रूप में समझने का विशेष लाभ यह है । कि हमसे एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप उसकी माँग-मात्रा में परिवर्तन को अधिक उत्तम तथा सुगम रूप से समझा जा सकता है । अधिकांश वस्तुओं की दशा में, आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव समान दिशा में कार्य करते हैं । परन्तु कुछ वस्तुओं की अवस्था में ये दो प्रभाव विपरीत दिशा में कार्य करते हैं । प्रतिस्थापन प्रभाव की दिशा तो बिल्कुल निश्चित हैं। एक वस्तु की सापेक्ष कीमत में कमी उसकी माँग -मात्रा बढ़ाने की ओर कार्य करती है अर्थात् प्रतिस्थापन प्रभाव उपभोक्ता को सदा ही सस्ती वस्तु अधिक मात्रा में क्रय करने के लिए प्रेरित करता है । परन्तु आय प्रभाव की दिशा के बारे में इतना निश्यितपूर्वक नहीं कहा जा सकता । आय में वृद्धि के फलस्वरूप व्यक्ति सामान्यत: एक वस्तु की अधिक मात्रा खरीदेगा । किन्तु यदि कोई वस्तु निम्न अथवा हीन पदार्थ है तो व्यक्ति आय बढ़ने पर उसकी कम मात्रा खरीदेगा क्योंकि वह तब उसके स्थान पर उच्चकोटि की स्थानापन्न वस्तुओं का अधिक प्रयोग करेगा । इस प्रकार हम देखते हैं कि आय प्रभाव के कारण वस्तु की माँग बढ़ भी सकती है अथवा

घट भी अर्थात आय प्रभाव क्रमश: धनात्मक भी हों सकता है अथवा ऋणात्मक भी । यदि एक वस्तु के लिए प्रभाव धनात्मक है जैसा कि सामान्य वस्तुओं की स्थिति में होता है, तो यह उसी दिशा में क्रियाशील होगा ओर प्रतिस्थापन प्रभाव कार्य करता हैं अर्थात दोनों
प्रभाव उस वस्तु की खरीद अथवा माँग को जिसकी कीमत घट गई है, बढ़ायेगें ।

परन्तु निम्न पदार्थो के लिए जिनकी दशा में आय प्रभाव ऋणात्मक होता है । कीमत में निहीत आय प्रभाव उसके प्रतिस्थापन प्रभाव की विपरीत दिशा में कार्य करेगा । अतएव ऐसी दशा में निवल परिणाम दो प्रभावों की सापेक्ष शक्तियों पर निर्भर करेगा । यदि किसी निम्न पदार्थ की दशा में ऋणात्मक आय प्रभाव प्रतिस्थापन प्रभाव की तुलना में कम शक्तिशाली है तो उसकी कीमत घटने पर उसकी माँग, सामान्य वस्तुओं की भाँति बढेगी । परन्तु यदि किसी निम्न पदार्थ की दशा मे ऋणात्मक आय प्रभाव प्रतिस्थापन प्रभाव की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है तो उसकी कीमत घटने पर उसकी माँग घट जाएगी । अतएव किसी वस्तु की माँग-मात्रा उसकी कीमत घटने अथवा बढने पर किस दिशा में बदलेगी, यह एक ओर आय प्रभाव की दिशा और शक्ति पर और दूसरी ओर प्रतिस्थापन प्रभाव की शक्ति पर निर्भर करता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वस्तु की कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप उसकी माँग में परिवर्तन की दिशा को समझने के लिए कीमत प्रभाव को उसके दो भागों, आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव, में विभाजित करना आवश्यक है । मार्शल ऐसा न कर सका ओर इसलिए वह निम्न व गिफन पदार्थो की दशा में कीमत और माँग में सम्बन्ध की समुचित व्याख्या करने में विफल रहा।

6.8 सारांश

इस अध्याय में तटस्थता वकों की सहायता के कीमत प्रभाव की व्याख्या हिक्स व स्लट्स्की विधी के द्वारा स्पष्ट की गई इसके अनुसार सामान्य वस्तु घटिया वस्तु का विभक्तीकरण सरलता से किया गया है कि वे वस्तुयें जिनमें आय प्रभाव धनात्मक होता है सामन्य वस्तु कहलाती है । तथा जिनमें ऋणात्मक होता हैं घटीया वस्तुयें कहलाती है । गिफन वस्तु की स्थिति में कीमत के कम होने पर वस्तु की माँग के घटने की प्रक्रिया उदासीनता वक्रो की सहायता से समझाई जा सकती है अत: स्पष्ट है कि तटस्थता वक उपभोक्ता के व्यवहार को समझाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं ।

6.9 शब्दावली

1. कीमत प्रभाव - वस्तुओं के उपभोग में होने वाले वह परिवर्तन जो दो वस्तुओं में से किसी एक की कीमत में परिवर्तन के कारण संभव होता है जबकि दूसरी वस्तु की कीमत व उपभोक्ता की आय स्थिर रहती है ।
2. प्रतिस्थापन प्रभाव - सापेक्ष कीमतों के परिवर्तन के कारण वस्तुओं की खरीदी गई मात्रा में परिवर्तन जबकि उपभोक्ता की आय स्थिर रहती है ।
3. आय प्रभाव - उपभोक्ता की आय में परिवर्तन के कारण वस्तुओं की खरीदी गई मात्रा में परिवर्तन जबकि वस्तुओं की सापेक्ष कीमतें स्थिर हैं ।
4. कीमत उपभोग वक्र -मोद्रिक आय और अन्य सभी वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहने पर प्राप्त वह वक्र जो उपभोक्ताओं के प्राप्त सन्तुलन का बिन्दु पथ दर्शाता है ।

5. आय उपभोग वक्र - वह वक्र जो मोद्रिक आय के विभिन्न स्तरों तथा स्थिर कीमतों के परिणामस्वरूप प्राप्त सन्तुलन के बिन्दु पथ को दर्शाता है।

6.10 बोध प्रश्न

6.10.1 निम्नलिखित प्रश्नो के उत्तर 500 शब्दों में दीजिये :-

प्रश्न संख्या 1- कीमत उपभोग वक्र से क्या तात्पर्य है? कीमत प्रभाव को आय प्रभाव प्रतिस्थापन प्रभाव में विभाजित किजिए -हिक्स का दृष्टिकोण

प्रश्न संख्या 2- कीमत उपभोग वक्र को व्युत्पित कीजिए तथा इसकी मांग लोच व्यक्त करने की दक्षता बतलाइये ।

6.10.2 निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 200 शब्दों में दीजिये ।

प्रश्न संख्या 1- आय उपभोग वक्र की व्युप्पति चित्र द्वारा स्पष्ट रूप से समझाइये ।

प्रश्न संख्या 2- कीमत प्रभाव के प्रतिस्थापन व आय प्रभाव के अलगाव की हिक्स व स्लट्स्की विधी की तुलना कीजिए ।

6.11 संदर्भ ग्रंथ

आहूजा, एच० एल० (2006) : उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त
एस चन्द एण्ड कम्पनी लि०, नई दिल्ली

नाथूरामका, लक्ष्मीनाराण (2006) : व्यष्टि अर्थशास्त्र, मलिक
एण्ड कम्पनी, जयपुर

जैन, टी० आर० एवं अन्य (2007) : व्यष्टि अर्थशास्त्री, वी० के० एन्टर प्राईज
नई दिल्ली

इकाई - 7

उदासीनता वक्र : माँग वक्र का निर्माण

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 मांग का नियम

7.2.1 मांग का अर्थ एवं प्रभावित करने वाले तत्व

7.2.2 मांग का नियम

7.2.3 मांग की अनुसूचित एवं मांग वक्र

7.3 मांग के नियम के अपवाद

7.4 वैयक्तिक मांग वक्र एवं बाजार मांग वक्र

7.5 तटस्थता वक्रों से मांग वक्र की व्युत्पति

7.6.1 वैयक्तिक मांग वक्र निकालने

7.6.2 वैयक्तिक मांग वक्र निकालने की द्वितिय विधि

7.6 सारांश

7.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.8 संदर्भ प्रश्न

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप माँग के नियम के बारे में जान सकेगे वैयक्तिक मांगवक्र एवं बाजार मांग वक्र के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे तटस्थता वक्र से माँग वक्र की व्युत्पति करना समझ सकेंगे ।

7.1 प्रस्तावना

वर्तमान इकाई में उपभोक्ता के मांग वक्र को तटस्थता वक्र के कीमत उपभोग वक्र द्वारा व्युत्पित किया जायेगा । लेकिन इससे पूर्व भाग का अर्थ, मांग का नियम व मांग वक्र का विश्लेषण प्रस्तुत किया जायेगा जिससे यह स्पष्ट किया जा सके की उपभोक्ता के व्यवहार को विश्लेषित करने में यह अवधारणा कितना महत्व रखती है । मांग के नियम का स्पष्टीकरण करते समय यह आवश्यक है कि क्या यह नियम सार्वभौमिक सत्य हैं अथवा कुछ इसके अपवाद भी है अत: अपवाद का विश्लेषण भी अवश्यम्भावी हो जाता है । चूँकि बाजार का निर्माण व्यैक्तिक इकाई के द्वारा होता है । अत: व्यैक्तिक मांग वक्र व बाजार के मांग वक्र का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत इकाई में विश्लेषित किया जा रहा है ।

7.2 मांग का नियम

मांग का नियम सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाओं को प्रत्यक्ष अथवा परीक्ष रूप से अवश्य प्रभावित करता है । अर्थशास्त्र के क्षेत्र में मांग को एक घुट्टी की संज्ञा दी जा सकती है जिसके चारो ओर सम्पूर्ण क्रियाए चक्कर लगाती है किन्तु मांग का नियम समझने से पूर्व मांग का अर्थ समझना अति आवश्यक है क्योंकि इच्छा आवश्यकता व मांग शबद अलग-अलग अर्थ रखते है जबकि सामान्यत: इन तीनों शब्दों को पर्यायवाची मान लिया जाता है ।

7.2.1 मांग का अर्थ एवं प्रभावित करने वाले तत्व

मानवीय इच्छाऐं अनन्त व असीमित होती है जिनका सम्बन्ध मनुष्य की कल्पनाओं से होता हैं । मनुष्य की प्रत्येक कल्पना मनुष्य के जीवन मे पूरी नहीं होती । मानवीय मनोवृति सदैव मनुष्य को अच्छे से अच्छा उपभोग करने की प्रेरणा देती है किन्तु मनुष्य के पास इन असीमित इच्छाओं की पूर्ति के लिए सीमित साधन होते है । जिन इच्छाओं की पूर्ति के लिए हम अपने सीमित साधन को व्यय करने को तैयार होते है वे इच्छायें हमारी आवश्यकता बन जाती है जिन आवश्यकताओं को पूरा कर लिया जाता है । वे मांग कहलाती है । अर्थात इच्छा जब क्रय शक्ति द्वारा घोषित करके पूरी कर ली जाती है । तब इच्छा मांग मे परिवर्तित हो जाती हैं ।

प्रो० पेन्सन के अनुसार 'मांग एक प्रभावी इच्छा है जिसमें तीन तथ्य सम्मिलित होते हैं - (1) वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा (2) वस्तु खरीदने के लिए साधन उपलब्धता तथा (3) वस्तु खरीदने के लिए साधनों को व्यय करने की तत्परता ।

प्रो० पेन्सन की परिभाषा मुख्यत: आवश्यकताओं के संदर्भ में ही लागू होती हैं और इसके द्वारा माँग की मौलिक प्रवृत्तियों का ज्ञान नहीं होता है । इसके अतिरिक्त यह परिभाषा आवश्यकता एवं माँग में अन्तर भी स्पष्ट नहीं करती । इन्ही कमियों के कारण इस परिभाषा को पूर्ण परिभाषा नहीं कहा जा सकता ।

प्रो० जे. एस. मिल के अनुसार, "मांग शबद का अभिप्राय मॉगी गई उस मात्रा से लगाया जाना चाहिए जो एक निश्चित कीमत पर क्रय की जाती है ।

प्रो० बेन्हम के अनुसार किसी दी गई कीमत पर वस्तु की माँग वस्तु की वह मात्रा है जो उस कीमत पर एक निश्चित समय में खरीदी जाती है ।

प्रो० मेयर्स के अनुसार "किसी दी गई कीमत पर वस्तु की माँग वस्तु की वह मात्रा है जो उस कीमत पर एक निश्चित समय में खरीदी जाती है ।" दूसरे शब्दों में "किसी वस्तु की माँग उन मात्राओं की तालिका होती है जिन्हें क्रेता एक समय विशेष पर सभी सम्भव कीमतों पर खरीदने को तैयार रहता है ।

उपरोक्त परिभाषाओं का यदि विश्लेषण किया जाये तो मांग में निम्नलिखित पाँच तत्व निहित होते हैं:

(1) वस्तु की इच्छा
(2) वस्तु क्रय के लिए पर्याप्त साधन
(3) साधन व्यय करने की तत्परता
(4) एक निश्चित कीमत

(5) निश्चित समयावधि

माँग की परिभाषाओं मे हमें माँग को प्रभावित करने वाले जिन तत्वों का उल्लेख मिलता है उनके अतिरिक्त कुछ अन्य घटक भी वास्तविक रूप में माँग को प्रभावित करते है, जो निम्नलिखित हैं.

(1) **वस्तु की उपयोगिता -** उपयोगिता का अभिप्राय हैं - आवश्यकता पूर्ति की क्षमता । एक दी गई समयावधि में वस्तु की माँग का आकार इस बात पर निर्भर करता है कि वस्तु में मनुष्य की आवश्यकता पूर्ति की कितनी क्षमता उपस्थित है । अधिक अपयोगिता वाली वस्तु की माँग कम होगी ।

(2) **आय स्तर -** आय-स्तर का माँग पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है । किसी व्यक्ति की आय जितनी अधिक होगी उस व्यक्ति की माँग उतनी ही अधिक हो जायेगी तथा इसके विपरीत आय का कम स्तर माँग पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगा ।

(3) **धन का वितरण -** समाज में धन के वितरण का भी माँग पर प्रभाव पड़ता है । समाज में धन और आय का वितरण यदि असमान है तो धनी वर्ग द्वारा विलासिता की वस्तुओं की माँग अधिक होगी । जैसे-जैसे समाज में धन का वितरण समान होता जायेगा । वैसे-वैसे समाज में आवश्यक एवं आरामदायक वस्तुओं की माँग बढ़ती जायेगी ।

(4) **वस्तु की कीमत -** वस्तु की कीमत माँग को मुख्य रूप से प्रभावित करती है । कम कीमत पर वस्तु की अधिक माँग तथा अधिक कीमत पर वस्तु की कम माँग उत्पन्न होती है । इस घटक की विस्तृत व्याख्या हम इसी अध्याय में माँग के नियम में करेंगे ।

(5) **सम्बन्धित वस्तुओं की कीमते -** सम्बन्धित वस्तुएँ दो प्रकार की होती हैं -

(a) स्थानापन्न वस्तुएँ - जैसे चीनी -गुड़ चाय-काफी आदि ।

(b) पूरक वस्तुएँ - जैसे कार-पैट्रोल, स्याही-कलम, डबलरोटी-मक्खन आदि ।

स्थानापन्न वस्तुओं में एक वस्तु की कीमत का परिवर्तन दूसरी वस्तु की माँग को विपरीत दिशा में प्रभावित करेगा तथा पूरक वस्तुओं में एक वस्तु के कीमत परिवर्तन के कारण दूसरी वस्तु की माँग समान दिशा में बदलेगी ।

(6) **रूचि. फैशन आदि -** वस्तु की माँग पर उपभोक्ता की रूचि उसकी आदत प्रचलित फैशन आदि का भी प्रभाव पड़ता है । किसी वस्तु विशेष का समाज में फैशन आदि का भी प्रभाव पड़ता है । किसी वस्तु विशेष का समाज में फैशन होने पर निश्चित रूप से उसकी माँग में वृद्धि होगी ।

(7) **भविष्य में कीमत परिवर्तन की आशा -** सरकारी नियन्त्रण, देवी विपती की आशंका, युद्ध सम्भावना आदि अनेक अप्रत्याशित एवं प्रत्याशित घटकों का भी वस्तु की माँग पर प्रभाव पड़ता है ।

इसके अतिरिक्त जनसंखया परिवर्तन, व्यापार दिशा में परिवर्तन, जलवायु मौसम आदि का भी वस्तु की माँग पर प्रभाव पड़ता है ।

माँग को मुख्य रूप से तीन रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है.

(1) **कीमत माँग -** कीमत माँग से अभिप्राय वस्तु की उन मात्राओं से है जो एक निश्चित समयावधि में निश्चित कीमतों पर उपभोक्ताओं द्वारा माँगी हैं । 'यदि अन्य बातें समान रहें' तो वस्तु की कीमत बढ जाने से उसकी माँग कम हो जायेगी और वस्तु की कीमत

घट जाने से उसकी माँग बढ जायेगी । यहाँ अन्य बाते समान रहें शब्द का अभिप्राय यह है कि जिस समय विशेष पर उपभोक्ता किसी वस्तु विशेष की माँग करता है उस समय उपभोक्ता की आय, रूचि, व्यवहार एवं उसके आय स्तर में किसी प्रकार का कोई भी परिवर्तन नहीं होना चाहिए ।

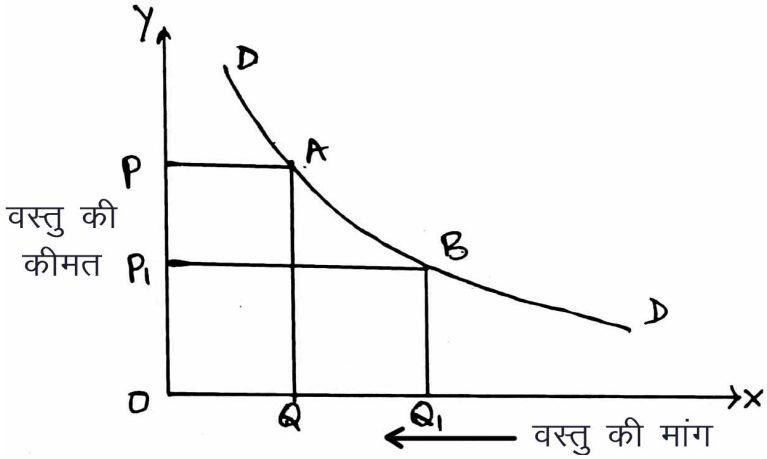

चित्र 7.1 - कीमत मांग वक्र

कीमत एवं वस्तु माँग में विपरीत सम्बन्ध होने के कारण कीमत-माँग वक्र का ढाल ऋणात्मक होता है अर्थात् कीमत माँग वक्र बायें से दायें नीचे गिरता हुआ होता है । ऋणात्मक ढाल वाले कीमत -माँग चित्र 7.1 में प्रदर्शित किया गया है । **DD** वक्र बायें से दायें नीचे गिरता कीमत-माँग वक्र है जो यह बताता है । कि वस्तु की कीमत एवं माँग मे विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है ।**OP** कीमत पर वस्तु की माँग **OQ** है । कीमत के **OP** से घटकर **OP1** हो जाने पर अन्य बातों के समान रहने पर माँग **OQ** से बढ़कर **OQ1** हो जाती है ।

(2) **आय माँग -** सामान्यत: आय माँग का अर्थ वस्तुओं एवं सेवाओं की उन मात्राओं से लगाया जाता है । जो अन्य बातों के समान रहने की दशा में उपभोक्ता दी गई समयावधि में आय के विभिन्न स्तरों पर खरीदने की क्षमता रखता है । आय-माँग वक्र को जर्मनी के अर्थशास्त्री ऐंजिल के नाम पर ऐंजिल वक्र भी कहा जाता है !

आय माँग वस्तु की प्रकृति पर निर्भर होती है । वस्तुएँ दो वर्गो में बाँटी जा सकती है:

(a) श्रेष्ठ वस्तुएँ

(b) निम्न वस्तुएँ

(i) श्रेष्ठ वस्तुओं के सम्बन्ध में आय-माँग वक्र धनात्मक ढाल वाला होता है अर्थात बायें से दायें उपर चढता हुआ होता है । श्रेष्ठ वस्तुओं का धनात्मक ढाल वाला आय-माँग वक्र यह बतलाता है कि उपभोक्ता की आय में प्रत्येक वृद्धि उसकी माँग में (अन्य बातों के समान रहने पर) भी वृद्धि करती है तथा इसके विपरीत आय की प्रत्येक कमी सामान्य दशाओं में माँग में भी कार्य उत्पन्न करती है । इस स्थिति की व्याख्या चित्र 7.2 में की गई है ।

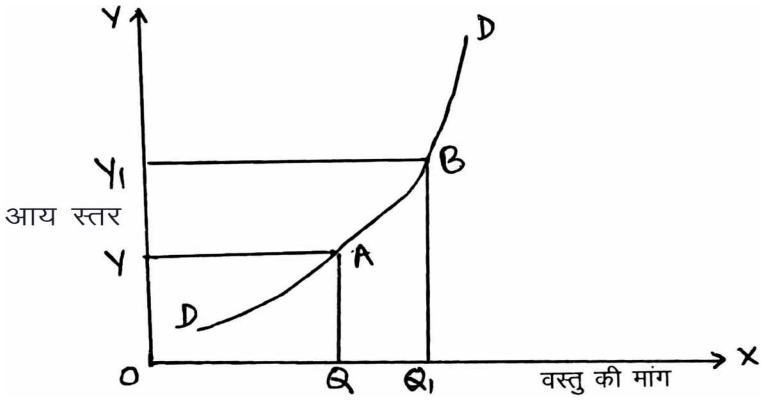

चित्र 7.2 - श्रेष्ठ वस्तुओं का आय माँग वक्र

चित्र 7.2 में DD आय-माँग वक्र (श्रेष्ठ वस्तुओं के लिए) को बताता है । Oy आय-स्तर पर माँग OQ है । आय स्तर में OY से OY1 तक वृद्धि होने पर अन्य बातो के समान रहने पर माँग भी OQ से बढ़कर OQ1 हो जाती है ।

(ii) निम्न वस्तुएँ वे वस्तुएँ होती हैं जिन्हें उपभोक्ता हीन दृष्टि से देखता है और आय-स्तर के पर्याप्त नह होने पर उपभोग करता है जैसे -मोटा. अनाज, उपभोग में वृद्धि करने लगता है अर्थात् हीन वस्तुओं के लिए आय-माँग वक्र ऋणात्मक ढाल वाला बायें से दायें नीचे गिरता हुआ है जैसा चित्र 7.3 में प्रदर्शित किया गया है ।

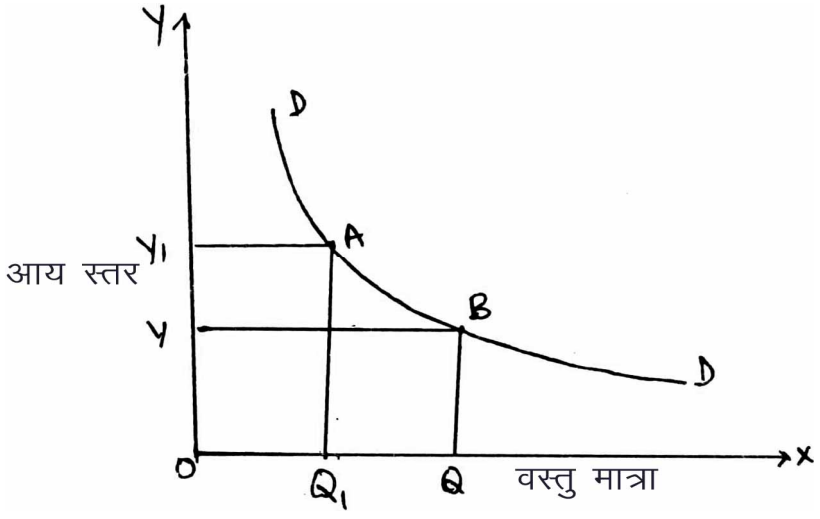

चित्र 7.3 - निम्न वस्तु का आय माँग वक्र

DD वक्र हीन वस्तुओं के लिए आय माँग को बताता है । आय के OY स्तर पर निम्न (अथवा हीन) वस्तुओं की माँग OQ है । आय स्तर में OY1 तक वृद्धि होने पर उपभोक्ता निम्न वस्तु की माँग OQ से घटाकर OQ1 कर देता है अर्थात वह श्रेष्ठ वस्तु का उपभोग अधिक आरम्भ कर देता है । आय माँग के इस विरोधाभास पर इंग्लैण्ड के अर्थशास्त्री राबर्ट गिफिन (Robert Giffin) ने सर्वप्रथम प्रकाश डाला तथा उन्ही के सम्मानार्थ इसे हम गिफिन का विरोधाभास के नाम से जानते हैं ।

(3) **आडी अथवा तिरछी माँग -** अन्य बातें समान रहने पर किसी वस्तु X की कीमत में परिवर्तित होने से उसके सापेक्ष सम्बन्धित वस्तु Y की माँग में जों परिवर्तन होता है उसे आडी माँग कहते हैं । दूसरे शब्दों में आडी माँग में एक वस्तु की कीमत का उसके सापेक्ष सम्बन्धित दूसरी वस्तु की माँग पर प्रभाव देखा जाता है । ये सम्बन्धित दुसरी वस्तु की माँग पर प्रभाव देखा जाता है । ये सम्बन्धित वस्तुएँ दो प्रकार की हो सकती है ।

(i) **स्थानापत्र वस्तुएँ -** स्थानापत्र वस्तुएँ वे वस्तुएँ हैं जो एक-दूसरे के बदले एक ही उद्देश्य के लिए प्रयोग की जाती है जैसे -चाय-काफी । ऐसी वस्तुओं में जब एक वस्तु की कीमत में वृद्धि होती है तब अन्य बातें समान रहने की दशा में (अर्थात स्थानापत्र वस्तु की कीमत अपरिवर्तित रहने पर) स्थानापत्र वस्तु की माँग में वृद्धि हो जायेगी । उदाहरणार्थ काफी की कीमत बढने की दशा में चाय की माँग में वृद्धि होगी । इस स्थिति को चित्र 5 में दिखाया गया है ।

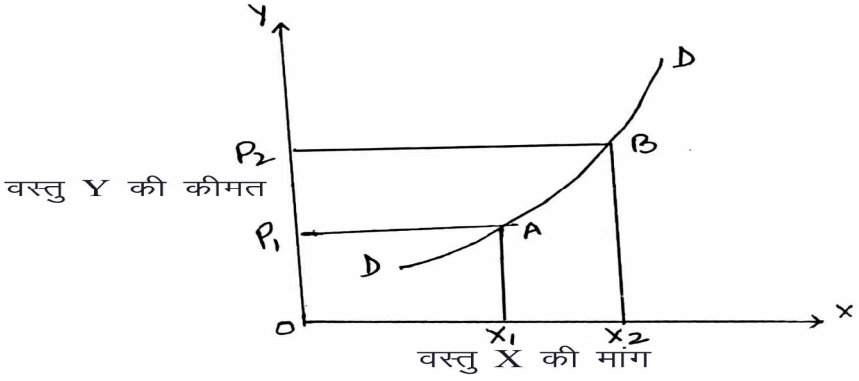

चित्र 7.4 स्थान्नापन वस्तु का माँग वक्र

चित्र 7.4 DD वक्र स्थानापन्न वस्तु के माँग वक्र को प्रदर्शित करता है । वस्तु Y कीमत OP1 होने पर स्थानापन्न वस्तु की माँग OX1 है । यदि X वस्तु की कीमत बढकर OP1 हो जाती है तो अनेक उपभोक्ता Y वस्तु का उपभोग कर स्थानापन्न वस्तु X के उपभोग पर स्थानान्तरित हो जायेंगे जिससे X वस्तु की माँग में वृद्धि हो जायेगी ।

(ii) **पूरक वस्तुएँ -**पूरक वस्तुएँ वे वस्तुएँ हैं जो किसी निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक साथ प्रयोग की जाती है जैसे स्कूटर-प्रेट्रोल । यदि स्कूटर की कीमत में तीव्र वृद्धि हो जाये तब पूरक वस्तु पेट्रोल की माँग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जबकि पेट्रोल की कीमत अपरिवर्तित रहती है इस प्रकार पूरक वस्तुओं की कीमत और खरीदी जाने वाली मात्रा में विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है । जिसे चित्र 7.5 में प्रदर्शित किया गया है ।

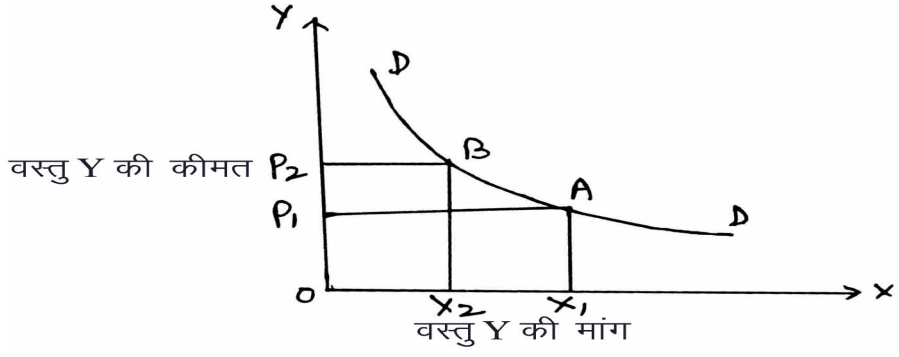

चित्र 7.5 - पूरक वस्तु का माँग वक

चित्र 7.5 में DD पूरक वस्तुओं की माँग रेखा है । यदि Y वस्तु की कीमत OP1 से बढ़कर OP2 हो जाती है तो Y वस्तु की पूरक वस्तु X की माँग OX1 से घटकर OX2 रह जाती है।

(4) माँग के अन्य प्रकार

(a) **संयुक्त माँग -** यह माँग पूरक माँग का ही एक रूप है । जब एक ही उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक ही समय पर एक से अधिक वस्तुओं की माँग एक साथ की जाती है तब ऐसी माँग कहा जाता है । जैसे गेंद-बल्ला, जूता-मोजा, स्कूटर-पेट्रोल आदि । संयुक्त माँग में एक वस्तु का प्रयोग दुसरे के अभाव में नही किया जा सकता ।

(b) **व्यूत्पन्न माँग -** जब एक ही वस्तु की माँग से दूसरी वस्तु की माँग स्वत: उत्पन्न हो जाती है तो इस प्रकार की माँग को व्युत्पन्न कहतें है । जैसे कपड़े की माँग बढ़ने के उत्पादन में प्रयोग होने वाले उत्पति के साधनों की माँग में वृद्धि । यही कारण है कि उत्पति के साधनों की माँग होती है क्योंकि इनकी माँग उस वस्तु की माँग पर निर्भर करती है जिसके उत्पादन में ये साधन प्रयोग किये जाते है।

(c) **सामूहिक माँग -** जब एक वस्तु दो या दो से अधिक उयोगों में माँगी जाती है तब ऐसी वस्तु की माँग को सामूहिक माँग कहते हैं । जैसे-कोयला, बिजली, दूध आदि । कोयला अनेक प्रयोगों में प्रयोग किया जाता है-घर में भोजन बनाने हेतु रेलवे में ईधन शक्ति हेतु कारखानों में भट्टी का ईधन आदि ।

7.2.2 माँग का नियम

माँग का नियम वस्तु की कीमत और उस कीमत पर माँगी उस कीमत पर माँगी जाने वाली मात्रा के गुणात्मक सम्बन्ध को बताता है । उपभोक्ता अपनी मनोवैज्ञानिक प्रवृति के अनुसार अपने व्यावहारिक जीवन में उची कीमत पर वस्तु की कम मात्रा खरीदता है और कम कीमत पर वस्तु की अधिक मात्रा ! उपभोक्ता की इसी मनोवैज्ञानिक उपभोक्ता प्रवृति पर माँग का नियम आधारित है ।

माँग का नियम यह बतलाता है कि 'अन्य बातों के समान रहने पर वस्तु की कीमत एवं वस्तु की मात्रा में प्रतिलोम सम्बन्ध पाया जाता है । दूसरे शब्दों में, अन्य बातों के समान रहने की दशा मे किसी वस्तु की कीमत में वृद्धि होने पर उसकी माँग में वृद्धि हो जाती है ।

मार्शल के अनुसार, 'कीमत में' कमी के फलस्वरूप वस्तु की माँगी जाने वाली मात्रा में वृद्धि होती है तथा कीमत में वृद्धि होने से माँग घटती है । '

सेम्यूलसन के शब्दों में "दिये गये समय में अन्य बातों के समान रहने की दशा में जब वस्तु की कीमत में वृद्धि होती है तब उसकी कम मात्रा की माँग की जाती है व्यक्ति कम कीमत पर कम वस्तुएँ खरीदते है "

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि वस्तु की कीमत और वस्तु की माँग में दी गई स्थिर दशाओं के अन्तर्गत विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है अर्थात्

$$Dp/<0$$

dp = वस्तु की कीमत में परिवर्तन

dQ= वस्तु की माँग में परिवर्तन

उपरोक्त समीकरण बताता है कि कीमत बढने पर माँग घटेगी तथा कीमत घटने पर माँग पर माँग बढ़ेगी । माँग का नियम एक गुणात्मक कथन है, मात्रात्मक कथन नहीं । यह केवल कीमत और माँग के परिवर्तन की दिशा बतलाता है, परिवर्तन की मात्रा नहीं ।

माँग के नियम की क्रियाशीलता कुछ मान्यताओं पर आधारित है दूसरे शब्दों में निम्नलिखित मान्यताओं के अन्तर्गत ही माँग का नियम क्रियाशील होता हैं :

1. उपभोक्ता की आय मे कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए ।
2. उपभोक्ता की रूचि, स्वाभाव पसन्द आदि स्थिर होने चाहिए ।
3. सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतों में कोई परिवर्तन नही होना चाहिए ।
4. किसी नवीन स्थानापन्न वस्तु का उपभोक्ता को ज्ञान नहीं होता ।
5. भविष्य में वस्तु की कीमत में परिवर्तन की सम्भावना नहीं होती ।

7.2.3 मांग की अनुसूची एवं माँग वक्र

किसी दिये समय पर वस्तु की विभिन्न कीमतों एवं उन कीमतों पर माँगी जाने वाली वस्तु की मात्राओं के पारस्परिक सम्बन्धों को बताने वाली तालिका माँग तालिका कहलाती है । दूसरे शब्दों में एक निश्चित समय पद बाजार में दी गई विभिन्न कीमतों पर वस्तु की जितनी मात्राएँ बेची जाती है यदि इस सम्बन्ध को (अर्थात कीमत व माँग के सम्बन्ध को) एक तालिका के रूप में व्यक्त किया जाये तो यह माँग तालिका कहलाती है ।

उदाहरण -मांग तालिका के विचार को एक काल्पनिक उदाहरण से समझा जा सकता है

तालिका 71 काल्पनिक माँग तालिका

वस्तु कीमत प्रति इकाई	मांगी गई वस्तु X की इकाइयाँ
2	200
4	150
6	130
8	100
10	80
12	60

उपर्युक्त तालिका को यदि ग्राफ पेपर पर खीचा जाय तो चित्र 7.6 की भांति हमें DD वक्र प्राप्त होता है । यही मांग वक्र है ।

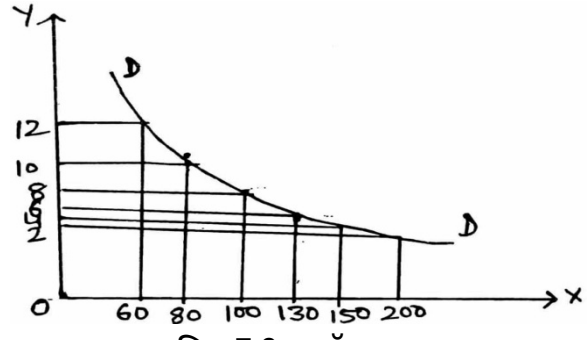

चित्र 7.6 - माँग वक्र

(i) माँग का नियम समझाइए

(ii) माँग अनुसूची से माँग वक्र का निर्माण कीजिए

7.3 माँग के नियम के अपवाद

कुछ दशाओं में कीमत और माँग का प्रतिलोम सम्बन्ध क्रियाशील नहीं होता । ऐसी दशाओं को नियम का अपवाद कहा जाता है जो निम्नलिखित है ।

1. **भविष्य में कीमत वृद्धि की सम्भावना -** कुछ भावी प्रत्याशित प्ररिस्थितियो के कारण जैसे युद्ध, अकाल, क्रान्ति सरकारी नीति, सीमित पूर्ति जैसी सम्भावनाओं में कीमत वृद्धि के बावजूद माँग में उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली जायेगी क्योंकि उपभोक्ता भविष्य में और कीमत वृद्धि की आशंका से वर्तमान माँग को बढ़ा देगा । ऐसी दशा में कीमत और माँग में प्रतिलोम संबंध न होकर सीधा संबंध स्थापित होता है और माँग वक्र बायें से दायें उपर की ओर चढता हुआ बन जाता है ।

2. **प्रतिष्ठा सूचक वस्तुएँ -** प्रतिष्ठासूचक वस्तुओं में मिथ्या आकर्षण (False show) के कारण माँग का नियम क्रियाशील नहीं होता । समाज का धनी वर्ग अपनी श्रेष्ठता प्रदर्शित करने के लिए उँची कीमत वाली वस्तुओं का अधिक क्रय करता है । हीरे जवाहरात, बहुमूल्य आभूषण, कीमती कलाकृतियां आदि वस्तुओं की माँग परिवर्तन का प्रभाव नहीं पड़ता । वास्तविकता तो यह है कि इन वस्तुओं की कीमतों में जैसे -जैसे वृद्धि होती जाती है धनी वर्ग मिथ्या आकर्षण के वशीभूत होकर इन वस्तुओ की माँग भी बढ़ाता जाता है ।

3. **उपभोक्ता की अज्ञानता -** जब उपभोक्ता अपनी अज्ञानता के कारण उँची कीमत देकर यह अनुभव करता है कि उसने अधिक टिकाउ एवं श्रेष्ठ वस्तु खरीदी है तब उँची कीमत माँग को प्रभावित नहीं करती । उसके अतिरिक्त जब किसी वस्तु को घटिया समझकर अनुभोग नहीं करता। ऐसी दशा में कीमत पर उपभोग अधिक होन के स्थान पर कम हो जाता है और माँग का नियम क्रियाशील नहीं होता ।

4. **गिफिन का विरोधाभास -निम्न कोटि की वस्तुएँ -** जब उपभोग की दो वस्तुओं में एक वस्तु निम्न वस्तु हो तथा दूसरी श्रेष्ठ वस्तु हो तब गिफिन का विरोधाभास उत्पन्न होता है । निम्न वस्तुएँ होती है जिनका उपभोग उपभोक्ता द्वारा इसलिए किया जाता है क्योंकि उपभोक्ता अपनी सीमित आय और श्रेष्ठ वस्तु की उँची कीमत के कारण कम कीमत वाली वस्तु अर्थात् निम्न वस्तु का उपभोग करता है । ऐसी दशा में निम्न वस्तु की कीमत में जब कमी होती है तब उपभोक्ता कीमत के घटने के कारण सृजित अरिरिक्त क्रयशक्ति से अच्छी वस्तु का उपभोग बढ़ा देता है तथा निम्न वस्तु का उपभोग घटा देता हैं । इस प्रकार निम्न वस्तु की ओर सर्वप्रथम इंग्लैण्ड के अर्थशास्त्री राबर्ट गिफिन ने ध्यान आकृष्ट किया था । सम्मानार्थ उन्हीं के नाम पर इसे गिफिन का विरोधाभास के नाम से जाना जाता है । गिफिन विरोधाभास वाली निम्न वस्तु के माँग वक्र को चित्र 7.7 में दिखाया गया है ।

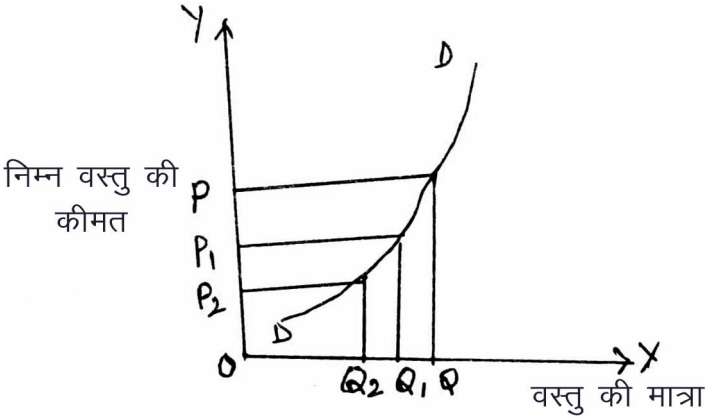

चित्र 7.7 - निम्न वस्तु का माँग वक्र

चित्र 7.7 में DD निम्न वस्तु का माँग वक्र है जो बायें से दायें उपर की ओर बढ़ता हुआ है ।OP कीमत पर उपभोक्ता निम्न वस्तु की OQ मात्रा क्रय करता है । जब उपभोक्ता की क्रय शक्ति में निम्न वस्तु की कीमत घटने (चित्र में OP से OP1) से वृद्धि होती है तब उपभोक्ता निम्न वस्तु का उपभोग OQ से OQ1 तक घटाकर श्रेष्ठ वस्तु की ओर उपभोग बढ़ा देता है । दूसरे शब्दों में निम्न वस्तु की कीमत घटने पर उसकी माँग में कमी होती है । यही माँग के नियम का अपवाद हैं ।

7.4 व्यैक्ति माँग वक्र एवं बाजार माँग वक्र

माँग वक्र दो प्रकार के हो सकते है । (a) व्यक्ति माँग वक्र (b) बाजार माँग वक्र

7.4.1 व्यैक्तिक माँग वक्र - व्यैक्तिक माँग वक्र वह वक्र है जो किसी वस्तु की विभिन्न कीमतों पर एक उपभोक्ता द्वारा उस वस्तु की मांगी गई मात्रा को प्रकट करता है ! नीचे चित्र 7.8 में व्यक्तिगत माँग वक्र को स्पष्ट किया गया है ।

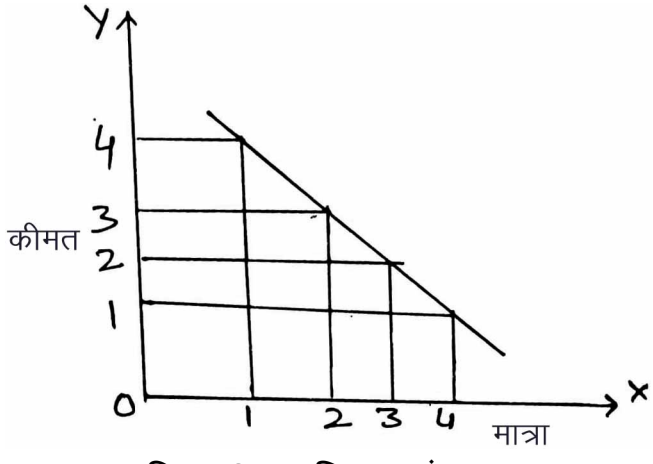

चित्र 7.8 - व्यक्तिगत मांग वक्र

व्यक्तिगत मांग वक्र वह वक्र है जो किसी वस्तु की विभिन्न कीमतों पर एक उपभोक्ता द्वारा उस वस्तु की मांगी गई मात्रा को प्रकट करती है । चित्र 7.8 में व्यक्तिगत मांग वक्र को स्पष्ट किया गया है । इसमें X अक्ष पर वस्तु की मांग तथा Y अक्ष पर कीमत प्रकट की गई है

। मांग वक्र है । इस मांग वक्र का प्रत्येक बिन्दु कीमत तथा मांग में सम्बन्ध प्रकट करता है । जब कीमत 4 रूपए है तो मांग 1 इकाई है । जब कीमत 1 रूपया है । तो मांग 4 इकाइयां है । इस मांग वक्र का ढलान उपर बाई और से नीचे दाई ओर को है, जो यह दर्शाता है कि कीमत अधिक होने पर मांग कम होता है तथा कीमत कम होने पर मांग अधिक होती है ।

7.4.2 बाजार मांग वक्र - बाजार मांग वक्र किसी वस्तु विशेष की विभिन्न कीमतों पर विभिन्न उपभोक्ताओं द्वारा मांगी गई मात्राओं के जोड को प्रकट करता है । इस मांग वक्र को व्यक्तिगत मांग वक्रों के समस्त जोड द्वारा खीचा जाता है । निम्नलिखित मांग तालिका 7.2 के आधार पर बाजार मांग वक्र को प्रकट किया गया है ।

तालिका 7.2 -उपभोक्ता A व B की माँग

वस्तु X की कीमत	उपभोक्ता A की माँग	उपभोक्ता B की मांग	बाज़ार मांग
1	4	5	9
2	3	4	7
3	2	3	5
4	1	2	3

चित्र 7.9 में उपरोक्त तालिका 7.2 के आधार पर माँग वक्र प्रकट किया गया है ।

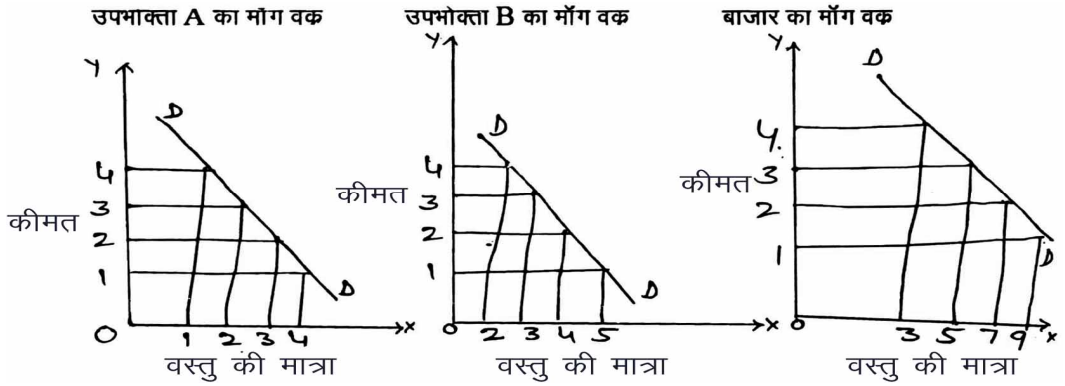

चित्र 7.9- बाजार माँग वक्र

चित्र 7.9 में OX अक्ष पर मात्रा तथा OY अक्ष पर कीमत प्रकट की गई है । इसके 1 चित्र में 'A' की मांग तथा (ii) में 'B' की मांग वक्र तथा (iii) में बाजार की मांग वक्र प्रकट की गई है । जब कीमत 4 रूपए प्रति इकाई है तब 'A' की मांग 1 इकाई और 'B' की मांग 2 इकाइयां है यदि बाजार में केवल दो उपभोक्ता हैं तब बाजार मांग 1+2= 3 इकाइयां होंगी । व्यक्तिगत मांग वक्रों के समस्तर जोड (Horizontal Summation) द्वारा बाजार मांग वक्र प्राप्त हो जाता है, इसलिए इसका ढलान भी ऋणात्मक (Negative) है ।

बोध प्रश्न - 2

(i) माँग के नियम के अपवाद बताइए ।

(ii) वैयक्तिक माँग वक्र एवं बाजार मांग वक्र में अन्तर स्पष्ट कीजिए ।

7.5 तटस्थता वक्रो से माँग वक्र की व्युत्पति

उपभोक्ता के मांग वक्र से आप भली भांति परिचित हो चुके हैं परन्तु मांग वक्र मार्शल की इस धारणा के आधार पर खींचा जाता है कि तुष्टि गुण का मापन संभव है और मुद्र की सीमान्त उपयोगिता स्थिर रहती है तटस्थता वक्र की विधि में मांग की इन अवास्तविक मान्यताओं के बिना भी व्युत्पति की जाती है अत: अब हम उपभोक्ता के मांग वक्र तटस्थता वक्र विधि से व्युत्पदित करेगा । इसके लिए यह पता होना चाहिए कि उपभोक्ता का अधिमान कम कैसा है उसकी आय कितनी है । उसका अधिमान कम तो हमें उसके तटस्थतामानचित्र द्वारा ज्ञात हो जाएगा और उसकी आय बजट रेखा में आ जाएगी । मांग वक्र की व्युत्पति की दो विधि निम्न प्रकार है ।

7.5.1 व्यैक्तिक मांग वक्र निकालने की प्रथम विधि-

माँग के विवेचन में बतलाया जा चुका है कि माँग -वक्र, अन्य बातों के समान रहने पर, विभिन्न कीमतों पर माँग की विभिन्न मात्राएँ दर्शाता है । थोड़ा -सा ध्यान देने पर यह स्पष्ट हो जाएगा कि एक व्यक्तिगत माँग का उपभोक्ता के कीमत उपभोग वक्र -(PCC) से गहरा सम्बन्ध होता है। नीचे तटस्थता वक्रों की सहायता से व्युत्पत्ति स्पष्ट की गयी है ।

चित्र 7.10 में OX अक्ष पर X वस्तु की मात्राऐं व OX अक्ष पर मुद्रा की मात्राएँ आँकी गई है । MN, MN1, MN2 व MN3 विभिन्न कीमत रेखाएँ हैं और MABCD कीमत उपभोग वक्र है । उपभोक्ता के पास कुल मुद्रा OM रूपये है । A बिन्दु पर X की OA1 मात्रा ली जाती है । जिसके लिए उपभोक्ता मुद्रा की MR मात्रा देता है । दूसरे शब्दों में, वह A बिन्दु पर X की OA1, मात्रा व मुद्रा की OR=AA1 राशि का संयोग लेता है । MN कीमत - रेखा का ढाल OM/ON है और यह X की प्रति इकाई कीमत भी है (चूँकि OM= कुल मुद्रा व ON= X की कुल मात्रा है, जो OM मुद्रा -राशि के व्यय से प्राप्त होती है)

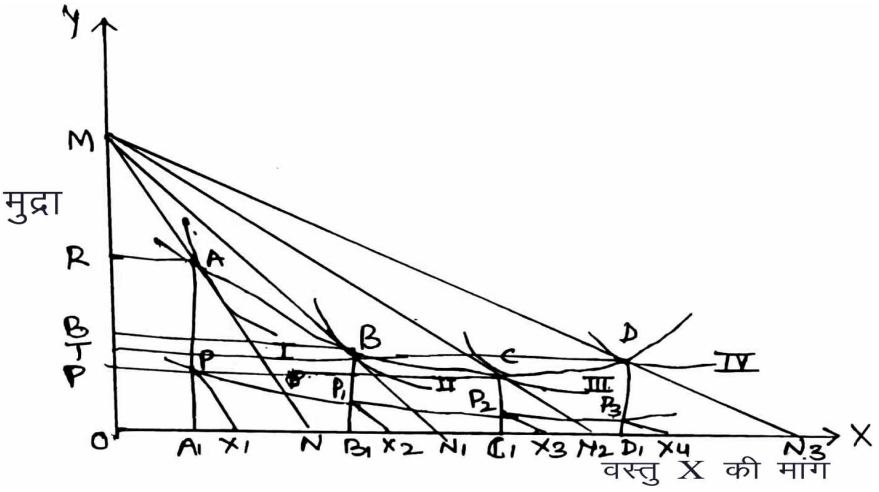

चित्र 7.10 - व्यैक्तिक माँग वक की त्युत्पति -

अब हम OX अक्ष पर A1 X1 वस्तु की एक इकाई माप लेते है , और X1 मे से PX1 रेखा MN के समांतर (parallel) डालते है , जो AA1को p पर काटती हैं ! Pबिन्दु व्यक्तिगत उपभोक्ता के मांग वक्र का एक बिन्दु हैं! PA1 प्रति इकाई कीमत पर Xवस्तु की OA1 मात्रा

होती है! यह आसानी से स्पष्ट किया जा सकता है ! किPA1/ A1X1=PA1 = प्रति इकाई कीमत हो जाती है!

इसी तरह आगे बढ़ते हुए हम मांग वक्र के अन्य बिन्दु p1,P2 व P3 निकाल लेते है और इनको मिलाकर वैयक्तिक मांग वक्र बन जाता है ! चित्र में P1B1 प्रति इकाई कीमत पर कि मांग की X मात्रा P2C1 कीमत पर OCI मांग की मात्रा एवं P3D1 कीमत पर मांग की ODI होती है ! इस प्रकार कीमत उपभोक्ता वक्र (PCC) का उपयोग करके एक उपभोक्ता का मांग वक्र निकाला जा सकता है !

वैयक्तिक मांग - वक्रो से बाजार मांग - वक्र का निर्माण सरलता से किया जाता है लेकिन स्मरण रहे की उपयुक्त चित्र 7.10 मे हमने मांग वक्र एक वस्तु के लिए एक उपभोक्ता तटस्थता -वक्रो की सहायता से निकालता हैं !

7.5.2 तटस्थों -वक्रो से वैयक्तिक मांग - वक्र निकालने की द्वितीय विधि -

एक दूसरी विधि का प्रयोग करके तटस्थता - वक्रो से मांग की व्युत्पति दिखाई जा सकती है ! इसमे दो चित्रो का उपयोग होने से विवेचन अपेक्षाकृत अधिक सरल व अधिक स्पष्ट हो जाता है ! इसके लिए चित्र नीचे दर्शाए गए है ! (चित्र 7.11)

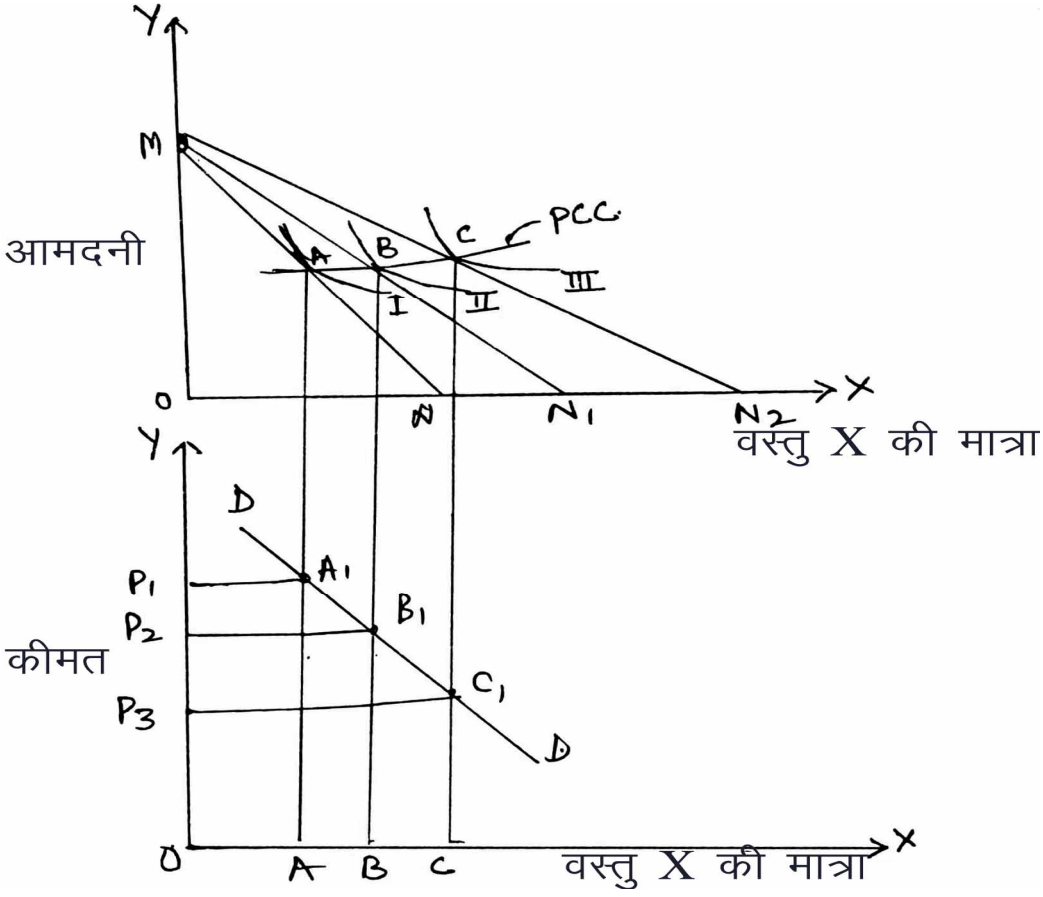

चित्र 7.11 - व्यैक्तिक मांग वक्र व्युत्पत्ति

चित्र 7.11 के उपर भाग में OX अक्ष पर वस्तु की मात्रा व OY अक्ष पर मौद्रिक आय दिखायी जाती MN, MN1 व MN2 तीन कीमत रेखाएँ है तथा ABC कीमत उपभोग वक्र (PCC) है । MN कीमत रेखा होने पर वस्तु की कीमत OM/ON होती है जो चित्र के निचले भाग में OY अक्ष पर OP1 प्रति इकाई कीमत के द्वारा दर्शायी गयी है । इसी प्रकार OP2 प्रति इकाई कीमत OM/ON का परिणाम है,, तथा OP3 कीमत OM/ON2 का परिणाम है ।

चित्र 7.11 के उपरी भाग में A,. B व C बिन्दुओं के निचले भाग पर तीन लम्ब डालते हैं जो निचले OX अक्ष को क्रमश: A, B व C बिन्दुओं पर काटते हैं ।

अत: OP1 कीमत पर माँग की मात्रा= OA

OP2 कीमत पर माँग की मात्रा = OB तथा

OP3 कीमत पर माँग की मात्रा = OC होती हैं ।

P1 की सीध में P1A1 = OA,P2 की सीध में P2B1 तथा P3 की सीध में मापने पर माँग वक्र के तीन बिन्दु क्रमश: A1, B1, व C1 प्राप्त हो जातें हैं जिनकों मिलाने पर DD माँग वक्र बन जाता है ।

इस प्रकार तटस्थता वक्रों का उपयोग करके माँग वक्र निकाला जाता है ।

7.6 सारांश

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि तटस्थता वक्र विश्लेषण व्यैक्तिक उपभोक्ता की माँग का अध्ययन करने के लिए उपयोगिता विश्लेषण के विकल्प के रूप में प्रयुक्त किया जाता है और यह अधिक वैज्ञानिक व्यापक एवं उपयोग है इसके पीछे मान्यताएँ अपेक्षाकृत कम व निष्कर्ष अधिक है इस कारण यह उपयोगिता विश्लेषण से बेहतर माना गया है ।

7.7 बोध प्रश्न

7.8.1 निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 500 शब्दों में दीजिये

प्रश्न 1. माँग वक्र की परिभाषा दीजिये । तटस्था वक्र की सहायता से व्यैक्ति मांग वक्र की व्युत्पति चित्र की सहायता से स्पष्ट कीजिए ।

प्रश्न 2. तटस्थता वक्र विश्लेषण उपयोगिता विश्लेषण की तुलना में वैज्ञानिक उपयोगी तथा व्यापक है क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? विवेचना कीजिए ।

7.8.2 निम्न प्रश्नों के उत्तर 150 शबदो में दीजिए ।

प्रश्न 1. प्रश्न 1 माँग का नियम क्या है इसके उपवादों की व्याख्या कीजिए ।

प्रश्न 2. प्रश्न 2 उदाहरण का उपयोग करते हुए व्यैक्ति एवं बाजार माँग वक्र की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए ।

7.8 सन्दर्भ ग्रंथ

आहूजा, एच० एल० (2006) : उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त
एस चन्द एण्ड कम्पनी लि० नई दिल्ली

नाथूराम का, लक्ष्मीनारायण (2006) : व्यष्टि अर्थशास्त्र, मलिक
एण्ड कम्पनी, जयपुर

जैन, टी०आर० एवं अन्य (2007) : व्यष्टि अर्थशास्त्री, वी० के० एन्टर प्राईज नई दिल्ली

इकाई - 8

माँग एवं पूर्ति की लोच की अवधारणा एवं मापन. आय लोच, तिरछी लोच

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 लोच की अवधारणा एवं परिभाषा

8.3 मांग की लोच की श्रेणियां

8.4 मांग की लोच की श्रेणियां

8.4.1 कुल व्यय विधि

8.4.2 प्रतिशत विधि

8.4.3 बिन्दु विधि

8.4.4 मांग की चाप लोप विधि

8.5 मांग की आय लोच

8.6 मांग की तिरछी लोच

8.7 पूर्ति की लोच की अवधारणा

8.8 पूर्ति की लोच की अवधारणा

8.9 पूर्ति की लोच की माप

8.10 मांग की लोच के निर्धारक तत्व

8.11 मांग की लोच का महत्व

8.12 पूर्ति के लोच के निर्धारक तत्व

8.13 सारांश

8.14 सन्दर्भ ग्रंथ

8.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.16 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.0 उदेश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

- मांग एवं पूर्ति की लोच की अवधारणा समझ सकेगें ।
- मांग एवं पूर्ति को लोच की विभिन्न श्रेणियों के बारे में जान सकेंगे ।
- मांग एवं पूर्ति की लोच की विवेचना कर सकेंगे ।

उपभोक्ता की आय में परिवर्तन होने से वस्तु की मांग पर पड़ने वाले प्रभाव को समझ सकेगें ।

एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन से होने उससे संबंधित दूसरी वस्तु की मांग पर पड़ने वाले प्रभाव को समझ सकेंगे ।

8.1 प्रस्तावना

वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर उसकी मांग में परिवर्तन हो जाता है । कीमत में परिवर्तन से कुछ वस्तुओं की मांग में अत्यधिक परिवर्तन होता हैं, कुछ परिवर्तनों की मांग में कम परिवर्तन होता है और कुछ वस्तुओं की मांग अप्रभावित रहती है । वस्तु की मांग पर केवल वस्तु की कीमत का ही नहीं उपभोक्ता की आय का भी प्रभाव पड़ता है । एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने से उसकी स्थानापन्न वस्तु एवं पूरक वस्तु की मांग भी प्रभावित होती है ।

वस्तु की कीमत में परिवर्तन का केवल वस्तु की मांग पर ही नहीं उसकी पूर्ति पर भी प्रभाव पड़ता है । वस्तु की कीमत और उसकी पूर्ति में धनात्मक संबंध होता है ।

8.2 लोच की अवधारणा एवं परिभाषा

इस पाठ्यक्रम की इकाई संख्या 3 में हमने माँग के नियम का अध्ययन किया है । यह नियम हमें बताता है अन्य निर्धारक तत्वों में परिवर्तन नहीं होने पर जब किसी वस्तु के मूल्य में कमी होती है तो उसकी माँग बढ़ती है और जब उसके मूल्य में वृद्धि होती है तो उसकी माँग घटती है । यह एक गुणात्मक नियम है, परिणात्मक नहीं यह केवल दिशा बताता है अर्थात परिवर्तन के परिमाण को नहीं बताता । किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप उसकी माँग में होने वाले परिवर्तन की मात्रा को माँग की लोच कहते है । हम यह भी देखते हैं कि कीमत में थोड़ा सा परिवर्तन का प्रभाव सभी वस्तुओं की मांग पर एक समान नहीं पड़ता है । कुछ वस्तुओं की कीमत में थोड़ा सा परिवर्तन करने पर ही उनकी मांग की मात्रा में काफी परिवर्तन हो जाता है और कुछ वस्तुएं ऐसी होती हैं जिनकी कीमत में काफी परिवर्तन करने पर भी उनकी मांग की मात्रा में परिवर्तन बहुत कम होता है । मांग में होने वाले परिवर्तन की मात्रा की लोच की अवधारणा का प्रतिपादन प्रो. मार्शल ने किया था । प्रो. मार्शल के अनुसार बाजार में मांग की लोच का कम या अधिक होना इस बात पर निर्भर करता है कि एक निश्चित मात्रा में कीमत के घट जाने पर माँग की मात्रा में अधिक वृद्धि होती है या कम तथा एक निश्चित मात्रा में कीमत के बढ़ जाने पर मांग की मात्रा में अधिक कमी आती है या कम । "

लैफटविच के अनुसार माँग की लोच एक वस्तु की कीमत मे परिवर्तन से उसकी माँग की मात्रा की प्रतिक्रिया शीलता की माप होती है । "

प्रो. ईस्थम के अनुसार किसी वस्तु की कीमत में एक प्रतिशत परिवर्तन के फलस्वरूप उस वस्तु की माँग में जो परिवर्तन होगा उसे मांग' की लोच कहतें हैं । "

$$\text{मांग की लोच} = \frac{\text{मांग में प्रतिशि परितर्वतन}}{\text{कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

श्रीमती जॉन राबिन्सन के अनुसार मांग की लोच, किसी कीमत में थोड़े से परिवर्तन के फलस्वरूप खरीदी जाने वाली मात्रा के अनुपातिक परिवर्तन में कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर प्राप्त होती हैं ।"

$$\text{माँग की लोच} = \frac{\text{माँग में अनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}} = \frac{\frac{\text{मांगी गयी मात्रा में परिवर्तन}}{\text{प्रारम्भ में मांगी गयी मात्रा}}}{\frac{\text{कीमत में परिवर्तन}}{\text{प्रारम्भिक कीमत}}}$$

अथवा

$$ed = \frac{\frac{\Delta x}{x}}{\frac{\Delta p}{p}} = \frac{\Delta x}{x} \times \frac{p}{\Delta p}$$

मांग की लोच

$\Delta x = x$

$x = x$

यहां पर $\Delta p =$ वस्तु की मांग मे परिवर्तन की मात्रा

वस्तु की पूर्व मात्रा

कीमत में परिवर्तन, p = पूर्व कीमत

8.3 माँग की लोच की श्रेणियाँ

माँग की लोच की श्रेणियाँ निम्न प्रकार हैं

1. पूर्णतया लोचदार माँग (Perfeclty Elastic Demand)

किसी वस्तु की कीमत में थोड़ा सा परिवर्तन होने पर या परिवर्तन नहीं होने पर भी उसकी माँग में परिवर्तन होता रहता है तो इसे पूर्णतया लोचदार माँग कहते हैं ।

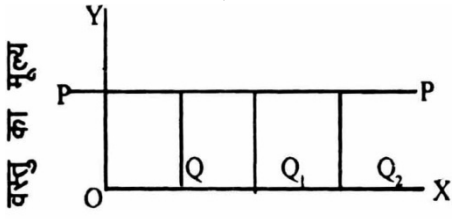

वस्तु की मांग मात्रा

चित्र संख्या 8.1 से स्पष्ट है कि माँग की रेखा सदैव आधार रेखा के समानांतर रहती है । इस चित्र में बताया गया है op कीमत पर वस्तु की माँग OQ होती है, कभी OQ1 एवं कमी OQ2 हो जाती है । वस्तु की कीमत op पर स्थिर है और इसकी माँग घटती-बढती रहती है । पूर्णतया लोचदार माँग एक काल्पनिक विचार है । वास्तविक जीवन में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसकी माँग पूर्णतया लोचदार होती है ।

2. अत्यधिक लोचदार माँग (Highly elastic demand)

जिन वस्तुओं के मूल्य में थोड़ा सा परिवर्तन करने पर उनकी माँग में बहुत अधिक परिवर्तन होता जाता है । तो ऐसी वस्तुओं की माँग को अत्यधिक लोचदार माँग कहते हैं । अर्थात् जब किसी वस्तु की माँग में अनुपातिक परिवर्तन, कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से अधिक होता है तो ऐसी दशा को अत्यधिक लोचदार माँग कहते हैं । उदाहरण के लिए यदि किसी वस्तु के मूल्य में प्रतिशत की वृद्धि होने पर उसकी माँग में 15 प्रतिशत की कमी हो जाये तो ऐसी वस्तु

की माँग अत्यधिक लोचदार कही जायेगी । इसे इकाई से अधिक "लोच" भी कहते है गणित की भाषा में इसे ed>1 द्वारा व्यक्त किया जाता है ।

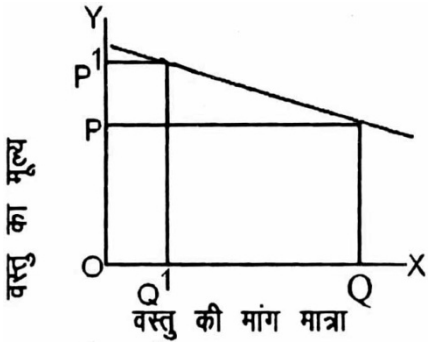

चित्र सख्या 8.2

चित्र 8.2 में देखा जा सकता है कि जब वस्तु की कीमत OP थी तो इसकी माँग OQ थी और जब कीमत बढ़कर OP1 हो जाती है तो माँग घटकर OQ1 हो जाती हैं । माँग में अनुपातिक परिवर्तन (QQ1) से कीमत में आनुपातिक परिवर्तन (PP1) कम है । ऐसी वस्तुओं का माँग वक्र आधार रेखा पर कम ढालू होता है । इस प्रकार की माँग की लोच प्राय: विलासित की वस्तुओं में पायी जाती है ।

3. लोचदार माँग (Elastic Demand)

जब किसी वस्तु के मूल्य में होने वाला परिवर्तन और इसके परिणामस्वरूप उसकी माँग में होने वाला परिवर्तन बराबर होता है तो इसे लोचदार माँग कहते हैं । अर्थात जब मांग का आनुपातिक परिवर्तन कीमत कं आनुपातिक परिवर्तन के बराबर होता है तो इसे लोचदार माँग कहते है । यह लोच इकाई के बराबर (ed=1) होती है । उदाहरण के लिए यदि किसी वस्तु के मूल्य में 20 प्रतिशत की कमी हो जाने पर उस वस्तु की माँग में भी 20 प्रतिशत की वृद्धि हो जाये तो उस वस्तु की माँग लोचदार माँग कहीं जायेगी ।

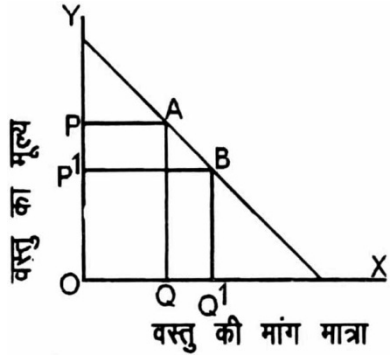

चित्र संख्या 8.3

चित्र 8.3 में OP कीमत पर वस्तु की माँग OQ हैं कीमत कम होकर OP1 हो जाती है तो वस्तु की माँग बढ़कर OQ1 हो जाती है । अर्थात कीमत में PP1 की कमी और वस्तु की माँग में OQ1 की वृद्धि बराबर है । आरामदायक वस्तुओं की माँग की लोच प्राय: लोचदार होती है उनकी लोच इकाई के बराबर होती (ed=1)

4. बेलोचदार माँग (Inelartic Demand)

जब किसी वस्तु की माँग में होने वाला परिवर्तन उसके मूल्य में होने वाले परिवर्तन से कम होता है तो इसे बेलोचदार माँग कहते हैं । जब मांग का आनुपातिक परिवर्तन कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से कम होता है तो माँग बेलोचदार होती है । उदाहरण के लिए यदि किसी वस्तु का मूल्य 20 प्रतिशत कम होने पर भी उसकी माँग से केवल 5 प्रतिशत की वृद्धि होती है तो ऐसी माँग को बेलोचदार माँग कहते हैं । इसे इकाई से कम लोच भी कहते है । गणित की भाषा में इसे ed>1 द्वारा व्यक्त किया गया है ।

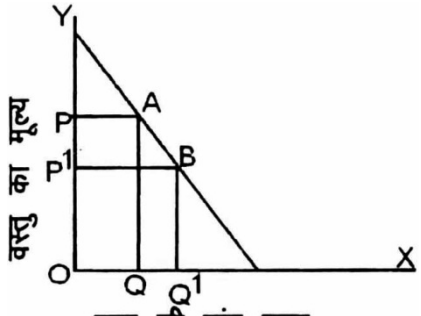

चित्र संख्या 8.4

चित्र संख्या 8.4 में बताया गया है कि वस्तु की कीमत OP होने पर उसकी माँग OQ है । जब कीमत घटाकर OP 1 कर दी जाती है तो माँग बढ़कर OQ1 हो जाती है । हम देखते हैं कि कीमत Pएवं P1 का अन्तर मांग Q एवं Q1 की तुलना में बहुत अधिक हैं अर्थात् कीमत में कमी अधिक मात्रा में की गयी है जबकि माँग में वृद्धि बहुत कम हुई हैं ।

5. पूर्णतया बेलोचदार माँग (Perfectly Inelastic Demand)

किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर भी उसकी माँग में कोई परिवर्तन नहीं होता, इसे पूर्णतया बेलोचदार माँग कहते हैं । वस्तु की कीमत में चाहे कितनी भी वृद्धि हो या कितनी भी कमी हो उसकी माँग की मात्रा अपरिवर्तित ही रहती है ।

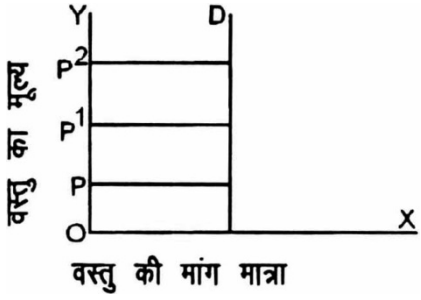

चित्र संख्या 6.5

चित्र 8.5 का अध्ययन करने पर हम देखते हैं कि वस्तु की कीमत op होने पर माँग OQ है, कीमत बढ़कर OP और OP2 होने पर भी माँग ०ए ही रहती है । इस दशा में माँग रेखा आधार रेखा पर लम्ब होती है ।

इस प्रकार की माँग की लोच भी काल्पनिक होती है । वास्तविक जीवन में इस प्रकार की माँग की लोच देखने में नहीं आती है । गणितीय भाषा में इसे e=0 कहा जाता है ।

माँग की कीमत लोच के रूप (Forms of Price Elasticity of Demand)

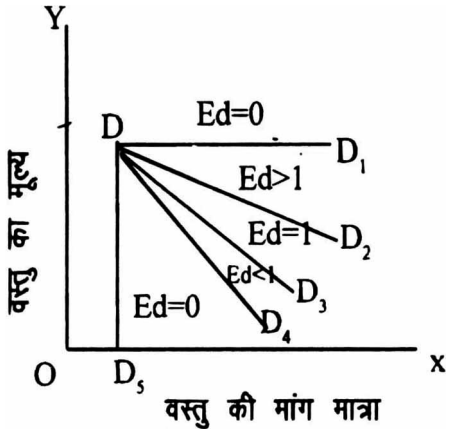

चित्र संख्या-8.6

चित्र संख्या - 8.6 में हम देखते हैं कि DD3 वक्र लोचदार माँग वक्र है । इससे DD1 वक्र और DD5 वक्र की दूरी समान है । DD3 से मांगा वक्र से DD1 मांग वक्र की और बढ़ते हैं तो मांग की लोच बढ़ती जाती है । अत: रेखाचित्र में DD2 माँग वक्र अधिक लोचदार माँग वक्र है और DD1 वक्र पूर्णतया लोचदार माँग वक्र है । इसके विपरीत जैसे-जैसे हम DD3 वक्र से DD5 वक्र की तरफ बढ़ते हैं तो माँग वक्र कम लोचदार होता जाता है । रेखा चित्र में DD4 माँग चक्र बेलोचदार या कम लोचदार माँग वक्र और DD5 माँग पूर्णतया बेलोचदार माँग वक्र है ।

8.4 माँग की लोच की नाप (Measurement of Elasticity of Demand)

यह जानने के लिए कि माँग में लोच कितनी हैं, इसके लिए लोच की सही माप आवश्यक है । इसके लिए निम्न विधियाँ प्रमुख हैं :-

8.4.1 कुल व्यय विधि 8.4.2 प्रतिशत विधि 8.43 बिन्दु विधि 8.4.4 माँग की चाप लोच

8.4.1 कुल व्यय विधि (Total expenditure method) :-

इस विधि की खोज डा. एल्फर्ड मार्शल द्वारा की गयी थी । किसी वस्तु की लोच तथा उस पर किये गये कुल व्यय में घनिष्ठ संबंध होता है । इस विधि के अनुसार किसी वस्तु के मूल्य में होने वाले परिवर्तन के परिणामस्वरूप उस पर किये जा रहे व्यय पर पडने वाले प्रभाव की माप करके उस वस्तु की माँग की लोच का पता लगाया जा सकता है । इसके अन्तर्गत माँग की लोच का निर्धारण करने के लिए किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन से पहले उपभोक्ता उस पर कितना व्यय करता था और कीमत में परिवर्तन के बाद कितना व्यय करता है इनका तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है । इसमें कुल व्यय की राषि वस्तु की क्रय की गयी मात्रा को उसकी कीमत से गुणा करके ज्ञात करते हैं । इसमें यह देखा जाता हैं कि कुल व्यय राशि पहले से कम है, अधिक है या बराबर है इस प्रकार माँग की लोच की तीन श्रेणियाँ होती हैं -

1. माँग की लोच इकाई के बराबर (ED= 1) यदि उपभोक्ता किसी वस्तु की कीमत बढ़ने पर उसकी माँग कम कर देता है और कीमत घटने पर माँग बढ़ा देता है और इस वस्तु पर किये जाने वाले कुल व्यय की राशि समान बनाये रखता है, तो ऐसी वस्तु की माँग की लोच को इकाई के बराबर कहते हैं ।

2. माँग की लोच इकाई से अधिक (ED>1) यदि उपभोक्ता किसी वस्तु की कीमत बढने पर उस वस्तु की माँग इतनी कम कर देता है कि कुल व्यय पहले की तुलना में कम हो जाता है और कीमत घटाने पर माँग इतनी अधिक कर देता है कि कुल व्यय पहले की तुलना में अधिक हो जाता है इस स्थिति को जिसमें कीमत में वृद्धि होने पर कुल व्यय कम हो जाये और कीमत में कमी होने पर कुल व्यय अधिक हो जायें, इसे अधिक लोचदार माँग कहते हैं ।

3. माँग की लोच इकाई से कम (ED>1) यदि उपभोक्ता किसी वस्तु की कीमत बढ़ने पर उस वस्तु की माँग तो घटा देता है, किन्तु उसकी कीमत में वृद्धि होने की तुलना में कम मात्रा में घटाता है इसके परिणाम स्वरूप उसका कुल व्यय पहले की तुलना में अधिक हो जायेगा । इसी प्रकार उस वस्तु की कीमत में कमी होने पर उस वस्तु की माँग तो बढ़ा देगा किन्तु उसकी कीमत में कमी होने की तुलना में कम मात्रा में बढ़ायेगा इससे उसका व्यय पहले की तुलना में घट जायेगा । इस प्रकार हमने देखा कि कुल व्यय उसी दिशा में बदलता है जिस दिशा में वस्तु की कीमत बदलती है । वस्तु की कीमत में वृद्धि होने पर उस पर होने वाला कुल व्यय बढ़ जाता है और कीमत में कमी होने पर कुल व्यय घट जाता है तो ऐसी स्थिति में माँग की लोच इकाई से कम होती है ।

उपरोक्त तीनों स्थितियों को निम्न सारणी 8.1 एवं चित्र 8.7 की सहायता से समझाया जा सकता है ।

सारणी 8.1

माँग की लोच की कुल व्यय रीति

वस्तु का मूल्य	प्रथम अवस्था Ed=I		द्वितीय अवस्था Ed>I		तृतीय अवस्था Ed<1	
रु.प्रति किलो	मांगी गई मात्र (कि) व्यय रु		मांगी गई (कि) कुल व्यय रु		मांगी गई मात्रा (कि) व्यय रु	
10	8	80	8	80	8	80
20	4	80	2	40	5	100
5	16	80	24	120	14	70

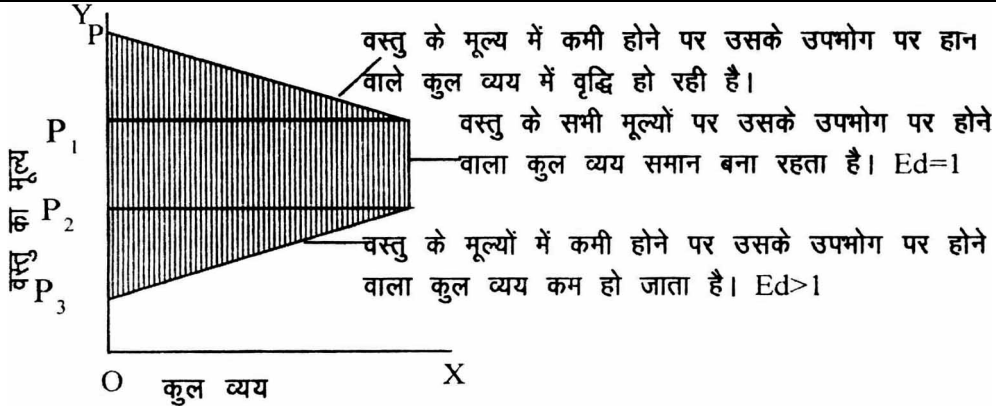

चित्र 8.7 के द्वारा व्यय विधि में मांग की लोच की माप एक चित्र द्वारा समझायी गयी है । OX- अक्ष पर वस्तु के उपभोग पर होने वाले कुल व्यय को दर्शाया गया है । और OY- अक्ष

पर वस्तु के मूल्य को दर्शाया गया है । इस चित्र में यह देखतें हैं कि जब वस्तु का मूल्य OPसे गिरकर OP1 तक आता है वैसे-वैसे कुल व्यय बढ़ता जाता है । इस प्रकार मूल्य OP1 तक लोच इकाई से अधिक है । OP1 से OP2 तक मूल्य घटता है, तब वस्तु पर किया जाने वाला कुल व्यय स्थिर रहता है । अत: यहाँ पर लोच इकाई के बराबर है । OP2 से OP3 तक जब मूल्य घटता है तब वस्तु पर किया जाने वाला कुल व्यय घटता जाता है । यहाँ लोच पर इकाई से कम है ।

8.4.2 प्रतिशत विधि (Percentage Method)

इस विधि का प्रतिपादन अर्थशास्त्री फ्लक्स ने किया था । कुल व्यय रीति में हम माँग की लोच को संख्यात्मक रूप में नहीं माप सकते । माँग की लोच को संख्यात्मक रूप में मापने के लिए इस विधि की खोज की गयी । इस विधि के अन्तर्गत किसी वस्तु की कीमत में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन की तुलना माँग में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन के साथ की जाती है । यदि किसी वस्तु की माँग अधिक लोचदार होगी । यदि माँग में प्रतिशत परिवर्तन उसकी कीमत में प्रतिशत परिवर्तन की तुलना में कम है तो माँग की लोच इकाई से कम होगी और यदि माँग में प्रतिशत परिवर्तन कीमत में प्रतिशत परिवर्तन के बराबर है तो माँग की लोच इकाई के बराबर होगी ' इस विधि में वस्तु की मांग में होने वाले आनुपातिक परिवर्तन में उसकी कीमत में होने वाले आनुपातिक से भाग देकर मांग की लोच ज्ञात की जाती है ।

सूत्र निम्न प्रकार है -

$$\text{मांग की लोच} = \frac{\text{मांग में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{कीमत मे प्रतिशत परिवर्तन}}$$

$$\text{अथवा मांग की लोच} = \frac{\frac{\text{मांगी में वृद्धि या कमी}}{\text{प्रारम्भिक माँग}}}{\frac{\text{कीमत में वृद्धि या कमी}}{\text{प्रारम्भिक कीमत}}}$$

$$Ed = \frac{\frac{\Delta q}{q}}{\frac{\Delta p}{p}} \text{ या } \frac{\Delta q}{q} \times \frac{p}{\Delta p} \text{ या } \frac{\Delta q}{q}\frac{p}{q}$$

(मांग वक्र की लम्बाई 4" हैं और बिन्दु Y हैं । अत: AY की लम्बाई 2" है ।)

(ii) X बिन्दु पर माँग की लोच = XB/XA = 3"/1" = 3 इकाई से अधिक

(मांग वक्र AX की लम्बाई 1 " हैं और BX की लम्बाई 3"है ।)

(iii) Z बिन्दु पर माँग की लोच = ZB/ZA = 1/3 =0.33 है

(मांग वक्र 28 की लम्बाई 3" हैं और ZB की लम्बाई 1"है ।)

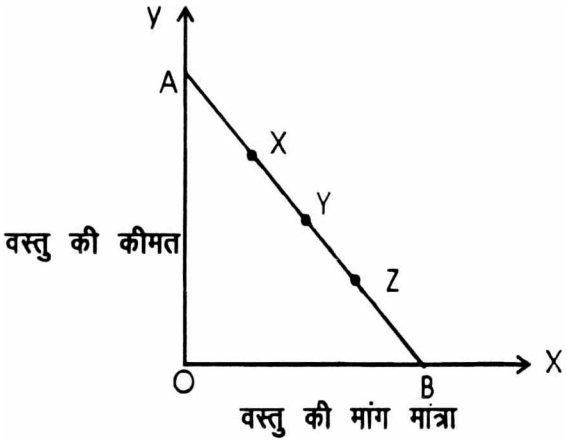

चित्र 8.8

चित्र 8.8 में AB एक सीधी माँग रेखा है । XYZ इस पर लये गये तीन बिन्दु है । X बिन्दु पर माँग की लोच इकाई से अधिक है । Y बिन्दु पर माँग की लोच इकाई के बराबर है और Z बिन्दु पर माँग की लोच ज्ञात करतें हैं ।

वक्र आकार के मांग वक्र पर भी मांग की लोच ज्ञात करने का सूत्र वही है जिसकी सहायता से सीधी मांग रेखा पर मांग की लोच ज्ञात की जाती है । वक्र आकार के माँग वक्र पर जिस बिन्दु पर माँग की लोच ज्ञात करनी होती है । उस बिन्दु पर एक स्पर्श रेखा खींचनी होती है जो OX और OY अक्षों तक जाती है । इसी स्पर्श रेखा की सहायता से उपर बतायें गये सूत्र की सहायता से माँग की लोच ज्ञात कर सकते हैं । माँग वक्र चित्र 8.9 का अध्ययन करने पर हम देखते हैं कि DD वक्र आकार का मांग वक्र है । इस वक्र पर X बिन्दु पर माँग की लोच ज्ञात करने के लिए एक स्पर्श रेखा खींचते है । यह स्पर्श रेखा OX अक्ष से A बिन्दु पर और OY अक्ष को B बिन्दु पर काटती है । X बिन्दु पर माँग की लोच ज्ञात करने के लिए सूत्र है ।

जिस बिन्दु पर लोच ज्ञात करनी हैं

$$\frac{\text{उस बिन्दु से नीचे का भाग}}{\text{उस बिन्दु से ऊपर का भाग}}$$

इस सूत्र के आधार पर यह पता लगाया जाता है कि माँग की लोच इकाई से अधिक है, इकाई के बराबर है या इकाई से कम हैं ।

(i) उदाहरणार्थ : 20 रू. कीमत पर वस्तु की माँग है 200 कि. ग्रा. इसकी कीमत घटाकर 15 रू. कर दी जाती है तो वस्तु की माँग बढ़कर 280 कि. ग्रा. हो जाती है । इसकी माँग की लोच होगी

P= 20रु. q = 200 कि. ग्रा.

$\Delta p = 20 - 15 = 5,\ \Delta q = 280 - 200 = 80$

$$Ed = \frac{\Delta q}{q} \times \frac{p}{q} = \frac{80}{5} \times \frac{20}{200} = \frac{1600}{1000} = \frac{8}{5} = 1.6 \text{ कि.ग्रा.}$$

Ed =1-6 इकाई से अधिक लोचदार मांग

(ii) वस्तु की कीमत 20 रू. है तो वस्तु की माँग है 200 कि. ग्रा. कीमत घटाकर 10 रू. कर देने पर वस्तु की माँग बढ़कर 300 कि ग्रा. हो जाने पर माँग की लोच होगी ।

P=20, q=200

Δp = 20 - 8 =12

Δq = 320-200=100 $$Ed = \frac{\Delta q}{q} \times \frac{p}{q} = \frac{120}{12} \times \frac{20}{200} = \frac{2000}{2000} = 1$$

Ed = 1 लोच इकाई के बराबर

(iii) वस्तु की कीमत 20 रू. है तो वस्तु माँग है 200 किं. ग्रा. कीमत घटाकर 5 रू. कर देने पर वस्तु की माँग बढ़कर हो जाती है 320 किं. ग्रा. माँग की लोच होगी ।

p = 20 रू. p = 200 किं. ग्रा.

Δp = 20-5=15 Δq = 320 -200 =120

$$Ed = \frac{\Delta q}{q} \times \frac{p}{q} = \frac{120}{15} \times \frac{20}{200} = \frac{2400}{3000} = \frac{4}{5} = 0.8$$ कि. ग्रा.

p = 20, q = 100

मांग की लोच 0.8 अर्थात इकाई से कम है ।

8.4.3 बिन्दु बिधि

बिन्दु विधि का प्रयोग तब किया जाता है जब माँग वक्र में किसी विशेष बिन्दु पर कीमत लोच का पता लगाना हो । माँग वक्र के विभिन्न बिन्दुओं पर माँग की लोच आसमान होती है । माँग रेखा वक्र की शक्ल दो प्रकार की हो सकती है ।

(1) माँग रेखा सीधी रेखा हो और (2) माँग रेखा वक्र के रूप में हो । दोनों ही दशाओं में माँग की बिन्दु लोच ज्ञात की जाती है ।

सीधी रेखा पर माँग की लोच ज्ञात करने के लिए चित्र सं. 8.8 में दी गयी ओं सरल रेखा, जो माँग रेखा है पर विचार करते हैं ।

किसी बिन्दु पर माँग की लोच = उस बिन्दु से नीचे का भाग

उस बिन्दु से ऊपर का भाग

चित्र में AB एक सीधी रेखा है (लम्बाई 4") है । AB पर मध्य बिन्दु Y है इस पर माँग की लोच ज्ञात करनी है अत: 78 2"

(i) y बिन्दु पर माँग की लोच = YB/YA = 2"/2" = 1 इकाई के बराबर है ।

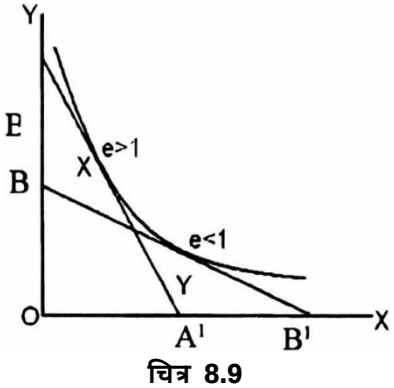

चित्र 8.9

चित्र 8.9 में DD माँग रेखा है इस पर दो बिन्दु X और Y पर माँग की लोच ज्ञात करनी है ।

$Ed = \frac{\text{नीचे का भाग}}{\text{ऊपर का भाग}} = \frac{XA'}{XA} = \frac{3}{1}$ = इकाई से अधिक

बिन्दु Y पर $\frac{YB}{YB} = \frac{1}{3} = 0.33$ इकाई से कम

8.4.4 माँग की चाप लोच

बिन्दु विधि द्वारा माँग द्वारा लोच में कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप माँग मात्रा में परिवर्तन की चर्चा की जाती है, जबकि कीमत में परिवर्तन बहुत ही कम होता है । किन्तु जब कीमत में परिवर्तन अधिक होता है तब मांग की लोच ज्ञात करने के लिए कीमत एवं मांग की मात्रा की एवं बाद की संख्याओं का प्रयोग करना उचित रहेगा । अर्थात जब माँग वक्र के लोच का माप करना होता है तो चाप लोच की धारणा का प्रयोग किया जाता है।

चाप लोच निम्न सूत्र की सहायता से मापी जा सकती है -

$$\text{माँग की लोच} = \frac{\text{मांग मात्रा में परिवर्तन}}{\text{प्रारम्भिक मांग मात्रा + परिवर्तन के पश्चात नई मांग मात्रा}} \Big/ \frac{\text{मूल्य में परिवर्तन}}{\text{प्रारम्भिक मूल्य + परिवर्तन के पश्चात नया मूल्य}}$$

अथवा $\frac{Q-Q_1}{Q+Q_1} \div \frac{p-p_1}{p+p_1}$ अथवा $\frac{Q-Q_1}{Q+Q_1} \times \frac{p+p_1}{p-p_1}$

माँग की चाप लोच का चित्र द्वारा समझना - मांग की चाप लोच का अध्ययन मांग वक्र के दो बिन्दुओ के बीच में किया जाता है । यह चित्र 8.10 द्वारा समझाया गया है । मान लीजिए मांग रेखा DD पर हम A और B बिन्दु के बीच मांग की लोच की माप करना चाहते हैं । A से B तक का हिस्सा चित्र में बताया गया है कि वस्तु की कीमत जब 12 रूपए है तब उसकी मांग है । 20 इकाइयाँ । कीमत घटकर जब 10 रूपऐ हो जाती है तो माँग बढ़कर हो जाती है 24 इकाइयाँ चाप लोच के सूत्र के अनुसार मांग रेखा पर किन्ही दो बिन्दुओं के बीच की लोच के चाप लोच कहते है ।

x बिन्दु पर माँग की लोच = $\frac{XA}{XB}$ के बराबर होगी

इस बिन्दु पर XB की लम्बाई XA की लम्बाई से अधिक है ।

अत: माँग की लोच इकाई से अधिक है ।

$\frac{Q-Q_1}{Q+Q_1} \div \frac{p-p_1}{p+p_1}$

$\frac{20-24}{20+24} \div \frac{12-10}{12+10}$ अथवा $\frac{-4}{44} \div \frac{2}{22}$

अथवा $\frac{-4}{44} \times \frac{22}{2} = -1$ मांग की लोच इकाई बराबर ed = 1

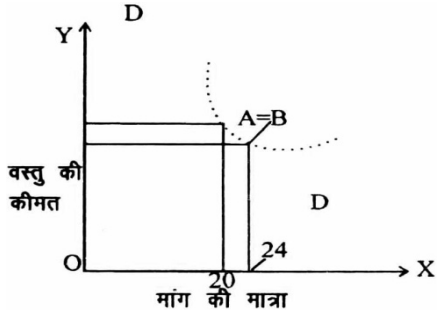

चित्र 8.10

बोध प्रश्न -2

1. मांग की लोच की कुल व्यय विधि की विवेचना कीजिये ।
2. चाप लोच के बारे में बताइये ।

8.5 माँग की आय लोच

वस्तु की माँग पर केवल कीमत का ही प्रभाव नहीं पड़ता है इस पर आय का भी प्रभाव पड़ता है माँग की आय लोच यह बताती है कि उपभोक्ता की आय में परिवर्तन होने पर उसके द्वारा खरीदी जाने वाली वस्तुओं की मात्रा पर क्या प्रभाव पड़ता है । सामान्यत: उपभोक्ता की आय और वस्तुओं की माँग में धनात्मक संबंध पाया जाता है । माँग की आय लोच वह दर है जिस पर उपभोक्ता की आय में परिवर्तन के कारण माँग की मात्रा में परिवर्तन होता है। इसे निम्न सूत्र द्वारा समझाया जा सकता है -

$$\text{आय लोच} = \frac{\text{माँग मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{उपभोक्ता की आय में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$\frac{\frac{\text{माँग में परिवर्तन}}{\text{प्रारम्भिक माँग की मात्रा}}}{\frac{\text{आय में परिवर्तन}}{\text{प्रारम्भिक आय}}} = \frac{\text{माँग में परिवर्तन}}{\text{प्रारम्भिक माँग की मात्रा}} \div \frac{\text{आय में परिवर्तन}}{\text{प्रारम्भिक आय}}$$

$$\text{अथवा} = \frac{\text{माँग में परिवर्तन}}{\text{प्रारम्भिक माँग की मात्रा}} \times \frac{\text{प्रारम्भिक आय}}{\text{आय में परिवर्तन}}$$

i = आय लोच

यदि Y प्रारम्भिक आय, y आय में परिवर्तन

q = प्रारम्भिक माँग की मात्रा, q माँग में परिवर्तन

तो $Ei = \frac{\Delta q}{q} \times \frac{y}{\Delta y} = \frac{\Delta q}{\Delta y} \times \frac{y}{q}$

उदाहरणार्थ यदि किसी उपभोक्ता की आय 50रू से बढ़कर 60 रूपऐं हो जाती है तो किसी वस्तु की माँग 200 इकाइयों से बढ़कर 250 इकाइयाँ हो जाती है तो आय लोच निम्न प्रकार ज्ञात की जा सकती है-

$$\Delta q = 50, q = 200, y = 50, \Delta y = 10$$

$$\frac{50}{10} \times \frac{50}{200} = \frac{2500}{2000} = \frac{25}{20} = 1.20$$

माँग की आय लोच के रूप

1. आय में परिवर्तन होने पर वस्तु की माँग में कोई परिवर्तन नहीं होता इसे पूर्णतया माँग की बेलोचदार आय लोच (Ei = 0) कहते हैं ।
2. आय में परिवर्तन होने पर वस्तु की माँग में आनुपातिक रूप से अधिक परिवर्तन होता है इसे माँग की इकाई से अधिक आय लोच (Ei>1) कहते है । यह विलासिता वस्तुओं के साथ होता है ।
3. आय में आनुपातिक परिवर्तन तथा वस्तु की माँग में आनुपातिक परिवर्तन बराबर होते है, इसे माँग की इकाई के बराबर आय लोच (Ei=1) कहते हैं ।

4. आय में परिवर्तन होने पर वस्तु की माँग में आनुपातिक रूप से कम परिवर्तन होता है, इसे माँग की इकाई से कम लोचदार आय लोच (Ei<1) कहते हैं । आवश्यक वस्तुओं के संबंध में ऐसा होता है ।
5. आय में बिना कोई परिवर्तन हुए ही वस्तु की माँग में परिवर्तन हो जाता है तो इसे माँग की पूर्णतया लोचदार आय लोच (E=00) कहते हैं ।
6. आय के बढ़ने पर वस्तु की माँग की मात्रा घटती है और आय के घटने पर माँग की मात्रा बढ़ती है । ऐसा निकृष्ट वस्तुओं के संबंध में होता है इसे माँग की ऋणात्मक आय-लोच (Ei= -) कहते हैं ।

8.6 माँग की तिरछी लोच

किसी एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर दूसरी संबंधित वस्तु की माँग की मात्रा में परिवर्तन हो जाता है तो इसे माँग की तिरछी लोच कहते हैं । ऐसी वस्तुओं के संबंध में होता है जो एक दूसरे की पूरक होती है । जैसे कार और पेट्रोल एवं एक दूसरे की स्थानापन्न जैसे चाय और काफी । उदाहरण के लिए Y वस्तु की कीमत में आनुपातिक परिवर्तन से X वस्तु की माँग मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन होता है तो X और Y के बीच माँग की आड़ी लोच निम्नसूत्र द्वारा ज्ञात की जा सकती हैं -

माँग की आडी लोच = $\frac{\text{X वस्तु की माँग मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{Y वस्तु की कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$

$$Ei = \frac{\frac{\Delta Qx}{Qx}}{\frac{\Delta PY}{PY}} = \frac{\Delta Qx}{Qx} \div \frac{\Delta PY}{PY} = \frac{\Delta Qx}{\Delta PY} \times \frac{PY}{Qx}$$

$\Delta Qx = x$ वस्तु की माँग में परिवतन,Qx = x वस्तु की प्रारम्भिक माँग,

$\Delta PY = Y$ वस्तु की कीमत में परिवर्तन, PY = Y वस्तु की प्रारम्भिक कीमत

1. स्थानापन्न वस्तुएं व मांग की तिरछी लोच

स्थानापन्न वस्तुओं में एक वस्तु का मुल्य घटने से और दूसरी वस्तु की कीमत अपरिवर्तित रहने से दूसरी वस्तु की माँग घट जाती है । उदाहरण के लिए चाय की कीमत घटने से और काफी की कीमत में परिवर्तन नहीं होने से काफी की मांग घट जाती है । इस प्रकार स्थानापन्न वस्तुओं में माँग की तिरछी लोच धनात्मक होती है । स्थानापन्न वस्तु चित्र संख्या 8.11 के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि चाय की कीमत P से घटकर P1 हो जाती है तो कॉफी की माँग Q से घटकर Q1 हो जाती है । इसी प्रकार यदि चाय की कीमत बढ़ कर P से P2 हो जाती है तो कॉफी की माँग बढ़कर Q से Q2 हो जाती है । अत: यह स्पष्ट है कि स्थानापन्न वस्तुओं की कीमत तथा माँगी गयी मात्रा में सीधा संबंध होता है । क्योंकि एक वस्तु की कीमत में वृद्धि होने से वस्तु की माँग में वृद्धि एवं कीमत में कमी होने से माँग में कमी हो जाती है ।

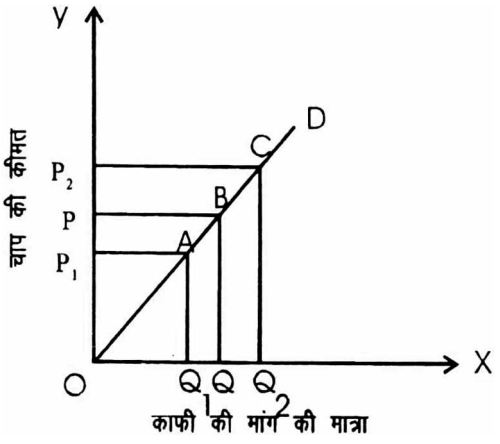

चित्र सं. 8.11

2. पूरक वस्तुएं व माँग की तिरछी लोच

कार और पैट्रोल पूरक वस्तुएँ हैं । यदि कार की कीमत में वृद्धि होती है तो पैट्रोल की माँग में कमी हो जायेगी । इसी प्रकार कार की कीमत में कमी होने पर पैट्रोल की माँग बढ़ जायेगी । पूरक वस्तुएँ वे वस्तुएं होती हैं जो दूसरी वस्तु से घनिष्ठ रूप से जुड़ी होती है और दोनों का उपयोग साथ-साथ होता है, उदाहरण के लिए कार पैट्रोल, पैन और स्याही ब्रेड और मक्खन इस प्रकार पूरक वस्तुओं की तिरछी लोच ऋणात्मक होती है ।

चित्र सं. 8.12 का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि अगर कार की कीमत OP से घटकर OP1 हो जाती है तो पैट्रोल की माँग OQ से बढ़कर OQ2 हो जाती है । और कार की कीमत OP से बढ़कर OP2 हो जाती है । तो पैट्रोल की माँग OQ से घटकर OQ1 हो जाती है । अर्थात् दोनों में विपरीत संबंध होता है ।

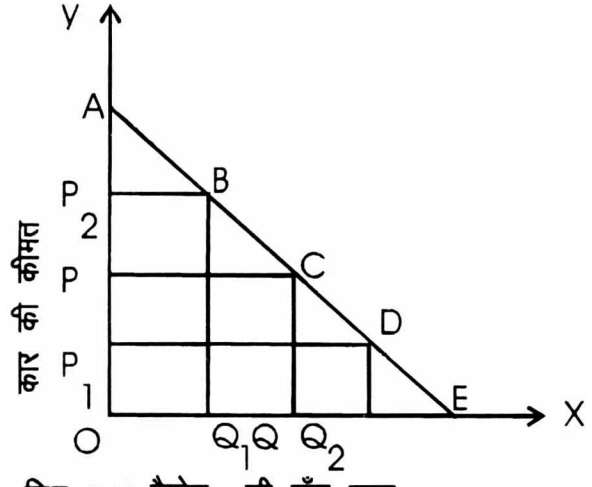

चित्र 8.12 पैट्रोल की माँग मात्रा

चित्र 8.12 पैट्रोल की माँग मात्रा

बोध प्रश्न - 3

1. मांग की आय लोच के बारे में समझाइए ।
2. मांग की तिरछी लोच की विवेचना कीजिये ।

8.7 पूर्ति की लोच की अवधारणा

किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप उसकी पूर्ति की मात्रा में जो परिवर्तन होता है उसे पूर्ति की लोच कहा जाता है । इसे निम्न सूत्र द्वारा समझ सकते है ।

$$\text{पूर्ति की लोच } es = \frac{\text{पूर्ति में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{मूल्य में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

इसे हम निम्न उदाहरण द्वारा समझ सकते हैं ।

किसी वस्तु का मूल्य 25 रू. होने पर उसकी पूर्ति होती है 200 इकाइयाँ । मूल्य बढ़कर 30 रू. होने पर उसकी पूर्ति 250 इकाइयाँ हो जाती है । पूर्ति की लोच होगी ।

$$\text{पूर्ति की लोच } es = \frac{\text{पूर्ति में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{मूल्य में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

$es = 25/20 = 1.25$

पूर्ति की लोच = 1.25

8.8 पूर्ति की लोच की श्रेणियाँ

पूर्ति के नियम के अनुसार किसी वस्तु की कीमत में कमी होने से उसकी पूर्ति मे कमी हो जाती है अन्य बातों में परिवर्तन नहीं होने पर और कीमत में वृद्धि होने से उसकी पूर्ति में वृद्धि हो जाती है । इस नियम से हमे यह मालूम नहीं चलता है कि कीमत में परिवर्तन होने से वस्तु की पूर्ति की मात्रा में कितना परिवर्तन होगा । वह पूर्ति की लोच से मालूम चलता है ।

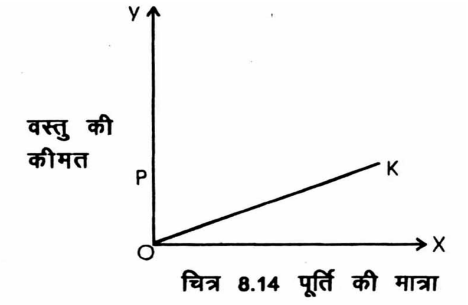

चित्र 8.14 पूर्ति की मात्रा

1. पूर्णतया लोचदार पूर्ति कीमत मे परिवर्तन नहीं होने पर या बहुत कम होने पर भी पूर्ति की मात्रा में बहुत अधिक परिवर्तन हो जाये, तो इसे पूर्णतया लोचदार पूर्ति कहते है।

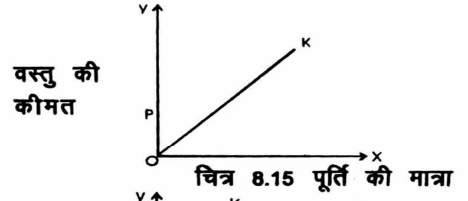

चित्र 8.15 पूर्ति की मात्रा

2. अधिक लोचदार पूर्ति - कीमत में थोड़ा सा परिवर्तन करने पर पूर्ति की मात्रा में बहुत अधिक परिवर्तन हो जाये तो इसे अधिक लोचदार पूर्ति कहते हैं ।

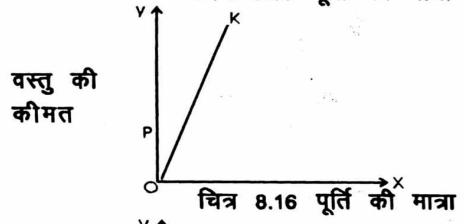

चित्र 8.16 पूर्ति की मात्रा

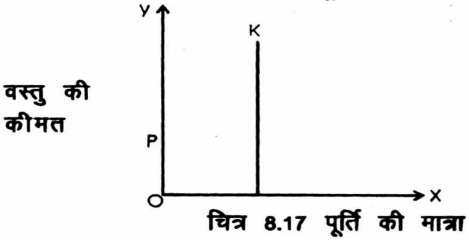

चित्र 8.17 पूर्ति की मात्रा

3. लोचदार पूर्ति - कीमत में जितना परिवर्तन होता है पूर्ति की मात्रा मे उतना ही परिवर्तन

होता है तो इसे लोचदार पूर्ति कहते है ।

4. बेलोचदार या कम लोचदार पूर्ति - जब वस्तु के मूल्य वस्तु की में परिवर्तन की तुलना में वस्तु की पूर्ति की मात्रा में कीमत परिवर्तन होता है । उसे बेलोचदार पूर्ति कहते हैं ।
5. पूर्णत: बेलोचदार पूर्ति वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने दग कीपर भी उसकी पूर्ति में कोई परिवर्तन नहीं होता है । इसे कीमत पूर्णत: बेलोचदार पूर्ति कहते हैं ।

8.9 पूर्ति की लोच माप

पूर्ति की लोच को मापने की निम्नलिखित दो विधियाँ हैं ।

1. प्रतिशत विधि - इस विधि द्वारा पूर्ति पूर्ति की लोच का माप करने के लिए वस्तु की कीमत में होने वाले आनुपातिक परिवर्तन से उसकी पूर्ति की मात्रा में होने वाले आनुपातिक परिवर्तन में भाग दिया जाता है भागफल यदि 1 के बराबर आता है तो इकाई के बराबर 1 से कम आने पर इकाई से कम होती है इसे निम्न सूत्र द्वारा किया जा सकता है।

$$\frac{\text{पूर्ति की मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$es = \frac{\frac{\Delta Q}{Q}}{\frac{\Delta P}{p}} = \frac{\Delta Q}{Q} \times \frac{\Delta P}{P} = \frac{\Delta Q}{Q} \times \frac{P}{\Delta P}$$

$$= \frac{\Delta Q}{\Delta P} \times \frac{P}{Q}$$

यहां पर es पूर्ति की लोच

Q = प्रारम्भिक पूर्ति की मात्रा

Δ Q = पूर्ति में परिवर्तन

P= प्रारम्भिक

Δ P= पूर्ति में परिवर्तन

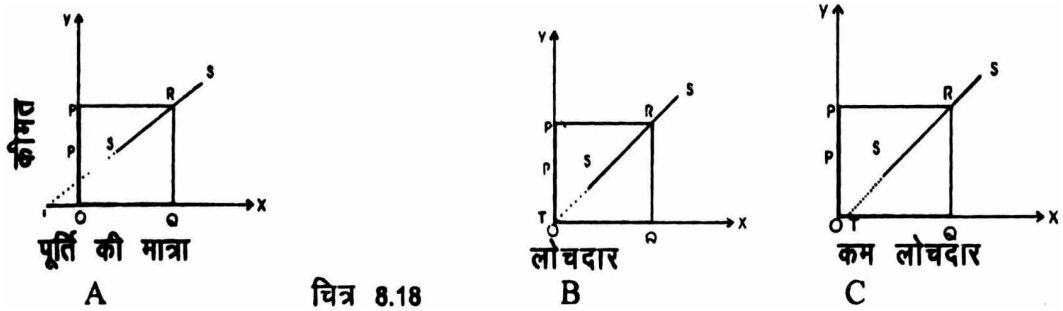

चित्र 8.18

चित्र 8.18 में S-S पूर्ति वक्र के A बिन्दु पर पूर्ति की लोच ज्ञात करने के लिए इस बिन्दु से एक स्पर्श रेखा आधार रेखा की और बढ़ाते हैं । यह स्पर्श रेखा OY- अक्ष को काटते हुए आधार रेखा की और बढ़ाते हैं । यह स्पर्श रेखा आधार रेखा की T बिन्दु पर स्पर्श करती है । इस बिन्दु पर पूर्ति की लोच होगी -

चित्र 8.18 में A $es = \frac{TQ}{OQ} =$

es= $es = \frac{TQ}{OQ} = TQ > OQ$

चित्र 8.18 मे A es= $\frac{TQ}{OQ} = TQ = OQ$

चित्र 8.16 में A es = $\frac{TQ}{OQ} = TQ < OQ$

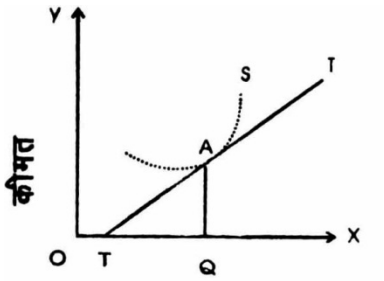

चित्र 8.19 पूर्ति की मात्रा

बिन्दु विधि -इस विधि में अन्तर्गत पूर्ति वक्र के किसी भी बिन्दु पर पूर्ति की लोच जानने के लिए उस बिन्दु से एक स्पर्श रेखा को नीचे आधार रेखा तक बढ़ाया जाता है । यह रेखा आधार रेखा का जिस स्थान पर काटती है उसी के आधार पर निम्न सूत्र द्वारा पूर्ति की लोच ज्ञात की जाती है ।

$$es = \frac{TQ}{OQ}$$

पूर्ति रेखा एक सीधी रेखा होने पर निम्न प्रकार पूर्ति की जा सकती है ।

वक्र आकार के पूर्ति वक्र पर पूर्ति की लोच पूर्ति वक्र में जिस बिन्दु पर ज्ञात करनी हो उस बिन्दु से कम उस पूर्ति वक्र की स्पर्श रेखा खींचते हैं । स्पर्श रेखा आधार रेखा को जिस स्थान पर काटती है उसी के अनुसार निम्न सूत्र द्वारा पूर्ति की लोच ज्ञात की जा सकती है ।

$$\frac{TQ}{OQ}$$

TQ < OQ अत: पूर्ति की लोच इकाई से कम होगी, स्पर्श रेखा की दशा में सूत्र TQ / OQ को लागू करके पूर्ति की कीमत लोच ज्ञात करते रेखाचित्र 8 में पूर्ति 55 कें बिन्दु K पर स्पर्श रेखा ttl खींची गयी है । यहाँ पर पूर्ति की कीमत लोच के TQ / OQ बराबर होगी ।

8.10 मांग की कीमत लोच के निर्धारक तत्व

किसी वस्तु की माँग की कीमत लोच को निर्धारित करने वाले महत्वपूर्ण तत्व निम्नलिखित हैं

1. उपभोक्ता की आय-माँग की कीमत लोच पर उपभोक्ता की आर्थिक स्थिति का बहुत प्रभाव पड़ता है । यदि उपभोक्ता बहुत धनी व्यक्ति है तो माँग की लोच का उस पर प्रभाव नहीं पड़ता है । वस्तु की कीमत बढ़ने पर भी उसके लिए माँग अपरिवर्तित रहती है । कमजोर

आर्थिक स्थिति वाले उपभोक्ता के लिए वस्तु की माँग लोचदार होती है, क्योंकि वस्तु की कीमत में परिवर्तन का उसकी माँग पर प्रभाव पड़ता हैं ।

2. वस्तु की कीमत - वस्तु की कीमत की माँग की लोच पर बहुत प्रभाव पड़ता हैं कीमत स्तर नीचा होने पर माँग की लोच कम होती है । जैसे-जैसे कीमत स्तर बढ़ता है माँग की लोच भी बढ़ती है । कीमत स्तर अधिक (ऊँचा) होने पर माँग की लोच अधिक होगी ।
3. वस्तु की प्रकृति - वस्तु अगर टिकाऊ नहीं है जैसे फल, सब्जी आदि इसकी माँग कम लोचदार या बेलोचदार होती है । वस्तु यदि टिकाऊ है तो उसकी माँग लोचदार होगी ।
4. उपभोक्ता की आदतें - उपभोक्ता की रूचि की माँग की लोच पर प्रभाव पड़ता है । जिन वस्तुओ का उपयोग करने की आदत पड़ जाती है उनकी कीमत मे परिवर्तन होने पर भी उपभोक्ता उनका उपयोग करेगा अत: ऐसी वस्तुओं की माँग कम लोचदार होती है ।
5. समय - माँग की लोच समय का बहुत प्रभाव पड़ता है । अल्पकाल में उपभोक्ता द्वारा कीमत बढ़ने के बावजूद भी उस वस्तु के स्थान पर दूसरी वैकल्पिक वस्तु का उपयोग करना असम्भव होता है अत: माँग बेलोचदार होती है । अत: दीर्घकाल में स्थानापन्न वस्तु का उपयोग आसान हो जाता है अत: माँग लोचदार होती है ।
6. वस्तुओं की उपयोगों की संख्या - अनेक उपयोगों में काम में आने वाली वस्तु की माँग लोचदार होती है । ऐसी वस्तु की कीमत कम होने पर उसे विभिन्न काम में (अधिक संख्या में) काम में लिया जाता है । अत: माँग अधिक होगी । कीमत अधिक होने पर केवल महत्वपूर्ण कार्यो (कम संख्या) में काम में लिया जाता है । अत: माँग कम होगी । उदाहरण के लिए ऐसी वस्तुएँ हैं -बिजली, दूध आदि ।
7. स्थानापन्न वस्तुओं का प्रभाव - ऐसी वस्तुएँ जिसकी स्थानापन्न वस्तुओं की संख्या अधिक होती है उनकी माँग लोचदार होती है । और ऐसी वस्तुएँ जिनकी स्थानापन्न वस्तुएँ नहीं होती या बहुत कम होती हैं उनकी माँग बेलोचदार होती है ।
8. ऐसी वस्तुएँ जिनके उपयोग को कुछ समय के लिए स्थगित किया जा सकता है तो इनकी कीमत बढ़ने पर इनका उपयोग नहीं करने से इनकी माँग घट जायेगी । अत: इनकी माँग लोचदार होती है । और ऐसी वस्तुएँ जिनका उपयोग स्थगित नहीं किया जा सकता है, उनकी कीमत बढ़ने के बावजूद भी उनकी माँग नहीं घटेगी । अत: इनकी माँग बेलोचदार होती है ।

8.11 मांग की लोच का महत्व

माँग की कीमत लोच की अवधारणा क्रा आर्थिक विश्लेषण में काफी महत्व हैं इनका सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों ही क्षेत्रों में महत्व है ।

1. सरकार के लिए महत्व - वित्तमंत्री को देश की अर्शव्यवस्था के विकास के लिए करों के माध्यम से धन जुटाना पड़ता है । इसके लिए वे उन वस्तुओं पर अधिक कर लगाते है जिनकी माँग बेलोचदार होती है । और लोचदार वस्तुओं पर कम कर लगाते हैं । (माँग की लोच का अध्ययन करना लाभदायक होता हैं) बेलोचदार वस्तुओं पर लगाये गये कर भार उत्पादक कीमत बढ़ाकर उपभोक्ताओं पर नहीं डाला जा सकता क्योंकि अधिक कीमत पर उपभोक्ता वस्तु का उपयोग स्थगित कर देगा । अत: कर भाग उत्पादक को ही वहन करना पड़ेगा ।

देश के भुगतान संतुलन की स्थिति को अपने पक्ष में करने के लिए माँग की लोच का ज्ञान बहुत मददगार साबित हो सकता है । अपनी मुद्रा के अवमूल्यन द्वारा आयाम-निर्यात की स्थिति पर पड़ने वाले प्रभाव को समझना आवश्यक है । यदि आयात निर्यात दोनों की माँग बेलोचदार है तो अवमूल्यन द्वारा लाभ प्राप्त नहीं होगा और दोनों की माँग लोचदार है तो लाभदायक रहेगा

2. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में महत्व - देश के द्वारा निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की माँग बेलोचदार है तो इनकी कीमत बढ़ाकर लाभ अर्जित किया जा सकता है । क्योंकि ऊँची कीमतों पर भी इसका निर्यात जारी रहेगा । लोचदार वस्तुओं की कीमत बढ़ाने से इनका निर्यात घट जायेगा ।

   आयात की जाने वाली वस्तुओं की माँग यदि बेलोचदार है तो ऊँची कीमतों पर हमारे देश को उनका आयात करना पड़ेगा जो हमारे लिए नुकसान दायक है और लोचदार वस्तुओं की कीमत बढ़ने पर हम उनका आयात रोक सकते हैं । इस प्रकार व्यापार की शर्तो के लिए माँग की लोच का ज्ञान आवश्यक है !

3. मूल्य निर्धारण में - माँग की लोच हमें यह बताती है कि किस वस्तु की कीमत बढ़ाने पर या घटाने पर उसकी माँग कितनी घट जायेगी या बढ़ जायेगी । अत: विक्रेता उस वस्तु की कीमत बढ़ाकर अधिक लाभ अर्जित करना चाहेगा जिसकी माँग बेलोचदार होगी या कम लोचदार या अधिक लोचदार होगी । लोचदार या अधिक लोचदार माँग वाली वस्तुओं की कीमत नही बढ़ाना चाहेगा ।

   एकाधिकारी का अपनी वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियंत्रण होता हैं लेकिन उसकी माँग पर नही । अत: एकाधिकारी वस्तु के मूल्य का निर्धारण करते समय उसकी माँग की लोच का ध्यान रखेगा। बेलोचदार माँग वाली वस्तु की कीमत वह अपनी सुविधा के अनुसार तय करने अधिकतम लाभ अर्जित कर सकता है । लोचदार माँग वाली वस्तु की कीमत बढ़ाने से उसकी माँग घट जायेगी और कीमत घटाने से उसकी माँग बढ़ जायेगी, अत: ऐसी वस्तु की कीमत घटाकर वह लाभ अर्जित कर सकता हैं । एकाधिकारी विभिन्न बाजारों मे एक ही वस्तु की माँग की लोच को जानकारी के आधार पर उस वस्तु के सबसे कम लोचदार या बेलोचदार माँग वाले बाजारों में सम अधिक कीमत एवं अधिक लोचदार माँग वाले बाजारों मे कम कीमत लेकर लाभ अर्जित कर सकता है ।

4. वितरण सिद्धान्त में महत्व - उत्पत्ति के विभिन्न साधनों की मजदूरी तय करने मे माँग की लोच का बहुत महत्व है । उत्पादक बेलोचदार माँग वाले उत्पत्ति के साधनों को अधिक मजदूरी एवं लोचदार माँग वाल उत्पत्ति के साधनो को कम मजदूरी देता है ।

8.12 पूर्ति के निर्धारक तत्व

पूर्ति की लोच पर निम्न बातों का प्रभाव पड़ता है -

1. **वस्तु की प्रकृति -** ऐसी वस्तुएँ जो नाशवान होती हैं जैसे सब्जी, फल, दुध आदि इनकी पूर्ति पर इनकी कीमत का कम प्रभाव पड़ता है क्योंकि कीमत घटने पर इन्हें रोका नहीं जा सकता और कीमत बढ़ने पर एकाएक पूर्ति भी नहीं बड़ाई जा सकती है अत: इन वस्तुओं की पूर्ति

बेलोचदार होती है । ऐसी वस्तुएँ जो टिकाऊ होती है कीमत बढ़ने पर पूर्ति की जा सकती है इनकी पूर्ति लोचदार होती है ।

2. **उत्पादन की विधि -** उन वस्तुओं की पूर्ति लोचदार होती है । जिनकी उत्पादन विधि सरल होती है क्योंकि कीमत में परिवहन के अनुसार उनकी मात्रा घटायी या बढ़ायी जा सकती है । जटिल विधियों द्वारा उत्पादित वस्तुओ की पूर्ति बेलोचदार होती हैं क्योंकि कीमत में परिवर्तन होने पर तत्काल उनकी पूर्ति में परिवर्तन करना (उत्पादन घटाना / बढ़ाना) संभव नहीं हो सकता ।
3. **समय-** किसी भी वस्तु में समय का बहुत प्रभाव पडता है । अल्पकाल में पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन कना बहुत मुशिकल होता है । अत: पूर्ति बेलोचदार होती है । दीर्घकाल में पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन करना आसान होता है । अत: पूर्ति लोचदार होती है ।
4. **उद्योग में उत्पादित वस्तुओं की किस्मे -** ऐसे उद्योग जिनमें बहुत अधिक प्रकार की वस्तुएं उत्पादित की जाती है । उनकी पूर्ति की लोच अधिक होते है । क्योंकि वस्तु की कीमत परिवर्तन के अनुसार वे अपने साधनो का वेकल्पिक प्रयोग कर सकते हैं जो एक या दो प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करते हैं क्योंकि उनके लिए साधनों का वैकल्पित उपयोग करना सम्भव नहीं होता । सारांश

8.13 सारांश

किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर उसकी माँग की मात्रा में परिवर्तन हो जाता है । इसे कीमत की माँग लोच एवं पूर्ति लोच कहते हैं । किसी वस्तु की कीमत में थोड़ा सा परिवर्तन उसकी माँग एवं पूर्ति की मात्रा में बहुत अधिक परिवर्तन भी उसकी माँग एवं पूर्ति में बहुंत कम परिवर्तन होता है । या बिल्कुल परिवर्तन नहीं होता है । ये दोनो चरम सीमाएँ है । इनके बीच की स्थितियाँ भी उपस्थित रहती है । जैसे जितना किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन होता हैं उतना ही मात्रा एवं पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन होता हैं, कुछ वस्तुओं की माँग एवं पूर्ति की मात्रा में कीमत से थोड़ा का और कुछ में कीमत में थोड़ा अधिक परिवर्तन होता है । इस प्रकार विभिन्न वस्तुओं की कीमत में परिवर्तन का प्रभाव उसकी माँग एवं पूर्ति की मात्रा पर अलग-अलग पड़ता है । वस्तु की माँग की लोच पर उपभोक्ता की आय का, वस्तु की कीमत का, वस्तु की प्रकृति उपभोक्ता की आदत, फैशन आदि तत्वों का प्रभाव भी पड़ता है । माँग की लोच का सरकार के लिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए मूल्य निर्धारण में एवं वितरण में बहुत महत्व हैं।

8.14 संन्दर्भ ग्रंथ

1. एस.पी.दुबे एवं वी.सी.सीन्हा- अर्थशास्त्र के सिद्धान्त विकास आफसैट शाहदर, नई दिल्ली 1994
2. Jeffrly 2.M. Perloff: Micro Economics Addirson Werlery Louaman 482F.I.E
   Patpataj Delhi 2001
3. डोनाल्ड स्टीवेन्सन नाट्सन मेरी ए. हालमेंन मूल्य सिद्धान्त एवं उसके उपयोग, हरियाणा साहित्य अकादमिक चण्डीगढ़ 1996

8.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. इसके लिए 8.2 देखिए
2. इसके लिए 8.3 देखिए

बोध प्रश्न 2

1. इसके लिए 8.4.1 देखिए
2. इसके लिए 8.4.4 देखिए

बोध प्रश्न 3

1. इसके लिए 8.5 देखिए
2. इसके लिए 8.6 देखिए

8.16 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पूर्ति की लोच की अवधारणा स्पष्ट कीजिये ।
2. पूर्ति की लोच की माप की विधियों की विवेचना कीजिये ।
3. मांग की लोच के निर्धारक तत्व बताइए ।
4. मांग की लोच का महत्व समझाइये ।

इकाई- 9

उत्पादन फलन और परिवर्तन अनुपातों का नियम (Production Function And Law of Variable Proportions)

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 उत्पादन-फलन का अर्थ एवं परिभाषा

9.3 कॉब-डगलस उत्पादन-फलन

9.4 उत्पादन-फलन की मान्यताएं

9.5 उत्पादन-फलन की विशेषताएं

9.6 परिवर्तनशील अनुपातों का नियम

9.7 परिवर्तनशील अनुपतों के नियम की मान्यताएं

9.8 परिवर्तनशील अनुपातों के नियम का महत्व

9.9 परिवर्तनशील अनुपातों के नियम के प्रति प्रतिष्ठित एवं आधुनिक अर्थशास्त्रियों का दृष्टिकोण

9.10 सारांश

9.11 संदर्भ ग्रन्थ

9.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

- उत्पादन-फलन के बारे में समझ सकेंगे
- कॉब-डगलस दारा तैयार किये गये वास्तविक उत्पादन-फलन को समझ सकेंगे
- परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की विवेचना कर सकेंगे

9.1 प्रस्तावना

उत्पादन के पाँच साधन होते हैं-भूमि, श्रमपूंजी, संगठन और साहस । इन्हीं उत्पादन के साधनों की मदद से किसी भी वस्तु का उत्पादन किया जा सकता है । उत्पादन की मात्रा उत्पत्ति के साधनों की मात्रा पर निर्भर करती है । उत्पत्ति के साधन अधिक होने पर उत्पादन की मात्रा अधिक होगी और साधन कम होने पर उत्पादन की मात्रा कम होगी । प्रत्येक फर्म इन उत्पादन के साधनों के उचित संयोग से उत्पादन की अधिकतम मात्रा प्राप्त करने का प्रयास करती है ।

उत्पादन के साधनों को पड़त या आगत (Inputs) कहते हैं और उत्पादन को उत्पाद या निर्गत (Output) कहते हैं ।

उत्पादन के साधनों के विभिन्न संयोगों दारा उत्पादन की अधिकतम मात्रा उत्पादन फलन दारा जानी जाती है । अल्पकाल के समय बहुत कम होने के कारण उत्पादन के सभी साधनों में परिवर्तन करना संभव नहीं होता इसलिए कुछ साधनों को स्थिर रखते हुए साधनों की मात्रा में परिवर्तन करने से उत्पादन की मात्रा में जो परिवर्तन होता है । इसका अध्ययन परिवर्तनशील अनुपातों के नियम के तहत किया जाता है ।

9.2 उत्पादन-फलन का अर्थ एवं परिभाषा

उत्पादन-फलन का अर्थ-उत्पादन के साधन (Input) एवं उत्पाद (Output) के बीच भौतिक संबंध को अर्थशास्त्र में उत्पादन फलन (Production Function) कहते हैं ।

इसे गणितीय रूप में निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है-

Q = f (a,b,c,d..... n)

यहाँ पर q = उत्पादन की मात्रा

a,b,c,d..... n= उत्पादन के साधन

f = फलन (निर्भरता का सूचक)

उपरोक्त समीकरण से यह स्पष्ट होता है कि उत्पादन की मात्रा उत्पत्ति के साधनों की मात्रा पर निर्भर करती है । उत्पादन फलन उत्पादन के साधनों के विभिन्न संयोगों द्वारा निश्चित तकनीकी स्तर पर एक निश्चित समय में प्राप्त की गयी । उत्पादन की अधिकतम मात्रा को बताता है ।

परिभाषा- प्रो. सेम्युलसन के अनुसार "उत्पादन-फलन वह तकनीकी सम्बन्ध है जो यह बताता है कि आगतों के प्रत्येक विशेष समूह द्वारा कितना उत्पादन किया जा सकता है । यह सम्बन्ध किसी दिये हुए तकनीकी लान के स्तर के लिए व्यक्त किया जाता है ।

प्रो. लेफ्टविच के अनुसार " उत्पादन फलन शब्द भौतिक संबंध के लिए प्रयुक्त किया जाता है जो एक फर्म के साधनों की इकाइयों और प्रति इकाई समयानुसार प्राप्त वस्तुओं और सेवाओं (उत्पादों के बीच पाया जाता है।"

प्रो. वाटसन के अनुसार "किसी फर्म की भौतिक पड़तों (Input) तथा उपज की भौतिक मात्रा (Output) के बीच के सम्बन्ध को उत्पादन-फलन कहते हैं ।

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि उत्पादन-फलन एक निश्चित तकनीकी स्तर पर एक निश्चित समय में उत्पत्ति के साधनों की इकाइयों में परिवर्तन से उत्पादन की मात्रा में होने वाले परिवर्तन को बताता उत्पादन-फलन को निम्न उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है-प्रस्तुत सारणी 9.1 मे एक तरफ श्रम की 1 से 6 इकाइयाँ दर्शायी गई है और दूसरी तरफ पूँजी की 1 से 6 इकाइयों दर्शायी गई है । इस सारणी से श्रम तथा पूँजी की विभिन्न इकाइयों के संयोजन से प्राप्त की जा सकने वाली वस्तु X के उत्पादन की विभिन्न मात्राओं की जानकारी प्राप्त की जा सकती है ।

उदाहरण के लिए पूँजी की 6 इकाइयों और श्रम की एक इकाई के संयोग से वस्तु (x) की 54 इकाइयाँ प्राप्त होती है । ये 54 इकाइयाँ, प्राप्त. करने के लिए पूँजी और श्रम के विभिन्न

संयोगों का चुनाव किया जा सकता है जैसे- (i) श्रम की 6 इकाइयाँ एवं पूँजी की एक इकाई (ii) श्रम की 3 इकाइयाँ एवं पूँजी की 2 इकाइयाँ (iii) श्रम की 2 एवं पूँजी की 3 इकाइयाँ (iv) श्रम की 1 इकाई एवं पूँजी की 6 इकाइयाँ

इसी प्रकार श्रम एवं पूँजी की एक-एक इकाई के संयोग से वस्तु की 22 इकाइयाँ प्राप्त की जा सकती है, दो-दो इकाइयों के संयोग से 44 इकाइयाँ अर्थात् आगतों के दुगने संयोग से उत्पाद की मात्रा । गुणा प्राप्त की जा सकती है । श्रम एवं पूँजी दोनों की 6-6 इकाइयों के संयोग से वस्तु की 132 इकाइयाँ प्राप्त की जा सकती है । इस प्रकार उत्पादन- फलन पूँजी तथा श्रम के अलग- अलग संयोगों से प्राप्त होने वाली उत्पादन की अधिकतम मात्रा बताता है ।

इस सारणी से पूँजी तथा श्रम के विभिन्न संयोगों से प्राप्त होने वाली उत्पादन की मात्रा की जानकारी प्राप्त की जा सकती है

(i) पूँजी की 1 इकाई के साथ श्रम की 1,2,3,4,5 एवं 6 इकाइयों के संयोग से उत्पादन की क्रमश: 22,32,40,46,5० एवं 54 इकाइयाँ प्राप्त की जा सकती है । इस प्रकार पूँजी की मात्रा को स्थिर रखकर श्रम की मात्रा में परिवर्तन करने से उत्पादन की मात्रा में जो परिवर्तन आता है वह देखा जा सकता है ।

सारणी-9.1

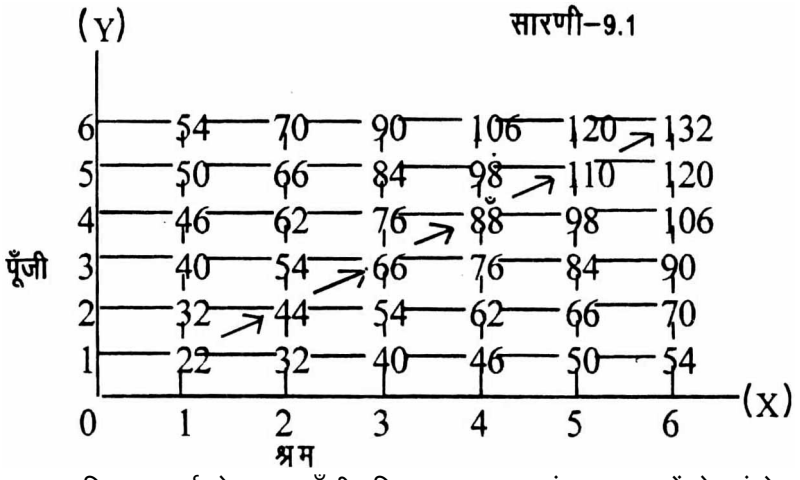

(ii) श्रम की 1 इकाई के साथ पूँजी की 1,2,3,4,5 एवं 6 इकाइयों के संयोग से उत्पादन की क्रमश: 22,32,40,46,50 एवं 54 इकाइयाँ प्राप्त की जा सकती है । इस प्रकार श्रम की मात्रा को स्थिर रखकर पूँजी की मात्रा में परिवर्तन करने से उत्पादन की मात्रा में होने वाले परिवर्तन को देखा जा सकता है ।

(iii) x वस्तु की 66 इकाइयाँ, 5 पूँजी एवं 2 श्रम 3 पूँजी एवं 3 श्रम एवं 2 पूँजी एवं 5 श्रम से प्राप्त की जा सकती है । इसी प्रकार 62 इकाइयाँ, 4 पूँजी व 2 श्रम, 2 पूँजी एवं 4 श्रम से 98 इकाइयाँ 5 पूँजी व 4 श्रम एवं 4 पूँजी व 5 श्रम के संयोग से प्राप्त की जा सकती है ।

इस प्रकार उपरोक्त सारणी से उत्पति के दोनों साधनों को विभिन्न अनुपातों में बदलकर उत्पत्ति पर प्रभाव देख सकते हैं, श्रम की अधिक इकाइयाँ लेते हैं तो पूँजी की कम इकाइयाँ लेते हैं और श्रम की कम इकाइयाँ तो पूँजी की अधिक इकाइयाँ लेते हैं ।

ऊपर वर्णित सारणी उत्पादन-फलन के संबंध में बहुत महत्वपूर्ण है । इस सारणी के द्वारा उत्पादन के दोनों नियम परिवर्तनशील अनुपात का नियम एवं पैमाने के प्रतिफल को समझाया जा सकता है । परिवर्तनशील अनुपात के नियम में कुछ साधन स्थिर एवं कुछ परिवर्तित किये जाते हैं जबकि पैमाने के प्रतिफल में सभी साधन समान अनुपात में परिवर्तित किये जाते हैं । उपरोक्त सारणी से दोनों स्थितियों में उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव को समझा जा सकता है । एक साधन की मात्रा को स्थिर रखकर दूसरे साधन की मात्रा में परिवर्तन करने से उत्पादन पर प्रभाव देखा जा सकता है । इसी प्रकार एक साथ दोनों साधन एक अनुपात में परिवर्तित करने से उत्पादन की मात्रा पर पड़ने वाले प्रभाव को भी देखा जा सकता है ।

उपरोक्त सारणी से उत्पादन के साधनों के विभिन्न संयोगों से प्राप्त होने वाली उत्पादन की विभिन्न इकाइयों की मात्रा की जानकारी प्राप्त होती है । लेकिन उत्पादन पर होने वाली लागत की जानकारी इससे प्राप्त नहीं होती है । इसके लिए उत्पादन के साधनों के मूल्यों को ध्यान में रखते हुए इनके संयोग का चुनाव करके कम से कम लागत पर उत्पादन की मात्रा प्राप्त करना कार्य कुशलता का घोतक होगा । उदाहरण के लिए हम यह मानते हैं कि फर्म x वस्तु की 54 इकाइयों का उत्पादन करने का विचार कर रही है लेकिन इसके लिए सारणी 92 में दर्शाये गये चार संयोगों में से एक का चुनाव श्रम एवं पूँजी की इकाइयों के सापेक्ष मूल्यों के आधार पर किया जायेगा ।

उत्पादन के साधन श्रम एवं पूंजी के विभिन्न संयोगों की मूल्य सापेक्षता सारणी 9.2 में दर्शायी गयी है -

सारणी 9.2

न्यूनतम लागत संयोग

X वस्तु की 54 इकाइयाँ प्राप्त करने हेतु		
श्रम ,पूंजी	A स्थिति	B स्थिति
	कुल लागत जब श्रम का मूल्य 7रु/इकाई पूंजी का मूल्य 10रु/इकाई	कुल लागत जब श्रम का मूल्य7रु/इकाई श्रम का मूल्य7रु/इकाई
1+6	67 रु.	31 रु.
2+3	44 रु.	26 रु.
3+2	41 रु.	29 रु.
6+1	52 रु.	46 रु.

उपरोक्त सारणी के अध्ययन से हम भली भांति समझ सकते हे कि A स्थिति में जब श्रम का मूल्य 7 रू. प्रति इकाई है और पूँजी का मूल्य 10 रू. प्रति इकाई है तो इन उत्पादन के साधनों का तीसरा संयोग अर्थात श्रम की 3 इकाइयों और पूँजी की 2 इकाइयों द्वारा उत्पादन करने पर उत्पादक की लागत न्यूनतम रहेगी । माना कि श्रम का मूल्य स्थिर रहता है अर्थात 7 रू. प्रति इकाई लेकिन पूँजी का मूल्य घटकर 10 रू. प्रति इकाई के स्थान पर 4 रू. प्रति इकाई हो जाता है । जैसा कि B स्थिति में बताया गया है । इस स्थिति में उत्पादन के साधनों का दूसरा संयोग अर्थात श्रम की दो इकाइयों एवं पूँजी की 3 इकाइयों दारा उत्पादन करने पर

उत्पादक की लागत न्यूनतम रहेगी । इससे यह स्पष्ट रूप से समझ में आ रहा है कि A स्थिति में श्रम, पूँजी की तुलना में सस्ता होने से इसकी अधिक 3 इकाइयों एवं पूँजी की कम (2) इकाइयों का प्रयोग किया जा रहा था । लेकिन B स्थिति में श्रम की तुलना में पूँजी सस्ती हो जाने से पूँजी की अधिक (3) एवं श्रम की कम (2) इकाइयों का प्रयोग किया जाने लगा है ।

9.3 कॉब-डगलस उत्पादन फलन

अर्थशास्त्रियों ने उत्पादन के साधनों और उत्पादन में परिवर्तनों के आपसी संबंध के सांख्यिकीय विश्लेषण का प्रयोग करके वास्तविक उत्पादन-फलन का निर्माण किया है । अमेरिका के दो अर्थशास्त्री पॉल एच.डगलस एवं सी.डब्ल्यू.कॉब, द्वारा सांख्यिकीय विश्लेषण के आधार पर तैयार किया गया उत्पादन-फलन इन्हीं के नाम से जाना जाता है- ' 'कॉब-डगलस उत्पादन फलन' ' । कॉब-डगलस उत्पादन-फलन विनिर्माण उद्योग पर लागू होता है । यह उत्पादन-फलन उत्पादन के दो साधनों- श्रम एवं पूँजी को लेकर तैयार किया गया था । यह फलन यह स्थापित करता है कि श्रम एवं पूँजी की मात्रा पर ही उत्पादन की मात्रा निर्भर करती है । इसको निम्न प्रकार से गणितीय रूप में लिखा जाता है-

$Q=KL$ .....$C1^{-a}$

यहां पर-

Q= उत्पादन की मात्रा

L= श्रम की मात्रा

C= पूँजी की मात्रा

K तथा a= धनात्मक स्थिर चर जिनमें

a का मान 1 से कम होता है ।

इस उत्पादन-फलन की मान्यता के अनुसार श्रम तथा पूँजी उत्पादन के केवल दो साधन होते हैं और इनकी सभी इकाइयों एक रूप तथा समान हैं और उत्पादन की वृद्धि में 75 प्रतिशत श्रम का योगदान एवं 25 प्रतिशत पूँजी का योगदान होता है ।

आर्थिक सिद्धान्तों में हम उत्पादन-फलन में उत्पादन के साधनों के दो प्रकार के सम्बन्धों का विशेष अध्ययन करते हैं-

(1) उत्पादन के कुछ साधन स्थित हैं तथा कुछ साधनों की मात्रा में परिवर्तन किया जाता है, इसे अल्पकालीन उत्पादन-फलन कहते है । इसका "परिवर्तनशील अनुपात के नियम" के अन्तर्गत अध्ययन किया जाता है ।

(2) उत्पादन के सभी सोंधनों में परिवर्तन किया जाता है, इसे दीर्घकालीन उत्पादन-फलन कहते है । इसका अध्ययन "पैमाने के प्रतिफल' ' के अन्तर्गत किया जाता है ।

बोध प्रश्न- 1

1. उत्पादन-फलन को परिभाषित कीजिए ।
2. काब-डगलस उत्पादन फलन की व्याख्या कीजिए ।
3. उत्पादन-फलन की विशेषताएं बताइए ।

9.4 उत्पादन-फलन की मान्यताएँ (Assumptions of production Function)

(1) उत्पादन-फलन एक निश्चित समय पर ही लागू होता है ।

(2) उत्पादन-फलन के लिए निर्धारित समयावधि में तकनीकी स्तर में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

(3) अल्पकालीन उत्पादन-फलन में कुछ साधन स्थिर एवं कुछ परिवर्तनशील होते हैं ।

(4) दीर्घकालीन उत्पादन-फलन में सभी साधन परिवर्तनशील होते है ।

(5) उत्पादन के साधन छोटी-छोटी इकाइयों में विभाज्य हैं ।

(6) उत्पादन के साधन प्रतिस्थापित किये जा सकते हैं ।

(7) उत्पादन-फलन में उत्पत्ति के साधनों के सबसे उत्तम संयोग के द्वारा उत्पादन की अधिक से अधिक मात्रा प्राप्त की जा सकती है ।

9.5 उत्पादन-फलन की विशेषताएँ (Characteristics Of Production)

(1) उत्पादन-फलन उत्पादन के साधनों की मात्रा एवं उत्पाद की मात्रा के बीच संबंध व्यक्त करता है ।

(2) उत्पादन फलन में उत्पादन के साधनों की एवं उत्पाद की कीमत का कोई महत्व नहीं है लेकिन उत्पादन के लिए निर्णय लेते समय इनकी कीमतों पर भी ध्यान दिया जाता है ।

(3) उत्पादन फलन की एक निश्चित समयावधि एक घण्टा या एक दिन हो सकती है ।

(4) उत्पादन फलन के लिए निश्चित तकनीकी स्तर होता है अगर तकनीकी स्तर में परिवर्तन आता है तो यह माना जाता है कि उत्पादन की मात्रा पहले से अधिक प्राप्त होगी, उत्पादन के साधन वही होंगे और उत्पादन फलन बदल जायेगा ।

(5) उत्पादन फलन में उत्पादन के एक साधन के स्थान पर दूसरे को प्रतिस्थापित किया जा सकता है ।

9.6 परिवर्तनशील अनुपातों का नियम (Characteristics Of Production Fuction)

किसी भी वस्तु का उत्पादन उत्पत्ति के विभिन्न संयोगों से होता है । उत्पादन की मात्रा बढ़ाने के लिए उत्पादन के साधनों की मात्रा भी बढ़ानी पड़ती है । अल्पकाल में सभी साधनों की मात्रा बढ़ाना संभव नहीं होता है अत: उत्पादन के अन्य साधनों को स्थित रखकर परिवर्तनशील एक या एक से अधिक साधनों की मात्रा को बढ़ाया जाता है । उत्पादन की मात्रा में वृद्धि करने के लिए परिवर्तनशील साधन की मात्रा को बढ़ाते रहते हैं, इससे इस साधन का अनुपात बढ़ता रहता है और परिवर्तनशील साधन एवं स्थित साधन का अनुपात बदलता रहता है ।

इस नियम के तहत उत्पादन पर उत्पत्ति के साधनों के अनुपातों में होने वाले परिवर्तन का क्या प्रभाव पड़ता है यह अध्ययन किया जाता है, इसलिये इसे "परिवर्तनशील अनुपात का नियम" कहते हैं । परिवर्तनशील साधन की मात्रा बढ़ाते रहने से एक सीमा के बाद सीमान्त

उत्पत्ति घटने लगती है । अत: पहले इसे हासमान प्रतिफल का नियम कहा जाता था । इस प्रकार परिवर्तनशील अनुपात का नियम एवं हासमान प्रतिफल का नियम दोनों एक ही है ।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री यह मानते थे कि ह्रासमान प्रतिफल का नियम केवल कृषि क्षेत्र में ही लागू होता है । प्रो. मार्शल ने कृषि के सबंध में घटते प्रतिफल की विवेचना की और इसे परिभाषित किया कि "यदि कृषि में कोई सुधार न हो तो भूमि पर उपयोग की जाने वाली पूँजी तथा श्रम की मात्रा में वृद्धि करने से उत्पादन में सामान्यतया अनुपात में कम वृद्धि होती है । "

प्रो. मार्शल के अनुसार उत्पादन के साधनों में भूमि को स्थिर रखा गया है और पूँजी एवं श्रम की मात्रा में परिवर्तन किया गया है । इसके अनुसार पूँजी और श्रम की मात्रा में वृद्धि करने से कुल उत्पादन में घटती हुई दर से वृद्धि होती है । लेकिन कृषि तकनीक में कोई सुधार नहीं होना चाहिए । यदि कृषि तकनीक में सुधार होता है तो उत्पादन में बढ़ती हुई दर से वृद्धि हो सकती है।

हम उपरोक्त नियम निम्न सारणी 9.3 के अध्ययन उदाहरण से समझ सकते है ।

सारणी संख्या 9.3

1 हैक्टेयर भूमि पर श्रम एवं पूँजी की विभिन्न इकाइयों के लगाने से उत्पत्ति पर प्रभाव

भूमि हैक्टेयर	श्रम एवं पूँजी की इकाइयाँ	कुल उत्पादन (टन)	सीमान्त उत्पादन (टन)
1	1	20	20
1	2	36	16
1	3	48	12
1	4	56	8
1	5	60	4

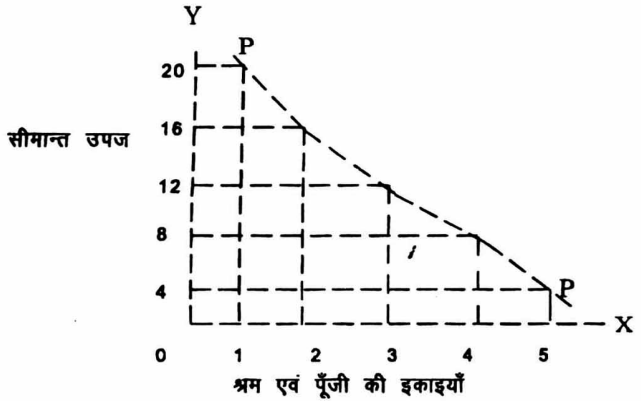

रेखाचित्र 9.1

किसी व्यक्ति के पास 1 हैक्टेयर भूमि है इसमें उत्पादन के लिए प्रारम्भ में वह 1 इकाई पूँजी व श्रम लगाता है । उत्पादन 20 टन होता है । वह उत्पादन की मात्रा बढ़ाने के लिए पूँजी एवं श्रम की दूसरी इकाई लगाता है तब कुल उत्पादन बढ़कर 36 टन हो जाता है । श्रम एवं पूँजी की मात्रा दुगुनी कर देने पर भी उत्पादन की मात्रा दुगुनी नहीं हो पायी । श्रम एवं पूँजी की मात्रा बढ़ाकर 3 इकाई, 4 इकाई एवं 5 इकाई करने पर उत्पादन की मात्रा बढ़कर क्रमश: 48 टन, 56 टन एवं 60 टन हो जाती है और सीमांत उत्पादन क्रमश: 12 टन, 8 टन एवं 4 टन होता है । इससे यह सिद्ध होता है कि श्रम एवं पूँजी की अतिरिक्त वृद्धि करने से कुल उत्पादन में घटती हुई

दर से वृद्धि होती है, अर्थात् सीमांत उत्पादन बराबर घटता रहता है । उत्पादन की इसी प्रकृति को ह्रासमान कहते हैं ।

रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण

चित्र संख्या एक में श्रम एवं पूँजी की एक इकाई से 20 टन, दूसरी से 16, तीसरी से 12, चौथी से 8 एवं पाँचवी से 4 टन उत्पादन प्राप्त होता है । PP रेखा जो ऊपर से नीचे की और झुकी हुई है । इससे यह तथ्य स्पष्ट होता है कि कृषि में भूमि की मात्रा स्थिर रखने पर, पूँजी एवं श्रम की इकाइयों बढ़ाने पर उत्पादन में घटती हुई दर से वृद्धि होती है ।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों की यह मान्यता है कि परिवर्तनशील अनुपातों के नियम का क्षेत्र केवल भूमि एवं कृषि ही नहीं है, यह नियम बहुत व्यापक है और उत्पादन के सभी क्षेत्रों में लागू होता है। इनका मानना है कि उत्पादन के किसी भी साधन को स्थिर रखा जा सकता है, जबकि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री केवल श्रम को स्थिर मानते थे । श्रीमती जॉन राबिन्सन के अनुसार "उत्पत्ति हास नियम यह बतलाता है कि यदि उत्पत्ति के किसी एक साधन की मात्रा को स्थिर रखा जाये तथा अन्य साधनों की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि की जाये तो एक बिन्दु के बाद उत्पादन में घटती हुई दर से वृद्धि होगी । " इससे यह मालूम चलता है कि श्रीमती जॉन रबिन्सन एक साधन को स्थिर एवं अन्य साधनों को परिवर्तनशील मानती थी ।

प्रो. बेन्हम के अनुसार " उत्पादन साधनों के संयोग में किसी एक साधन का अनुपात जैसे-जैसे बढ़ाया जाता है एक बिन्दु के बाद उस साधन की सीमान्त तथा औसत उपज घटने लग जाती है। " प्रो. स्टिगलर का मानना है कि "जब कुछ साधनों को स्थिर रखकर एक साधन में समान वृद्धियों की जाती है तो एक सीमा के पश्चात उत्पादन में होने वाली वृद्धियां कम हो जायेगी अर्थात सीमान्त उत्पादन घट जायेंगे । "प्रो. बोल्डिंग ह्रासमान प्रतिफल (Diminishing return) शब्द को अस्पष्ट मानते हैं, वे मानते हैं कि इसके कई अर्थ किये जा सकते हैं, इसलिए वे इसे " अंततः ह्रासमान सीमांत भौतिक उत्पादकता नियम (Law of Eventually Diminishing Marginal physical productivity) कहना अधिक उपयुक्त मानते हैं । उनके अनुसार " जब कुछ साधनों की स्थिर मात्रा के साथ किसी अन्य साधन की मात्रा को बढ़ाया जाता है तो परिवर्तनशील साधन की सीमांत भौतिक उत्पादकता अन्ततः अवश्य ही घट जायेगी । " इस प्रकार हमने देखा है कि प्रो. बेन्हम, प्रो. स्टिगलर एवं प्रो. बोल्डिंग अन्य सारो को स्थिर मानकर केवल एक साधन को परिवर्तनशील मानते थे ।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों का यह भी मानना है कि परिवर्तनशील साधन की सीमान्त उत्पादकता एवं औसत उत्पादकता अन्ततः घटने लग जाती है ।

इस नियम को हम एक उदाहरण द्वारा समझ सकते हैं- यहाँ पर एक साधन (भूमि) को स्थिर रखा गया है और अन्य साधनों को परिवर्तनशील रखते हैं, इन्हें हम श्रम की इकाइयों के रूप में मानते हैं ।

सारणी 9.4

10 हैक्टेयर भूमि पर श्रम की विभिन्न इकाइयों के लगाने से उत्पत्ति पर प्रभाव

स्थिर साधन भूमि (हैक्टेयर)	परिवर्तनशील साधन श्रम की इकाईयां	कुल उत्पादन (टन)	औसत उत्पादन (टन)	सीमान्त उत्पादन (टन)	विभिन्न अवस्थाएं 10

10	1	8	0	0	प्रथम
10	2	20	10	12	अवस्था
10	3	33	11	13	
10	4	48	12	15	
10	5	60	12	12	द्वितीय
10	6	66	11	6	अवस्था
10	7	70	10	4	
10	8	70	8.75	0	तृतीय
10	9	68	8.75	-2	अवस्था

उपरोक्त सारणी का अध्ययन करने से उत्पत्ति हास नियम की आधुनिक व्याख्या के अनुसार उत्पत्ति की तीन अवस्थाएं प्राप्त होती है ।

प्रथम अवस्था- इस अवस्था में स्थिर साधन (भूमि) के साथ परिवर्तनशील साधन (श्रम) की मात्रा का संयोजन किया जाता है । प्रारम्भ में जब परिवर्तनशील साधन की मात्रा कम होती है तब उत्पादन कम मात्रा में प्राप्त होता है और जैसे-जैसे परिवर्तनशील साधन की इकाइयां बढ़ाते जाते हैं उत्पादन की मात्रा तीव्र गति से बढ़ती है । इसका कारण यह है कि प्रारम्भ में परिवर्तनशील साधन की मात्रा कम होने के कारण स्थिर साधन का पूर्ण रूप से उपयोग नहीं हो पाता है और परिवर्तनशील साधन भी उत्पादन के सारे कार्य करने में असमर्थ रहता है इस कारण उत्पादन की मात्रा कम होती है । जैसे-जैसे परिवर्तनशील साधन की मात्रा बढ़ती जाती है, स्थिर साधन की कार्य क्षमता बढ़ जाती है और इसका पूर्ण उपयोग होने लगता है, इससे उत्पादन की मात्रा तीव्र गति से बढ़ने लगती है ।

परिवर्तनशील साधन की मात्रा में वृद्धि होने से इसकी कार्यक्षमता में वृद्धि होती है और इसकी संख्या उचित मात्रा में होने से इनमें श्रम विभाजन (विशेषीकरण) भी हो जाता है इससे इनकी उत्पादकता बढ़ जाती है । परिवर्तनशील साधन की सीमांत उत्पादकता और औसत उत्पादकता में लगातार वृद्धि होती रहती है । औसत उत्पादकता लगातार बढ़ती रहती है, सीमान्त उत्पादकता लगातार नहीं बढ़ती, प्रारम्भ में बढ़ती है और फिर घटना प्रारम्भ कर देती है, लेकिन घटते हुए भी यह इस अवस्था में औसत उत्पादन से अधिक होती है । इस अवस्था में परिवर्तनशील साधन एवं स्थिर साधन का अनुकूलतम संयोग होने से कुल उत्पादन की मात्रा में बढ़ती हुई दर से वृद्धि होती है इसलिए इस अवस्था को बढ़ते प्रतिफल की अवस्था कहते हैं ।

द्वितीय अवस्था- परिवर्तनशील साधन की मात्रा में लगातार वृद्धि करते रहने से स्थिर साधन की मात्रा इसकी तुलना में कम हो जाती है और उत्पादन के साधनों का अनुकूलतम संयोग नहीं रह पाता है । इस कारण परिवर्तनशील साधन के औसत उत्पादन एवं सीमांत उत्पादन घटने लगते है, लेकिन दोनों ही धनात्मक रहते है, परन्तु इस अवस्था के अन्त में सीमान्त उत्पादकता शून्य हो जाती है ।

परिवर्तनशील साधन की मात्रा स्थिर साधन की मात्रा की तुलना में अधिक होने से स्थिर साधन का अत्यधिक उपयोग होने लगता है । इस कारण से कुल उत्पादन में वृद्धि घटती हुई दर से होने लगती है । इसका कारण ह्रासमान सीमांत प्रतिफल नियम का लागू होना है ।

श्रीमती जॉन राबिन्सन का यह मानना है कि उत्पादन के साधन एक दूसरे के लिए अपूर्ण प्रतिस्थापन होते हैं । द्वितीय अवस्था में हमने देखा है कि जब स्थिर साधन की मात्रा परिवर्तनशील साधन की मात्रा की तुलना में कम हो जाती है तब इसके साथ परिवर्तनशील साधन की इकाई का प्रतिस्थापन किया जाता है तो घटते प्रतिफल प्राप्त होते है । अगर उत्पादन के साधनों का आपस में पूर्ण प्रतिस्थापन होता तो उत्पादन की मात्रा में कमी नहीं होती और उत्पादन लगातार बढ़ता रहता, क्योंकि जो भी साधन कम होता उसके स्थान पर दूसरे साधन को प्रतिस्थापित कर दिया जाता । श्रीमती जॉन राबिन्सन के अनुसार साधनों के बीच प्रतिस्थापन सापेक्षता अनन्त से कम होती है, इसी कारण घटते प्रतिफल प्राप्त होते हैं । यह अवस्था महत्वपूर्ण अवस्था होती है क्योंकि उत्पादक इसी अवस्था में वस्तु का उत्पादन करना चाहेगा । यह अवस्था ह्रासमान प्रतिफल की अवस्था कहलाती है क्योंकि इस अवस्था में औसत उत्पादकता और सीमान्त उत्पादकता दोनों ही लगातार घटते रहते है ।

तृतीय अवस्था- परिवर्तनशील साधन की मात्रा को लगातार बढ़ाते जाने पर स्थिर साधन की मात्रा इसकी तुलना में बहुत कम हो जाती है । इससे स्थिर साधन की उत्पादकता घटने लगती है । परिवर्तनशील साधन भी जब संख्या में अधिक हो जाते है और काम कम हो जाता है तो ये दूसरी इकाइयों पर भार हो जाते है और उनको भी कार्य करने से रोकते हैं । बातें करेंगे, स्थान घेरेंगे, दूसरे के काम में हस्तक्षेप करेंगे, इससे परिवर्तनशील साधन की सीमांत उत्पादकता ऋणात्मक हो जाती है, उत्पादन के दोनों साधनों की कार्य कुशलता घट जाती है । इस कारण इसलिए इस अवस्था को ऋणात्मक प्रतिफल की अवस्था कहा जाता है । स्थिर साधन एवं परिवर्तनशील साधन का संयोग काफी असंतुलित होने के कारण कुल उत्पादन घटने लगता है । ऊपर वर्णित उत्पादन की तीनों अवस्थाओं को रेखाचित्र द्वारा निम्न प्रकार से दर्शाया जा सकता है ।

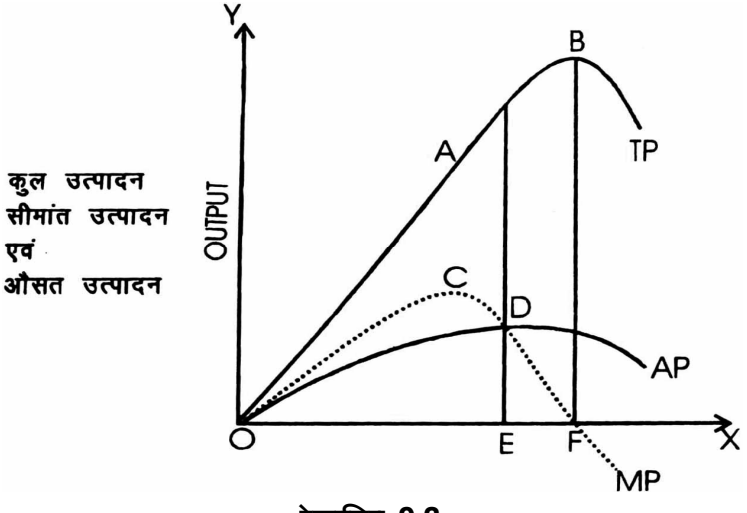

रेखाचित्र 9.2

रेखा चित्र 9.1 मे TP (कुल उत्पादन) वक्र, AP (औसत उत्पादन) वक्र और MP (सीमांत उत्पादन) वक्र दिखाये गये है । OX- अक्ष पर श्रमिकों (परिवर्तनशील साधन) की मात्रा और OY- अक्ष पर कुल उत्पादन, औसत उत्पादन और सीमांत उत्पादन बताये गये हैं । एक साधन को स्थिर रखकर परिवर्तनशील साधन की मात्रा में वृद्धि करने पर (साधनों के अनुपात में परिवर्तन

होने से) कुल उत्पादन, औसत उत्पादन और सीमांत उत्पादन में जिस प्रकार परिवर्तन आते हैं उनका अध्ययन इस रेखाचित्र द्वारा किया जा सकता है ।

उत्पादन की निम्नलिखित तीन अवस्थाएं है- प्रथम अवस्था O से E तक, द्वितीय अवस्था E और F के बीच की और, तृतीय अवस्था F के बाद की है ।

प्रथम अवस्था (Stage-1) रेखाचित्र से यह स्पष्ट होता है कि कुल उत्पादन वक्र TP की ढाल बिन्दु O से लेकर A तक बढ़ रही है अर्थात बिन्दु A तक कुल उत्पादन बढ़ती हुई दर से बढ़ता है। A बिन्दु के पश्चात TP वक्र उपर की ओर बढ़ता जाता है लेकिन इसकी ढाल घटती जाती रही है इसका अर्थ यह है कि कुल उत्पादन A बिन्दु के पश्चात घटती दर से बढ़ता है । A बिन्दु को मोड़ बिन्दु (Point Of Inflexions) कहते है । रेखाचित्र में बिन्दु A के ठीक नीचे सीमान्त उत्पादन बिन्दु C पर उच्चतम स्थिति में होता है इसके पश्चात यह घटना प्रारम्भ कर देता है । इसके घटने का प्रभाव कुल उत्पादन पर पड़ता है और इस बिन्दु A के पश्चात कुल उत्पादन घटती दर से बढ़ता है, जब सीमांत उत्पादन बढ़ता रहता है कुल उत्पादन बढ़ती हुई दर से बढ़ता है । (A) बिन्दु तक ।

इस बिन्दु D पर सीमांत उत्पादन वक्र औसत उत्पादन वक्र को ऊपर से काटता है और इसके पश्चात यह औसत उत्पादन वक्र से नीचे रहता है ।

प्रथम अवस्था वहां समान्त होती है जहां औसत उत्पादन वक्र अपनी उच्चतम स्थिति में होता है और सीमांत उत्पादन वक्र इसे ऊपर से काटता है ।

प्रथम अवस्था में परिवर्तनशील साधन का औसत उत्पादन बढ़ता रहता है और जहां पर प्रथम अवस्था समाप्त होती है उस बिन्दु D पर यह अधिकतम होता है और उसके पश्चात घटना प्रारंभ कर देता है । इस अवस्था में सीमांत उत्पादन पहले से बढ़ता रहता है और यह औसत उत्पादन से अधिक होता है । बिन्दु E प्रथम अवस्था का अंतिम स्थान है यहां पर (E बिन्दु पर) यह औसत उत्पादन को उपर से काटता है और इसके पश्चात यह औसत उत्पादन से नीचे रहता है ।

द्वितीय अवस्था (II Stage) - दूसरी अवस्था E बिन्दु से प्रारम्भ होती है और F बिन्दु तक रहती है । इस अवसी में कुल उत्पादन वक्र (TP) घटती दर से बढ़ते हुए अपने उच्चतम बिन्दु B तक जाता है । इस अवस्था में बढ़ते हुए औसत उत्पादन वक्र (AP) एवं सीमांत उत्पादन वक्र (MP) दोनों ही घटते हुए हैं परन्तु धनात्मक स्थिति में है । इस अवस्था के अंतिम बिन्दु F पर सीमान्त उत्पादन वक्र शून्य होता है । यह बिन्दु कुल उत्पादन वक्र के बिन्दु B के ठीक नीचे स्थिर होता है । यह अवस्था महत्वपूर्ण अवस्था होती है ।

तृतीय अवस्था (III Stage)- यह अवस्था F बिन्दु से प्रारम्भ होती है । इस अवस्था में परिवर्तनशील साधन का सीमांत उत्पादन ऋणात्मक हो जाता है और सीमांत उत्पादन वक्र X के नीचे की ओर झुक जाता है । औसत उत्पादन भी घटता है लेकिन धनात्मक रहता है । इस अवस्था में कुल उत्पादन घटता है इसलिए कुल उत्पादन वक्र नीचे की ओर झुकता है । इस अवस्था में स्थिर साधन की तुलना में परिवर्तनशील साधन की मात्रा बहुत अधिक होने से उत्पादन घटता रहता है इसे ऋणात्मक प्रतिफल की अवस्था कहा जाता उत्पादन की तीनों अवस्थाओं का अध्ययन किया है हमें यह देखना है कि उपरोक्त तीनों अवस्थाओं में से कौनसी अवस्था उत्पादन की दृष्टि से उपयुक्त है । प्रथम अवस्था में परिवर्तनशील साधन की मात्रा में

वृद्धि करने से स्थिर साधन एवं परिवर्तनशील साधन दोनों की कार्यकुशलता में वृद्धि होने से उत्पादन की मात्रा बढ़ती है । लेकिन इस अवस्था में उत्पादन के दोनों साधनों की पूर्ण क्षमता का उपयोग करना संभव नहीं होता है । द्वितीय अवस्था में परिवर्तनशील साधन की मात्रा में ओर वृद्धि करने से कुल उत्पादन की मात्रा में और वृद्धि होती है और वह उच्चतम स्तर पर पहुंच जाती है । तृतीय अवस्था में श्रम की इकाईयों में और वृद्धि करने से श्रम की सीमांत उत्पादकता ऋणात्मक हो जाती है । इससे कुल उत्पादन घटने लग जाता है । इस अवस्था में औसत उत्पादन भी गिरने लग जाता है । अत: उत्पादक के लिए द्वितीय अवस्था ही सबसे अधिक श्रेष्ठ है ।

बोध प्रश्न- 2

1. परिवर्तनशील अनुपात के नियम की प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गयी परिभाषा बताइए ।
2. परिवर्तनशील अनुपात के नियक की श्रीमती जॉन राबिन्सन द्वारा दी गयी परिभाषा बताइए ।
3. फर्म परिवर्तनशील अनुपात के नियम की किस अवस्था में उत्पादन करना चाहेगी।

9.7 परिवर्तनशील अनुपात के नियम की मान्यताएं

परिवर्तनशील अनुपात का नियम निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है ।

1. तकनीकी ज्ञान का स्तर अपरिवर्तित (स्थिर) रहता है क्योंकि तकनीकी ज्ञान में सुधार होने पर उत्पादन की मात्रा बढ़ने की संभावना रहती है ।
2. फर्म का ढाँचा, प्रबंधकीय क्षमता एवं संगठन अपरिवर्तित रहते हैं ।
3. इस नियम का संबंध उत्पादन की मात्रा से है, उत्पादित वस्तु के मूल्य से नहीं ।
4. उत्पादन के साधनों में से कुछ साधनों की मात्रा को स्थिर रखा जाता है एवं कुछ साधनों की मात्रा में परिवर्तन किया जाता है । यदि सभी साधनों को परिवर्तित कर दिया जाता है तो यह नियम लागू नहीं होगा ।
5. परिवर्तनशील साधनों को छोटी-छोटी इकाइयों में विभाजित किया जा सकता है ।
6. साधन की सभी इकाइयाँ समान होती है एवं एक समान कार्यकुशल होती है ।
7. उत्पादन के साधनों की लागत से कोई संबंध नहीं होता है ।

9.8 परिवर्तनशील अनुपात के नियम का महत्व

विकासशील देशों में इस सिद्धान्त का बहुत महत्व है । इन देशों में जनसंख्या का मुख्य व्यवसाय कृषि होता है । लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्य से जुड़ी होती है । इन देशों में जनसंख्या वृद्धि की गति अधिक होने से भूमि पर जनसंख्या का भार बहुत अधिक होता है उत्पादन के दोनों साधन भूमि (स्थिर साधन) और जनसंख्या अर्थात श्रमिक (परिवर्तनशील साधन) असंतुलित हो जाते है । भूमि की तुलना में श्रमिकों की संख्या अधिक होने से श्रमिकों की सीमांत उत्पादकता घटना प्रारम्भ हो जाती है और जनसंख्या के बढ़ने से श्रमिकों की संख्या अधिक मात्रा में होने से सीमांत उत्पादकता शून्य एवं ऋणात्मक भी हो सकती है । इस स्थिति में कुल उत्पादन भी घटने लग जाता है । यह ह्रासमान प्रतिफल के नियम की क्रियाशीलता को प्रदर्शित करती है । विकासशील देशों के आर्थिक विकास के लिए यह स्थिति अच्छी नहीं है । अर्थशास्त्रियों

ने इस स्थिति से निपटने के लिए विचार व्यक्त किये हैं और यह सुझाव दिया है कि इस अतिरिक्त श्रम को अन्य व्यवसायों में लगाया जाये इससे भूमि की उत्पादकता भी बढ़ेगी और अतिरिक्त श्रमिकों की सीमांत उत्पादकता भी धनात्मक होगी । नर्क्स के अनुसार अनुत्पादकता (अतिरिक्त) श्रम में छिपी हुई बचत संभावनाएं होती है । इस अतिरिक्त श्रम को भूमि निर्माण से हटाकर अन्य कार्यों जैसे-सड़कें बनवाना, नहरें खुदवाना, पुल बनवाना, भवन बनवाना आदि में लगाने से इसकी उत्पादकता भी बढ़ेगी और भूमि से हटाने से ह्रासमान प्रतिफल की स्थिति को टाला जा सकता है । इस प्रकार परिवर्तनशील अनुपात के नियम का अध्ययन विकासशील देशों के लिए बहुत महत्व रखता है ।

9.9 परिवर्तनशील अनुपात के नियम के प्रति प्रतिष्ठित एवं आधुनिक अर्थशास्त्रियों का दृष्टिकोण

1. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री इस सिद्धान्त को केवल भूमि पर क्रियाशील मानते हैं । आधुनिक अर्थशास्त्री इस सिद्धान्त को सभी क्षेत्रों में क्रियाशील मानते है ।

2. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री केवल भूमि को स्थिर मानते थे, आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार भी उत्पादन का कोई भी साधन स्थिर हो सकता है ।

3. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री परिवर्तनशील साधन के औसत उत्पादन और सीमांत उत्पादन को प्रारम्भ से ही घटते हुए मानते थे, जबकि आधुनिक अर्थशास्त्री मानते हैं कि औसत उत्पादन और सीमांत उत्पादन पहले बढ़ते हैं फिर अधिकतम बिंदु पर जाकर घटना प्रारम्भ करते है ।

4. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार कुल उत्पादन प्रारम्भ से ही घटती हुई दर से बढ़ता है । आधुनिक अर्थशास्त्री कुल उत्पादन को पहले बढ़ती हुई दर से बढ़ता हुआ मानते है इसके पश्चात घटती हुई दर से बढ़ता हुआ और इसके पश्चात घटता हुआ मानते हैं ।

5. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री उत्पादन के तीन अलग- अलग नियम मानते थे- वर्धमान प्रतिफल का नियम, स्थिर प्रतिफल का नियम और ह्रासमान प्रतिफल का नियम । आधुनिक अर्थशास्त्री केवल एक नियम परिवर्तनशील अनुपात का नियम मानते है और इस नियम की तीन अवस्थाएं, वर्धमान स्थिर एवं ह्रासमान मानते है ।

9.10 सारांश

प्रत्येक फर्म कम से कम लागत पर अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त करना चाहती है । वह उत्पत्ति के साधनों के उचित संयोग से उत्पादन की अधिकतम मात्रा प्राप्त करने का प्रयास करती है । इसके लिए उत्पत्ति के साधनों की इकाइयों में परिवर्तन करके साधनों का उचित संयोग प्राप्त करने का प्रयास करती है, इसे उत्पादन फलन कहते हैं- अर्थात, उत्पादन-फलन एक निश्चित समय में एक निश्चित तकनीकी स्तर पर उत्पादन के साधनों के विभिन्न संयोगों द्वारा प्राप्त की गयी उत्पादन की अधिकतम मात्रा को बताता है । अल्पकाल में समयाभाव के कारण उत्पत्ति के सभी साधनों में परिवर्तन करना संभव नहीं होता है । अत: कुछ साधनों को स्थिर रखकर कुछ साधनों की मात्रा में परिवर्तन किया जाता है और साधनों के उचित संयोग से उत्पादन की अधिकतम मात्रा प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है इसे परिवर्तनशील अनुपात का नियम कहते है । इसमें उत्पत्ति की तीन अवस्थाएं प्राप्त होती है । प्रथम अवस्था में

परिवर्तनशील साधन की इकाइयों में वृद्धि होने से कुल उत्पादन की मात्रा में बढ़ती हुई दर से वृद्धि होती है । द्वितीय अवस्था में परिवर्तनशील साधन की मात्रा में लगातार वृद्धि करते रहने से औसत उत्पादन में घटती हुई दर से वृद्धि होती है । सीमांत उत्पादकता अंत में शून्य हो जाती है इस अवस्था में कुल उत्पादकता अधिकतम बिन्दु पर होती है । तृतीय अवस्था में परिवर्तनशील साधन की इकाइयाँ अधिक होने से इसकी औसत उत्पादकता घटने लगती है और सीमांत उत्पादकता ऋणात्मक हो जाती है इससे कुल उत्पादन घटने लगता है । फर्म द्वितीय अवस्था में उत्पादन करना चाहेगी क्योंकि उत्पत्ति के साधनों के उचित संयोग से अधिकतम उत्पादन इसी अवस्था में प्राप्त किया जा सकता है ।

9.11 संदर्भ ग्रंथ

Ahuja, H.L.-Advance Economic Theory

सैम्युअलसन, पीए. : - अर्थशास्त्र, कैपीटल बुक हाउस, 26 यू.बी. जवाहर नगर, दिल्ली

सेठ, एम. एल. : - अर्थशास्त्र के सिद्धांत

9.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

उत्तर- 1 -9.2, 2-9.3, 3-9.5

उत्तर 2-9.6, 2-9.6, 3-9.6

9.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. परिवर्तनशील अनुपात के नियम की मान्यताएं बताइए?
2. परिवर्तनशील अनुपात के नियम का महत्व समझाइए?
3. परिवर्तनशील अनुपात के नियम के संबंध में प्रतिष्ठित एवं आधुनिक अर्थशास्त्रियों के दृष्टिकोण?

इकाई- 10

समोत्पाद वक्र, साधनों का न्यूनतम लागत संयोग एवं पैमाने के प्रतिफल (ISO Product curve, Least cost combination of Factors and Returns to Scale)

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 समोत्पादक वक्र का अर्थ, परिभाषा एवं विशेषताएं

10.3 तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर

10.4 सम लागत रेखाएं

10.5 साधनों का न्यूनतम लागत संयोग

10.6 समोत्पाद वक्र की सहायता से उत्पादक का संतुलन

10.7 पैमाने के प्रतिफल

10.7.1 पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल

10.7.2 पैमाने के समान प्रतिफल

10.7.3 पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल

10.8 सारांश

10.9 संदर्भ ग्रन्थ

10.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

- समोत्पाद के बारे में जान सकेंगें
- तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर के बारे में समझ सकेंगे
- सम-लागत रेखा की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे
- समोत्पाद वक्र एवं सम-लागत रेखा की सहायता से उत्पादक के संतुलन की विवेचना कर सकेंगे
- उत्पादन के सभी साधनों की मात्रा में समान अनुपात में परिवर्तन करने से उत्पादक के लिए कौनसी अवस्था लाभदायक रहेगी यह समझ सकेंगे ।

10.1 प्रस्तावना

समोत्पाद वक्र की सहायता से यह समझा जा सकता है कि दो साधनों के विभिन्न संयोगो से किसी वस्तु का समान मात्रा में उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है । दो साधनों के

संयोग में एक साधन की एक इकाई के स्थान पर दूसरे साधन की कितनी इकाइयों को प्रतिस्थापित किया जा सकता है यह तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर को समझा जा सकता है । उत्पादन साधनों की कीमतों तथा उत्पादक द्वारा साधनों पर किये जाने वाले कुल व्यय को जानने के लिए समलागत रेखा का अध्ययन करना आवश्यक है । उत्पादक कम से कम लागत पर अधिकतम उत्पादन की मात्रा प्राप्त करने के लिए उत्पादन के साधनों के किस संयोग का चुनाव करेगा, यह समोत्पादक वक्र एवं कीमत रेखा दोनों के द्वारा समझा जा सकता है । दीर्घकाल में उत्पादक उत्पत्ति के सभी साधनों में समान अनुपात में परिवर्तन कर सकता है । अत: उसे इन साधनों में किस अनुपात में परिवर्तन करना चाहिए जिससे उसे अधिकतम उत्पादन की मात्रा प्राप्त हो सके, यह पैमाने के प्रतिफल की तीनों अवस्थाओं के अध्ययन से समझ सकते है ।

10.2 समोत्पाद वक्र

समोत्पाद वक्र (Iso Product Curve)-समोत्पाद वक्र की सहायता से उत्पादन के सिद्धांत का अध्ययन किया जाता है जैसे एक उपभोक्ता को दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों से प्राप्त संतुष्टि का अध्ययन उदासीनता वक्र की सहायता से किया जाता है, उसी प्रकार एक फर्म केवल दो साधनों के विभिन्न संयोगों से समान मात्रा में उत्पादन प्राप्त करती है, यह अध्ययन समोत्पाद वक्र की सहायता से किया जाता है । प्रो. फ्रिश, प्रो. कोहन, प्रो. सीमर्ट, प्रो. करिस्टेड, प्रो. हिक्स, एवं प्रो. बोल्डिंग आदि अर्थशास्त्रियों ने सम उत्पाद वक्र विश्लेषण की सहायता से उत्पादन के तत्वों के संयोग के सिद्धात को समझाया है ।

अर्थ-समोत्पाद वक्र उत्पादन के किन्हीं दो साधनों के उन विभिन्न संयोगों को व्यक्त करता है जिनके द्वारा किसी उत्पादन की समान मात्रा प्राप्त की जा सकती है । प्रो. कोहन एवं सीमर्ट के अनुसार "एक समोत्पाद वक्र वह वक्र होता है जिस पर उत्पादन की अधिकतम प्राप्य योग्य दर स्थित होती है ।"

प्रो. कीरस्टेड के अनुसार "समोत्पाद वक्र दो साधनों के उन संभावी संयोगों को व्यक्त करते है जिनसे एक समान कुल उत्पादन प्राप्त होता है ।"

विद्वानों द्वारा समोत्पा वक्र के भिन्न-भिन्न नाम दिये गये है जैसे-Iso Product Curve, Iso quants, Equal Product Curves एंव Production Indifference Curves.

"समोत्पादक वक्र ऐसे वक्र को कहते हैं जिस पर स्थित सभी बिन्दु उत्पादन के किन्हीं दो साधनों के उन सभी संभावी संयोगों को व्यक्त करते हैं जिनसे समान कुल उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है तथा उत्पादक का इन संयोगों के मध्य कोई अधिमान नहीं होगा ।

समोत्पाद वक्र को हम एक उदाहरण के द्वारा समझ सकते हैं- उत्पादन के दो साधन श्रम एवं पूँजी के विभिन्न संयोगों से किसी फर्म को किसी वस्तु के उत्पादन की 50 इकाइयां प्राप्त होती हैं। इसे हम निम्न तालिका 10.1 द्वारा समझ सकते हैं ।

तालिका सं. 10.1

साधनों के विभिन्न संयोग

संयोग	पूजी की मात्रा	श्रम की मात्रा	कुल उत्पादन
A	16	3	50
B	12	4	50
C	9	5	50
D	7	6	50
E	6	7	50

तालिका 10.1 के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उत्पादक को 3 श्रमिक और 16 पूँजी की इकाइयों से जितना उत्पादन प्राप्त होता है उतना ही उत्पादन 4 श्रमिक, 12 पूँजी की इकाइयों से, 5 श्रमिक, 9 पूँजी की इकाइयों से, 6 श्रमिक 7 पूँजी की इकाइयों से और 7 श्रमिक एवं 6 पूँजी की इकाइयों से प्राप्त होगा ।

उपरोक्त समोत्पाद तालिका में दर्शाये गये उत्पादन के श्रम एवं पूँजी के विभिन्न -संयोगों के आधार एक वक्र बनाया जाये तो हमें एक समोत्पाद वक्र प्राप्त होगा, जौ निम्न प्रकार से बनेगा ।

इस प्रकार एक समोत्पाद वक्र दो साधनों के उन संयोगों को बताता है जिससे एक उत्पादक को उत्पति प्राप्त होती है ।

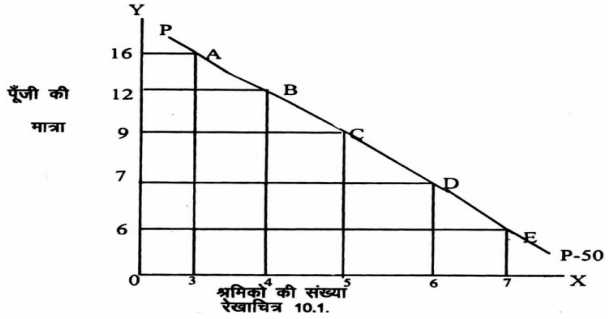

रेखाचित्र 10.1.

रेखा-चित्र 10.1 में OX अक्ष पर श्रमिकों की संख्या एवं OY अक्ष पर पूंजी की मात्रा को दर्शाया गया है ।A,B,C,D एवं E बिन्दु पूंजी एवं श्रम के विभिन्न संयोगों को व्यक्त करते है । A बिन्दु पर 3 श्रमिक एवं 16 पूँजी की मात्रा से जितना उत्पादन प्राप्त होता है उतना ही उत्पादन इन दोनों उत्पत्ति के साधनों विभिन्न संयोगों से क्रमश: बिन्दु B,C,D एवं E पर प्राप्त होता है । इन बिन्दुओं (A,B,C,D) जोड़ने पर हमें एक समोत्पाद वक्र PP प्राप्त होता है । इस समोत्पाद वक्र के प्रत्येक बिन्दु पर उत्पादक एक समान उत्पादन प्राप्त होता है इसीलिए उत्पादक विभिन्न संयोगों के प्रति तटस्थ रहता है ।

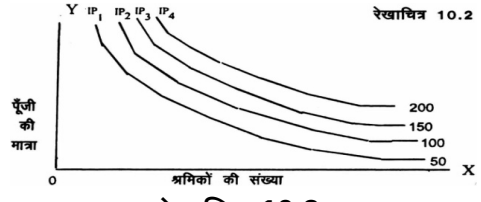

रेखाचित्र 10.2

रेखाचित्र 10.2

रेखाचित्र 10.2 में समोत्पाद वक्रों के समूह को दर्शाया गया है । समोत्पाद वक्रों के समूह को समोत्पाद वक्र मानचित्र कहते है। इस मानचित्र में स्थित जो समोत्पाद वक्र मूल बिन्दु से जितना अधिक दूर होगा वह उतनी ही अधिक उत्पादन की मात्रा देगी । IP, 50 टन उत्पादन देगा, । IP4 200 टन उत्पादन की मात्रा देगा ।

10.2.1 समोत्पाद वक्र की विशेषताएं (Characteristics of iso-Product Curve)

(1) समोत्पाद वक्र पर स्थित प्रत्येक बिन्दु उत्पादन के दो साधनों से समान उत्पादन की मात्रा को दर्शाते है ।

(2) समोत्पाद वक्र बायें से दायें की ओर नीचे को झुका हुआ होता हैं ।

(3) समोत्पाद वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होते हैं । परन्तु जब उत्पादन के साधन पूर्णतया स्थानापन्न होते हैं तो समोत्पाद वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर नहीं होते, ऋणात्मक ढाल वाली सीधी रेखा के रूप में होंगे ।

(4) समोत्पाद वक्र एक दूसरे को नहीं काटते ।

(5) समोत्पाद वक्र किसी भी अक्ष को स्पर्श नहीं करते ।

(6) मूल बिन्दु से अधिक दूरी पर स्थित समोत्पादक वक्र अधिक उत्पादन की मात्रा को दर्शाते हैं

(7) समोत्पाद वक्र खड़ी रेखा नही हो सकता ।

(8) आधार रेखा (OX-अक्ष) के समानान्तर अर्थात क्षैतिज भी नहीं हो सकता ।

बोध प्रश्न

1. समोत्पाद वक्र की परिभाषा बताइए ।
2. समोत्पाद वक्र की विशेषताएं बताइए ।
3. समोत्पाद वक्र के बारे में समझाइए ।

10.3 तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर (Marginal Rate of Technical Substitution)

समोत्पाद वक्र के अध्ययन से हमने यह देखा है कि उत्पादन के साधन संयोगो में परिवर्तन होता है और उत्पादन स्थिर रहता है । साधन संयोगों में यह परिवर्तन, साधनों की तकनीकी प्रतिस्थापन की दर पर आधारित होता है । इसे हम इस प्रकार परिभाषित कर सकते है- "दो साधन श्रम (x) एवं पूँजी (y) के मध्य तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर वह दर है जिसके अनुसार, साधन श्रम की एक अतिरिक्त इकाई को साधन पूँजी की कितनी इकाइयों के स्थान पर प्रतिस्थापित किया जा सकता है, जिससे उत्पादन की मात्रा अपरिवर्तित रहे ।'

इसे हम निम्न तालिका संख्या 10.2 से समझ सकते है-

तालिका संख्या 10.2

तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर

संयोग	श्रमिक की संख्या (X)	पूंजी की मात्रा (Y)	कुल उत्पादन टन	(X)की(Y) के लिए तकनीकी प्रतिस्थापन की दर
A	3	16	50	.....

B	4	12	50	4:1
C	5	9	50	3:1
D	6	7	50	2:1
E	7	6	50	1:1

उपरोक्त तालिका के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि श्रम एवं पूँजी की इकाइयों के विभिन्न संयोगों के समान उत्पादन की मात्रा प्राप्त होती है । ये सभी संयोग एक ही समोत्पाद वक्र पर स्थित हे । संयोग A में (3 श्रमिक (X) एवं 16 पूंजी (Y) की इकाइयां) है और संयोग B में (4 श्रमिक (X) एवं 12 पूंजी (Y) की इकाइयां है । इनकी तुलना करने कर पर यह स्पष्ट पता चलता है कि साधन श्रम (X) की एक इकाई का साधन पूँजी (Y) की चार इकाइयों के स्थान पर प्रयोग किया जा सकता है जब कि उत्पादन की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं होता है । अत: यहां पर तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर 4 : 1 है । इसी प्रकार B और C संयोगों की तुलना करने पर हम पाते है कि साधन श्रम (X) की एक इकाई का साधन पूंजी (Y) की तीन इकाइयों के स्थान पर प्रयोग किया जा सकना है, इस अवस्था में उत्पादन स्थिर रहता है । अत: यहां पर तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर 3 : 1 है । इसी प्रकार C और D के संयोगों के बीच तकनीकी प्रतिस्थान की सीमांत दर 2 : 1 है । और इसी प्रकार D और E के संयोगों के बीच तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर वन है ।

तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर (MRTS) को निम्न प्रकार लिखा जा सकता है ।

MRTS= $\frac{\Delta Y}{\Delta X}$ यहां पर Δ परिवर्तन का घोतक है ।

ΔY= पूंजी के उपयोग में परिवर्तन

Δx = श्रम के उपयोग में परिवर्तन

तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर उत्पादन के लिए उपयोग में ली जाने वाली पूंजी की मात्रा को श्रम की मात्रा द्वारा प्रतिस्थापन करके नियंत्रित करने पर विभाज्य फल है ।

$\frac{\Delta Y}{\Delta X}$समोत्पाद वक्र की ढाल को दर्शाता है । अत: हम समोत्पाद वक्र के किसी बिन्दु पर तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर (MRTS) वहां पर खींची गयी स्पर्श रेखा (Tangent) की ढाल से ज्ञात कर सकते है!

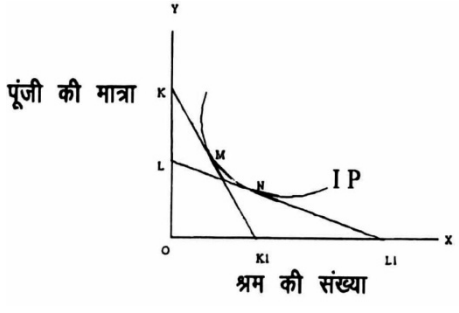

रेखाचित्र 10.3

रेखाचित्र 10.3

चित्र 10.3 में समोत्पाद वक्र । IP खींचा गया है । इस पर दो बिन्दु M और N लिये गये हैं । बिन्दु M पर KK1 और बिन्दु N पर LL1 स्पर्श रेखाए (Tangents) खींची गयी है । स्पर्श रेखा KK1 की ढाल OK / OK1 के बराबर है । अतएव समोत्पाद वक्र IP के बिन्दु M पर तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर (MRTS), OK / OK1 के बराबर हैं । इसी प्रकार स्पर्श रेखा

LL1 की ढाल OL / OL ^{1} के बराबर है । इसलिए समोत्पाद वक्र IP के बिन्दु N पर तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर OL/OL ^{1} के बराबर होगी ।

जैस- जैसे v साधन का प्रयोग Y साधन के स्थान पर बढ़ाया जाता है तो X साधन की एक इकाई के स्थान पर साधन की कम की जाने वाली इकाइयों की संख्या घटती जायेगी । यह स्थिति तालिका संख्या 10.2 में स्पष्ट की गयी है । इसे ह्रासमान तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर का नियम (Law of Diminishing Marginal Rate of Technical Substitution) कहते है । इस नियम का कारण ह्रासमान सीमांत प्रतिफल (Law of Diminishing Returns) के नियम की क्रियाशीलता है । जैसे-जैसे श्रम की मात्रा बढ़ायी जाती है इसकी सीमान्त घटती जाती है । और पूंजी की मात्रा जैसे-जैसे घटती जाती है इसकी सीमान्त उत्पादकता बढ़ती जाती है । अत: उत्पादन की मात्रा को स्थिर रखने के लिए श्रम की एक इकाई के स्थान पर पूंजी की पहले से कम इकाइयों को घटाया जायेगा । दो साधन किस सीमा तक एक दूसरे के स्थानापन्न हैं । इसकी जानकारी प्रतिस्थापन की दर के घटने से चलती है । यदि कोई दो साधन एक दूसरे के पूर्ण स्थानापन्न हैं तो उनको एक - दूसरे के स्थान पर सरलता से प्रयोग में लिया जा सकता है, इससे सीमान्त प्रतिस्थापन की दर कम नहीं होगी ।

10.4 सम लागत रेखा (Iso-Cost Line)

सम-लागत रेखा उत्पादन के साधनों के उन विभिन्न संयोगों को दर्शाती है जो एक फर्म (उत्पादक) एक निश्चित लागत पर क्रय कर सकती है । अर्थात् सम लागत रेखा उदासीनता वक्र विश्लेषण की मूल्य रेखा (Price Line) के समान है । जिस प्रकार मूल्य रेखा उपभोक्ता की आय के स्तर पर दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों को बताती है । उसी प्रकार सम रेखा उत्पादन साधनों की कीमतों तथा उत्पादक द्वारा साधनों पर किये जाने वाले कुल व्यय को दर्शाती है ।

समलागत रेखा की अवधारणा को हम निम्न उदाहरण द्वारा समझ सकते हैं माना कि उत्पादक उत्पादक के दो साधनों (पूंजी एवं श्रम) पर 100 रू. व्यय करना चाहता है । यदि एक पूंजी की इकाई की कीमत 5 रू. है और श्रम की एक इकाई की कीमत 4 रू. है । ऐसी स्थिति में वह साधनों के विभिन्न संयोगों को प्राप्त कर सकता है यह नियम तालिका में दर्शाया गया है-

तालिका सं. 10.3

उत्पादन साधनों के विभिन्न संयोग

श्रमिक 4 रु. प्रति इकाई	पूजी 4 रु. प्रति इकाई	कुल लागत (रु.) श्रमिक + पूजी
25	0	100+0=100
चुंकी 20	4	80+20=100
15	8	60+40=100
10	12	40+60=100
5	16	20+80=100
0	20	00+100=100

चित्र सं. 10.4

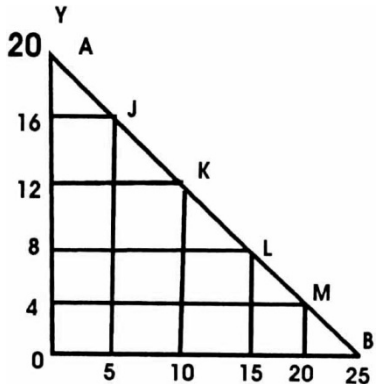

उपरोक्त रेखाचित्र में OX- अक्ष पर श्रम और OY अक्ष पर पूंजी की इकाइयों को दर्शाया गया है । AB साधन कीमत रेखा उसे समान लागत रेखा भी कहते हैं जो 100 रू. की लागत से श्रम एवं पूंजी के विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करती है । इस रेखा पर A बिंदु यह बताता है कि दी हुई कीमत पर उत्पादक केवल 20 इकाई पूंजी का क्रय कर सकता है श्रम शून्य होगा, J बिंदु पर 16 इकाई पूंजी एवं 5 इकाई श्रम का क्रय कर सकता हैं इसी प्रकार K बिंदु पर 12 इकाई पूंजी एवं 10 इकाई श्रम, L बिंदु पर 8 इकाई पूंजी एवं 15 इकाई श्रम, M बिंदु पर 4 इकाई पूंजी एवं 20 इकाई श्रम और B बिंदु पर केवल 25 इकाई का क्रय कर सकता है पूंजी की इकाई शून्य होगी । केवल A और B को मिलाने पर AB रेखा प्राप्त होती हैं, यह AB रेखा सम लागत रेखा (Iso-Cost Line) कहलाती है । यह रेखा पूंजी और श्रम के विभिन्न संयोगों को बताती है जो 100 रू. से क्रय किये जा सकते है । सक लागत रेखा को कीमत रेखा (Price-Line), भी कह सकते हैं ।

साधनों के उन विभिन्न इसे कीमत रेखा भी कहते हैं क्योंकि उत्पादन के साधनों की कीमत के आधार पर ही उत्पादक इन साधनों का क्रय कर सकेगा । उत्पादक के पास 100 रू. कुल व्यय करने के लिए थे तब वह अब अगर उत्पादक के पास उत्पादन के साधन क्रय करने के लिए कुय व्यय में कमी भी सकती हैं और वृद्धि भी हो सकती हैं । इस स्थिति में उत्पादक उत्पादन के साधनों के किन संयोगों का चुनाव करेगा यह हम निम्न तालिका एवं चित्र द्वारा समझ सकते हैं।

तालिका संख्या 10.4

संयोग	कुल व्यय		
	80रु.	200रु.	300रु.
A	20+0=80	50+00=200	75+00=300
B	15+4=80	35+12=200	50+20=300
C	10+8=80	20+24=200	25+40=300
D	5+12=80	5+36=200	5+56=300
E	00+16=80	00+40=200	00+60=300

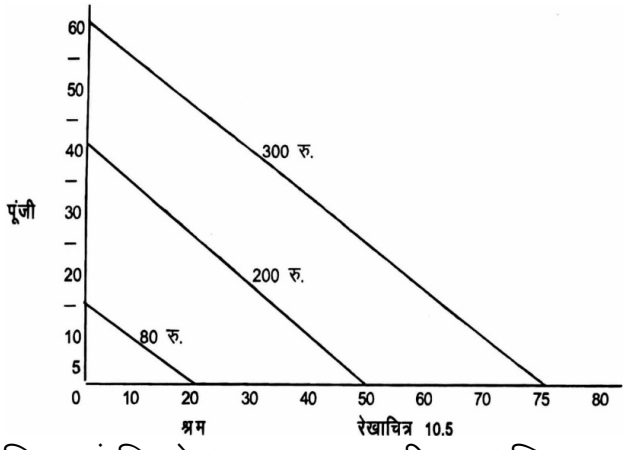

रेखाचित्र 10.5

उपरोक्त तालिका एवं चित्र के अनुसार उत्पादन की क्रय शक्ति घट कर 80 रू. रह जाती हैं तो वह श्रम की 20 इकाइयां और पूंजी की शून्य इकाइयां खरीदेगा ।

10.5 साधनों का न्यूनतम लागत संयोग (Least-Cost Factor Combination)

सम उत्पाद वक्र उत्पादन की समान की मात्रा को दर्शाता हैं । और सम लागत वक्र साधनों की कीमतों के अनुपात और उन पर किये जाने वाले कुल व्यय को दर्शाता हैं ।

किसी वस्तु की मात्रा का उत्पादन करने के लिए उत्पादक उत्पादन के साधनों के किस संयोग का चयन करेगा यह समोत्पाद वक्र की सहायता से समझाया जा सकता हैं ।

प्रत्येक उत्पादक का उद्देश्य कम से कम लागत पर अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता हैं इसके लिए वह साधनों के ऐसे संयोग का चुनाव करेगा जिनसे कम से कम लागत पर अधिकतम उत्पादन की मात्रा प्राप्त की जा सके । हम निम्न चित्र द्वारा यह समझ सकते हैं । माना कि उत्पादक को 50 टन उत्पादन की मात्रा चाहिये ।

चित्र में OX - अक्ष पर श्रम इकाइयां एवं OY- अक्ष पर पूंजी की इकाइयां दर्शायी गयी हैं।

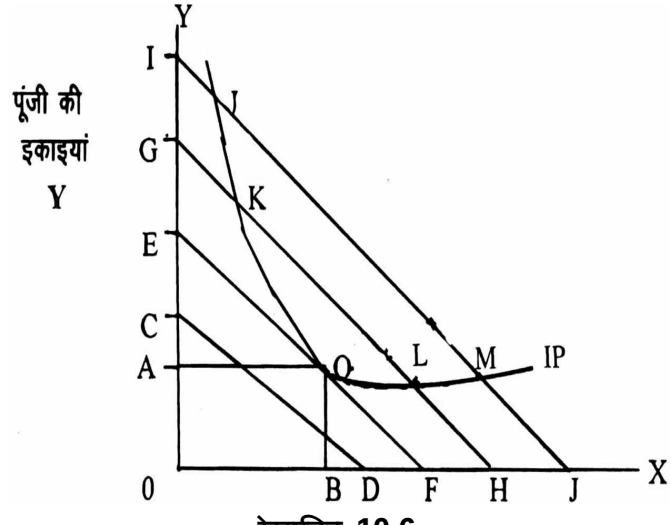

रेखाचित्र 10.6

चित्र संख्या 10.6 में दर्शाये गये IP वक्र पर किसी भी बिन्दु पर 50 टन वस्तु का उत्पादन किया जा सकता हैं । इसके लिए उत्पादक न्यूनतम लागत संयोग का चुनाव करेगा । चित्र में सम लागत रेखाएं CD, EF,GH,IJ हैं । इनमें CD रेखा उत्पति के साधनों के सबसे कम एवं IJ रेखा सबसे अधिक व्यय को दर्शाती है । समउत्पाद वक्र (IP) EF कीमत रेखा को D बिंदु पर स्पर्श करता हैं । यही उत्पादक का साम्य बिन्दु हैं । उत्पादक IP वक्र के J व K बिंदुओं पर भी उत्पादन कर सकता है । लेकिन इन पर उत्पादन की कीमत अधिक होगी इसी प्रकार वह LM किसी भी बिन्दु पर उत्पादन कर सकता हैं । लेकिन इन बिन्दुओं पर भी कीमत अधिक होगी, क्योंकि JKLM उंचे समलागत वक्रों पर स्थित हैं अत: 50 इकाइयां के लिए अधिक लागत चुकानी पड़ेगी । अत: 50 इकाइयां उत्पादित करने के लिए Q बिंदु पर लागत न्यूनतम होने से सबसे अधिक उपयुक्त बिन्दु हैं ।

बोध प्रश्न- 2

1. तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर को परिभाषित कीजिए ।

सम लागत रेखा की व्याख्या कीजिए ।

न्यूनतम लागत संयोग की विवेचना कीजिए ।

10.6 समोत्पाद वक्रों की सहायता से उत्पादक का संतुलन (Producer's Equilibrium with the help of Iso-Product curves)

उत्पादक किसी वस्तु की निश्चित मात्रा का उत्पादन करने के लिए समोत्पाद वक्रों की सहायता से साम्य की स्थिति के बिन्दु का पता चला सकता हैं । अर्थात् वह उत्पादन की मात्रा के लिए साधनों के संयोग की जानकारी प्राप्त कर सकता हैं ।

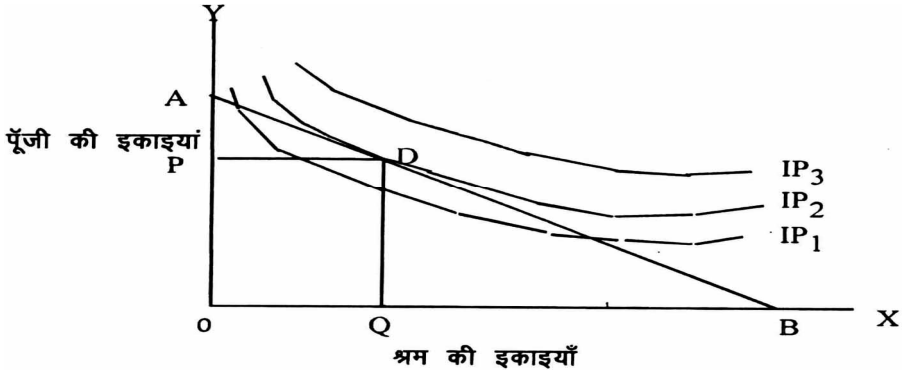

चित्र 10.7 में समोत्पाद वक्रों की सहायता से उत्पादक का संतुलन

चित्र 10.7 में OX- अक्ष पर श्रम की इकाइयां एवं OY- अक्ष पर पूंजी की इकाइयां दर्शायी गयी हैं। IP1 Ip2 एवं IP3 तीन समोत्पाद वक्र हैं । AB सम लागत वक्र हैं । AB वक्र IP2 के बिन्दु D पर स्पर्श करता हैं, यही उत्पादक का साम्य बिन्दु हैं । यहाँ पर वह OQ श्रम की इकाइयां और OP पूंजी की इकाइयों का उपयोग करेगा । इस चित्र से यह स्पष्ट होता हैं कि उत्पादक IP1 पर उत्पादन नहीं करेगा क्योंकि इस वक्र पर उसकी उत्पादन क्षमता का पूर्ण

उपयोग नहीं होता हैं । IP3 वक्र पर वह उत्पादन करने की क्षमता नहीं रखता क्योंकि यह वक्र उसकी लागत रेखा से बाहर हैं । अत: वह IP2 पर ही उत्पादन करेगा ।

चित्र में समउत्पाद वक्र के सभी बिन्दुओं पर उत्पादन की समान मात्रा प्राप्त की सकती हैं । IP समोत्पाद वक्र के सभी बिन्दुओं पर उत्पादन की समान मात्रा प्राप्त की जा सकती हैं । IP समोत्पाद वक्र हैं इसके प्रत्येक बिन्दु पर उत्पादन की समान मात्रा प्राप्त की जा सकती हैं । समलागत रेखाएं उत्पादक द्वारा उत्पति के साधनों पर किये जाने वाले कुल व्यय को बताती हैं अर्थात् यह रेखा यह बताती हैं कि उत्पादक कुल व्यय द्वारा उत्पति के दोनों साधनों की कितनी-कितनी मात्रा का क्रय करेगा ।

Q से अधिक होगी ।

Q संयोग इष्टतम हैं । उत्पादन लागत न्यूनतम होती हैं ।

जिस बिन्दु पर सम लागत वक्र सम उत्पाद वक्र को स्पर्श करेगा, वही उत्पादक का साम्य बिन्दु होगा । इस बिन्दु पर न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन प्राप्त होगा ।

AB समलागत वक्र हैं । IP1,IP2,IP3, तीन सम उत्पाद वक्र हैं । AB वक्र IP2 को E बिंदु पर स्पर्श करता हैं । यही उत्पादक का साम्य बिन्दु हैं । इस बिन्दु पर X साधन की OM तथा Y साधन की ON मात्रा का प्रयोग करेगा । IP1,पर उत्पादन क्षमता का पूर्ण उपयोग नहीं कर पायेगा । IP3 उसकी लागत रेखा से बाहर हैं अत: इस पर वह उत्पादन नहीं कर सकता ।

10.7 पैमाने के प्रतिफल (Returns to Scale)

इकाई 9 में हमने यह समझा हैं कि अल्प काल में एक साधन को स्थिर रखकर दूसरे साधन की मात्रा में वृद्धि करने के उत्पति पर क्या प्रभाव पड़ता हैं । दीर्धकाल में उत्पादक के पास इतना समय होता हैं कि वह सभी साधनों मे परिवर्तन कर सकता हैं । उत्पादन के सभी साधनों में समान अनुपात से परिवर्तन करने से उत्पादन पर जो प्रभाव पड़ता हैं वह हम पैमाने के प्रतिफलों में देखते हैं ।

पैमाने के प्रतिफल का अर्थ- दीर्धकाल में उत्पादन के सभी साधनों की मात्राओं में समान अनुपात में एक साथ परिवर्तन करने पर उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव को देखा जाता हैं इसकी तीन अवस्थाएं होती -

1. उत्पादन के सभी साधनों की मात्रा में 20 प्रतिशत वृद्धि करने पर कुल उत्पादन की मात्रा में 25 प्रतिशत से अधिक वृद्धि होती हैं तो इसे वर्धमान प्रतिफल कहते हैं ।
2. उत्पादन के सभी साधनों में 25 प्रतिशत वृद्धि करने पर कुल उत्पादन की मात्रा में भी 25 प्रतिशत वृद्धि हो, इसे पैमाने के समान प्रतिफल कहते हैं ।
3. उत्पादन के सभी साधनों में 25 प्रतिशत वृद्धि करने पर कुल उत्पादन की मात्रा में 25 प्रतिशत से कम वृद्धि होती हैं तो इस ह्रासमान प्रतिफल कहते हैं ।

पैमाने के प्रतिफल नियम निम्न मान्यताओं पर आधारित हैं ।

1. ये दीर्घकाल से संबंधित होते हैं ।
2. सभी साधनों में परिवर्तन समान अनुपात में किया जाता हैं अर्थात श्रम एवं पूंजी की समान इकाइयां प्रयोग में ली जाती हैं । प्रारम्म में 1श्रम + 1 इकाई पूंजी बाद में 3 इकाई श्रम+ 3 इकाई पूंजी, 5 इकाई श्रम + 5 इकाई पूंजी के रूप में लिया जाता हैं ।

3. यह माना जाता हैं कि एक फर्म के लिए साधनों की कीमत स्थिर होती हैं ।

10.7.1 पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल (Increasing Returns to Scale)

उत्पादन के साधनों की मात्रा में वृद्धि जिस अनुपात में की जाती हैं उत्पादन में वृद्धि उससे अधिक अनुपात में होती हैं तो इसे पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल कहा जाता हैं । उत्पादन के सभी साधनों में वृद्धि समान रूप से 25 प्रतिशत की जाती हैं और उत्पादन में वृद्धि 35 प्रतिशत होती हैं, इसे पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल की दशा कहा जाता हैं । इसे निम्न चित्र द्वारा समझाया जा सकता हैं ।

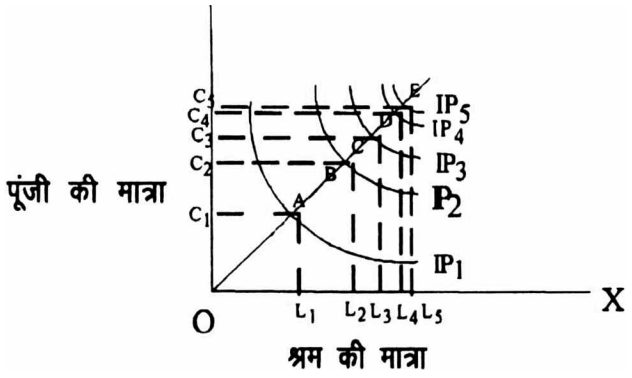

रेखाचित्र 10.8

उपरोक्त चित्र संख्या 10.8 में OX अक्ष पर श्रम की मात्रा तथा OY अक्ष पर पूंजी की मात्रा को दर्शाया गया हैं । IP1, IP2,IP3,IP4.,IP5, समउत्पाद रेखाएं है जो उत्पादन की समान मात्राओं को प्रदर्शित करती हैं । इस चित्र से हम यह समझ सकते हैं कि श्रम एवं पूंजी मात्रा की तुलना में उत्पादन की मात्रा अधिक प्राप्त हो रही हैं । इस चित्र से यह स्पष्ट हो रहा हैं कि उत्पादन की इस मात्रा को प्राप्त करने के लिए पूंजी एवं श्रम की मात्रा में की जाने वाली वृद्धि लगातार घटती जा रही हैं । और उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होती जा रही हैं इस अवस्था को पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल कहते हैं ।

पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल प्राप्त होने के निम्नलिखित कारण हैं-

1. उत्पादक के पास पर्याप्त समय होने के कारण वह सभी साधनों में परिवर्तन करता हैं । इससे पूंजीगत संपति के आकार में वृद्धि होने के कारण इससे प्राप्त उत्पादन लागत से अधिक अनुपात प्राप्त होता हैं क्योंकि प्रति इकाई लागत घट जाती हैं ।

2. बड़े पैमाने के उद्योगों में तकनीकी उच्च स्तर की होती हैं, श्रम- विभाजन किया जा सकता हैं । बड़ी मशीनों का उपयोग होता हैं एवं विशिष्टीकरण के कारण उत्पादन लागत में कमी होती हैं ।

3. उत्पादन बड़े पैमाने पर होने के कारण प्रंबधन व्यवस्था में विशेषज्ञों को सम्मिलित करके इसे नई स्तरों पर विभाजित करके योग्य व्यक्तियों को उनकी योग्यतानुसार कार्य देने से श्रमिक कार्य क्षमता बढ़ जाती हैं । इससे उत्पादन लागत कम हो जाती हैं ।

4. उत्पादक संस्था का आकार बड़ा होने के कारण कम व्याज पर अधिक मात्रा में पूंजी एवं अन्य प्रकार की साख सुविधाएं भी प्राप्त हो जाती है ।

5. विकेन्द्रीकरण के लाभ, सूचना के लाभ, कच्चे माल संबंधी लाभ, आदि बाहय मितव्ययता भी प्राप्त होती हैं ।

10.7.2 पैमाने का समता प्रतिफल (Constant Returns to scale)

उत्पादन के सभी साधनों की मात्रा में जिस अनुपात में वृद्धि की जाती हैं उत्पादन में भी उसी अनुपात में वृद्धि होती हैं तो इसे पैमाने का समता प्रतिफल कहा जाता हैं यदि उत्पादन के साधनों में 25 प्रतिशत वृद्धि की जाती हैं और उत्पादन में भी 25 प्रतिशत वृद्धि प्राप्त होती हैं तो इसे समता प्रतिफल कहा जाता हैं । इसे निम्न चित्र संख्या 10 द्वारा समझाया जा सकता हैं ।

रेखा चित्र 10.8

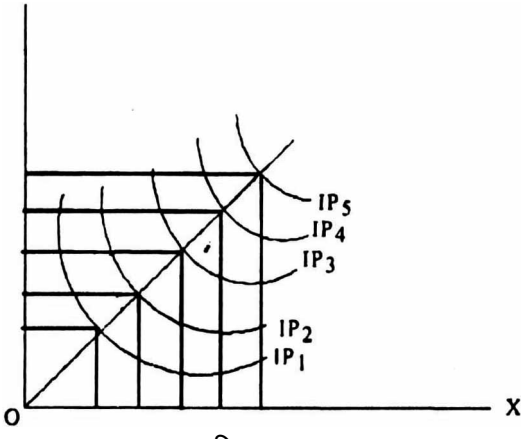

चित्र संख्या 10 OX अक्ष पर श्रम की मात्रा तथा OY अक्ष पर पूंजी की मात्रा को दर्शाया गया हैं।IP1, IP2, IP3, IP4, IP5, समउत्पाद रेखाएं हैं जो उत्पादन की समान मात्राओं को प्रदर्शित करती हैं । इन रेखाओं से यह स्पष्ट हो रहा हैं कि उत्पादन की मात्रा एक समान हैं और इस चित्र से यह स्पष्ट हो रहा हैं कि पूंजी एवं श्रम की मात्रा में की जाने वाली वृद्धि भी उसी अनुपात में हैं, जिस अनुपात में उत्पादन की मात्रा प्राप्त हो रही हैं इसी स्थिति को पैमाने के समता प्रतिफल कहा जाता हैं ।

10.7.3 पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल (Decreasing Returns to Scale)

यह अवस्था तब होती हैं जब उत्पादन के सभी साधनों में एक समान अनुपात में वृद्धि की जाती हैं लेकिन उत्पादन की मात्रा में वृद्धि इनकी तुलना में कम अनुपात में होती हैं । उदाहरण के लिए उत्पादन के सभी साधनों में वृद्धि 25 प्रतिशत की जाती हैं और उत्पादन में वृद्धि 20 प्रतिशत प्राप्त होती हैं इस स्थिति को पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल कहा जाता हैं । इसे चित्र 10 से दर्शाया जा सकता हैं ।

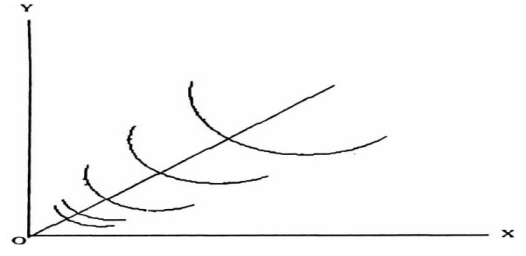

उपरोक्त चित्र में X अक्ष पर श्रम (L) तथा? अक्ष पर पूंजी (C) की मात्रा को दर्शाया गया हैं । IP1, IP2, IP3, IP4, IP5, IP6, समउत्पाद रेखाएं हैं । ये रेखाएं उत्पादन की एक समान मात्रा को व्यक्त करती है । इस चित्र से यह स्पष्ट रूप से समझ में आ रहा है कि उत्पादन इस मात्रा को प्राप्त करने के लिए पूंजी और श्रम की मात्रा में की जाने वाली वृद्धि लगातार बढ़ती जा रही हैं इससे यह स्पष्ट हो रहा है कि पूंजी एवं श्रम की मात्रा में की जानें वाली वृद्धि की तुलना में उत्पादन की मात्रा में होने वाली वृद्धि कम हो रही हैं । यही पैमाने का ह्रासमान प्रतिफल कहलाता है ।

उपरोक्त तीनों अवस्थाओं को हम निम्न उदाहरणों द्वारा आसानी से समझ सकते हैं । तालिका 10.5 में तीनों अवस्थाओं के बारे में समझाया गया है ।

तालिका संख्या 10.5

क्र. स.	पैमाना	कुल उत्पादन	सीमांत उत्पादन
1	1श्रमिक + 2 हैक्टयर भूमि	15 क्विंटल	15 क्विंटल
2	2श्रमिक + 4 हैक्टयर भूमि	35 क्विंटल	20 क्विंटल
3	3श्रमिक +6 हैक्टयर भूमि	60 क्विंटल	25 क्विंटल
4	4श्रमिक +8 हैक्टयर भूमि	90 क्विंटल	30 क्विंटल
5	5श्रमिक + 10 हैक्टयर भूमि	110 क्विंटल	30 क्विंटल
6	6श्रमिक + 12 हैक्टयर भूमि	140 क्विंटल	30 क्विंटल
7	7श्रमिक + 14 हैक्टयर भूमि	160 क्विंटल	15 क्विंटल
8	8श्रमिक +16 हैक्टयर भूमि	175 क्विंटल	20 क्विंटल
9	9श्रमिक +18 हैक्टयर भूमि	205 क्विंटल	15 क्विंटल

उत्पति के सभी साधनों की मात्रा में समान अनुपात में वृद्धि करने पर उत्पादन की मात्रा में जो परिवर्तन होता है उसके बारे में हमने अध्ययन किया है कि इसमें देखा हैं कि उत्पति में साधनों की मात्रा में वृद्धि करते है तो प्रारम्भिक अवस्था में उत्पादन की मात्रा में वृद्धि से अधिक प्राप्त होती है । साधनों को दुगुना करने पर कुल उत्पादन बढ़कर दुगुने से भी अधिक हो जाता हैं । उत्पादन के साधनों को तीन गुणा कर देने से तीन गुणे से भी अधिक 60 क्वि. हो जाता हैं । चार गुणा करने पर कुल उत्पादन 90 क्विं. हो जाता है इस प्रकार हम देखते है कि कुल उत्पादन में लगातार वृद्धि होती रहती है । साधनों की मात्रा के चौथे पैमाने तक सीमांत उत्पादन लगातार बढ़ता रहता हैं । इसके पश्चात इसमें गिरावट आना आरम्भ होता हैं । लगातार गिरता हुआ 9 वें पैमाने तक 10 क्वि. तक आ जाता हैं ।

इस प्रकार हमने अध्ययन किया हैं कि पैमाने के प्रतिफल में 'उत्पादन साधनों की मात्रा में जैसे- जैसे वृद्धि की जाती है प्रारम्भ में वृद्धिशील प्रतिफल प्राप्त होता है । एक स्तर के पश्चात प्रतिफल स्थिरता आ जाती है और उसके बाद प्रतिफल में गिरावट प्रारम्म हो जाती है । इसके लिए कई कारण जिम्मेदार है लेकिन मुख्यत: बड़े पैमाने के उत्पादन में प्रबन्धन, समन्वय तथा नियंत्रण संबंधी कठिनाईयों के उत्पन्न हो जाने के कारण कुशलतापूर्वक उत्पादन संचालन नहीं हो पाता हैं

10.8 सारांश

उत्पति के साधनों की मात्राओं में परिवर्तन करके इनके विभिन्न संयोगों के उत्पादनों की मात्रा में वृद्धि की जा सकती है । दो साधनों के विभिन्न संयोगो से उत्पादन की मात्रा प्राप्त करना चाहता हैं । इसका अध्ययन साधनों के न्यूनतम लागत संयोग के द्वारा किया जा सकता है । लम्बी समयाविधि में उत्पादन के पास इतना समय होता हैं कि वह उत्पति में सभी साधनों में परिवर्तन कर सकता हैं । उत्पति के साधनों में समान अनुपात में परिवर्तन करने से उत्पादन पर जो प्रभाव पड़ता है । इसका अध्ययन हम पैमाने के प्रतिफल के अन्तर्गत करते है । उत्पादन के सभी साधनों के समान अनुपात में परिवर्तन करने से प्रारम्भ में वृद्धिशील उत्पादन की मात्रा होती है । इसके पश्चात स्थिर प्रतिफल एवं अन्त में ह्रासमान प्रतिफल प्राप्त होती है ।

10.9 संदर्भ ग्रंथ

Ahuja, H.L Advance Economic Theory

सैम्युअलसन, पीए. :- अर्थशास्त्र, कैपीटल बुक हाउस, 26 यू.बी. जवाहर नगर, दिल्ली

सेठ,एम.एल. :- अर्थशास्त्र के सिद्धान्त

10.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. समोत्पाद वक्र की सहायता से उत्पादन के संतुलन की विवेचना कीजिए ।
2. पैमाने के प्रतिफल का अर्थ एवं मान्यताए बताइए ।
3. वृद्धिशील पैमाने के प्रतिफल की व्याख्या कीजिए ।
4. ह्रासमान पैमाने के प्रतिफल की विवेचना कीजिए ।

इकाई - 11

लागत वक्र एवं आगम वक्र

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 लागत की अवधारणाएँ

11.2.1 मौद्रिक लागत, वास्तविक लागत एवं अवसर लागत एवं अवसर लागत

11.2.2 निजी लागत एवं सामाजिक लागत

11.2.3 लेखा लागत एवं आर्थिक लागत

11.2.4 कुल लागत, स्थिर लागत एवं परिवर्तनशील लागत

11.2.5 कुल लागत, औसत लागत एवं सीमान्त लागत

11.3 लागत वक्र

11.3.1 अल्पकालीन लागत वक्र -कुल, औसत एवं सीमान्त लागत वक्र

11.3.2 औसत लागत एवं सीमान्त लागत वक्रों की कुल लागत वक्र से व्युत्पति

11.3.3 अल्पकालीन औसत लागत एवं सीमान्त लागत वक्रों में संबंध

11.3.4 दीर्घकालीन लागत वक्र-कुल लागत वक्र औसत लागत वक्र एवं सीमान्त लागत वक्र

11.4 आगम की अवधारणा एवं आगम वक्र

11.4.1 पूर्ण प्रतियोगिता की दशा में औसत आगम वक्र, सीमान्त आगम वक्र तथा कुल आगम वक्र

11.4.2 अपूर्ण प्रतियोगिता की दशा में कुल आगम वक्र, औसत आगम वक्र तथा सीमांत आगम वक्र

11.5 सारांश

11.6 शब्दावली

11.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.8 संदर्भ ग्रंथ

11.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

- विभिन्न प्रकार की लागतों के बीच अंतर कर सकेंगे ।
- लागत की अवधारणाओं को वक्र के माध्यम से प्रदर्शित कर सकेंगे ।
- विभिन्न प्रकार की लागतों के बीच संबंध स्थापित कर सकेंगे ।
- दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन लागत में अंतर कर सकेगें एवं उनके बीच संबंध को दर्शा सकेंगे।

– आगम की विभिन्न अवधारणाएँ, उनके बीच संबंध तथा इन संबंधो को वक्र द्वारा दर्शा सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

आधुनिक कीमत सिद्धान्त में फर्म एवं उद्योग के सन्तुलन का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि वस्तु की पूर्ति एवं कीमत उनके सन्तुलन द्वारा निश्चित होती है । फर्म के सन्तुलन की व्याख्या करते समय अर्थशास्त्री यह महत्वपूर्ण मान्यता लेते हैं कि फर्म का मुख्य उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना हैं, अतएव फर्म उस समय सन्तुलन में होगी जब वह अधिकतम लाभ अर्जित कर रही होगी । फर्म का लाभ, उसकी लागत एवं आय पर निर्भर करता है । यह जानने के लिये कि फर्म सन्तुलनावस्था है, हमें यह जानना होगा कि - (1) उपज की विभिन्न मात्राओं को बेच कर फर्म को कितना आगम प्राप्त हो रहा है तथा (2) उपज की इन विभिन्न मात्राओं का उत्पादन किस लागत पर हो रहा है । एक फर्म का लाभ अधिकतम तब होगा जबकि फर्म की कुल आय कुल लागत में अन्तर अधिक से अधिक हो । अत: फर्म के सन्तुलन ज्ञात करने के लिए हमें उसकी आय व लागत की व्याख्या करना आवश्यक है । लागत एवं आगम, कीमत सिद्धान्त के दो महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक उपकरण है । इस अध्याय में इन्ही दो उपकरणो के बारे में विस्तार से चर्चा की जायेगी ।

11.2 लागत की अवधारणाएँ

अर्थशास्त्र में 'लागत शब्द को कई अर्थो में प्रयोग किया जाता है । लागत के निम्नलिखित वर्गीकरण किये जा सकते हैं -

(i) मौद्रिक लागत, वास्तविक लागत तथा अवसर लागत
(ii) निजी लागत एवं सामाजिक लागत
(iii) लेखा लागत तथा आर्थिक लागत
(iv) स्थिर लागत एवं परिवर्ती या परिवर्तनशील लागत
(v) कुल लागत, औसत लागत एवं सीमांत लागत

11.2.1 मौद्रिक लागत. वास्तविक लागत तथा अवसर लागत

मौद्रिक लागत -एक उत्पादक किसी वस्तु का उत्पादन करने हेतु उत्पति के विभिन्न साधनों के प्रयोग के लिये जो धन व्यय करता है, वह उसकी मौद्रिक लागत कहलाती है । मौद्रिक लागत में प्राय: तीन मदें सम्मिलित की जाती हैं

(i) **स्पष्ट या विहित लागतें (Explicit costs) -**स्पष्ट लागतें उन्हें कहते हैं जो एक उत्पादक को विभिन्न साधनों को खरीदने के लिए व्यय करनी पड़ती हैं । उदाहरणार्थ, श्रमिकों एवं प्रबन्धकीय स्टॉफ को दिये जाने वाली मजदूरी एवं वेतन, कच्चे, माल की खरीद पर किया गया भुगतान, मशीनरी एवं उपकरण, बिजली, पानी, परिवहन, विज्ञापन इत्यादि मदों पर किया गया व्यय-ये सब मिलकर उत्पादन की मौद्रिक लागत कहलाते हैं । संक्षेप में, स्पष्ट लागते उत्पत्ति के बाहरी साधनों अर्थात खरीदे गए साधनों को किया गया मौद्रिक भुगतान है।
(ii) **अव्यक्त या निहित लागतें (Implicit cost) -**प्राय: एक उत्पादनकर्त्ता उत्पादन कार्य में कुछ ऐसे साधनों को भी प्रयुक्त करता हैं जिनके लिए प्रत्यक्ष रूप से कोई कीमत नहीं चुकता

क्योंकि उन साधनों का वह स्वयं मालिक होता हैं, परन्तु उन साधनों की कीमत को मौद्रिक लागत में शामिल करना जरूरी होता हैं । उदाहरण के लिए, साहसी स्वयं प्रबन्धक के रूप में कार्य करता है परन्तु अपने आपको कोई वेतन नहीं देता, स्वयं की पूँजी व्यवसाय में लगाता है परन्तु ब्याज नहीं लेता या स्वंय के भवन का उपयोग व्यवसाय में करता है परन्तु किराया नहीं लेता । अत: स्पष्ट है कि साहसी के स्वयं के साधनो की कीमतें अव्यक्त लागतें कहलाती हैं जिनके लिये कोई भुगतान नहीं किया जाता लेकिन उनको मौद्रिक लागत में अवश्य जोड़ा जाता है ।

(iii) **सामान्य लाभ -** सामान्य लाभ, लाभ की उस न्यूनतम मात्रा को कहते हैं जो एक उत्पादक को उस उद्योग मे बने रहने के लिये अवश्य ही मिलना चाहिये अन्यथा वह उत्पादक कार्य बन्द कर देगा । दूसरे शब्दों में, सामान्य लाभ साहसी को उद्योग में बनाये रखने की लागत है और इसलिए मौद्रिक लागत का आवश्यक अंग है ।

मौद्रिक लागत = स्पष्ट लागतें + अव्यक्त लागतें + सामान्य लाभ

वास्तविक लागत - यह लागत की मनोवैज्ञानिक धारणा है । वास्तविक लागत में वे सब प्रयास, कष्ट तथा त्याग सम्मिलित होते हैं जो किसी वस्तु को उत्पादित करते समय उठाने पड़ते हैं । इस दृष्टि से वास्तविक लागत किसी वस्तु को उत्पादित करने की सामाजिक लागत कही जा सकती है । प्रो. मार्शल के अनुसार, किसी वस्तु के निर्माण में प्रत्यक्ष अथवा परीक्ष रूप से लगने वाले सभी प्रकार के प्रयास, और उसमें लगायी गयी पूँजी की बचत के लिये किया गया त्याग, संयम अथवा प्रतीक्षा, इन सभी प्रकार के प्रयासों या त्यागों को मिलाकर उस वस्तु की वास्तविक लागत की गणना की जा सकती है । वास्तविक लागत की धारणा कीमत विश्लेषण के लिए अनुपयोगी है क्योंकि कष्ट, त्याग, प्रतीक्षा ये सभी मनोवैज्ञानिक एवं आत्मनिष्ठ हैं जिनकी सही गणना नहीं की जा सकती ।

अवसर लागत - आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने वास्तविक लागत के स्थान पर अवसर लागत की धारणा प्रस्तुत की जिसे वैकल्पिक लागत या हस्तान्तरण आय भी कहते हैं । अवसर लागत की धारणा इस तथ्य पर आधारित है कि उत्पादन के साधन सीमित हैं तथा उनके कई वैकल्पिक प्रयोग है । जब किसी एक साधन को उत्पादन की किसी क्रिया विशेष में प्रयुक्त किया जाता है तो वह साधन किसी अन्य उत्पादन में प्रयुक्त होने का अवसर खो देता है । अत: किसी वस्तु की अवसर लागत, उस वस्तु को उत्पादित करने के लिए किसी अन्य सर्वोतम वैकल्पिक वस्तु का परित्याग है । उदाहरण के लिये, जो साधन युद्ध सामग्री का उत्पादन करने में प्रयुक्त किये जाते हैं इनसे कार अथवा अन्य प्रकार के वाहनों का उत्पादन भी किया जा सकता है । इसलिये युद्ध सामग्री के उत्पादन की अवसर लागत परित्याग की गई कारों अथवा अन्य वाहनों का उत्पादन है। इसी प्रकार एक किसान अपने साधनों से गेहूँ या बाजरे का उत्पादन कर सकता है । यदि किसान गेहूँ उत्पादन का निर्णय करता है गेहूँ उत्पादन की अवसर लागत बाजरे के उत्पादन की वह मात्रा होगी जो किसान उन्हीं साधनों का प्रयोग कर उत्पादित कर सकता था । अवसर लागत की धारणा को साधन लागत के रूप में भी स्पष्ट किया जा सकता है । किसी साधन की अवसर लागत वह कीमत है जो उस साधन को उसी उद्योग में बनाये रखने के लिये आवश्यक होती है । प्रो. बेन्हम के अनुसार "मुद्रा की वह मात्रा जो एक साधन इकाई किसी दूसरे सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक

प्रयोग में प्राप्त कर सकती है, उसे उसकी हस्तान्तरण आय कहते हैं । " श्रीमती जोन राबिन्सन के अनुसार "वह कीमत जो एक साधन की दी हुई इकाई को उपयोग में बनाये रखने के लिये आवश्यक होती है हैं, उसकी हस्तान्तरण कीमत कहलाती हैं । "

अवसर लागत के लिए यह स्पष्ट करना उचित होगा कि ये मौद्रिक लागतें होती है जिससे स्पष्ट लागतें व अव्यक्त लागतें दोनों ही शामिल होती है ।

11.2.2 निजी लागत एवं सामाजिक लागत

निजी एवं सामाजिक लागत की धारणा सर्वप्रथम पीगू द्वारा प्रस्तुत की गई । निजी लागत एक फर्म द्वारा एक वस्तु या सेवा के उत्पादन पर किया गया खर्च है । इसमें स्पष्ट तथा अव्यक्त दोनों प्रकार की लागतें शामिल होती है । निजी लागत वह लागत है जिनका उत्पादनकर्त्ता उत्पादित की जाने वाली वस्तु के उत्पादन तथा कीमत से संबंधित निर्णय करते समय ध्यान रखता है ।

निजी लागतों के अतिरिक्त एक फर्म द्वारा वस्तु का उत्पादन अन्य लोगों को ऐसे लाभ या हानियाँ पहुँचाता है जिनकी फर्म द्वारा उपेक्षा की जाती है परन्तु वे सामाजिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण होती हैं । उदाहरणार्थ, कीटनाशक दवाओं, स्टील, रबड़ जैसी वस्तुओं का उत्पादन वातावरण को प्रदूषित करता है । अत: सामाजिक लागतें, निजी लागतों तथा उनके द्वारा अन्य पर किये गये विशुद्ध आर्थिक नुकसान तथा प्रदत्त लाभ का योगफल होती हैं ।

11.2.3 लेखा लागत एवं आर्थिक लागत

जब कोई साहसी या उधमी कोई उत्पादन कार्य करता हैं तो उसे उन साधनों की कीमतों का भुगतान करना पड़ता है जिन्हें वह उत्पादन के लिए प्रयुक्त करता है । जैसे नियोजित मजदूरों, को मजदूरी उपयोग किये गये कच्चे माल, ईधन तथा ऊर्जा की कीमतें, भवन का किराया, उधार ली गई पूँजी पर ब्याज का भुगतान आदि ऐसे भुगतान है जिनका हिसाब लेखाकार द्वारा लेखा पुस्तकों में किया जाता है । ये स्पष्ट लागतें होती है । अत: लेखा लागत वह लागत होती है जिनका फर्म के साहसी द्वारा अन्य लोगों को भुगतान किया जाता है एवं जिन्हे लेखा पुस्तकों में दर्शाया जाता है । एक अर्थशास्त्री के लिये लागत का विचार लेखाकार से अलग होता है । अर्थशास्त्री लागत के अन्तर्गत लेखा लागतों के साथ-साथ उन मौद्रिक मूल्यों को भी शामिल करता है जो कि साहसी तब अर्जित कर सकता हैं जबकि वह अपनी मौद्रिक पूँजी विनियोजित किये होता है । तथा अपनी सेवाओं तथा अन्य साधनों को अन्य सर्वोतम वैकल्पिक उपयोगों में बेच दिया होता । अर्थात

आर्थिक लागत = लेखा लागत + अस्पष्ट या निहित लागत

11.2.4 कुल लागत स्थिर लागत तथा परिवर्तनशील लागत

कुल लागत-फर्म के द्वारा उत्पादन की एक निश्चित मात्रा को पैदा करने के लिये जितना व्यय करना पड़ता है, वह कुल लागत कहलाती है । कुल लागत उत्पादन की मात्रा बढ़ने के साथ बढ़ती जाती है । कुल लागत में सामान्यतया दो प्रकार की लागते सम्मिलित की जाती हैं - (अ) स्थिर लागत (Fixed costs) तथा (ब) परिवर्तनशील लागत (Variable costs) ।

स्थिर लागतें वे होती हैं जो एक फर्म को उत्पादन के स्थिर साधनों के प्रयोग करने पर व्यय करनी पड़ती है । स्थिर लागतों का उत्पादन की मात्रा से कोई संबंध नहीं होता क्योंकि उत्पादन न करने की स्थिति में भी इस प्रकार की लागतों को एक फर्म के लिये वहन करना जरूरी होता है । उदाहरणार्थ भवन का किराया, पूँजी पर ब्याज, स्थायी कर्मचारियों का वेतन, मशीनों का मूल्यहास इत्यादि ऐसे व्यय हैं जिनका उत्पादन की मात्र अथवा उत्पादन जारी रहने न रहने से कोई संबंध नहीं है । दूसरे शब्दों में अल्पकाल मे 'उत्पादन के कुछ साधन ऐसे होते हैं जिनकी पूर्ति स्थिर रहती हैं । यदि नियोजक चाहे तब भी वह इनकी मात्राओं मे परिवर्तन नहीं कर सकता । इस प्रकार के साधनों पर आने वाली लागतों को स्थिर लागत कहते हैं । इन्हें उपरि लागतें (overhead costs) अथवा पूरक लागतें भी कहते हैं क्योंकि इनका उत्पादन की मात्रा के साथ इनका प्रत्यक्ष संबंध नहीं होता ।

स्थिर लागत के विपरीत परिवर्ती या परिवर्तनशील लागतें वे लागतें होती हैं जो उत्पादन के उन साधनों से संबंधित होती हैं जिनकी पूर्ति अल्पकाल में परिवर्तनशील होती है तथा जिसमें उत्पादन की मात्रा के साथ-साथ परिवर्तन होता है । सरल शब्दों में, ये लागतें उत्पादन की मात्रा के बढ़ने पर बढ़ती हैं, उत्पादन के घटने पर घटती हैं और उत्पादन के शुन्य होने पर ये लागतें भी शून्य हो जाती है । उदाहराणार्थ, कच्चे माल का मूल्य, ईधन व्यय, बिजली व्यय, परिवहन व्यय, मजदूरी इत्यादि परिवर्तनशील लागत के घटक हैं । इन लागतों को प्रत्यक्ष लागतें भी कहते हैं क्योंकि इनका उत्पादन की मात्रा के साथ प्रत्यक्ष संबंध होता है ।

यहां यह उल्लेखनीय है कि लागतो के स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतों में वर्गीकरण करने में समय तत्व महत्वपूर्ण हैं । आर्थिक विश्लेषण में समय तत्व दो रूपों मे शामील होता हैं - अल्पकाल एवं दीर्घकाल । अल्पकाल वह समयावधि है जिसके भीतर उत्पादन के सभी साधनों में परिवर्तन करना संभव नहीं होता अर्थात कुछ साधन स्थिर होते है व कुछ परिवर्तनशील । अल्पकाल में परिवर्तनशील साधनों की मात्रा में ही बदलाव सम्भव है । जैसे अधिक कच्चे माल एवं मजदूरों की संख्या बढ़ाकर उत्पादन में वृद्धि करना । अल्पकाल में इतना समय नही होता कि उत्पादनकर्त्ता उत्पादन के पैमाने में परिवर्तन (अर्थात पूंजीगत सामान एवं मशीनरी की यात्रा) कर उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन कर सके । इसके विपरीत दीर्घकाल में इतना पर्याप्त समय होता है कि उत्पत्ति के सभी साधनों में परिवर्तन किया जा सके । इसमें कोई भी साधन स्थिर नहीं होता। उत्पादन के पैमाने को आवश्यकता अनुसार घटाया बढ़ाया जा सकता है । समय तत्व के इस आधार पर लागतों को अल्पकालीन लागतों को अल्पकालीन लागतों व दीर्घकालीन लागतों में विभाजित किया जा सकता है ।

कुल लागत = स्थिर लागत + परिवर्तनशील लागत

11.2.5 कुल लागत, औसत लागत एवं सीमांत लागत

जैसा कि उपर स्पष्ट किया जा चुका हैं कि कुल लागत से हमारा आश्य उत्पादन की कुल मात्रा पर किये गये सम्पूर्ण व्यय से हैं ।

औसत लागत (Average cost) उत्पादन की प्रति इकाई लागत को कहते हैं और कुल लागत को उत्पादित इकाइयो द्वारा भाग देने से औसत लागत प्राप्त होती है । सूत्र रूप में

$$\text{औसत लागत} = \frac{\text{कुल लागत (TC)}}{\text{कुल उत्पादन की मात्रा (Output)}}$$

सीमान्त लागत- किसी फर्म के उत्पादन की सीमान्त इकाई को उत्पन्न करने की लागत सीमान्त लागत कहलाती है । दूसरे शब्दों में, सीमान्त लागत उत्पादन की एक अतिरिक्त इकाई उत्पादित करने से कुल लागत में होने वाली वृद्धि है । सूत्र रूप में सीमान्त लागत उत्पति की n इकाइयों की कुल लागत तथा n-1 इकाइयों की लागत का अन्तर हैं -

$MC=Tc_n - Tc_n-1$

यहाँ MC - सीमान्त लागत TC_n = n इकाइयो की कुल लागत Tc_{n-1} = n- 1 इकाइयों की कुल लागत है । यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सीमान्त लागत, स्थिर लागत से न तो संबंधित होती है और न ही उस पर निर्भर करती हैं क्योंकि स्थिर लागतें उत्पादन की मात्रा के बदलने के साथ नहीं बदलती है । चूंकि अल्पकाल में उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन करने पर केवल परिवर्तनशील लागतें ही बदलती हैं इसलिए सीमान्त लागत की उत्पत्ति केवल परिवर्तनशील लागतों में परिवर्तन होने के कारण होती हैं ।

अभी तक हमने लागत से संबंधित विभिन्न अवधारणाओं को सैद्धान्तिक विवेचन द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया है । लागत की इन विभिन्न अवधारणाओं में से कीमत विश्लेषण हेतु कुल लागत, स्थिर लागत, परिवर्तनशील लागत, औसत लागत एवं सीमान्त लागत की अवधारणाएँ महत्वपूर्ण है । आगे के खण्ड में हम इन महत्वपूर्ण अवधारणाओं को उनके वक्र द्वारा प्रदर्शित करेंगें तथा वक्र के आकार की व्याख्या करेंगे ।

बोध प्रश्न - ।

(i) अवसर लागत के बारे में बताइए

(ii) निजी लागत की व्याख्या कीजिए

(iii) परिवर्तनशील लागत के बारे में समझाइए

11.3 लागत वक्र

जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका हैं, लागतों के विश्लेषण में समय तत्व महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । समय के आधार पर लागतों को हमने अल्पकालीन लागतों व दीर्घकालीन लागतों में बाँटा हैं । अल्पकाल में चूंकि कुछ साधनों को स्थिर रखते हुए परिवर्तनशील साधनों की मात्रा में परिवर्तन कर उत्पादन मात्रा में बदलाव लाया जाता है अत: अल्पकालीन लागत का स्थिर एवं परिवर्तनशील लागत में भेद करते है । अत: अल्पकालीन लागत वक्रों के अन्तर्गत हम कुल लागत वक्र, औसत लागत वक्र, सीमान्त लागत वक्र, औसत स्थिर लागत वक्र तथा औसत परिवर्तनशील लागत वक्र का अध्ययन करेंगे । दीर्घकाल में चूंकि सभी साधनों की मात्रा मे परिवर्तन कर उत्पादन में बदलाव लाया जा सकता है अत: यहाँ पर केवल कुल लागत वक्र. औसत लागत वक्र व सीमान्त लागत वक्र - तीन ही वक्र होंगे जिनका हम अध्ययन करेंगे ।

11.3.1 अल्पकालीन लागत वक्र -

अल्पकाल में कुल लागत, स्थिर लागत व कुल परिवर्तनशील लागत का योग होती है । इन लागतों को निम्नलिखित रेखाचित्र द्वारा दर्शाया जा सकता है -

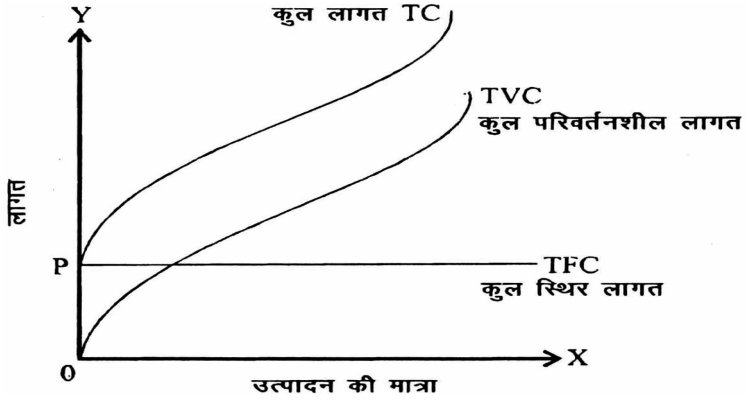

रेखाचित्र 11.1

उपर्युक्त रेखाचित्र 1 में X- अक्ष पर उत्पादन की मात्रा तथा Y - अक्ष पर लागत को लिया गया है । कुल स्थिर लागत वक्र X -अक्ष के समानान्तर सीधी रेखा है क्योंकि स्थिर लागत में उत्पादन की मात्रा के साथ कोई बदलाव नहीं होता । कुल स्थिर लागत वक्र Y अक्ष के एक बिन्दु P से प्रारम्म होता है जिसका तात्पर्य यह है कि उत्पादन शून्य होने पर भी OP के बराबर स्थिर लागत उठानी पड़ती है । कुल परिवर्तनशील लागत वक्र मूल बिन्दु से प्रारम्भ होकर ऊपर की और चढ़ता हुआ है जो बताता है कि जब उत्पादन शून्य है तो कुल परिवर्तनशील लागत भी शून्य है । फिर जैसे-जैसे उत्पादन में वृद्धि होती है परिवर्तनशील लागत भी बढ़ती है । परिवर्तनशील लागत वक्र प्रारम्भ में X - अक्ष के प्रति नतोदर (Concave) है एवं एक बिन्दु के बाद उन्नतोदर (Convex) हो जाता है । परिवर्तनशील लागत वक्र की आकृति को परिवर्तनशील अनुपात के नियम के संदर्भ में समझा जा सकता है । इस नियम के अनुसार, प्रारम्भ में स्थिर साधनों के साथ परिवर्तनशील साधन की मात्रा में प्रत्येक वृद्धि से उत्पादन में बढ़ती हुई दर से वृद्धि होती है । इस स्थिति मे परिवर्तनशील लागतें घटती दर से बढ़ती है । एक बिन्दु के बाद स्थिर साधनों के अनुपात में परिवर्तनशील साधनो के अधिक प्रयोग से उत्पादन घटती हुई दर से बढ़ता है । अतएवं परिवर्तनशील लागतें बढ़ती हुई दर से बढ़ती है ।

कुल लागत वक्र की आकृति भी कुल परिवर्तनशील लागत वक्र के समान ही होती है परन्तु यह स्थिर लागत के स्तर से प्रारम्भ होता है । कुल लागत वक्र को कुल स्थिर लागत वक्र में कुल परिवर्तनशील लागत को जोड़कर प्राप्त किया जा सकता है । रेखाचित्र से स्पष्ट है कि कुल परिवर्तनशील लागत वक्र तथा कुल लागत वक्र के बीच का अन्तर उत्पादन के सभी स्तरों पर समान है क्योंकि ये अन्तर स्थिर लागत को दर्शा रहा है जो कि अल्पकाल में उत्पादन बढ़ने पर स्थिर रहती है । इसलिये इन दो वक्रो में दूरी बिलकुल समान रहती है ।

औसत स्थिर लागत वक्र औसत परिवर्तनशील लागत वक्र औसत कुल लागत वक्र तथा सीमान्त लागत वक्र

फर्म के अल्पकालीन विश्लेषण में कुल लागतों की तुलना में औसत लागतें अधिक महत्वपूर्ण होती है । फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु की सभी इकाइयों समान लागत पर उत्पादित नहीं होती परन्तु उन्हें समान कीमत पर बेचना पड़ता है । इसलिए फर्म को प्रति इकाई लागत या औसत लागत जानना जरुरी हैं । औसत स्थिर लागत औसत परिवर्तनशील लागत तथा औसत

कुल लागत की अवधारणाओं का विवेचन किया जा चुका हैं । अब हम वक्र के माध्यम से दर्शायेगें।

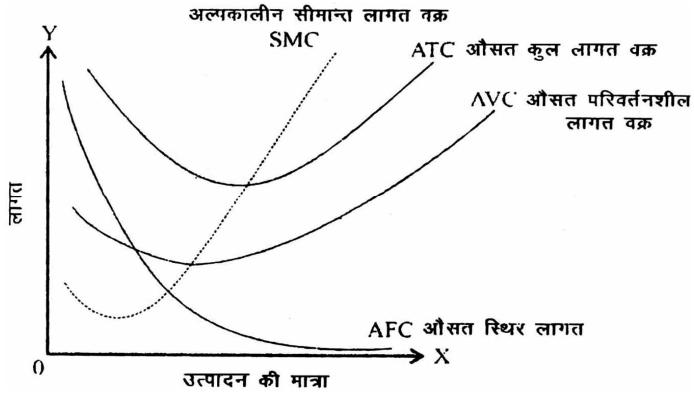

रेखाचित्र 11. 2

औसत एवं सीमांत लागत वक्र

रेखाचित्र 11 .2 औसत स्थिर लागत, औसत परिवर्तनशील लागत, कुल लागत तथा सीमान्त लागत वक्रों को एक साथ दर्शाया गया है । औसत स्थिर लागत वक्र (AFC) को चित्र में गए से दर्शाया गया है । यह बायी और नीचे गिरता हुआ वक्र है जो यह दर्शा रहा है कि उत्पादन बढ़ने के साथ-साथ औसत स्थिर लागत घटती जा रही हैं । इसका कारण यह है कि जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ता है तो कुल स्थिर लागत वस्तु की अधिक इकाईयों पर फैलती अथवा वितरित होती हैं इसलिए ये लगातार घटती जाती है । जब उत्पादन बहुत अधिक हो जाता है तो औसत स्थित लागत के शून्य होने की प्रवृत्ति होगी अर्थात औसत स्थिर लागत वक्र के X -अक्ष के निकट पहुँचने की प्रवृत्ति होगी परन्तु उसको स्पर्श या काटेगा नहीं क्योंकि औसत स्थिर लागत शून्य नहीं होगी । औसत स्थिर लागत वक्र पर स्थित प्रत्येक बिन्दु द्वारा व्यक्त औसत स्थिर लागत व उत्पादन की मात्रा का गुणनफल समान होगा क्योंकि ये गुणनफल कुल स्थिर लागत को दर्शा रहा है जो उत्पादन की प्रत्येक मात्रा पर स्थिर है । औसत स्थिर लागत को दर्शा रहा है जो उत्पादन की प्रत्येक मात्रा पर स्थिर है । औसत स्थिर लागत वक्र की इस आकृति को आयताकार अतिपरवलय (Rectangular hyperbola) कहते हैं । औसत परिवर्तनशील लागत वक्र (AVC) - औसत परिवर्तनशील लागत, कुल परिवर्तनशील लागत को वस्तु की कुल उत्पादन मात्रा से भाग देने पर प्राप्त होती है ।

$$\text{औसत परिवर्तनशील लागत} = \frac{\text{कुल परिवर्तनशील लागत}}{\text{उत्पादन की मात्रा}}$$

$$AVC = \frac{TVC}{Q}$$

औसत परिवर्तनशील लागत वक्र का आकार अंग्रेजी अक्षर U जैसा है जो यह दर्शाता है कि प्रारम्भ में औसत परिवर्तनशील लागत सामान्यतया घटती है क्योंकि फर्म को उत्पादन के बढ़ते प्रतिफल प्राप्त होता हैं लेकिन न्यूनतम पर पहुँचने के बाद ह्रासमान प्रतिफल के कारण ये तेजी से बढ़ती जाती है । औसत परिवर्तनशील लागत वक्र की आकृति को परिवर्तनशील साधन की उत्पादकता में परिवर्तन के आधार पर समझा जा सकता है मानाकि किसी वस्तु के उत्पादन में

श्रम परिवर्तनशील साधन हैं । वस्तु की उत्पादन मात्रा को Q से श्रम की मात्रा को L से व श्रम की प्रति इकाई कीमत को W से व्यक्त करें तो -

$$AVC = \frac{TVC}{Q} = \frac{L.W}{Q}$$

तथा कुल उत्पादन Q = AP.L AP श्रम की औसत उत्पादकता

अत: $AVC = \frac{L.W}{AP.L}$

$$= \frac{W}{AP} = \left(\frac{1}{AP}\right)$$

अत: स्पष्ट है कि परिवर्तनशील साधन श्रम की प्रतिइकाई कीमत (W) के स्थिर रहने पर औसत परिवर्तनशील लागत का श्रम की औसत उत्पादकता के साथ परस्पर विलोम संबंध है । इसलिए जब औसत उत्पादकता आरम्भ में परिवर्तनशील साधन की इकाइयाँ बढ़ाने पर बढ़ती है तो औसत परिवर्तनशील लागत अवश्य ही घटेगी और कुछ सीमा के बाद परिवर्तनशील साधन की औसत उत्पादकता घटती है तो औसत परिवर्तनशील लागत अवश्य ही बढ़ेगी । उत्पादन के उस स्तर पर जहाँ कि औसत उत्पादकता अधिकतम होती है औसत परिवर्तनशील लागत न्यूनतम होगी । इस प्रकार औसत' परिवर्तनशील लागत वक्र औसत उत्पादकता वक्र के उलट आकृति का होता है ।

औसत कुल लागत, औसत परिवर्तनशील लागत और औसत स्थिर लागत के जोड़ के बराबर होती है । अर्थात

$$\Theta TC = TVC = TFC$$

$$\Theta \frac{TC}{Q} = \frac{TVC + TFC}{Q}$$

$$\frac{TC}{Q} = \frac{TVC}{Q} + \frac{TFC}{Q}$$ समीकरण को Q से विभाजित करने पर

$$ATC = AVC + AFC$$

अत: स्पष्ट है कि औसत कुल लागत वक्र की आकृति औसत परिवर्तनशील लागत वक्र तथा औसत स्थिर वक्र के व्यवहार पर निर्भर करेगी । जैसा कि हम देख चुके हैं, औसत स्थिर लागत वक्र बायीं और लगातार गिरता हुआ वक्र है एवं औसत परिवर्तनशील वक्र भी प्रारम्भ में गिरता है एवं न्यूनतम पर पहुँचने के बाद बढ़ता है । जब औसत परिवर्तनशील लागत वक्र बढ़ने लगता है तब भी कुछ दूरी तक औसत कुल लागत वक्र गिरता हैं क्योंकि औसत स्थिर लागत लगातार घट रही हैं एवं औसत स्थिर लागत में कमी औसत परिवर्तनशील लागत में वृद्धि से अधिक है । जब उत्पादन को और अधिक बढ़ाया जाता है तो औसत परिवर्तनशील लागत में वृद्धि औसत स्थिर लागत में कमी से अधिक हो जाती है तब औसत कुल लागत वक्र बढ़ना प्रारम्भ कर देता है । इसलिए कुल लागत वक्र की आकृति भी अंग्रेजी के अक्षर U समान होती है । यहाँ यह उल्लेखनीय है कि औसत परिवर्तनशील लागत पहले न्यूनतम पर पहुँचती है फिर उसके बाद औसत कुल लागत अपना न्यूनतम प्राप्त करती है ।

सीमान्त लागत का आर्थिक विश्लेषण में प्रमुख स्थान है । सीमान्त लागत उत्पादन की एक अतिरिक्त इकाई उत्पादित करने से कुल लागत मे वृद्धि को कहते है ।

अर्थात $MC_n = TC_n - TC_{n-1}$

या $MC = \frac{\Delta TC}{\Delta Q}$

जैसा कि पूर्व मे स्पष्ट किया जा चुका है सीमांत लागत स्थिर लागत से स्वतन्त्र होती है । सीमान्त लागत केवल परिवर्तनशील लागत में परिवर्तन होने से बदलती है । इसे सूत्र की सहायता से निम्न प्रकार से बता सकते

$MC_n = TC_n - TC_{n-1}$

$= (TVC_n + TFC) - (TVC_n - 1 + TFC)$

$= TVC_n + TFC - TVC_n - 1 - TFC)$

$= TVC_n - TVC_{n-1}$

$$\mathrm{MC} = \frac{\Delta TC}{\Delta Q}$$

$$MC = \frac{\Delta(\mathrm{W}.\mathrm{L})}{\Delta Q}$$

अर्थात $\mathrm{MC} = W\frac{\Delta L}{\Delta Q}$ (Θ TVC = W.L)

-(1) (W को स्थिर मानने पर

$\Theta\ MP = \frac{\Delta Q}{\Delta L}$ -(2)

परिवर्तनशील साधन का सीमान्त उत्पादन परिवर्तनशील साधन में एक इकाई की वृद्धि के फलस्वरूप कुल उत्पादन में परिवर्तन के बराबर होता है ।

समीकरण (2) से सीमांत उत्पादकता का व्यूत्क्रम

$$\frac{1}{MP} = \frac{\Delta L}{\Delta Q}$$

समीकरण (i) में $W = \frac{\Delta L}{\Delta Q}$ के स्थान पर $\frac{1}{MP}$ रखने पर

$$\mathrm{MC} = W\frac{1}{MP} - 3$$

चूंकि परिवर्तनशील साधन की कीमत को स्थिर माना है इसलिए समीकरण (3) के आधार पर स्पष्ट है कि सीमान्त लागत में परिवर्तनशील साधन की सीमान्त उत्पादकता से विपरीत दिशा मे परिवर्तन होगा । सीमान्त लागत वक्र की आकृति को सीमान्त लागत एवं सीमान्त उत्पादकता के बीच संबंध के आधार पर समझा जा सकता है । परिवर्तनशील अनुपात के नियम से हम जानते हैं कि उत्पादन के प्रारम्भ में जब परिवर्तनशील साधन की मात्रा बढ़ाते हैं तो सीमान्त उत्पादकता बढ़ती है अत: प्रारम्भ में सीमान्त लागत घटती हुई होगी । एक सीमा के बाद परिवर्तनशील साधन की मात्रा बढ़ाने पर उस साधन की सीमान्त उत्पादकता घटने लग जाती

है । अतएव सीमान्त लागत बढ़ने लग जायेगी । इस प्रकार सीमान्त उत्पादकता के प्रारम्भ में बढ़ने और अधिकतम स्तर तक पहुँचने के बाद घटने से सीमान्त लागत आरम्भ में घटती है और न्यूनतम स्तर प्राप्त करने के बाद बढ़ने लगती है । सीमान्त लागत वक्र की आकृति भी अंग्रेजी के अक्षर U के समान होगी ।

11.3.2 औसत लागत एवं सीमान्त लागत वक्रों की कुल से व्युत्पत्ति

औसत एवं' सीमान्त लागत वक्रो की आकृति को कुल लागत वक्रो से उनकी व्युत्पत्ति द्वारा भी समझा जा सकता है ।

औसत स्थिर लागत वक्र की कुल स्थिर लागत वक्र से व्युत्पत्ति

कुल औसत लागत वक्र (TFC) से औसत स्थिर लागत वक्र (AFC) की व्युत्पत्ति को रेखाचित्र 11.3 में दर्शाया गया है । रेखाचित्र के ऊपरी भाग में कुल स्थिर लागत को दर्शाया गया है जो उत्पादन के सभी स्तरों पर 1000 रू के बराबर है । कुल उत्पादन मात्रा OQ1 (=100 इकाइयों) पर औसत स्थिर लागत $\frac{AQ_1}{OQ} = \frac{1000}{100} = 10$ औसत स्थिर लागत $\frac{AQ_1}{OQ_1}$ मूल बिन्दु O से A तक खींची गई सरल रेखा के ढाल के बराबर है । दूसरे शब्दों में कुल स्थिर लागत वक्र के किसी भी बिन्दु से मूल बिन्दु को मिलाने वाली रेखा का ढाल उस बिन्दु पर औसत स्थिर लागत दर्शायेगा! रेखाचित्र 11.3 में दर्शाये गये विभिन्न बिन्दुओं B, C पर औसत स्थिर लागत क्रमश: $\frac{BQ_2}{OQ_2}\left(=\frac{1000}{200}=5\right), \frac{CQ_3}{OQ_3}\left(\frac{1000}{300}=3.3\right)$ है !

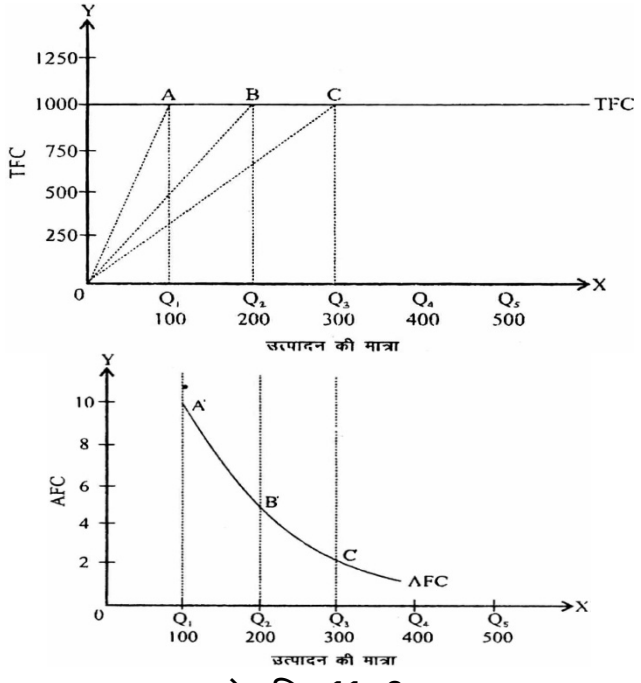

रेखाचित्र 11. 3

कुल स्थिर लागत से औसत स्थिर लागत वक्र की व्युत्पत्ति

अत: स्पष्ट है जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ रहा है औसत स्थिर लागत कम होती जा रही है । ज्यामितिय दृष्टि से जैसे-जैसे TFC वक्र पर आगे बढ़ते है मूल बिन्दु को मिलाने वाली रेखा का ढाल कम होता जा रहा है । रेखचित्र 11.3 के नीचे वाले भाग में AFC वक्र को दर्शाया है जो A' B' C को मिलाने से बना है । A' B' व क्रमश उत्पादन के OQ, OQ, एवं OQ3 स्तर पर औसत लागत है । औसत परिवर्तनशील लागत वक्र की व्युत्पति

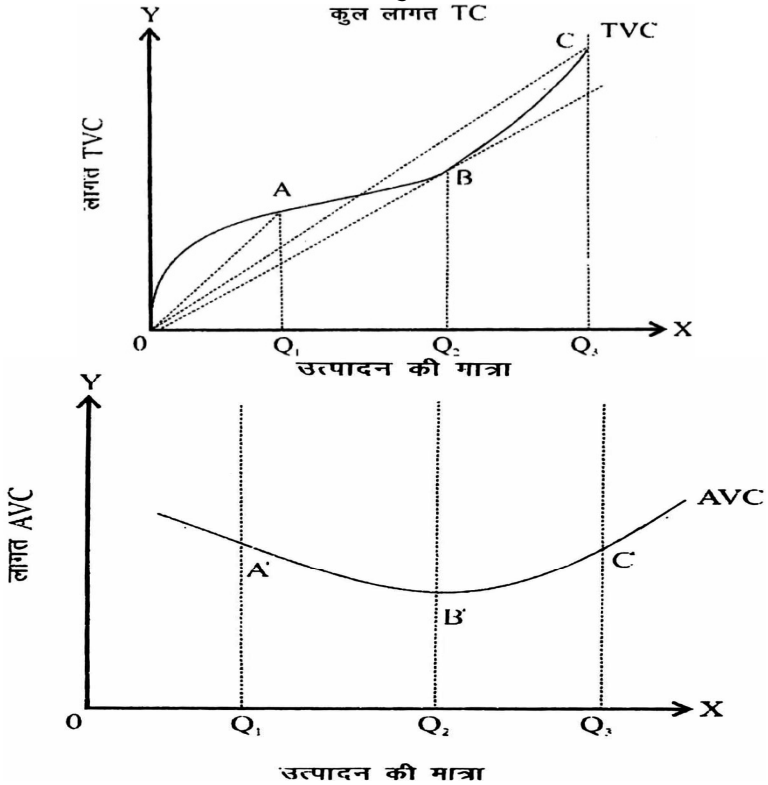

रेखाचित्र - 11.4

कुल परिवर्तनशील लागत से औसत परिवर्तनशील लागत वक्र की व्युत्पत्ति

रेखाचित्र व 11.4 के उपरी भाग में TVC कुल परिवर्तनशील लागत वक्र है । औसत परिवर्तनशील लागत को कुल परिवर्तनशील लागत वक्र पर मूल बिन्दु से खींची गयी रेखा की ढाल से मापा जा सकता है ।

उत्पादन स्तर OQ1 पर औसत परिवर्तनशील लागत रेखा OA के ढाल $\frac{AQ_1}{OQ_1}$ के बराबर है जिसे रेखाचित्र के नीचे वाले भाग में A बिन्दु से दर्शाया गया है । इसी प्रकार OQ2 एवं OQ3 उत्पादन स्तरों पर औसत परिवर्तनशली लागत क्रमश: OB एवं OC रेखाओं का ढाल द्वारा मापी जा सकती है । OB एवं OC रेखाओं का ढाल क्रमश: $\frac{BQ_2}{OQ_2}$ तथा $\frac{CQ_3}{OQ_3}$ हैं, जिन्हें रेखाचित्र के नीचे वाले भाग में B^1 व C^1 बिन्दु से दर्शाया गया है । A1 ए B1 एवं C1 को मिलाने से औसत परिवर्तनशील लागत वक्र AVC प्राप्त होता है । इस रेखाचित्र से यह भी स्पष्ट होता है कि मूल बिन्दु से TVC वक्र पर खींची गयी सरल रेखा का ढाल उत्पादन मात्रा OQ2 तक

घटाया जाता है और इसके पश्चात् यह बढ़ने लगता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि AVC वक्र पर उत्पादन मात्रा OQ2 तक घटता है और इसके पश्चात् यह ऊपर की और बढ़ता है ।

कुल लागत वक्र से औसत लागत वक्र की व्युत्पत्ति -

अल्पकालीन कुल लागत (STC) से अल्पकालीन औसत लागत वक्र (SAC) की त्युत्पत्ति भी ठीक उसी प्रकार की जा सकती है जैसे कि हमने कुल कुल परिवर्तनशील लागत वक्र (TVC)से औसत परिवर्तनशील लागत वक्र AVC की व्युत्पत्ति की थी ।

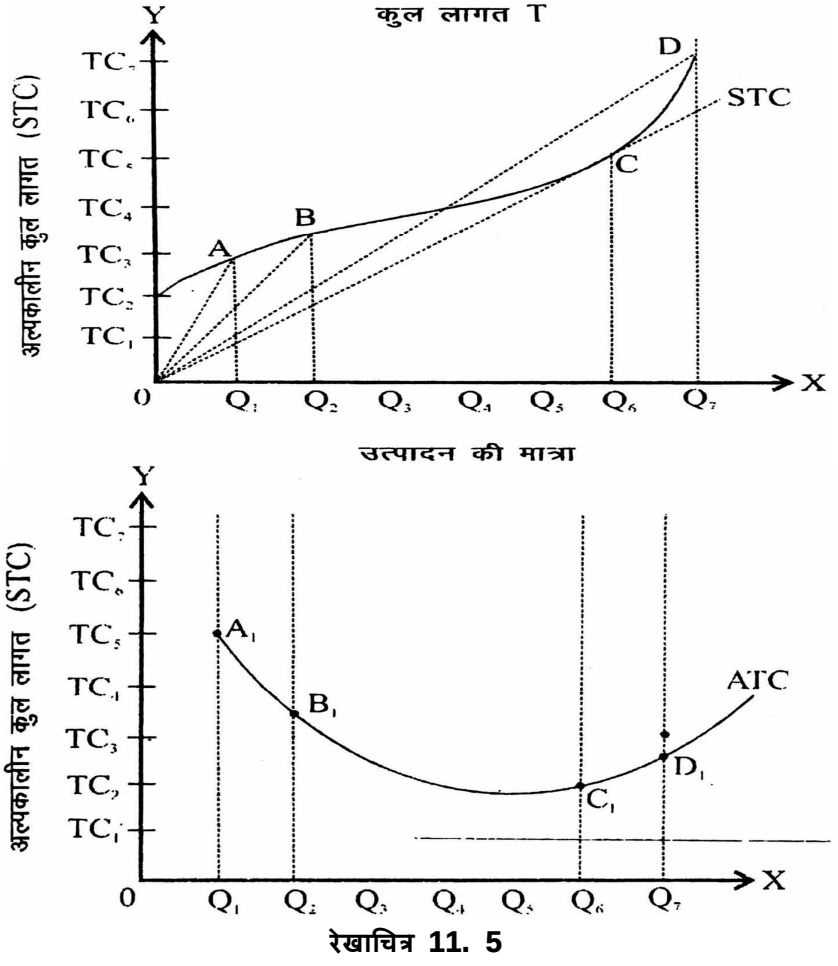

रेखाचित्र 11. 5

अल्पकालीन कुल लागत वक्र से अल्पकालीन औसत कुल लागत वक्र

रेखाचित्र 11.5 के ऊपरी भाग में STC अल्पकालीन कुल लागत वक्र है इस वक्र के विभिन्न बिन्दुओं ABCD को मूल बिन्दु O से मिलाने वाली रेखाएँ OA, OB, OC,व OD है । जिनका ढाल क्रमशः $\frac{AQ_1}{OQ_1}, \frac{BQ_2}{OQ_2}, \frac{CQ_6}{OQ_6}$ तथा $\frac{DQ_7}{OQ_7}$ जो उत्पादन के OQ_1, OQ_2, OQ_3, ,OQ_4 से संबंधित है । इन रेखाओं के ढाल, जो उत्पादन के इन विभिन्न स्तरों पर औसत लागत को दर्शा रहे हैं को रेखाचित्र के नीचे वाले भाग में A; B; C; व D' बिन्दु से दिखाया गया है । इन बिन्दुओं को मिलाने से अल्पकालीन औसत कुल लागत वक्र प्राप्त होता है जो U आकृति का है । यहीं यह उल्लेखनीय है कि मूल बिन्दु से STC वक्र पर स्थित बिन्दुओं का ढाल उत्पादन के

OQ6 स्तर तक घटता जाता है जिसे C' द्वारा दर्शाया है इसके पश्चात् ये पुन: बढ़ने लगता है । अर्थात् OQ6 उत्पादन स्तर तक औसत कुल लागत घटती हुई एवं इस बिन्दु पर न्यूनतम हैं एवं इसके बाद ये बढ़ती है ।

अल्पकालीन सीमान्त लागत वक्र की व्युत्पत्ति-

जैसा कि हम जानते हैं सीमान्त लागत को निम्न सूत्र से व्यक्त किया जाता है -

$$\text{MC} = \frac{\Delta TC}{\Delta Q}$$

अर्थात उत्पादन में न्यून परिवर्तन के फलस्वरूप कुल लागत में हुआ परिवर्तन सीमान्त लागत कहलाता है । सीमान्त लागत वक्र को कुल लागत वक्र से व्युत्पादित किया जा सकता है ।

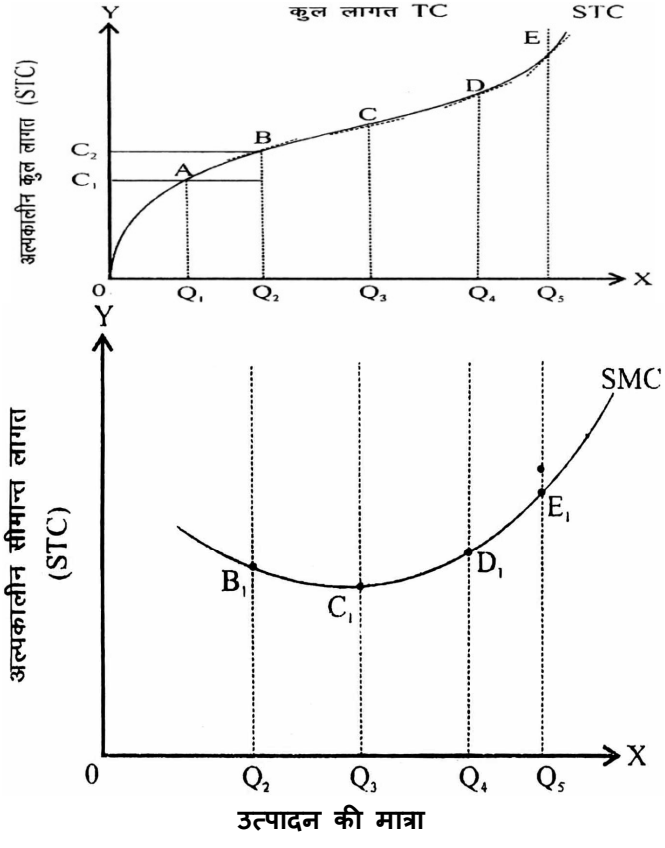

रेखाचित्र 11.6

अल्पकालीन सीमान्त लागत वक्र की कुल लागत से व्युत्पति

रेखाचित्र 11.6 अल्पकालीन सीमान्त लागत वक्र की कुल लागत से व्युत्पति उपर्युक्त रेखाचित्र के ऊपरी भाग में अल्पकालीन कुल लागत वक्र दर्शाया गया है । अब माना कि उत्पादन OQ1 से OQ2 तब बढ़ाया जाता है तो उत्पादक STC पर A से B की तरफ बढ़ता है एवं लागत C1 से बढ़कर C2 हो जाती है ।

$$\text{MC} = \frac{\Delta TC}{\Delta Q} = \frac{C_2 - C_1}{Q_2 - Q_1} = \frac{BH}{AH}$$

अब यदि हम यह मानें कि कुल लागत वक्र के बिन्दु B को A के इतना निकट ले आये कि A और B के बीच दूरी नगणय हो जाये तो B बिन्दु पर खींची गई स्पर्श रेखा की ढाल $\left(\frac{BH}{AH}\right)$ सीमान्त लागत का अधिक श्रेष्ठ माप बन जाती है । दूसरे शब्दों में, कुल लागत वक्र के किसी भी बिन्दु पर खींची गई स्पर्श रेखा की ढाल उत्पादन के उस स्तर पर सीमान्त लागत को व्यक्त करती है । अत: हम अल्पकालीन कुल लागत वक्र पर C,D,E अन्य बिन्दु लेते हैं जो उत्पादन के OQ3 OQ4 एवं OQ5 स्तर से संबंधित है । इन बिन्दुओं पर खींची गई स्पर्श रेखा उत्पादन के इन स्तरों पर सीमान्त लागत को दर्शायेगी । सीमान्त लागत के इसी माप को रेखाचित्र के नीचे वाले भाग में क्रमश: B1, C1, D1, एवं E० बिन्दुओं से दर्शाया गया है एवं इन बिन्दुओं को मिलाने से अल्पकालीन सीमांत लागत वक्र प्राप्त होता है । रेखाचित्र से स्पष्ट है कि अधिक उत्पादन के स्तरों के अनुरूप अल्पकालीन कुल लागत वक्र STC के विभिन्न बिन्दुओं से खींची स्पर्श रेखाओं की ढाल उत्पादन स्तर O3, तक कम होती जाती है । इसके बाद स्पर्श रेखा की ढाल अर्थात सीमान्त लागत बढ़ती जा रही है ।उत्पादन मात्रा Q3 पर सीमान्त लागत निम्नतम है ।

11.3.3 अल्पकालीन औसत लागत तथा सीमान्त लागत वक्रों में संबंध

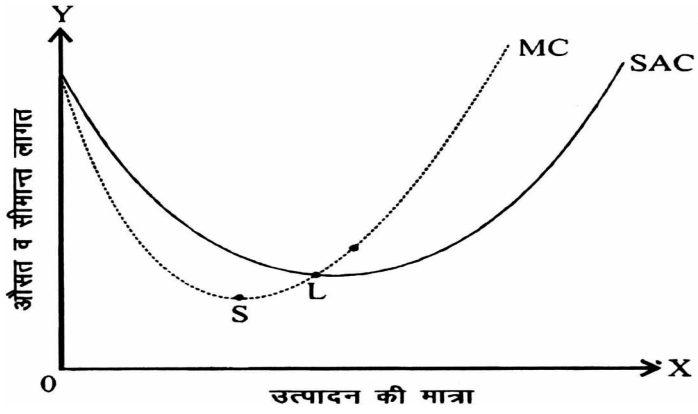

रेखाचित्र 11.7

रेखचित्र 11.7 में अल्पकालीन औसत तथा सीमान्त लागत वक्र दर्शाये गयें हैं । इनके बीच पारस्परिक सम्बन्ध की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है -

(1) जब तक औसत गिरती रहती है तब तक सीमान्त लागत उससे कम बनी रहती है । अर्थात तब तक MC वक्र AC वक्र के नीचे रहता है तब तक AC वक्र नीचे गिरता हुआ होता है ।

(2) जब औसत लागत बढ़ती है तो सीमान्त लागत भी बढ़ती है और इसकी वृद्धि दर औसत लागत से अधिक होती है । अर्थात जब MC वक्र AC वक्र के ऊपर होता है AC वक्र भी ऊपर की ओर उठता हुआ होता है ।

(3) सीमान्त लागत वक्र (MC) औसत लागत वक्र को सदैव उसके न्यूनतम पर काटता है जहाँ MC=AC होता है ।

11.3.4 दीर्घकालीन लागत वक्र

जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि दीर्घकाल में फर्म के पास इतना पर्याप्त समय होता हैं कि वह उत्पादन के सभी साधनों में आवश्यकता अनुसार बदलाव किया जा सकता है । यहीं तक कि संयन्त्र के आकार अथवा फर्म के संगठनात्मक ढाँचे में भी बदलाव करने के लिए पर्याप्त समय होता है । दूसरे शब्दों में अल्पकाल में संयन्त्र, संगठन व प्रबन्ध जैसे साधनों की अविभाज्यता के कारण कार्य पैमान में परिवर्तन करना संभव नहीं होता परन्तु दीर्घकाल में ये साधन पूर्णतया अविभाज्य नहीं रहते इसलिए कम अथवा अधिक उत्पादन हेतु कार्य पैमाने में परिवर्तन किया जा सकता है । अत: फर्म को दीर्घकाल में उत्पादन के कई पैमाने में परिवर्तन किया जा सकता है । अत: फर्म को दीर्घकाल में उत्पादन के कई कार्य पैमाने उपलब्ध होते हैं जिनमें से वो उत्पादन की आवश्यकता अनुसार उनमें चयन कर सकता है । प्रत्येक कार्य पैमाने से सम्बन्धित एक अल्पकालीन लागत वक्र होता है । कार्य पैमाने में परिवर्तन के साथ अल्पकालीन लागत वक्र भी बदल जाता है । दीर्घकालीन उत्पादन लागत किसी दिये हुए उत्पादन स्तरों को उत्पादित करने की न्यूनतम सम्भव लागत है । दीर्घकालीन लागत वक्र. उत्पादन मात्रा और दीर्घकालीन उत्पादन लागत के बीच सम्बन्ध को व्यक्त करता है ।

दीर्घकालीन औसत लागत दीर्घकालीन कुल लागत को उत्पादन की मात्रा से विभाजित करने पर प्राप्त की जाती है । अल्पकाल में फर्म का केवल एक ही औसत लागत वक्र होता है परन्तु दीर्घकाल में फर्म के उतने ही औसत लागत वक्र होते है जितने की उसे कार्य पैमाने उपलब्ध हैं । मान लिजिये कि फर्म को दीर्घकाल में तीन कार्य पैमाने उपलब्ध हैं । इन पैमानों से सम्बन्धित औसत लागत वक्र को निम्न रेखाचित्र के अनुसार दर्शाया जा सकता है।

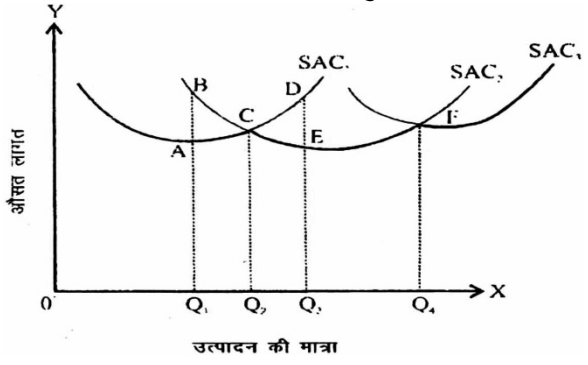

रेखाचित्र 11.8

अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन औसत लागत वक्र

अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन औसत लागत वक्र

उपर्युक्त रेखाचित्र में SAC_1, SAC_2 तथा SAC_3, तीन विभिन्न कार्य पैमानों से सम्बन्धित औसत लागत वक्र है । दीर्घकाल में फर्म को इस बात का निर्णय करना है कि संयन्त्र के किस आकार अथवा किस कार्य पैमाने अथवा किस अल्पकालीन औसत लागत पर उत्पादित कर सकें । रेखाचित्र 11.8 से स्पष्ट है कि उत्पादन की OQ_1 मात्रा को उत्पादित करने के लिए फर्म को SAC_1 तथा SAC_2 वक्र से सम्बन्धित कार्य पैमाने या संयन्त्र उपलब्ध है । इसमें से फर्म SAC_1 को चुनेगी क्योंकि OQ_1 मात्रा तक उत्पादन के लिए SAC_1 उपयुक्त है । जब उत्पादन को OQ_2 से बढ़ाकर OQ_3 करना हो तब भी फर्म को SAC_1 उपयुक्त है । जब उत्पादन

को OQ_2 सें बढ़ाकर OQ_3 का चुनाव करेगी क्योंकि OQ_3 मात्रा को SAC_2 से उत्पादित करने की लागत EQ_3 है जो कि संयन्त्र SAC1 की लागत DQ_3 से कम है । इस तरह रेखाचित्र से स्पष्ट है कि OQ_2 से अधिक एवं OQ_4 तक की उत्पादन मात्रा के लिये फर्म SAC_3 का चुनाव करेगी। यदि फर्म को OQ4 से अधिक उत्पादन करना है तो वह SAC3 संयन्त्र का प्रयोग करेगी।

यदि फर्म को रेखाचित्र 11.8 में दिखाये तीन संयन्त्र ही उपल उपलब्ध हों तब दीर्घकालीन औसत लागत वक्र अल्पकालीन औसत लागत वक्रो के उन भागों से बना होगा जिन पर कि फर्म दीर्घकाल में उत्पादन करेगी । रेखाचित्र में वक्रों के वे भाग जिनकों अधिक स्थूल करके दिखाया हैं, फर्म का दीर्घकालीन औसत लागत वक्र है । अब कल्पना कीजिये कि फर्म को अनेक कार्य पैमाने उपलब्ध हैं क्योंकि संयन्त्र के आकार को सूक्ष्म रूप में बदला जा सकता है । प्रत्येक संयन्त्र के अनुरूप अल्पकालीन औसत लागत वक्र होंगे । ऐसी दशा में दीर्घकालीन औसत लागत वक्र बिना बल के(Smooth)तथा सतत रेखा की आकृति का होगा । ऐसे दीर्घकालीन औसत लागत वक्र को रेखाचित्र 11.9 में दर्शाया गया है ।

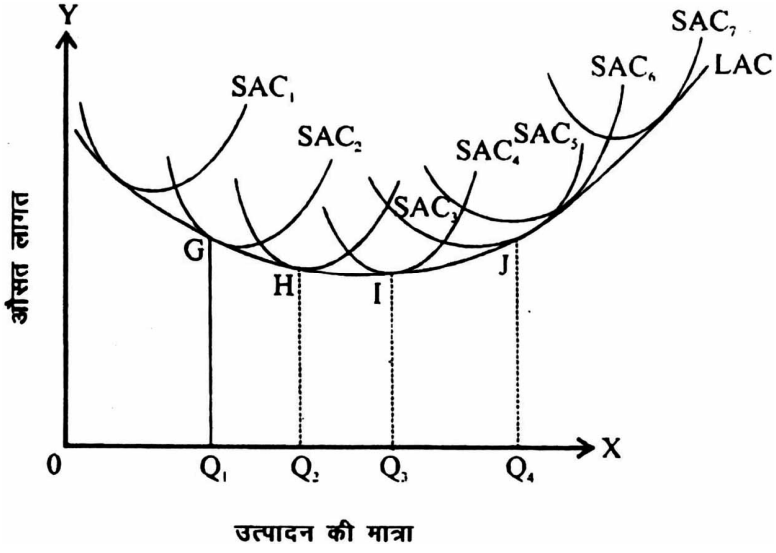

रेखाचित्र 11.9

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र

रेखाचित्र से स्पष्ट है कि दीर्घकाल में फर्म उत्पादन की मात्रा के अनुरूप दीर्घकालीन औसत लागत वक्र का बिन्दु चयन करके उसके अनुसार संयन्त्र स्थापित करके उत्पादन करेगी । वस्तु की OQ1 मात्रा के लिए फर्म LAC वक्र पर G बिन्दु का चयन करेगी । इस बिन्दु पर SAC_2, LAC वक्र को स्पर्श कर रहा है । इसी तरह OQ2 OQ3 एवं OQ4 मात्राओं के लिए फर्म LAC वक्र क्रमश: H, I,T बिन्दुओं पर होगी एवं SAC3, SAC4 SAC5 वक्र इन बिन्दुओं पर LAC वक्र को स्पर्श कर रहे है । फर्म इन वक्रों के अनुरूप संयन्त्रों का चुनाव कर उत्पादन करेगी । दीर्घकालीन औसत लागत वक्र LAC को आवरण (envelop) भी कहा जाता है क्योंकि यह अनेक अल्पकालीन औसत लागत वक्रों को घेरता हैं ।

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की विशेषताएँ -

1. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र प्रारम्भ में नीचे गिरता है और फिर एक बिन्दु के पश्चात् ऊपर की और चढ़ता है । दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की आकृति भी अंग्रेजी के अक्षर

U जैसी होती है । परन्तु अल्पकालीन औसत लागत की तुलना में यह अधिक चपटा होता है । दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की आकृती का कारण पैमाने के प्रतिफल हैं । जैसे-जैसे हम उत्पादन के पैमाने में वृद्धि करते हैं तो प्रारम्भ में हमें पैमाने के वृद्धि प्रतिफल के कारण दीर्घकालीन औसत लागत उत्पादन के बढ़ने पर घटती है । कुछ सीमा के बाद पैमाने के घटते प्रतिफल के कारण दीर्घकालीन औसत लागत उत्पादन बढ़ने पर बढ़ने लग जाती है । उल्लेखनीय हैं कि पैमाने के बढ़ते प्रतिफल फर्म को आन्तरिक एवं बाहा बचतों के कारण तथा घटते प्रतिफल आन्तरिक एवं बाहा हानियों के कारण प्राप्त होते हैं ।

2. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र अल्पकालीन औसत लागत वक्रों के न्यूनतम बिन्दुओं से स्पर्श नहीं करता । जब दीर्घकालीन औसत लागत वक्र घट रहा होता है तो यह अल्पकालीन औसत लागत गिरते भागों के बिन्दुओं को स्पर्श करता है । अर्थात फर्म संयन्त्र विशेष की न्यूनतम लागत बिन्दु से बायीं और उत्पादन करेगी जिसका तात्पर्य यह है कि OQ3 मात्रा से कम उत्पादन न्यूनतम सम्भव लागत पर करने के लिए फर्म एक उचित संयन्त्र लगाकर उसको उसकी पूर्ण क्षमता से कम स्तर पर प्रयोग करेगी । इसके विपरीत जब दीर्घकालीन औसत वक्र बढ़ रहा होता है तो यह अल्पकालीन औसत लागत वक्रों के चढ़ते भागों को स्पर्श करेगा । इसका तात्पर्य यह है कि वस्तु की O3 मात्रा से अधिक उत्पादन करने के लिए फर्म एक उचित आकार का संयन्त्र लगाकर उससे उसकी इष्टतम क्षमता से अधिक उत्पादन करेगी अर्थात् न्यूनतम लागत बिन्दु से दायीं और के बिन्दु पर उत्पादन करेगी । LAC वक्र केवल उस SAC को ही उसके न्यूनतम स्तर पर स्पर्श करता है जो LAC वक्र के न्यूनतम पर स्थित हैं ।
3. वस्तु की बड़ी मात्राओं को बड़े संयन्त्रों तथा कम मात्राओं को छोटे संयन्त्रों के साथ न्यूनतम लागत पर उत्पादित किया जा सकता है । एक अपेक्षाकृत बड़ा संयंत्र जो कि अधिक मंहगा होता है को वस्तु की कम मात्रा उत्पादित करने के लिए प्रयोग में लेने पर प्रति इकाई लागत अधिक होगी क्योंकि संयंत्र का क्षमता से कम उपयोग हो रहा है । इसके विपरीत एक बड़ी उत्पादन मात्रा को छोटे आकार के उत्पादन संयंत्र से उत्पादित करने पर इसकी उत्पादन क्षमता सीमित होने के कारण प्रति इकाई लागत अधिक आयेगी ।

दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र -

दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र (पथp) कुल लागत वक्र से सीधे तौर पर प्राप्त किया जा सकता हैं क्योंकि किसी उत्पादन मात्रा पर दीर्घकालीन सीमांत लागत उत्पादन की उस मात्रा पर कुल लागत वक्र की ढाल के बराबर होती है । इसके अतिरिक्त LMC वक्र को LAC वक्र से भी प्राप्त किया जा सकता है । इसे निम्न रेखाचित्र द्वारा समझा जा सकता है ।

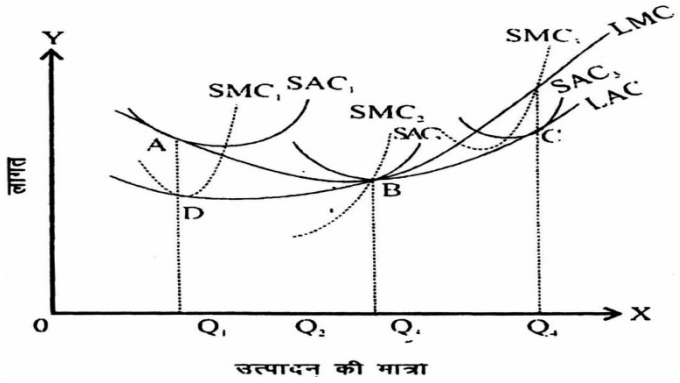

रेखाचित्र 11.10

दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र की व्युत्पति

उपर्युक्त रेखाचित्र में LAC वक्र दिखाया गया है जो कई SAC वक्रों को घेरे है । चित्र में तीन SAC वक्र दिखाये गये हैं जो LAC वक्र को A, B, व C बिन्दुओं पर स्पर्श कर रहे हैं । इन SAC वक्रों के तत्सम्बन्धी अल्पकालीन सीमांत लागत वक्र क्रमश: SMC1, SMC2 तथा SMC3 भी चित्र में दर्शाये गये हैं । A,B,व C बिन्दुओं से X अक्ष पर क्रमश: AQ1 तथा BQ2 व CQ3 लम्ब गिराओ । ये लम्ब SMC1, SMC2, व SMC3 को क्रमश: D,B व E पर काटते हैं । D, B व E को मिलाने से दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र प्राप्त होता है । यहीं यह उल्लेखनीय हैं कि दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र का दीर्घकालीन सीमान्त लागत का अल्पकालीन औसत लागत से होता हैं ।

दीर्घकालीन कुल लागत वक्र एवं विस्तार पथ

विस्तार पथ से दीर्घकालीन कुल लागत वक्र की व्युत्पस्ति की जा सकती है । विस्तार पथ (जिसका अध्ययन आपने सम-उत्पादक वक्र संबंधित इकाई में किया होगा) साधनों के उन संयोगों को दर्शाता हैं-जिनसे उत्पादन की विभिन्न मात्राओं को न्यूनतम सम्भव लागत पर उत्पादित किया जा सकता है। यहीं हम मान लेते हैं कि उत्पादन के दो ही साधन हैं तथा इनकी कीमतें स्थिर हैं।

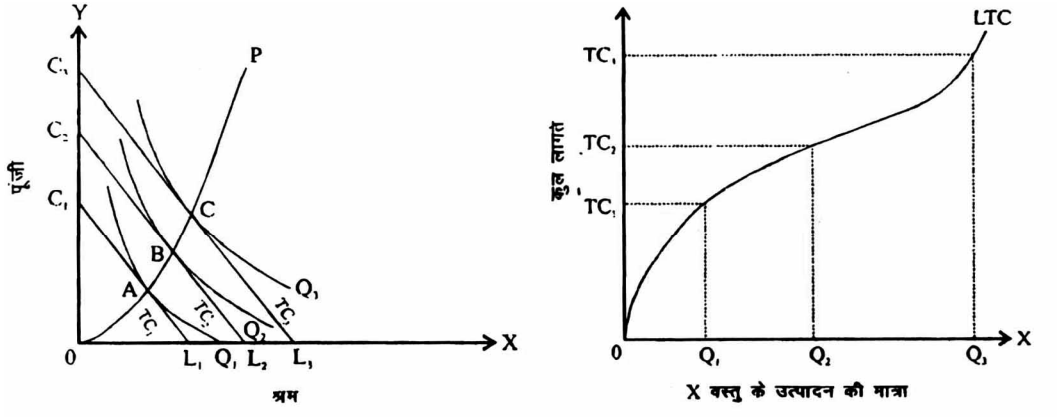

(अ) विस्तारपथ **(ब) दीर्घकालीन कुल लागत वक्र**

रेखाचित्र 11.11

विस्तार एवं कुल लागत वक्र

सम उत्पाद वक्र विधि के अनुसार उत्पादन की एक निर्दिष्ट मात्रा को उत्पन्न करने की न्यूनतम लागत उस बिन्दु पर होगी जहाँ उस मात्रा से संबंधित समोत्पाद वक्र सम-लागत वक्र को स्पर्श करे । इस बिन्दु पर तकनीकी प्रतिस्थापन की दर व साधनों की कीमत का अनुपात समान होगा।

रेखाचित्र 11.11(अ) में तीन सम उत्पाद वक्र Q1, Q2 व Q3 दर्शाये गये हैं जो तीन उत्पादन मात्राओं से सम्बन्धित है । इन तीन सम उत्पाद वक्रों को सम लागत वक्र C1,L1,L2,L3 व C3 L3, क्रमश: A, B व C बिन्दुओं पर स्पर्शकर रही है जो साम्य की स्थिति को दर्श रहे हैं अर्थात श्रम एवं पूंजी के उन संयोगों को बता रहे हैं जो उत्पादन की Q1, Q2, व Q3, मात्राओं को न्यूनतम लागत पर उत्पादित कर सके । A, B, C, बिन्दुओं को मिलाने से विस्तार पथ OP प्राप्त होता है । विस्तार पथ OP से स्पष्ट है कि Q1 मात्रा उत्पादित करने की न्यूनतम लागत TC1 है Q2 मात्रा उत्पादित करने की लागत TC2 है व Q3 मात्रा उत्पादित करने की न्यूनतम लागत TC3 है । रेखाचित्र 11.11(ब) भाग में कुल लागत मात्राओं TC1, TC2, TC3 को तत्सम्बन्धित उत्पादन मात्राओं के विरूद्ध अंकित करने पर हमें कुल लागत वक्र LTC प्राप्त होता है ।

11.4 आगम की अवधारणा एवं आगम वक्र

'आगम' शब्द से अभिप्राय किसी फर्म द्वारा एक वस्तु की निश्चित मात्रा को बेचने से होने वाली आय से है । आगम से अवधारणा का संबंध कुल आगम, औसत आगम तथा सीमांत आगम से है।

कुल आय या आगम (Total-Revenue) -एम फर्म द्वारा अपनी वस्तु की समस्त इकाइयाँ बेचने से जो राशि प्राप्त होती है उसे कुल आगम कहते है । वस्तु की बेची जाने वाली कुल इकाइयों को उसकी प्रति इकाई कीमत से गुणा करने पर कुल आगम प्राप्त होता है ।

TR = P x Q

TR - कुल आगम

P - प्रति इकाई कीमत व Q- वस्तु की मात्रा

औसत आगम (Average Revenue) - औसत आगम से अभिप्राय वस्तु की प्रति इकाई आगम से हैं । कुल आगम को वस्तु की बेची गयी मात्रा से भाग देने पर औसत आगम प्राप्त होता है ।

A R= TR/Q = PQ/Q = P A R - औसत आगम

सीमान्त आगम (Marginal Revenue) - उत्पादन की एक अतिरिक्त इकाई बेचने से कुल आगम में जो वृद्धि होती हैं उसे फर्म की सीमान्त आय कहते हैं । दूसरे शब्दों में, सीमान्त आगम वस्तु की अन्तिम इकाई को बेचने से होने वाली आय है ।

बोध प्रश्न - 2

(i) अवसर लागत वक्र की व्याख्या कीजिए ।

(ii) आपात्कालीन लागत वक्र के बारें में समझाइए

(iii) दीर्घकालीन लागत वक्र की विवेचना कीजिए ।

$MR = TR_n - TR_{n-1}$ MR - सीमान्त आगम

TR_n वस्तु की n इकाइयों को बेचने से प्राप्त आगम

R_{n-1} वस्तु की n- 1 इकाइयों को बेचने से प्राप्त आगम

औसत आगम के संबंध में यह उल्लेखनीय है कि सामान्यतया विक्रेता वस्तु की समस्त इकाइयाँ एक ही कीमत पर बेचता है इसलिए वस्तु की कीमत व औसत आगम समान होंगे । उस परिस्थिति में कीमत व औसत आगम अलग-अलग होंगे जब विक्रेता वस्तु की विभिन्न इकाइयों को भिन्न-भिन्न कीमत पर बेचता है या विक्रेता कीमत विभेदीकरण कर रहा होता है ।

औसत आगम वक्र वास्तव में उपभोक्ता का मांग वक्र होता है क्योंकि मांग वक्र वस्तु की विभिन्न कीमतों पर क्रेताओं द्वारा खरीदी गयी मात्रा को बताता है इसलिए यह औसत आय या कीमत को प्रकट करता है ।

अब हम पूर्ण प्रतियोगिता एवं अपूर्ण प्रतियोगिता वाले बाजारों के लिए आगम वक्रों का अलग-अलग अध्ययन करेंगे ।

11.4.1 पूर्ण प्रतियोगिता की दशा में औसत आगम वक्र, सीमान्त आगम वक्र तथा कुल आगम वक्र

पूर्ण प्रतियोगिता की दशा से यह अभिप्राय है कि उद्योग में फर्मो की संख्या इतनी अधिक है कि कोई एक फर्म उत्पादन -मात्रा संबंधी नीतियों और निर्णयों द्वारा वस्तु की कीमत को प्रभावित नहीं कर सकती, वरन् बाजार में उस वस्तु की जो कीमत प्रचलित है उस पर जितनी मात्रा चाहे बेच सकता है । अर्थात पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म उद्योग के कुल मांग व कुल पूर्ति वक्रों के साम्य द्वारा निर्धारित कीमत को ग्रहण करती है । ऐसी स्थिति में फर्म उस दी हुई कीमत पर जितनी चाहे उतनी मात्रा में वस्तु बेच सकती है । अत: फर्म का औसत आगम वक्र क्षितिज या X अक्ष के समानान्तर एक सरल रेखा द्वारा व्यक्त होगा । चूंकि प्रत्येक अतिरिक्त इकाई को बेचने से कीमत के बराबर समान आगम प्राप्त हो रहा है अत: सीमांत आगम और औसत आगम दोनों बराबर होंगे । औसत व सीमान्त के संबंध को एक तालिका द्वारा दर्शाते हैं -

तालिका 11.1

पूर्ण प्रतियोगता में कुल, औसत एवं सीमान्त आगम

बेची गई इकाइयों की संख्या	कुल आगम	औसत आगम/ कीमत	सीमांत आगम
1	20	20	20
2	40	20	20
3	60	20	20
4	80	20	20
5	100	20	20
6	120	20	20
7	140	20	20

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि अतिरिक्त इकाई से प्राप्त होने कल' अगम औसत कम के बराबर है ' इसे निम्न रेखाचित्र द्वारा दर्शाया जा सकता हैं -

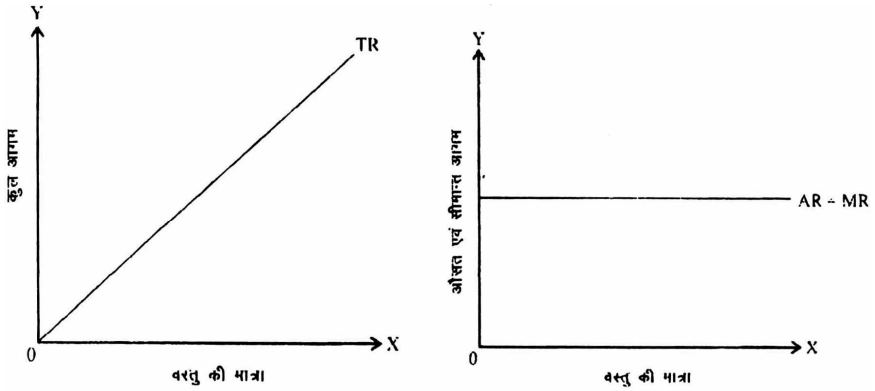

(अ) कुल आगम वक्र (ब) औसत एवं सीमान्त आगम वक्र

पूर्ण प्रतियोगता की स्थिति में आगम वक्र

रेखाचित्र - (अ) में फर्म का कुल आगम (TR) वक्र दिखाया है जो कि मूल बिन्दु से ऊपर उठती हुई सरल रेखा हैं जो विक्रय की गई मात्रा में वृद्धि होने पर आगम में समान वृद्धि को दर्शा रही है रेखाचित्र में -(ब) में औसत आगम वक्र तथा सीमान्त आगम वक्र दोनों ही एक ही रेखा जो X अक्ष के समांतर है , द्वारा दिखाये गए हैं क्योंकि पूर्ण प्रतियोगता में औसत आगम व सीमांत आगम दोनों ही वस्तु की कीमत के बराबर हैं एवं कीमत स्थिर हैं !

11.4.2 अपूर्ण प्रतियोगिता की दशा में कुल आगम वक्र औसत आगम वक्र तथा सीमांत आगम वक्र

अपूर्ण प्रतियोगिता की दशा में एक फर्म अपनी वस्तु की उतरोत्तर अधिक इकाइयाँ कीमत में कमी करके ही बेच सकता हैं । ऐसी स्थिति में वस्तु की बिक्री से प्राप्त कुल आगम औसत आगम व सीमान्त आगम को निम्न तालिका से दर्शाया जा सकता है ।

तालिका 11.2

अपूर्ण प्रतियोगिता में आगम

वस्तु की बेची गई मात्रा	कुल आगम	औसत आगम / कीमत	सीमांत आगम
1	20	20	20
2	18	36	16
3	16	48	12
4	14	56	8
5	12	60	4
6	10	60	0
7	8	54	-4

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि वस्तु की बेची गयी मात्रा में वृद्धि होने पर कुल आगम बढ़ रहा है परन्तु उसके बढ़ने की दर घटती हुई है । क्योंकि प्रत्येक अतिरिक्त इकाई को बेचने से प्राप्त सीमान्त आगम घटता जा रहा है । औसत आगम भी कम हो रहा है जिसका कारण पूर्व में

स्पष्ट किया जा चुका है कि अधिक इकाइयों को बेचने के लिए कीमत में लगातार कमी करनी होगी । तालिका से यह भी स्पष्ट है कि बिक्री के प्रत्येक स्तर पर औसत आगम की अपेक्षा सीमान्त आगम कम है एवं सीमान्त आगम में कमी की दर औसत आगम की अपेक्षा अधिक है । अपूर्ण प्रतियोगिता की दशा में आगम वक्र रेखाचित्र में दर्शाये अनुसार प्राप्त होंगे ।

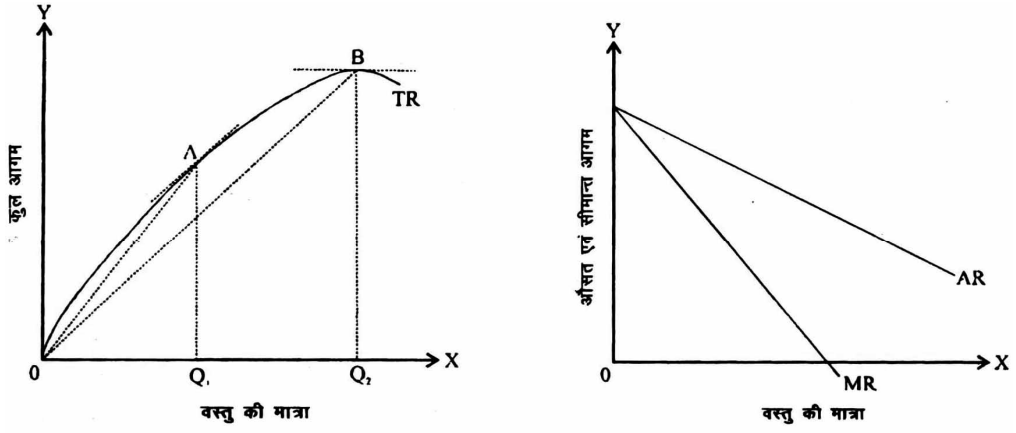

(अ) कुल आगम वक्र (ब) औसत आगम व सीमान्त आगम वक्र

रेखाचित्र 11.13

अपूर्ण प्रतियोगिता की दशा में आगम वक्र

रेखाचित्र 11.3 (अ) कुल आगम वक्र (TR) खीचा गया है जो वस्तु की बिक्री में वृद्धि होने पर बढ़ रहा है परन्तु घटती दर से । कुल आगम वक्र से औसत आगम वक्र तथा सीमान्त आगम वक्र की व्युत्पति उसी प्रकार की जा सकती है जैसे कि कुल लागत वक्र से औसत एवं सीमान्त लागत वक्रो की व्युत्पति की थी । आगम वक्र के किसी बिन्दु से मूल बिन्दू को मिलाने वाली रेखा का ढाल औसत आगम बताता है । रेखाचित्र 11.13 (अ) में OQ_1 मात्रा उत्पादित करने पर औसत आगम A बिन्दु से खींची गई रेखा OA के ढाल $\frac{OA}{OQ_1}$ के बराबर हैं । इसी तरह

OQ2 मात्रा पर औसत आगम OB रेखा के ढाल $\frac{OB}{OQ_1}$ बराबर है । रेखा OB का ढाल OA की तुलना में कम है अर्थात OQ_1 से बिक्री OQ_2 करने पर औसत आगम घट गया है ।

सीमान्त आगम कुल आगम वक्र के किसी बिन्दु पर खींची गई स्पर्श रेखा के ढाल के बराबर होता है । OQ_1 वस्तु की मात्रा के अनुरूप कुल आगम वक्र बिन्दु A पर सीमान्त आय खींची गई स्पर्श रेखा के ढाल के बराबर है । इसी प्रकार वस्तु की मात्रा OQ_2 के अनुरूप TR वक्र के B पर खींची गई स्पर्श रेखा का ढाल सीमान्त आगम को दर्शायेगा । बिन्दु B पर TR वक्र की ढाल शून्य है इसलिए वस्तु की OQ_2 मात्रा पर MR शून्य होगी । औसत आगम व सीमान्त आगम के व्यवहार को रेखाचित्र 11.13 (ब) में दर्शाया गया है । रेखाचित्र से स्पष्ट है कि जब औसत आगम वक्र नीचे को गिर रहा है तो सीमान्त आय वक्र उसके नीचे स्थित है एवं उसके गिरने की दर औसत आगम से अधिक है । OQ2 वस्तु की मात्रा के स्तर पर सीमान्त आगम शून्य है एवं कुल आगम अधिकतम है । इससे अधिक बिक्री पर सीमान्त आगम ऋणात्मक हो

जायेगा एवं कुल आगम गिरने लगेगा । औसत आगम वक्र एवं सीमान्त आगम वक्र के बीच संबंध में यह बात महत्वपूर्ण है कि जब औसत आगम वक्र एक सरल रेखा के रूप में नीचे गिरता हुआ हो तब सीमांत आगम वक्र, औसत आगम वक्र से Y- अक्ष की ओर आधी दूरी पर होगा । यदि औसत आगम वक्र उद्‌गम बिन्दु की ओर उत्तल हो तो सीमान्त आगम वक्र औसत वक्र से आधी से अधिक दूरी तथा अवतल होने की स्थिति में आध से कम दूरी पर स्थित होगा ।

11.5 सारांश

आर्थिक विश्लेषण में फर्म एवं उद्‌योग के उत्पादन एवं कीमत संबंधी निर्णयों में लागत एवं आगम संबंधी अवधारणाएँ एवं वक्र महत्वपूर्ण उपकरण सिद्ध हुए हैं । लागत एवं आगम वक्रों की सहायता से फर्म एवं उद्‌योग के साम्य की स्थिति का विश्लेषण किया जा सकता है । बाजार की विभिन्न परिस्थितियों में औसत आगम वक्र उत्पादक के लिए कीमत रेखा है एवं उसे औसत लागत वक्र से संबंधित कर फर्म के अतिरिक्त लाभ या सामान्य लाभ या घाटे की स्थिति के बारे में बताया जा सकता है । इसी प्रकार फर्म अपनी उत्पादन क्षमता के किस स्तर पर कार्य कर रही है यह भी लागत एवं आगम वक्रों से जाना जा सकता है । अत: फर्म एवं उद्‌योग के सन्तुलन के विश्लेषण से पूर्व आगम एवं लागत वक्रो का विस्तृत अध्ययन आवश्यक है ।

11.6 शब्दावली

मौद्रिक लागत, अव्यक्त या निहित लागत, स्पष्ट या विहित लागत, वास्तविक लागत, अवसर लागत, निजी लागत, सामाजिक लागत, लेखा लागत, आर्थिक लागत, कुल लागत, औसत लागत, सीमान्त लागत, स्थिर लागत, परिवर्तनशील लागत, अल्पकालीन लागत, दीर्घकालीन लागत, कुल लागत, औसत आगम, सीमान्त आगम ।

11.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दीजिये । (150 शब्दो में)

1. अवसर लागत की अवधारणा को उदाहरण सहित समझाइये ।
2. आर्थिक लागत एवं लेखा लागत में अन्तर स्पष्ट कीजिये ।
3. स्पष्ट लागत एवं अव्यक्त लागत में अन्तर को उदाहरण से स्पष्ट कीजिये ।
4. स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतों की व्याख्या कीजिए ।
5. औसत लागत वक्र के आकार की व्याख्या कीजिए ।
6. औसत लागत वक्र एवं सीमान्त लागत वक्र के बीच सम्बन्ध का विवेचन कीजिये ।
7. आगम की विभिन्न अवधारणाओं को समझाइये ।
8. लागत एवं आगम वक्रो के महत्व पर टिप्पणी लिखिये ।

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर विस्तार से दीजिये (500 शब्दों में)

1. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की प्रकृति की विवेचना कीजिये । दीर्घकालीन औसत लागत वक्र अल्पकालीन औसत लागत वक्र की अपेक्षा चपटा क्यों हैं?
2. पूर्ण एवं अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थितियों में औसत आगम एवं सीमान्त आगम के सम्बन्धों को रेखाचित्र की सहायता से स्पष्ट कीजिये ।

3. अल्पकालीन कुल लागत वक्र से औसत लागत एवं सीमान्त लागत की व्युत्पति को रेखाचित्र की सहायता से समझाइये ।
4. एक दिये हुए कुल आगम वक्र से आप औसत आगम एवं सीमान्त आगम वक्र कैसे खिचेंगे ।

11.8 संदर्भ - ग्रंथ

1. आहुजा, एच. एल. - उच्चतर आर्थिक सिद्धांत
2. झिंगन एम. एल. - व्यष्टि अर्थशास्त्र
3. सेठ एम. एल. - अर्थशास्त्र के सिद्धांत
4. सुन्दरम एवं वैश्य - व्यष्टि अर्थशास्त्र

इकाई - 12

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उत्पादन तथा कीमत का निर्धारण

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 पूर्ण प्रतियोगी बाजार

12.3 फर्म का साम्य या सन्तुलन

12.3.1 अल्पकाल में फर्म का सन्तुलन

12.3.2 फर्म का दीर्घकालीन सन्तुलन

12.4 उद्योग का सन्तुलन

12.4.1 उद्योग का अति अल्पकालीन सन्तुलन

12.4.2 उद्योग का अल्पकालीन सन्तुलन

12.4.3 उद्योग का दीर्घकालीन सन्तुलन

12.5 सारांश

12.6 शब्दावली

12.7 अभ्यासार्थ

12.8 संदर्भ ग्रंथ

12.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

- पूर्ण प्रतियोगी बाजार की विशेषताएँ समझ सकेंगे
- फर्म एवं उद्योग के सन्तुलन की दशाएँ जान सकेगे
- अल्पकाल एवं दीर्घकाल में फर्म का सन्तुलन कीमत एवं उत्पादन का निर्धारण कर सकेंगे
- अल्पकाल एवं दीर्घकाल में उद्योग के सन्तुलन के बारे में समझ सकेंगे
- अल्पकाल एवं दीर्घकालीन सन्तुलनों में अन्तर जान सकेंगे

12.1 प्रस्तावना

विभिन्न वस्तुओं के मूल्य तथा उत्पादन का निर्धारण, बाजार ढाँचे के उस रूप पर निर्भर करता है जिसमें वे उत्पादित किये जाते है, तथा बेचे जाते है । बाजार ढाँचे का निर्धारण निम्नलिखित तीन महत्वपूर्ण तत्वों पर निर्भर करता है -

(1) वस्तु को उत्पादित करने वाली फर्मो की संख्या

(2) वस्तु का प्रारूप अर्थात क्या वस्तुएँ समरूप हैं या विभेदीकृत

(3) नई फर्मो के प्रवेश की स्वतन्त्रता या प्रवेश पर कोई बन्धन या प्रतिबन्ध ।

उपर्युक्त आधार पर अर्थशास्त्री विभिन्न बाजार की दशाओं को (अ) पूर्ण प्रतियोगिता(ब) एकाधिकारिक प्रतियोगिता (स) अल्पाधिकार तथा (द) एकाधिकार में वर्गीकृत करते हैं । एकाधिकारिक प्रतियोगिता, अल्पाधिकार एवं एकाधिकार सामान्यता अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत समूहीकृत किये जाते हैं क्योंकि बाजार के ये तीन रूप प्रतियोगिता में अपूर्णता के अंशों के सम्बन्ध में भिन्न होते हैं । एकाधिकारिक प्रतियोगिता सबसे कम अपूर्ण तथा एकाधिकार सबसे अधिक अपूर्ण बाजार ढाँचे का रूप है ।

12.2 पूर्ण प्रतियोगी बाजार

एक बाजार को हम उस स्थिति में पूर्ण प्रतियोगी बाजार कहेंगे जब निम्नलिखित शर्तें पूरी होती हों -

(1) क्रेताओं और विक्रेताओं की अधिक संख्या

पूर्ण प्रतियोगी बाजार में क्रेता एवं विक्रेता बहुत अधिक संख्या में होते हैं । क्रेताओं एवं विक्रेताओं की अधिक संख्या सें यह अभिप्राय है कि सम्पूर्ण बाजार की तुलना में एक क्रेता जितनी मात्रा में वस्तु खरीदता है या एक विक्रेता जितनी मात्रा में बेचता है वो इतनी कम है कि उनकी क्रियाएँ बाजार को प्रभावित नहीं करती । दूसरे शब्दों में, कोई भी एक क्रेता अथवा विक्रेता इतना शक्तिशाली नहीं होता कि वो बाजार को अपने हित में प्रभावित कर सके । वास्तविकता में पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत वस्तु की बाजार कीमत सभी क्रेताओं और विक्रेताओं की संयुक्त क्रियाओं द्वारा निर्धारित होती है । एक बार बाजार द्वारा कीमत निर्धारित हो जाने पर प्रत्येक विक्रेता उसे स्वीकार कर उत्पादन की मात्रा को उसके अनुसार समायोजित करता है । अर्थात् पूर्ण प्रतियोगी बाजार में उद्योग द्वारा तय होती है जिसे व्यक्तिगत फर्म स्वीकार करती है ।

(2) समरूप वस्तुएँ

पूर्ण प्रतियोगी बाजार में विभिन्न विक्रेताओं या फर्मो द्वारा बेची जाने वाली वस्तुएँ समरूप होती है ।अर्थात् विभिन्न फर्मो द्वारा बेची जाने वाली वस्तुएँ क्रेताओं की दृष्टि में एक दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न होती है । ऐसी स्थिति में वस्तुओं की प्रतिलोच (Cross Elasticity) अनन्त होती है । वस्तुओं के समरूप होने की मान्यता से यह स्पष्ट है कि क्रेतागणों की किसी फर्म विशेष द्वारा उत्पादित वस्तु के प्रति कोई लगाव नहीं होता । अत: कोई भी विक्रेता प्रचलित बाजार कीमत से तनिक भी अधिक कीमत नहीं ले सकता । यदि वह ऐसा करता है तो सभी क्रेता या ग्राहक उसे छोड़ जायेंगे । परिणामत: बाजार में कीमत अन्तर नहीं पाये जाते ।

(3) फर्मो का निर्बाध प्रवेश एवं बर्हिगमन

पूर्ण प्रतियोगी बाजार के अन्तर्गत फर्मो को उद्योग में प्रविष्ट होने अथवा बाहर निकलने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है । यह मान्यता दीर्घकाल में लागू होती है क्योंकि अल्पकाल में न तो फर्मे अपने सयन्त्र का आकार बदल सकती है और न ही नई फर्मे प्रवेश कर सकती है और न पुरानी फर्मे उसको छोड़ सकती है । यदि अल्पकाल में फर्मे सामान्य लाभ से अधिक लाभ अर्जित कर रही हैं तो दीर्घकाल में उस उद्योग में नई फर्मे आकृष्ट होगी और इस प्रकार असामान्य लाभो को समाप्त कर देगी । इसी प्रकार यदि फर्मे हानि उठा रही है तो दीर्घकाल में

वे बाजार छोड़ देगी । जिसके परिणामस्वरूप वस्तु की पूर्ति में कमी होगी व कीमत बढ़ जायेगी । अत: जो फर्म उद्योग में बच जायेंगी वे सामान्य लाभ अर्जित करेगी ।

(4) बाजार परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान

पूर्ण प्रतियोगी बाजार में क्रेताओं तथा विक्रेताओं में निकट का सम्पर्क होता है अतएव उन्हें उन कीमतों का पूर्ण ज्ञान होता है जिन पर वस्तुएँ खरीदी या बेची जा रही है । उन्हें उस स्थान का भी पूरा ज्ञान होता है जहाँ वस्तुओं का क्रय-विक्रय हो रहा है । बाजार परिस्थितियों का ऐसा ज्ञान विक्रेता को अपनी वस्तु बाजार में प्रचलित कीमत पर बेचने एवं क्रेता को उसे उस कीमत पर खरीदने को विवश करता है । पूर्ण प्रतियोगी बाजार में बाजार परिस्थितियों के पूर्ण ज्ञान की मान्यता से यह भी स्पष्ट होता है कि वस्तु के बारे में जानने योग्य बातों की क्रेताओं को पूर्ण जानकारी होने से फर्मो को विज्ञापन एवं प्रचार पर व्यय करने की आवश्यकता नहीं रहती ।

उपर्युक्त महत्वपूर्ण मान्यताओं के साथ यह भी माना जाता है कि सरकार या किसी अन्य एजेंसी की ओर वस्तुओं की मांग या पूर्ति या कीमत को नियंत्रित करने का कोई प्रयास नहीं होता । सभी फर्मे अपने लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य से कार्य करती हैं । वस्तुएँ एवं साधन पूर्ण रूप से गतिशील होते हैं तथा परिवहन लागत अनुपस्थित होती है ।

पूर्ण प्रतियोगिता एवं शुद्ध प्रतियोगिता में अन्तर

कुछ अर्थशास्त्री, जैसे कि प्रो. चेम्बरलिन पूर्ण प्रतियोगिता एवं शुद्ध प्रतियोगिता में अन्तर करते हैं । उनके अनुसार शुद्ध प्रतियोगिता उस प्रतियोगिता को व्यक्त करती है जिसमें एकाधिकार का कोंई अंश उपस्थित न हो । अर्थात् एकाधिकार का अभाव या अनुपस्थिति शुद्ध प्रतियोगिता कहलाती है । इसके विपरीत पूर्ण प्रतियोगिता एक व्यापक धारणा है जिसमें केवल एकाधिकार की अनुपस्थिति ही नहीं बल्कि कई अन्य प्रकार की शुद्धताएं पायी जाती हैं । ये अन्य शुद्धताएँ हैं - साधनों की पूर्ण गतिशीलता एवं विक्रेताओं एवं क्रेताओं को भविष्य के बारे में पूर्ण ज्ञान होना ।

यद्यपि वास्तविक जगत में पूर्ण प्रतियोगिता की शर्ते पूरी नहीं होती, फिर भी पूर्ण प्रतियोगिता का अध्ययन से अर्थव्यवस्था के कार्यकरण को समझने में सहायता मिलती है, जहाँ प्रतियोगी व्यवहार से संसाधनों का श्रेष्ठतम आवंटन एवं उत्पादन का दक्षतम संगठन होता है ।

बोध प्रश्न - 1

(i) पूर्ण प्रतियोगी बाजार की शर्ते बताइए

(ii) पूर्णप्रतियोगी एवं शुद्ध प्रतियोगिता में अन्तर बताइए

12.3 फर्म का साम्य या सन्तुलन

फर्म के साम्य या सन्तुलन से अभिप्राय कीमत व उत्पादन मात्रा के उस स्तर का निर्धारण से है जिस पर उसका लाभ अधिकतम होता है । यह वह स्थिति है जिसमें फर्म कोई परिवर्तन नहीं करना चाहेगी । जैसा कि बताया जा चुका है, पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म का वस्तु की कीमत पर कोई नियन्त्रण नहीं होता और उसे बाजार में प्रचलित कीमत को ही स्वीकार करते हुए उत्पादन मात्रा का निर्धारण करना होता है । यद्यपि एक दी हुई कीमत पर फर्म वस्तु की जितनी मात्रा चाहे बेच सकती है परन्तु प्रत्येक फर्म वस्तु की केवल उतनी ही मात्रा का उत्पादन कर बिक्री करेगी जिस पर उसका कुल लाभ अधिकतम हो ।

फर्म के सन्तुलन की मान्यताएँ

पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म के सन्तुलन की व्याख्या करते समय हमारी दो मान्यताएँ होंगी-

(1) प्रत्येक फर्म अपने मौद्रिक लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करती है ।

(2) सभी फर्मो की उत्पादन लागत समान है जिसका अर्थ यह है कि फर्मो द्वारा प्रयोग किये जाने वाले उत्पत्ति के साधन समान रूप से कार्यकुशल हैं ।

12.3.1 कुल आगम वक्र तथा कुल लागत वक्र द्वारा फर्म का सन्तुलन -

इस रीति के अनुसार उत्पादन की जिस मात्रा पर फर्म की कुल आय (TR) एवं उसकी कुल लागत (TC) के बीच सर्वाधिक अन्तर होता है, उस बिन्दु पर फर्म का लाभ अधिकतम होगा एवं फर्म सन्तुलन की अवस्था में होगी । इसे रेखाचित्र 12.1 में स्पष्ट किया गया हैं ।

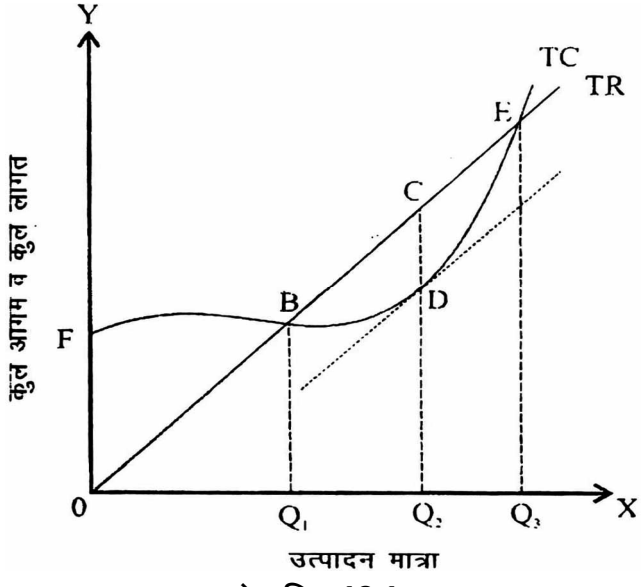

रेखाचित्र 12.1

कुल लागत व कुल आगम वक्रों द्वारा फर्म का सन्तुलन

उपर्युक्त रेखाचित्र में TR कुल आगम वक्र है जो मूल बिन्दु से सरल रेखा की आकृति का होता है। वस्तु की कीमत TR वक्र के ढाल के बराबर होती है । TC कुल लागत वक्र है जो मूल बिन्दु से ऊपर F से आरम्भ हो रहा है जिसका अभिप्राय: यह है कि OF कुल स्थिर लागतें हैं । TC वक्र आरम्भ में घटती दर से बढ़ रहा है और एक बिन्दु के पश्चात् बढ़ती हुई दर से बढ़ रहा है (इसके बारे में विस्तार से इकाई - 11 में बताया जा चुका है ।)

वस्तु के विभिन्न उत्पादन स्तरों पर अर्जित कुल लाभ को कुल आगम वक्र (TR) तथा कुल लागत वक्र (TC) में लम्बात्मक अन्तर द्वारा मापा जा सकता है । रेखाचित्र से स्पष्ट है कि OQ1 उत्पादन मात्रा तक कुल लागत वक्र TC कुल आगम वक्र TR के ऊपर है जिसका अर्थ है कि OQ1 मात्रा से कम उत्पादन पर फर्म को हानि उठानी पड़ेगी । OQ1 उत्पादन मात्रा पर कुल आगम एवं कुल लागत दोनों आपस में बराबर है अत: ये बिन्दु शून्य लाभ एवं शून्य हानि की स्थिति अर्थात् बिन्दु B समस्थिति बिन्दु (Break even Point) हैं ।

जब फर्म OQ1 से अधिक उत्पादन करती है तो कुल आगम, कुल लागत से अधिक होता है । कुल आगम व कुल लागत का अन्तर, उत्पादन मात्रा OQ2 तब बढ़ता है एवं इसके बाद पुन: कम होने लगता है अर्थात् फर्म के लाभ कम होने लगते हैं एवं OQ3 उत्पादन मात्रा पर पुन: लाभ शून्य हो जाते हैं । OQ3 से अधिक उत्पादन पर फर्म को पुन: हानि उठानी पड़ेगी । अत: स्पष्ट है कि OQ2 उत्पादन स्तर जिस पर TR एवं TC वक्रों के बीच लम्बात्मक अन्तर सबसे अधिक है, फर्म अधिकतम लाभ अर्जित करेगी एवं साम्य की स्थिति में होगी ।

(2) सीमान्त तथा औसत वक्रों की रीति

इस रीति के अनुसार फर्म का साम्य उस उत्पादन मात्रा पर होता है जहाँ उसकी सीमान्त लागत (MC) सीमान्त लागत (MC) सीमान्त आगम (MR) के बराबर होती है तथा सीमान्त लागत वक्र (MC) सीमान्त आगम वक्र के नीचे से काटते हुए ऊपर उठ रहा हो । उत्पादन के इस स्तर पर फर्म का लाभ अधिकतम होगा ।

जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका हैं पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म को उद्योग द्वारा निर्धारित कीमत स्वीकार कर उत्पादन मात्रा का समायोजन करना पड़ता है । पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म का मांग वक्र अथवा औसत आगम वक्र एक आगम या कीमत के बराबर होता है क्योंकि उत्पादन की सभी इकाइयाँ एक समान कीमत पर बेची जा सकती हैं ।

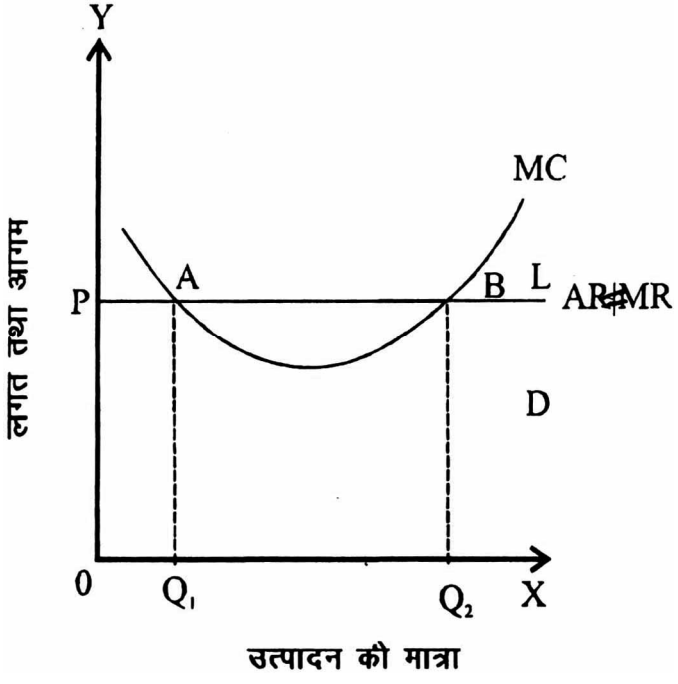

रेखाचित्र 12.2

फर्म का अल्पकालीन सन्तुलन

चलित कीमत OP है । PL रेखा फर्म का मांग वक्र अथवा सीमान्त आगम एवं औसत आगम वक्र अथवा सीमान्त आगम एवं औसत आगम वक्र है । रेखाचित्र 12.2 में MC वक्र, MR वक्र को A तथा B दो बिन्दुओं पर काटता है । बिन्दु A पर यद्यपि MC =MR है परन्तु फर्म इस पर सन्तुलन में नहीं होगी क्योंकि बिन्दु A से आगे उत्पादन बढ़ाने पर फर्म की सीमान्त लागत

सीमान्त आय (आगम) से कम है अर्थात् फर्म उत्पादन बढ़ाकर अपने लाभ को बढ़ा सकती है । बिन्दु B पर अर्थात् OQ2 उत्पादन स्तर पर फर्म सन्तुलन में मानी जायेगी क्योंकि इस बिन्दु पर MC = MR है एवं MC वक्र MR वक्र को नीचे से काटते हुए ऊपर उठ रहा है अर्थात इस बिन्दु से आगे उत्पादन बढ़ाने पर फर्म की लागत उसके आगम से अधिक हो जायेगी फलस्वरूप फर्मे को हानि होगी । साम्य की स्थिति में फर्म को लाभ हो रहा हैं या हानि, यह जानने के लिये हमें औसत लागत वक्र पर भी ध्यान देना होगा । चूंकि अल्पकाल में इतना समय नहीं होता कि मांग के अनुसार पूर्ति को समायोजित किया जा सके, इसलिए अल्पकाल में सन्तुलन की स्थिति में फर्म को असामान्य लाभ, सामान्य लाभ या हानि, तीनों में से किसी भी स्थिति का सामना करना पड़ सकता है । इन तीनों दशाओं को निम्न रेखा चित्र की सहायता से समझा जा सकता है -

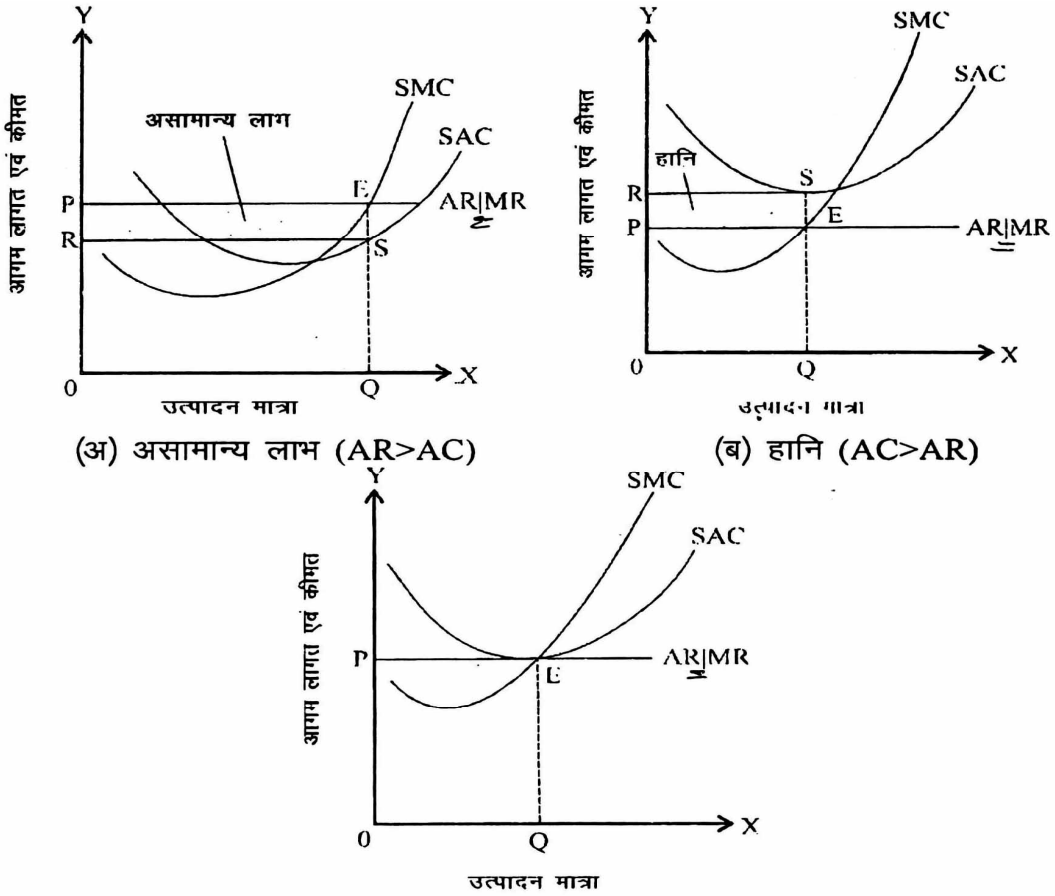

रेखाचित्र 12.3

अल्पकाल में फर्म का सन्तुलन एवं लाम-हानि की स्थिति

रेखाचित्र 12.3 के तीनों चित्रों में फर्म का सन्तुलन E बिन्दु पर दिखाया गया है जहाँ MR= MC हैं एवं MC वक्र MR वक्र को नीचे से काट रहा हैं । इन तीनों चित्रों में अल्पकालीन लागत वक्र भी दिखाया हैं, जिसकी स्थिति में अन्तर के कारण ही फर्म असामान्य लाभ, हानि

अथवा सामान्य लाभ अर्जित कर रही होती है । तीनों ही स्थितियों में कीमत OP है लेकिन प्रति इकाई लागत में अन्तर है । रेखाचित्र 12.3 (अ) में सन्तुलन बिन्दु E पर फर्म OQ मात्रा का उत्पादन कर रही है । इस उत्पादन स्तर पर औसत लागत SQ है । जो कीमत से कम है । इस उत्पादन को (OP) कीमत ((=EQ) पर बेचने से प्रति इकाई ES के बराबर असामान्य लाभ प्राप्त होता है एवं कुल असामान्य लाभ ExRS(RS=OQ))अर्थात PRES क्षेत्र के बराबर होगा । रेखाचित्र 12.3 (ब) में संतुलन बिन्दु E व OQउत्पादन की प्रति इकाई लागत SQ है जो कीमत या प्रति इकाई आगम (EQ(=OP)से अधिक है अत: फर्म को प्रति इकाई SE का नुकसान हो रहा हैं एवं कुल नुकसान PRSE के बराबर होगा । रेखाचित्र 12.3(स) में OQ उत्पादन स्तर पर औसत आगम औसत लागत के बराबर है, अत: फर्म सामान्य लाभ अर्जित कर रही हैं ।

फर्म किस सीमा तक हानि वहन कर उत्पादन जारी रखेगी ?

इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये हमें लागतों के स्थिर एवं परिवर्तनशील भागों को ध्यान में रखना होगा । जैसाकि पूर्व में बताया जा चुका है, स्थिर लागतों का उत्पादन की मात्रा से कोई सम्बन्ध नहीं होता अर्थात् उत्पादन शून्य होने पर भी फर्म को स्थिर लागत वहन करनी पड़ती है । परिवर्तनशील लागत में उत्पादन की मात्रा के साथ परिवर्तन होता है एवं उत्पादन के शून्य होने पर यह भी शून्य हो जाती है । लागतों के इस व्यवहार को ध्यान में रखते हुए हम अपने प्रश्न पर विचार करतें है । अल्पकाल में जब फर्म को हानि हो रही होती है तो फर्म अपने नुकसान को न्यूनतम रखने का प्रयास करेगी । अब यदि हम यह सोचें कि फर्म हानि की स्थिति में अपने उत्पादन को बंद करने का निर्णय करती है तो उस स्थिति मे परिवर्तनशील लागत तो शून्य हो जायेगी परन्तु स्थिर लागत तो फर्म को वहन करनी पड़ेगी अर्थात् फर्म का नुकसान स्थिर लागत के बराबर होगा । यदि फर्म उत्पादन जारी रखने का निर्णय करती है एवं उत्पादन को बेचने से होने वाली औसत आय औसत परिवर्तनशील लागत से अधिक है तो फर्म न केवल परिवर्तनशील लागत को पूरा कर रही है बल्कि स्थिर लागत के कुछ भाग को भी पूरा कर रही हैं । फलस्वरूप उसकी कुल हानि घटकर कुल हानि घटकर कुल स्थिर लागतों से कम हो जायेगी । इसलिए एक फर्म के लिए यह उचित होगा कि अल्पकाल में वह अपना उत्पादन तब तक जारी रखे जब तक कि उसे परिवर्तनशील लागतों से अधिक आय प्राप्त हो रही हैं, भले ही कुल मिलाकर उसे हानि हो रही हो । यदि वस्तु की कीमत इतनी कम हो जाये कि फर्म की औसत परिवर्तनशील लागत भी पूरी न होती हो तो फर्म की औसत परिवर्तनशील लागत भी पूरी न होती हो तो फर्म को अपना उत्पादन बन्द कर देना चाहिये क्योंकि ऐसी स्थिति में स्थिर लागत के साथ-साथ परिवर्तनशील लागत के कुछ भाग की पूर्ति भी नहीं हो रही है परिणाम स्वरूप फर्म की कुल हानि और भी अधिक हो जायेगी । संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि उत्पादन को जारी रखने की आवश्यक शर्त यह है कि -फर्म की कम से कम परिवर्तनशील लागत अवश्य पूरी हों । इस तथ्य को निम्न रेखाचित्र से स्पष्ट किया जा सकता है ।

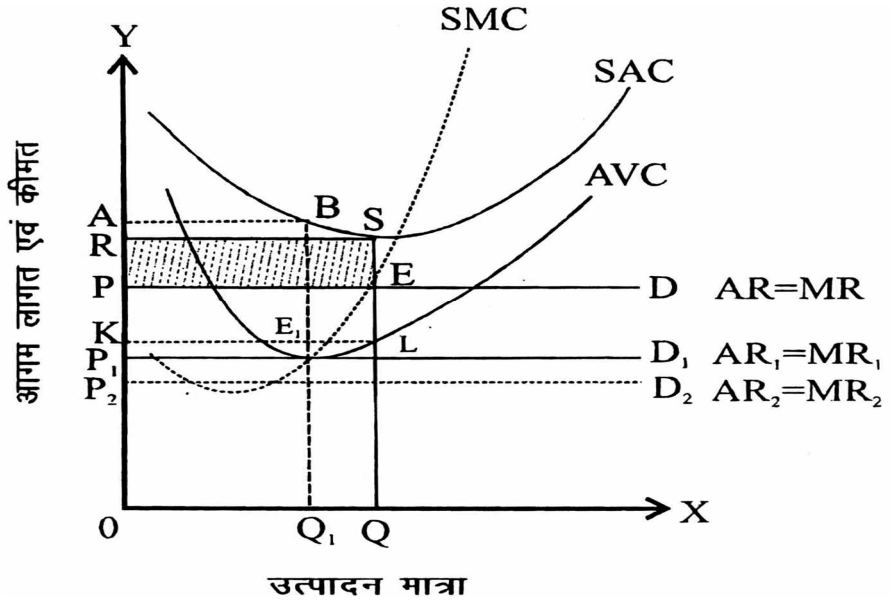

रेखाचित्र 12.4

पूर्ण प्रतियोगी फर्म के लिए उत्पादन बंद करने का बिन्दु

प्रारम्भ में फर्म का सन्तुलन E बिन्दु पर हैं जहाँ MC=MR हैं एवं इस बिन्दु पर OQ उत्पादन मात्रा तथा OP कीमत हैं । इस बिन्दु पर चूंकि प्रति इकाई OP कीमत, प्रति इकाई लागत OR से कम है इसलिए फर्म को PRSE क्षेत्रफल के बराबर हानि हो रही है । इस स्थिति में भी फर्म को उत्पादन जारी रखना चाहिये क्योंकि OP कीमत औसत परिवर्तनशील लागत OK से अधिक है । ऐसी स्थिति में फर्म अपनी कुल परिवर्तनशील लागत OKLQ के साथ स्थिर लागत के KE:EP भाग को पूरा कर रही है ।

अब माना कि नया मांग वक्र नीचे खिसक कर P1D1 हो जाता है, जिससे फर्म का सन्तुलन E1 बिन्दु पर होगा जिस पर कीमत OP1 तथा उत्पादन OQ1 है । इस बिन्दु पर कीमत OP1 केवल परिवर्तनशील लागतों को पुरा कर रही है अर्थात् फर्म की कुल हानि स्थिर लागत, जो P1 ABE, क्षेत्रफल के बराबर है, के बराबर होगी । इस स्थिति में फर्म उत्पादन जारी रखने या बंद करने के प्रति उदासीन होगी क्योंकि दोनों ही स्थितियों में उसे कुल स्थिर लागत के बराबर हानि हो रही है । अब यदि बाजार में वस्तु की कीमत निम्नतम औसत परिवर्तनशील लागत से भी घटकर OP2 हो जाये तो फर्म को उत्पादन तुरन्त बन्द कर देना चाहिये क्योंकि इस कीमत पर समस्त परिवर्तनशील लागत भी पूरी नहीं हो रही हैं । इस दृष्टि से E1 बिन्दु को उत्पादन बन्द होने का बिन्दु (Shut down point) कहेंगे तथा OP1 को उत्पादन बन्द करने की कीमत (Shout down price) कहेंगे ।

12.3.2 फर्म का दीर्घकालीन सन्तुलन

दीर्घकाल इतनी लम्बी समय अवधि होती है कि फर्म अपने सभी साधनों में परिवर्तन कर सकती है अर्थात् मांग के अनुरूप उत्पादन को घटाया -बढ़ाया जा सकता है । इसके अतिरिक्त दीर्घकाल में नई फर्म वर्तमान फर्मो की प्रतियोगिता में उस उद्योग में प्रवेश कर सकती है या - फर्मे उद्योग छोड़कर बाहर भी जा सकती है । दीर्घकाल में फर्म के सन्तुलन के अध्ययन में

औसत कुल लागत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि दीर्घकाल में सभी लागतें परिवर्तनशील होती है और कोई भी लागत स्थिर नहीं होती ।

दीर्घकाल में भी फर्म का उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना होता है अत: साम्य की शर्त यह है कि उसकी सीमान्त लागत उसकी सीमान्त आय अथवा कीमत के बराबर हो । चूंकि दीर्घकाल में सभी फर्मे सामान्य लाभ ही कमा सकती है अत: यह भी जरूरी है कि वस्तु की कीमत औसत लागत के बराबर हो । इसका कारण यह है कि यदि कीमत, औसत लागत से अधिक है तो फर्मो को सामान्य से अधिक लाभ प्राप्त होंगें । इन असामान्य लाभों से आकृष्ट होकर नयी फर्मो को सामान्य से अधिक लाभ प्राप्त होंगे । इन असामान्य लाभों से आकृष्ट होकर नयी फर्म उद्योग में प्रवेश करेंगी । उद्योग में नयी फर्मो के प्रवेश से वस्तु के उत्पादन एवं पूर्ति में वृद्धि होगी । वस्तु की पूर्ति में वृद्धि से वस्तु की कीमत गिर जायेगी । नयी फर्मो के प्रवेश से फर्म की उत्पादन लागत में भी वृद्धि होगी क्योंकि उत्पादन के साधनों के लिए प्रतियोगिता बढ़ जाने से उनकी कीमतें बढ़ जायेगी । इस प्रकार उद्योग में नयी फर्मो के प्रवेश से एक तरफ वस्तु की कीमत में कमी होती है तो दूसरी तरफ वस्तु की उत्पादन लागत में वृद्धि होती है । नयी फर्मे उद्योग में तब प्रवेश करेगी जब तक कि कीमत औसत लागत के बराबर नहीं हो जाती एवं असामान्य लाभ समाप्त नहीं हो जाते ।

इसके विपरीत यदि वस्तु की कीमत, औसत लागत से कम है तो फर्मो को हानि होगी एवं इन हानियों के कारण कुछ फर्मे उद्योग छोड़ देगी । परिणामस्वरूप वस्तु के उत्पादन में कमी से उसकी कीमत बढ़ जायेगी । साथ ही, कुछ फर्मो के उद्योग छोड़ देने से साधनों की मांग कम हो जायेगी जिससे उनकी कीमतें घट जाएगी । फर्मे उद्योग को छोड़ती रहेंगी जब तब की कीमत औसत लागत के बराबर नहीं हो जाती और उद्योग में रह गई फर्मे केवल सामान्य लाभ नहीं कमा रही होती । अत: दीर्घकाल में सन्तुलन की स्थिति में -

AR = MR = MC = AC = price

दीर्घकाल में फर्म के सन्तुलन को रेखाचित्र 12.5 में दर्शाया जाता है । चित्र से स्पष्ट है कि सन्तुलन की स्थिति 'E' में फर्म OQ मात्रा का उत्पादन करती है तथा OP कीमत पर बेचती हैं । फर्म का साम्य OP कीमत से कम या अधिक किसी भी अन्य बिन्दु पर नहीं हो सकता क्योंकि इसी बिन्दु पर सन्तुलन की ऊपर वर्णित शर्त पूरी होती हैं । (174)

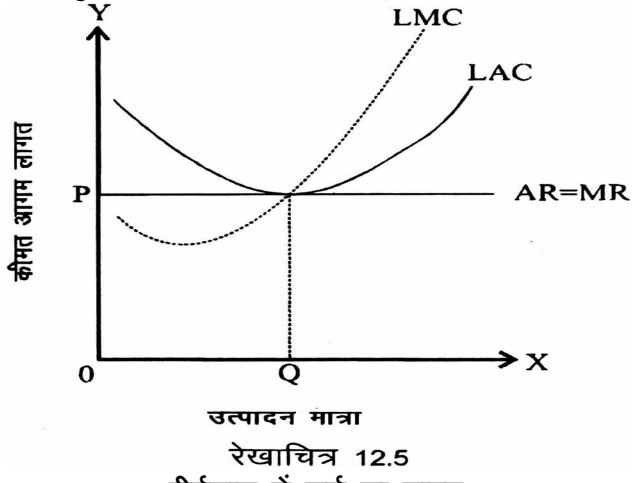

रेखाचित्र 12.5

दीर्घकाल में फर्म का साम्य

चित्र से यह भी स्पष्ट है कि सन्तुलन के बिन्दु पर AR व MR वक्र LAC वक्र को न्यूनतम पर स्पर्श कर रहे हैं व MC वक्र भी LAC के न्यूनतम पर काट रहा है, अत: कीमत औसत लागत के बराबर है एवं फर्म सामान्य लाभ प्राप्त कर रही है ।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि फर्म द्वारा दीर्घकालीन औसत लागत वक्र के निम्नतम बिन्दु पर उत्पादन करना इस बात का द्योतक है कि फर्म इष्टतम आकार (Optimum size) की है एवं न्यूनतम सम्भव औसत लागत पर उत्पादन कर रही है । फर्म के इष्टतम आकार पर उत्पादन करने से संसाधनों का अधिकतम कुशल प्रयोग सुनिश्चित होता है एवं उपभोक्ताओं को निम्नतम सम्भव कीमत पर वस्तु प्राप्त होती है ।

बोध प्रश्न - 2

(i) आयात में फर्म के संतुलन की व्याख्या कीजिए ।

(ii) फर्म किस सीमा तब हानि वहन करके उत्पादन जारी रख सकती हैं ? समझाइए

12.4 उद्योग का सन्तुलन

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उद्योग ऐसी फर्मो का समूह है जो केवल एक ही वस्तु का उत्पादन करता है । उद्योग के सन्तुलन से अभिप्राय उस स्थिति से है जब उस उद्योग में वस्तु के कुल उत्पादन की मात्रा में घटने-बढ़ने की प्रवृत्ति न हो अर्थात उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की मांग मात्रा, उसके द्वारा की गई पूर्ति बराबर हो । जब वस्तु की मांग और पूर्ति की मात्राएँ समान नहीं होती, उद्योग द्वारा वस्तु के उत्पादन मात्रा में घटने'-बढ़ने की प्रवृत्ति होगी । यदि प्रचलित कीमत पर वस्तु की मांग उसकी पूर्ति से अधिक है तो उद्योग उस वस्तु का उत्पादन बढ़ाने को प्रेरित होगा । इसके विपरीत प्रचलित कीमत पर मांग के पूर्ति से कम होने पर उद्योग उस वस्तु का उत्पादन घटाने के लिए प्रेरित होगा । अत: यह कहा जा सकता है कि वस्तु की जिस मात्रा तथा कीमत पर उसका मांग वक्र एवं पूर्ति वक्र एक दूसरे को काटेंगे, उस उत्पादन मात्रा पर उद्योग का सन्तुलन होगा । यहाँ यह जानना भी महत्वपूर्ण होगा कि उद्योग की पूर्ति अथवा उत्पादन कैसे बदल सकता है । किसी उद्योग के उत्पादन में दो प्रकार से परिवर्तन हो सकता है-

(1) यदि उद्योग की वर्तमान फर्मे अपना-अपना उत्पादन बदल दें,

(2) यदि उस उद्योग में नई फर्मे प्रविष्ट हो जाये या वर्तमान फर्मे उसे उद्योग को छोड़ दें ।

अत: उद्योग की पूर्ति अथवा उत्पादन मात्रा तब स्थिर रहेगी जबकि उस उद्योग की सभी वर्तमान फर्मे सन्तुलन में हो अर्थात् अपनी उत्पादन मात्रा में बदलाव न करना चाहे तथा उस उद्योग में कोई भी नई फर्म प्रवेश न करे और न ही कोई फर्म उद्योग से बाहर हो । दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि उद्योग उस स्थित में सन्तुलन में होगा जब उस उद्योग की प्रत्येक फर्म सन्तुलन में हो एवं सामान्य लाभ अर्जित कर रही ही । उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि उद्योग के सन्तुलन के लिए निम्नलिखित तीन शर्त पूरी होनी चाहिये

(1) उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की मांग एवं पूर्ति मात्राएँ बराबर हों अर्थात् जहाँ मांग और पूर्ति वक्र एक दूसरे को काटते हों ।

(2) उद्योग द्वारा निर्धारित कीमत पर सभी फर्मे अपने व्यक्तिगत संतुलन की स्थिति (MR=MC = कीमत) में हो ।

(3) नई फर्मो के उद्योग में प्रवेश करने की तथा वर्तमान फर्मो की उद्योग से बाहर जाने की प्रवृत्ति न हो अर्थात् जब वर्तमान फर्मे केवल सामान्य लाभ ही आर्जेत कर रही हो ।

उद्योग के अल्पकाल में सन्तुलन के लिए पहली दो शर्ते तथा दीर्घकाल में सन्तुलन के लिये तीनों ही शर्तो का पूरा होना आवश्यक है । उद्योग के सन्तुलन की रेखाचित्रों द्वारा व्याख्या से पूर्व उसके मांग व पूर्ति वक्र के आकार के बारे में विवेचन करना उपयुक्त होगा ।

उद्योग का मांग वक्र

उद्योग के लिये किसी वस्तु की मांग, उपभोक्ताओं की व्यक्तिगत मांग का कुल योग अथवा उद्योग मे उपस्थित फर्मो की मांग का योग के बराबर होंगी । पूर्ण प्रतियोगिता में व्यक्तिगत फर्म का मांग वक्र एक सरल पड़ी रेखा होती है । परन्तु उद्योग का मांग वक्र बायें से दायें नीचे गिरता हुआ होता है, जिसका अर्थ यह है कि उद्योग अपनी वस्तु की अधिक मात्रा कम कीमत पर और ऊँची कीमत पर कम मात्रा बेच पाता है ।

उद्योग का पूर्ति वक्र

किसी वस्तु के लिए उद्योग का पूर्ति वक्र व्यक्तिगत फर्मो की पूर्ति का क्षैतिज योग होता है । अर्थात् सभी व्यक्तिगत फर्मो की पूर्ति को जोड़कर उद्योग की पूर्ति का पता लगाया जा सकता है । उद्योग का पूर्ति वक्र बायें से दायें ऊपर उठता हुआ घनात्मक ढाल वाला होता है जिसका अर्थ यह है कि ऊँची कीमत पर पूर्ति की मात्रा अधिक होगी और नीची कीमत पर पूर्ति की मात्रा कम होगी । अति अल्पकाल में उद्योग का पूर्ति वक्र एक खड़ी या उदग्र रेखा (Vertical line) होती है । इसका कारण यह है कि अति अल्पकाल इतनी कम समय अवधि है कि पूर्ति पूर्णतया बेलोचदार होती है ।

12.4.1 उद्योग का अति अल्पकालीन साम्य

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में उद्योग उस बिन्दु पर साम्य में होता है जहाँ उद्योग की पूर्ति उसकी मांग के बराबर होती हैं । अति अल्पकाल में वस्तु का पूर्ति वक्र SS एक खड़ी रेखा है एवं मांग वक्र DD बायें से दायें गिरता हुआ वक्र है । रेखाचित्र व 12.6 में वस्तु की मांग व पूर्ति वक्रों द्वारा कीमत उत्पादन सन्तुलन दिखाया गया है। वस्तु की प्रारम्भिक मांग DD द्वारा व्यक्त होने पर कीमत OP है । मांग के बढ़कर D_1 D_1 होने पर कीमत बढ़कर OP_1 हो जाती है तथा घटने पर D_2 D_2 होने पर कीमत कम होकर OP_2 हो जाती है ।

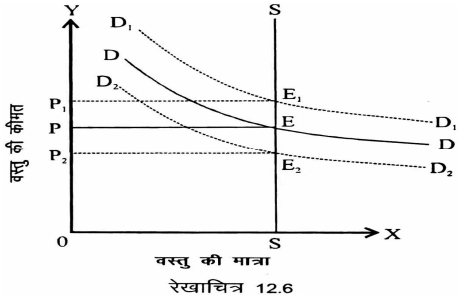

रेखाचित्र 12.6

उद्योग का अति अल्पकालीन साम्य

12.4.2 उद्योग का अल्पकालीन सन्तुलन

अल्पकाल में फर्मो की संख्या स्थिर होने के कारण उपस्थिति फर्मे ही अनेक उत्पादन में समायोजन करती हैं उद्योग के अल्पकाल में सन्तुलन के लिये भी यह आवश्यक है कि वस्तु की मांग एवं पूर्ति बराबर हो ।

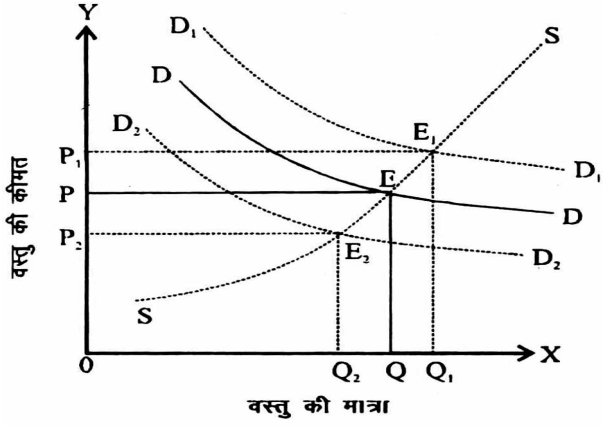

रेखाचित्र 12.7
अल्पकाल में उद्योग का साम्य

उपर्युक्त रेखाचित्र में DD प्रारम्भिक मांग वक्र है तथा SS उद्योग का कुल पूर्ति वक्र हैं जो एक-दूसरे को E बिन्दु पर काटते हैं । इस बिन्दु पर उद्योग में वस्तु का कुल उत्पादन OQ है एवं कीमत OP है । यदि मांग बढ़कर D1D1 से जाये तो उद्योग में उपस्थित फर्मे अपनी उत्पादन मात्रा में समायोजन करेंगी फलस्वरूप पूर्ति बढ़कर OQ1 तथा कीमत OP1 हो जायेगी । इसके विपरीत यदि वस्तु की मांग घटकर D2D2 हो जाये तो संतुलन E2 बिन्दु पर होगा जहाँ वस्तु की कीमत OP2 एवं पूर्ति OQ2 है अर्थात् मांग कम होने पर उपस्थित फर्मे अपने उत्पादन को कम कर देंगी ।

उद्योग के अल्पकालीन संतुलन में यद्यपि उसकी सभी वर्तमान फर्मे व्यक्तिगत रूप से सन्तुलन में होती है परन्तु वे असामान्य लाभ कमा सकती है अथवा उन्हें हानि उठानी पड़ सकती है । (जैसा कि फर्म अल्पकालीन संतुलन की विवेचना में बताया जा चुका है ।)

।2.4.3 उद्योग का दीर्घकालीन सन्तुलन

उद्योग के दीर्घकालीन साम्य की स्थिति में सभी फर्मे केवल सामान्य लाभ प्राप्त करती है अतएव फर्मो की संख्या अथवा उद्योग के आकार मे कोई परिवर्तन नहीं होता । दूसरे शब्दों मे, उद्योग की सभी फर्मे दीर्घकालीन साम्य की स्थिति में होती है ।

सामान्य रूप में एक उद्योग के दीर्घकालीन साम्य के लिये, साम्य कीमत पर उद्योग की कुल पूर्ति उसकी कुल मांग के बराबर होनी चाहिये । उद्योग के दीर्घकालीन साम्य को रेखाचित्र 12.8 में दर्शाया गया हैं ।

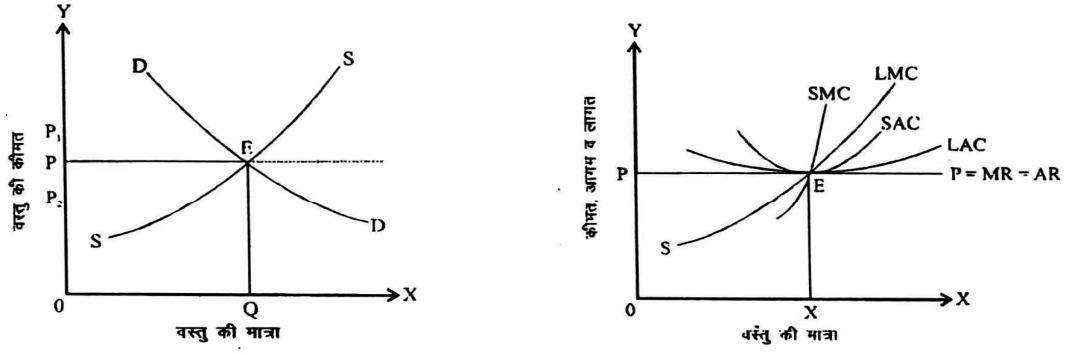

(अ) उद्योग की दीर्घकालीन सन्तुलन (ब) फर्म का दीर्घकालीन सन्तुलन

रेखाचित्र 12.7

उद्योग का दीर्घकालीन सन्तुलन

उपर्युक्त रेखाचित्र 12.8 के (अ) भाग में उद्योग के मांग व पूर्ति वक्र एक दूसरे को E बिन्दु पर काट रहे हैं तथा इस बिन्दु पर कीमत OP तथा उत्पादन OQ निर्धारित हो रहा है । उद्योग द्वारा निर्धारित कीमत OP पर फर्म भी दीर्घकालीन साम्य में है अर्थात् फर्म न्यूनतम लागत पर उत्पादन कर रही है एवं सामान्य लाभ अर्जित कर रही है जिसे रेखाचित्र के (ब) भाग में दिखाया गया है । फर्म OP कीमत पर OX मात्रा का उत्पादन कर रही है एवं उसके सन्तुलन की स्थिति में LMC = SMC = P = MR है ! यह बराबरता फर्म के अधिकतम लाभ को सुनिश्चित कर रही है । फर्म सामान्य लाभ कमा रही है क्योंकि LAC = SAC = P की शर्त भी E बिन्दु पर पूरी हो रही है ।

t c OP कीमत पर उद्योग में उपस्थित सभी फर्मे सन्तुलन में है एवं सामान्य लाभ कमा रही है अर्थात् फर्मो के प्रवेश या निकासी की कोई सम्भावना नहीं है । ऐसी स्थिति में उद्योग का पूर्ति वक्र स्थिर होगा एवं दिये हुए मांग वक्र DD के साथ OP कीमत दीर्घकालीन साम्य कीमत होगी।

चित्र से यह भी स्पष्ट है कि फर्म दीर्घकालीन व अल्पकालीन दोनों ही अवधियों की दृष्टि से सन्तुलन में है इसलिए उद्योग के दीर्घकालीन साम्य को पूर्ण साम्य कहते हैं ।

12.5 सारांश

पूर्ण प्रतियोगी बाजार की विशेषताओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि ये बाजार की आदर्श स्थिति हैं । वास्तविक बाजार की परिस्थितियाँ पूर्ण प्रतियोगिता से भिन्न होती हैं । फिर भी पूर्ण प्रतियोगी बाजार में फर्म एवं उद्योग के सन्तुलन का अध्ययन इसलिये महत्वपूर्ण है कि आदर्श स्थिति में कीमत एवं उत्पादन मात्रा के निर्धारण की प्रक्रिया की समझ के आधार पर हम वास्तविक जगत के अपूर्ण प्रतियोगी बाजार. की विभिन्न दशाओं में फर्म एवं उद्योग के सन्तुलन का विश्लेषण कर पायेंगे ।

12.6 शब्दावली

पूर्ण प्रतियोगिता समरूप वस्तुएँ, फर्म का साम्य, उद्योग का साम्य, सामान्य लाभ, असामान्य या आर्थिक लाभ ।

12.7 बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दीजिये (150 शब्दो में)

1. पूर्ण प्रतियोगी बाजार की विशेषताएँ बताइये ।
2. "पूर्ण प्रतिस्पर्द्धा की दशा में फर्म की समस्या केवल उत्पादन मात्रा निश्चित करता है ।" इस कथन की विवेचना कीजिये ।
3. पूर्ण प्रतियोगिता में एक उद्योग के साम्य की दशाओं को बताइये ।
4. पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म के साम्य की दशा को बताइये ।
5. पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत कैसे निर्धारित होती हैं ?

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर विस्तार से दीजिये-

1. "दीर्घकाल में प्रत्येक फर्म न्यूनतम औसत लागत पर कार्य करती हैं, और यह कीमत के बराबर होती है ।'' इस कथन की समीक्षा कीजिये ।
2. पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म के सन्तुलन की अवस्था को रेखाचित्र की सहायता से समझाइये ।

12.8 संदर्भ

1. आहुजा, एच. एल. - उच्चतर आर्थिक सिद्धांत
2. झिंगन एम. एल. - व्यष्टि अर्थशास्त्र
3. सेठ एम. एल. - अर्थशास्त्र के सिद्धांत
4. सुन्दरम एवं वैश्य - व्यष्टि अर्थशास्त्र

इकाई-13

एकाधिकार एवं कीमत विभेद Monopoly and Price Discrimination

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 एकाधिकार का अर्थ

13.3 एकाधिकारी का उद्देश्य

13.4 एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण

- 13.4.1 एकाधिकारी फर्म का मांग वक्र
- 13.4.2 एकाधिकारी फर्म का पूर्ति वक्र

13.5 एकाधिकारी उद्योग का संतुलन

- 13.5.1 अतिअल्पकाल में एकाधिकारी संतुलन
- 13.5.2 अल्पकाल में एकाधिकारी संतुलन
- 13.5.3 दीर्घकाल में एकाधिकारी साम्य

13.6 एकाधिकार एवं पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना

13.7 एकाधिकारी उत्पन्न होने के कारण

13.8 एकाधिार के लाभ व हानियां

13.9 विभेदात्मक एकाधिकार अथवा कीमत विभेद

- 13.9.1 कीमत विभेद की शर्ते
- 13.9.2 विभेदात्मक एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य तथा उत्पादन का निर्धारण

13.10 सारांश

13.11 शब्दावली

13.12 संदर्भ ग्रन्थ

13.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.14 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- एकाधिकार के बारे में समझ पायेंगे
- एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण कैसे होता है, इसका विवेचन कर सकेंगे ।

- एकाधिकार तथा पूर्ण प्रतियोगिता में अंतर समझ सकेंगे ।
- एकाधिकार से होने वाले लाभ व हानि के बारे में जान सकेंगे ।
- कीमत विभेदीकरण का तात्पर्य व इसके अन्तर्गत मूल्य निर्धारण की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना (Introduction)

विनिमय अर्थशास्त्र के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण भाग होता है । इसके अंतर्गत बाजार, बाजार की दशाएं एवं मूल्य निर्धारण का अध्ययन किया जाता है । अर्थशास्त्र के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य संसाधनों के अनुकूलतम प्रयोग के द्वारा लाभ को अधिकतम तथा लागतों को न्यूनतम करना होता है । जिस प्रकार एक उपभोक्ता अपने सीमित संसाधनों द्वारा अपनी संतुष्टि को अधिकतम करना चाहता है उसी प्रकार एक व्यावसायिक फर्म भी अपने मौद्रिक लाभ को अधिकतम करना चाहती है । इसके लिए वह एक ओर लागतों को न्यूनतम करने का प्रयास करती है तो दूसरी ओर वस्तु के मूल्य को इस प्रकार निर्धारित करती है कि फर्म का लाभ अधिकतम हो । अर्थशास्त्र में मुख्यत: बाजार की तीन स्थितियों का अध्ययन किया जाता है । पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार एवं एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता । पूर्ण प्रतियोगिता में क्रेताओं एवं विक्रेताओं के मध्य अत्यधिक प्रतियोगिता पायी जाती है । यह प्रतियोगिता की उच्चतम सीमा होती है । पूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य निर्धारण बाजार की शक्तियों अर्थात् कुल मांग व पूर्ति द्वारा होता है । एकाधिकार के अन्तर्गत वस्तु का एक उत्पादक व विक्रेता होने के कारण वस्तु की पूर्ति पर उसका पूर्ण नियंत्रण होता है व मूल्य निर्धारण वह स्वयं करता है । इसमें प्रतियोगिता का पूर्णतया अभाव पाया जाता है । एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता तीसरी बाजार स्थिति है । इसे अपूर्ण प्रतियोगिता भी कहते हैं । यह पूर्ण प्रतियोगिता व एकाधिकार के बीच की स्थिति होती है । प्रस्तुत इकाई में एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण का अध्ययन किया गया है ।

13.2 एकाधिकार का अर्थ (Meaning of Monopoly)

जब बाजार में किसी वस्तु का केवल एक ही उत्पादक अथवा विक्रेता होता है तो उसे एकाधिकार कहते हैं । (Monopoly) शब्द अंग्रेजी भाषा के दो अक्षरों से बना है Mono तथा Poly । Mono का अर्थ है एक तथा Poly का अर्थ है बेचना । इस प्रकार बाजार में वस्तु का एक ही विक्रेता पाये जाने की परिस्थिति को एकाधिकार कहा जाता है । यह एकाधिकार का शाब्दिक अर्थ है । अर्थशास्त्र में 'एकाधिकार' से अभिप्राय बाजार में प्रचलित प्रतियोगिता के अंश (Degree) से होता है । यदि बाजार में वस्तु का एक ही विक्रेता होता है तथा प्रतियोगिता का पूर्ण अभाव होता है तो इसे विशुद्ध अथवा पूर्ण अथवा निरपेक्ष एकाधिकार कहा जाता है । एकाधिकार में फर्म में ही उद्योग होती है तथा इसमें निकट स्थानापन्न वस्तु का अभाव पाया जाता है । इस प्रकार विशुद्ध एकाधिकार से तात्पर्य उस एकाकी फर्म / उद्योग से है जहां पर फर्म की वस्तु तथा बाजार में बेची जाने वाली अन्य वस्तुओं के बीच मांग की आड़ी लोच शून्य होती है । वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियंत्रण होने के कारण वह वस्तु का मूल्य स्वयं निर्धारित करता है वह कोई भी मूल्य निर्धारित कर सकता है । मूल्य निर्धारण करते समय एकाधिकारी का उद्देश्य अपने कुल लाभ को अधिकतम करना होता है । स्टोनियर एवं हेग ने एकाधिकार को इस प्रकार परिभाषित किया है :-

"एकाधिकार उस बाजार स्थिति को कहते हैं जिसमें वस्तु का एक ही उत्पादक होता है तथा उसका अपनी वस्तु की पूर्ति पर, जिसका कोई निकट स्थानापन्न नहीं होता, पूर्ण नियंत्रण होता है । "

संक्षेप में एकाधिकार की शर्ते निम्न हैं, इनमें से एक का भी अभाव होने पर बाजार विशुद्ध एकाधिकारी नहीं होता ।

- बाजार में वस्तु विशेष एक ही उत्पादक या विक्रेता का होना ।
- वस्तु की निकट स्थानापन्न वस्तु का अभाव अर्थात् वस्तु की आडी मांग की लोच शून्य होती है।
- एक फर्म उद्योग ।
- नई फर्मो के प्रवेश में प्रभावपूर्ण रूकावटों का होना ।

13.3 एकाधिकारी का उद्देश्य (Objective of a Monopolist)

एक एकाधिकारी फर्म का उद्देश्य अपने 'कुल लाभ' को अधिकतम करना होता है न कि - प्रति इकाई को लाभ को । साथ ही एकाधिकारी फर्म पूर्ण प्रतियोगी फर्म की भांति केवल सामान्य लाभ से ही संतुष्ट नहीं होती वरन् उसका उद्देश्य असामान्य लाभ प्राप्त करना होता है यद्यपि अल्पकाल में स्थिर लागतों के अधिक होने पर एकाधिकारी को हानि उठानी पड सकती है किन्तु दीर्घकाल में वह अपनी एकाधिकारी शक्ति के कारण सदैव सामान्य लाभ से अधिक लाभ की आशा रखता है । एक एकाधिकारी को सामान्य लाभ से अतिरिक्त जो लाभ प्राप्त होता है । उसे मार्शल ने शुद्ध एकाधिकारी लाभ कहा है । मार्शल के शब्दों में " एक एकाधिकारी का स्पष्ट उद्देश्य अपनी पूर्ति को मांग के अनुसार इस प्रकार समायोजित करना नहीं है कि वह कीमत जिस पर वह अपनी वस्तु बेच सकता है, वह उसकी केवल उत्पादन लागत को ही पूरा करें बल्कि इस प्रकार करता है कि जिससे उसको अधिकतम कुल शुद्ध एकाधिकारी लाभ प्राप्त हो सकें ।"

एक एकाधिकारी का असामान्य लाभ उस समय अधिकतम होता है जब सीमान्त इकाई से उसे केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता हो अर्थात् सीमान्त इकाई पर असामान्य लाभ शून्य हों । एकाधिकारी तब तक अपने उत्पादन में वृद्धि करता रहता है जब तक उसकी एकाधिकारी फर्म का सीमान्त आगम (MR) उसकी सीमान्त लागत (MC) से अधिक रहता है जिस बिन्दु पर सीमान्त आगम सीमान्त लागत के बराबर हो जाता है उस बिन्दु पर एकाधिकारी का कुल लाभ अधिकतम होता है । इसके बाद उत्पादन में वृद्धि करना उसके लिए लाभप्रद नहीं होता ।

बोध प्रश्न-

1. एकाधिकारी को परिभाषित कीजिए ।
2. वास्तविक जगत में बाजार में कौन सी प्रतियोगिता पायी जाती हैं?
3. मांग की आड़ी लोच किसे कहते हैं?
4. एकाकी फर्म उद्योग से क्या आशय हैं ?
5. एकाधिकारी का मुख्य उद्देश्य क्या होता हैं?
6. शुद्ध एकाधिकारी लाभ किसे कहते हैं?

13.4 एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण (Price Detgermination under Monopoly)

यदपि एकाधिकारी का अपनी वस्तु की कीमत तथा पूर्ति पर पूर्ण नियंत्रण होता है किन्तु वह कीमत तथा पूर्ति को एक साथ निश्चित नहीं कर सकता । वह एक समय में या तो कीमत को या पूर्ति की मात्रा को ही निश्चित कर सकता है । यदि वह पूर्ति की मात्रा को निश्चित करता है तो उसे कीमत को, मांग की दशाओं के अनुसार तय होने के लिए स्वतंत्र छोड़ना पड़ता है । इसके विपरीत कीमत निर्धारित करने पर वह इस कीमत पर मांग की दशाओं के अनुसार पूर्ति की मात्रा को समायोजित करता है ।

सामान्यतया एक एकाधिकारी मूल्य को निश्चित करता है व निश्चित की गई इस कीमत पर वस्तु की मांगी जाने वाली मात्रा के अनुसार वह अपनी पूर्ति को आसानी से समायोजित कर लेता है । इसके विपरीत यदि वह कीमत के स्थान पर पूर्ति को निश्चित करता है तो मांग में अधिक कमी हो जाने पर (मांग की अनिश्चितता व इस पर कोई नियंत्रण नहीं होने के कारण) उसे हानि उठानी पड़ सकती हैं ।

एकाधिकार के अंतर्गत कीमत एवं उत्पादन, निर्धारण की प्रक्रिया को समझने के लिए एकाधिकारी फर्म की मांग (आगम), पूर्ति (लागत) की दशाओं का ज्ञान आवश्यक है । इनका संक्षिप्त विवरण निम्न है -

13.4.1 एकाधिकारी फर्म का मांग वक्र

एकाधिकारी के अंतर्गत उद्योग की वस्तु का मांग वक्र बायीं से दायीं ओर नीचे गिरता है । यह इस तथ्य को प्रमाणित करता केवल कीमत में कटौती करके ही है कि कम कीमत पर एकाधिकारी फर्म वस्तु की अधिक मात्रा बेच सकती है । एकाधिकारी फर्म का मांग वक्र ही उसका औसत आगम वक्र होता है । औसत आगम वक्र के नीचे सीमान्त आगम वक्र होता है जो औसत आगम वक्र की तुलना में अधिक तेजी से नीचे गिरता है । इसे रेखाचित्र व 13.1 में प्रदर्शित किया गया है ।

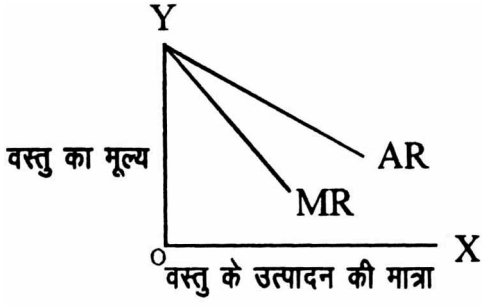

रेखाचित्र 13.1

रेखाचित्र 13.1 में X - अक्ष पर उत्पादन की मात्रा तथा Y - अक्ष पर मूल्य लिया गया है औसत आगम वक्र (AR) तथा सीमान्त आगम वक्र (MR) दोनों नीचे गिर रहे हैं । औसत आगम वक्र की तुलना में सीमान्त आगम वक्र अधिक प्रपाती (Steeper) होता है जो यह स्पष्ट

करता है कि उत्पादन की अधिक मात्रा बेचने के लिए मूल्य को कम करना आवश्यक होता है व मूल्य में कमी सभी इकाइयों में होती हैं ।

13.4.2 एकाधिकारी फर्म का पूर्ति वक्र

एकाधिकारी फर्म का पूर्ति वक्र या लागत वक्र पूर्ण प्रतियोगिता वाली फर्म के लागत वक्र के आकार का ही होता है । अल्पकाल में पूर्ण प्रतियोगिता की भांति एकाधिकार में भी स्थिर साधनों में परिवर्तन नहीं किया जा सकता जबकि दीर्घकाल में सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं । अल्पकाल में लागत वक्रों का आकार अंग्रेजी के अक्षर U के समान होता है किन्तु दीर्घकाल में उत्पत्ति के नियमों के अनुरूप उनके आकार में अन्तर पाया जाता है !

उत्पत्ति ह्रास नियम

यदि एकाधिकारी फर्म उत्पत्ति हास नियम के अनुसार उत्पादन कर रही है तो ऐसी स्थिति में औसत तथा सीमान्त लागत वक्र बायें से दायें ऊपर उठते हुये होते हैं तथा सीमान्त लागत वक्र (MC) औसत आगम वक्र (AC) के उपर स्थित होता है इसे रेखा चित्र व 13.2 में प्रदर्शित किया गया है ।

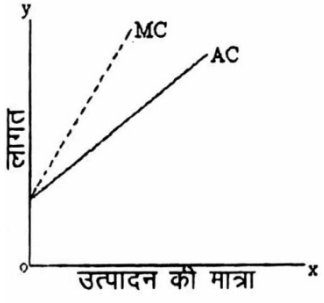

रेखाचित्र 13.2

रेखाचित्र 13.2 से स्पष्ट है कि उत्पत्ति हास नियम के अन्तर्गत उत्पादन होने पर जैसे-जैसे उत्पादन की मात्रा में वृद्धि की जाती है औसत व सीमान्त लागतों में वृद्धि होती जाती है ।

उत्पत्ति समता नियम

उत्पत्ति समता नियम के अन्तर्गत उत्पादन होने पर सीमान्त व औसत लागत वक्र एक क्षैतिज रेखा होते हैं । उत्पादन की मात्रा में वृद्धि करने पर सीमान्त लागत में वृद्धि समान दर से होती है। फलस्वरूप औसत लागत भी समान दर से बढ़ती है इसे रेखाचित्र 13.3 में प्रदर्शित किया गया है।

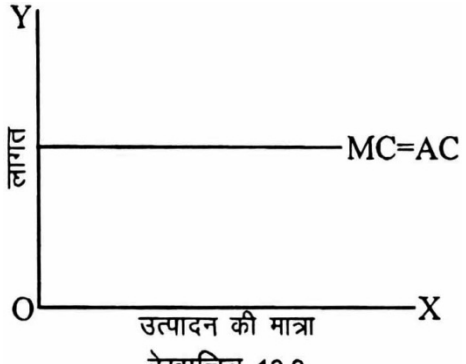

रेखाचित्र 13.3

उत्पत्ति वृद्धि नियम

यदि वस्तु का उत्पादन उत्पत्ति वृद्धि नियम के अनुसार हो रहा है तो सीमान्त व औसत लागत वक्र बायें से दायें नीचे गिरते हुये होते हैं व सीमान्त लागत वक्र औसत लागत वक्र के नीचे स्थित होता है । इसे रेखाचित्र 13.4 मे दिखाया गया है !

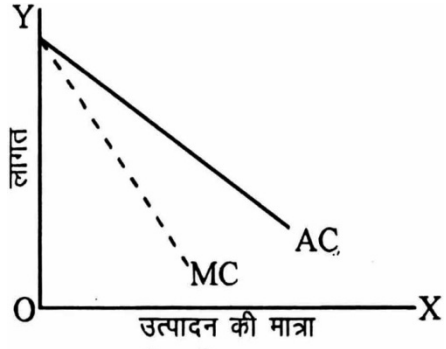

रेखाचित्र 13.4

13-5 एकाधिकारी उद्योग का संतुलन (Equilibrium of Monopoly Industry)

मांग व पूर्ति वक्रों का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात हम एकाधिकारी हम विभिन्न समायावधियों में मूल्य निर्धारण का अध्ययन करेंगे । इसके अंतर्गत निम्न 3 परिस्थितियों में मूल्य निर्धारण या एकाधिकारी संतुलन का अध्ययन किया जायेगा ।

13.5.1 अति अल्पकाल या बाजार अवधि में एकाधिकारी संतुलन

अति अल्पकाल या बाजार अवधि कुछ घंटों या बहुत कम समय का काल होता है । इस अवधि में पूर्ति स्थिर रहने के कारण कुल लागतें स्थिर होती है व मूल्य निर्धारण में लागतों का कोई महत्व नहीं होता । ऐसी स्थिति में एकाधिकारी वस्तु का मूल्य वस्तु के निश्चित स्टॉक तथा वस्तु की मांग के आधार पर इस प्रकार निश्चित करेगा कि उसका कुल लाभ अधिकतम हों । इसे रेखाचित्र 13.5 में प्रदर्शित किया गया है ।

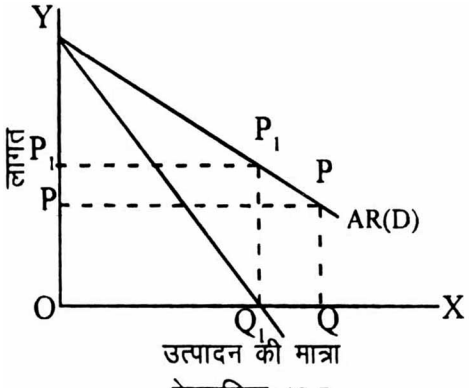

रेखाचित्र 13.5

रेखाचित्र 13.5 में स्पष्ट है कि ARL(D) एकाधिकारी की मांग रेखा या औसत आगम वक्र है तथा उसके पास वस्तु का कुल स्टॉक OQ है जिसे एकाधिकारी बेचना चाहता है । OQ

उत्पादन की मात्रा बेचने के लिए उसे OP या OQ मूल्य निर्धारित करना होगा । किन्तु इस मूल्य से उसका कुल लाभ अधिकतम नहीं होगा क्योंकि इस मूल्य पर उसका सीमान्त आगम ऋणात्मक हो चुका है, फर्म का कुल लाभ या आगम बिन्दु पर अधिकतम होता है जब सीमांत आगम शून्य होता है । यही फर्म का समय बिन्दु होता है । इसलिए एकाधिकारी अपनी वस्तु की कीमत OP1 निर्धारित करेगा व OQ1 मात्रा बेचेगा । वस्तु के नाशवान

13.5.2 अल्पकाल में एकाधिकारी संतुलन

अल्पकाल में एकाधिकारी फर्म उस उत्पादन स्तर पर सन्तुलनावस्था को प्राप्त होती है जहां इसकी सीमान्त लागत इसके सीमान्त आगम के बराबर होती है । उत्पादन के इस स्तर पर फर्म अपने लाभ को अधिकतम तथा हानि को न्यूनतम कर लेती है ।

अल्पकाल में समय इतना कम होता है कि एकाधिकारी फर्म स्थिर साधनों के आकार में कोई परिवर्तन नहीं कर सकती अर्थात अल्पकाल में फर्म के स्थिर साधन अपरिवर्तनशील होते है । वस्तु की मांग में परिवर्तन होने की दशा में परिवर्तनशील साधनों की मात्रा को परिवर्तित करके ही पूर्ति को मांग के अनुरूप घटाया या बढ़ाया जाता है ।

अल्पकालीन साम्य के लिए आवश्यक है कि सीमान्त लागत सीमान्त आगम के बराबर हो । यदि सीमान्त आगम सीमान्त लागत से अधिक है (MR>MC) तो इस स्थिति में एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से कुल आगम (TR) में होने वाली वृद्धि उस अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से कुल लागत (TC) में होने वाली वृद्धि से अधिक होगीं । इस स्थिति में एकाधिकारी के लिए अतिरिक्त इकाई का उत्पादन व विक्रय करना लाभप्रद होगा । एकाधिकारी वस्तु का अतिरिक्त उत्पादन करके अपने लाभ को तब तक बढ़ाता जायेगा जब तक (MR=MC नहीं हो जाता । MR<MC की स्थिति में एकाधिकारी उत्पादन कम मात्रा को तब घटायेगा जब तक सीमान्त आगम सीमान्त लागत के बराबर हो जायेगा । अल्पकाल में एकाधिकारी सन्तुलन की तीन स्थितियां हो सकती हैं- अधिकतम लाभ की स्थिति, सामान्य लाभ की स्थिति, हानि की स्थिति । तीनों ही स्थितियों का अध्ययन अलग-अलग किया गया है । अधिकतम लाभ की स्थिति को रेखाचित्र 13.6 में प्रदर्शित किया गया है ।

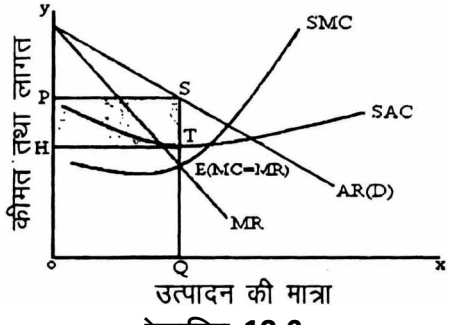

रेखाचित्र 13.6

रेखाचित्र 13.6 में अल्पकालीन सीमान्त लागत वक्र (SMC) तथा सीमान्त आगम वक्र (MR) एक दूसरे को E बिंदु पर काटते हैं इस साम्य E बिंदु एक एकाधिकारी OQ मात्रा का उत्पादन करेगा तथा OP मूल्य पर बेचेगा । OH प्रति इकाई लागत है । HP या TS प्रति इकाई लाभ है तथा कुल लाभ =OQXHP=HTPS क्षेत्रफल के बराबर होगा । इस प्रकार एकाधिकारी

लाभ की स्थिति में P>MC कभी -कभी अल्पकाल में एकाधिकारी को मात्र सामान्य लाभ प्राप्त हो सकता है इसे रेखाचित्र 13.7 में दर्शाया गया है ।

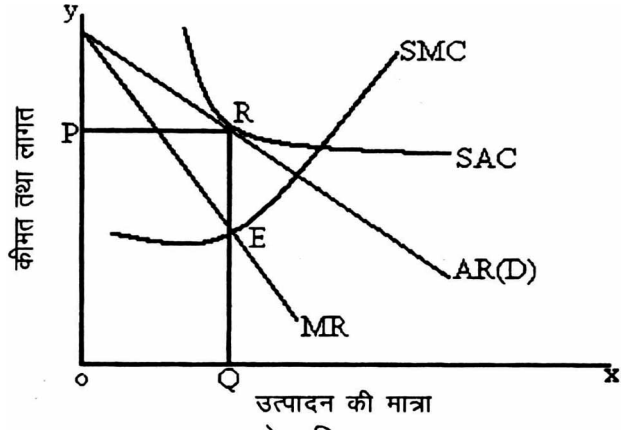

रेखाचित्र 13.7

रेखाचित्र व 13.7 में शून्य एकाधिकारी लाभ या सामान्य लाभ की स्थिति को दर्शाया गया है । E साम्य बिंदु है जो MR तथा MC के संतुलन से प्राप्त हुआ है । वस्तु की कीमत OP है तथा कुल उत्पादन OQ है । उत्पादन के इस स्तर पर वस्तु का मूल्य फर्म की औसत लागत तथा औसत आय के बराबर है अर्थात् P=AR=AC चित्र से स्पष्ट है कि फर्म की कुल लागत तथा कुल आगम का क्षेत्र OQPR के बराबर है जो यह दर्शाता है कि फर्म केवल सामान्य लाभ प्राप्त कर रही है जो उसकी उत्पादन लागत में पहले से ही सम्मिलित है ।

अल्पकाल में फर्म को हानि भी हो सकती है । अल्पकाल में स्थिर साधनों के अपरिवर्तनशील होने के कारण पूर्ति को मांग के अनुसार समायोजित नहीं किया जा सकता । एकाधिकारी फर्म को अधिक से अधिक हानि फर्म की कुल स्थिर लागत के बराबर हो सकती है उससे अधिक नहीं । अल्पकाल में एकाधिकारी फर्म तब तक वस्तु का उत्पादन जारी रखती है जब तक वह कीमत से औसत परिवर्तनशील लागत को निकाल लेती है परंतु जैसे ही कीमत औसत परिवर्तनशील लागत से कम होती है फर्म उत्पादन बंद कर देती है । क्योंकि अल्पकाल में एकाधिकारी को स्थिर लागतों का भुगतान करना ही पड़ता है भले ही वह उत्पादन न करें अत: हानि की मात्रा कुल स्थिर लागतों के बराबर हो सकती है । इसे रेखाचित्र 13.8 में दर्शाया गया है।

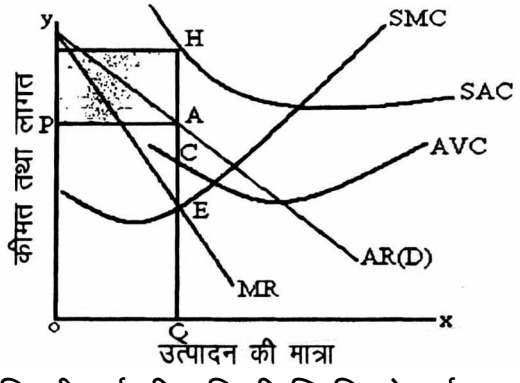

रेखाचित्र 13.8 में एकाधिकारी फर्म की हानि की स्थिति को दर्शाया गया है । फर्म का साम्य विंदु E रेखाचित्र 13.6

जहां SMC=MR है । इस संतुलन बिंदु के आधार पर OQ मात्रा का उत्पादन किया जायेगा जिसे OP मूल्य पर बेचा जायेगा । फर्म की प्रति इकाई लागत OB है जो प्रति इकाई मूल्य OP से अधिक है OB=OP=PB फर्म की प्रति इकाई हानि है । फर्म की कुल हानि का क्षेत्रफल PABHसे अधिक हो जायेगी ।

अल्पकाल में एकाधिकारी फर्म को अधिकतम हानि उसकी स्थिर लागत HC के बराबर हो सकती है । OP कीमत AVC से अधिक है इसलिए एकाधिकारी अल्पकाल में हानि होने पर भी आशा से उत्पादन करता रहेगा कि दीर्घकाल में हानि समाप्त हो कर लाभ प्राप्त होने लगेगा । यदि कीमत AVC से भी कम होने लगेगी तो एकाधिकारी वस्तु का उत्पादन निश्चित रूप से बंद कर देगा ।

13.5.3 दीर्घकाल में एकाधिकारी साम्य

दीर्घकाल में भी एकाधिकारी फर्म उत्पादन के उस स्तर पर संतुलन को प्राप्त होती है जहां पर इसका दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र (LPMC) इसके दीर्घकालीन सीमांत आगम वक्र (LPMR) के बराबर होता है । इस अवधि में मांग के अनुसार उत्पादन की मात्रा को समायोजित करने के लिए फर्म के पास पर्याप्त लम्बा समय होता है । इस अवधि में परिवर्तनशील साधनों के साथ-साथ स्थिर साधनों में भी परिवर्तन किया जा सकता है । दीर्घकाल में एकाधिकारी को सदैव असामान्य लाभ प्राप्त होता है क्योंकि एकाधिकारी फर्म की औसत आय अर्थात कीमत सदैव उत्पादन लागत से अधिक होती है । तथा उद्योग में नई फर्मो के प्रवेश की संभावना शून्य होती है। दीर्घकाल में एकाधिकारी फर्म को हानि की संभावना भी नहीं होती । वस्तुत: दीर्घकाल में एकाधिकारी फर्म असामान्य लाभ बराबर कमाती रहती है । दीर्घकालीन एकाधिकारी संतुलन को रेखाचित्र व 13.9 के माध्यम से दर्शाया गया है ।

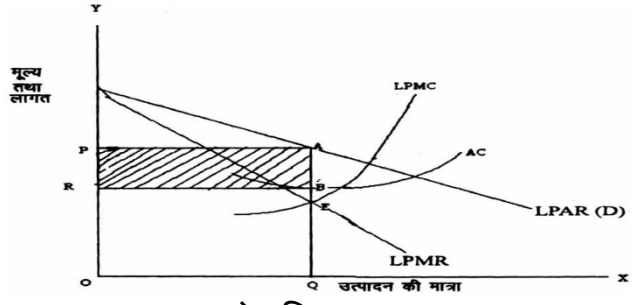

रेखाचित्र 13.9

दीर्घकालीन एकाधिकारी संतुलन को रेखाचित्र 13.9 द्वारा प्रदर्शित किया गया है । E संतुलन बिंदु है जहां LPMC=LPMR है । कुल उत्पादन OQ है तथा OP या QA कीमत है । यह औसत लागत BQ से अधिक है । फर्म का प्रति इकाई लाभ AB है । कुल एकाधिकारी लाभ PRBA क्षेत्र के बराबर है । दीर्घकाल में एकाधिकारी अपनी वस्तु का मूल्य अधिक या कम निर्धारित करेगा, यह दो बातों पर निर्भर है प्रथम वस्तु के मांग वक्र की लोच द्वितीय उत्पादन में वृद्धि करने पर औसत लागत का व्यवहार । यदि मांग की लोच निम्न है तो एकाधिकारी वस्तु का मूल्य ऊँचे स्तर पर निर्धारित कर सकता है क्योंकि ऊँचे मूल्यों का मांग पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा । इसके विपरीत मांग की लोच अधिक होने पर एकाधिकारी निम्न कीमत पर वस्तु की

अधिक मात्रा बेचकर अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करेगा । औसत लागत का व्यवहार उत्पादन के उस नियम से निर्धारित होता है जो फर्म पर क्रियाशील होता है ।

फर्म के उत्पादन पर तीनों में से कोई भी नियम क्रियाशील हो सकता है । यदि फर्म के उत्पादन पर उत्पति वृद्धि नियम या ह्रासमान लागत नियम कार्यशील होता है जिसके अंतर्गत उत्पादन वृद्धि के साथ-साथ फर्म की औसत लागत कम होती जाती है तो ऐसी परिस्थिति में औसत लागत में कटौती करने हेतु अधिक उत्पादन करना व कम मूल्य पर विक्रय करना एकाधिकारी फर्म के हित में होगा । इसके विपरीत उत्पादन पर यदि उत्पति हास नियम या लागत वृद्धि नियम क्रियाशील होता है अर्थात उत्पादन वृद्धि के साथ-साथ औसत लागत में वृद्धि होती जाती है तब वस्तु का कम उत्पादन करना व ऊँची कीमत निर्धारित करना एकाधिकारी के हित में होगा । इससे एकाधिकारी को अधिकतम लाभ प्राप्त होगा । उत्पति समता नियम या स्थिर लागत नियम एकाधिकारी को प्रभावित नहीं करता स्पष्ट है कि जब एकाधिकारी सीमांत आगम तथा सीमांत लागत के मध्य समानता स्थापित करता है तो वह इन दोनों तत्वों (मांग की लोच तथा लागतों के व्यवहार) को ध्यान में रखते है ।

बोध प्रश्न - 2

1. क्या एकाधिकारी अपनी वस्तु का मूल्य तथा उत्पादन की मात्रा दोनों को एक साथ निर्धारित कर सकता है ।
2. एकाधिकारी फर्म का मांग वक्र कैसा होता हैं?
3. एकाधिकारी फर्म का संतुलन बिंदु कौनसा होता हैं?
4. अति अल्पकाल में एकाधिकारी फर्म के मूल्य निर्धारण में कौनसी शक्ति प्रभावी रहती हैं?
5. क्या अल्पकाल में एकाधिकारी के हानि हो सकती हैं?
6. वस्तु की मांग की लोच का उसके मूल्य निर्धारण पर क्या प्रभाव पड़ता हैं?

13.6 एकाधिकार एवं पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना (Comparision between Monopoly and Perfect Competition)

एकाधिकार	अंतर पूर्ण प्रतियोगिता
1. एक उत्पादकता तथा विक्रेता	अनेक उत्पादक तथा विक्रेता
2. एक फर्म उद्योग उद्योगों में अनेक फर्मे	अनेक उत्पादक तथा विक्रेता
3. नई फर्मो के प्रवेश में प्रभावपूर्ण रूकावटें	नयी फर्मो के प्रवेश व बहिर्गमन की स्वतंत्रता
4. फर्म का AR वक्र बायं से दायी और गिरता है व MR उसके नीचे स्थित होता है ।	फर्म का AR वक्र पूर्णतया लोचदार अर्थात X-अक्ष के सामानान्तर एक सरल रेखा होता है तथा MR वक्र उसमें मिला होता है अर्थात AR=MR
5. फर्म मूल्य निर्धारण स्वयं करती है ।	फर्म मूल्य वसूल करती है मूल्य निर्धारण मांग व पूर्ति द्वारा किया जाता है ।
6. एक वस्तु समरूप वस्तु	समरुप वस्तु

7.	एकाधिकार साम्य स्थिति में MC=MR<price	पूर्ण प्रतियोगी साम्य में P=MR=MC
8.	दीर्घकाल में एकाधिकारी फर्म को सदैव सामान्य असामान्य लाभ प्राप्त होता है ।	दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगी फर्म को केवल लाभ प्राप्त होता है ।
9.	मूल्य विभेद संभव	एक मूल्य

13.7 एकाधिकार उत्पन्न होने के कारण (Causes of Emergence of Monopoly)

यदपि शुद्ध एकाधिकार बाजार की काल्पनिक स्थिति होती है किन्तु -दुर्बल एकाधिकार की संभावना बाजार में सदैव बनी रहती है । इसके उदय होने के मुख्य कारण निम्न हैं -

- कभी -कभी सरकार कानून द्वारा एकाधिकार स्थापित कर देती है जैसे किसी नगर में सरकार द्वारा जल या विधुत व्यवस्था किसी कम्पनी को सौंप देना ।
- कभी-कभी किसी वस्तु के निर्माण के लिए आवश्यक कच्चे माल का आपूर्ति कर्ता एक ही व्यक्ति होने से एकाधिकार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है ।
- कुछ उद्योगों में भारी विनियोग की आवश्यकता होती है । बड़े उद्योग कर्ता प्रतियोगिता के अभाव में एकाधिकार की स्थिति प्राप्त कर लेते हैं ।
- अत्यधिक व्यापारिक ख्याति के कारण अन्य फर्मे उद्योग में ठहर नहीं पाती व धीरे -धीरे फर्म का एकाधिकार स्थापित होने लगता है ।
- तीव्र गलाकाट प्रतियोगिता से बचने के लिए कभी-कभी सभी फर्मे आपस में मिलकर समझौता कर लेती हैं अथवा संघ या कार्टल का निर्माण कर लेती हैं जिससे अंतत: एकाधिकार स्थापित हो जाता है ।
- सार्वजनिक हितों की सुरक्षा व सार्वजनिक वस्तुओं की सुचारू आपूर्ति की दृष्टि से एकाधिकार स्थापित किये जाते हैं जैसे रेल यातायात, जल आपूर्ति टेलिफोन आदि ।
- उत्पादक द्वारा वस्तु का पेटेंट करा लेने पर या ट्रेड मार्क का पंजीकरण प्राप्त कर लेने पर उस वस्तु पर उसका एकाधिकार हो जाता है ।

बोध प्रश्न -3

1. एकाधिकारी साम्य व पूर्ण प्रतियोगी साम्य में अन्तर बताइये ।
2. एकाधिकार उत्पन्न होने के दो कारण बताइये ।
3. गलाकाट प्रतियोगिता किसे कहते हैं?
4. कार्टल से क्या अभिप्राय हैं?

13.9 विभेदात्मक एकाधिकार अथवा कीमत विभेद (Discriminating Monopoly or Price Discrimination)

कीमत विभेद से तात्पर्य एक विक्रेता द्वारा अपनी वस्तु को भिन्न-भिन्न क्रेताओं को भिन्न-भिन्न मूल्य पर बेचना हैं । यह स्थिति एकाधिकार में पायी जाती है । एक समय पर एक ही वस्तु के लिए एकाधिकारी फर्म विभिन्न क्रेताओं से विभिन्न कीमतें वसूल करती है । इस प्रकार का कीमत विभेद बाजार में प्रचलित परिस्थितियों पर निर्भर करता है । कीमत विभेद की चरम सीमा में एकाधिकारी फर्म एक ही ग्राहक से एक ही वस्तु की विभिन्न इकाइयों की विभिन्न कीमतें वसूल करती हैं । इसे पूर्णतया भेदपूर्ण एकाधिकार (Perfectly Discriminationg Monopoly) कहतें हैं । यह एक काल्पनिक स्थिति ही होती है । वास्तविक व्यवहार में कीमत विभेद से अभिप्राय ग्राहकों के विभिन्न वर्गो के मध्य कीमत विभेदीकरण से है । प्रो. सिटगलर ने कीमत विभेद को परिभाषित करते हुए लिखा है- "कीमत विभेद का अर्थ है तकनीकी दृष्टि से समरूप वस्तुओं को इतनी भिन्न-भिन्न कीमतों पर बेचना जो उनकी सीमांत लागतों के अनुरूप नहीं होती अर्थात सीमांत लागतों के अनुपात से कही अधिक होती हैं । "

13.9.1 कीमत विभेद की शर्ते

कीमत विभेद की नीति पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में संभव नहीं होती क्योंकि वहां समान मूल्य की प्रवृति पायी जाती है । कीमत विभेदीकरण निम्न दशाओं में ही संभव होता है ।

- बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत एकाधिकारी फर्म का पाया जाना ।
- एकाधिकारी वस्तु के लिए अलग-अलग मांग की लोच वाले दो या दो से अधिक बाजारों का होना ।
- कीमत विभेद वाले बाजारों का एक दूसरे से पृथक होना जिससे ऊँची कीमत वाले बाजार के क्रेता नीची कीमत वाले बाजार से वस्तु न खरीद सकें । साथ ही दोनों बाजारों के क्रेताओं में भी कोई संपर्क नहीं होना चाहिए । जिससे निम्न कीमत वाले बाजार के क्रेता उच्च कीमत वाले बाजार के क्रेता को वस्तु की पुनर्बिक्री न कर सकें ।
- क्रेताओं की क्रय शक्ति में विभिन्नता के कारण कीमत विभेद की संभावना बढ़ जाती है ।
- श्रीमती जॉन राबिन्सन के अनुसार आर्डर पर वस्तुओं के उत्पादन तथा विक्रय होने की स्थिति में कीमत विभेद आसानी से किया जा सकता है क्योंकि एक क्रेता को दूसरे क्रेता से लिये जाने वाले मूल्य की जानकारी नहीं होती ।
- कभी-कभी सरकार स्वयं एकाधिकारी फर्म को उसकी वस्तु की विभिन्न कीमतें वसूल करने का अधिकार दे देती है जैसे घरेलू तथा व्यावसायिक विधुत उपयोग के लिए विभिन्न दरें ।

13.9.2 विभेदात्मक एकाधिकार के अंतर्गत मूल्य तथा उत्पादन का निर्धारण

विभेदात्मक एकाधिकार के अंतर्गत मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण के लिए यह मान लेते हैं कि एकाधिकारी ने संपूर्ण बाजार केवल को दो भागों (A तथा B बाजार) में बांट रखा है । विभेदात्मक एकाधिकार के अंतर्गत एकाधिकारी को निम्न निर्णय लेने होते हैं ।

- वस्तु की कितनी मात्रा का उत्पादन किया जाये ।

- वस्तु के कुल उत्पादन को बाजार के दोनों भागों में किस प्रकार बांटे ।
- दोनों बाजारों में वस्तु की कितनी-कितनी कीमत वसूलें ।

विभेदात्मक एकाधिकार का उद्देश्य भी अपने लाभ को अधिकतम करना होता है । अत: विभेदात्मक एकाधिकरी संतुलन के लिए आवश्यक है कि सीमांत आगम तथा सीमांत लागत बराबर (MR=MC) हो तथा दोनों बाजारों से समान सीमांत आय प्राप्त हो । यदि पहले A बाजार का MR1 दूसरे B बाजार के MR2 से अधिक है तो एकाधिकारी के लिए यह अधिक लाभप्रद होगा कि वह वस्तु कुछ इकाईयों को A बाजार से हटाकर B में बेचे । यह हस्तांतरण तब तक होना चाहिए जब तक कि दोनों बाजारों में सीमांत आय न हो जाये अर्थात MR1=MR2=MR विभेदात्मक एकाधिकार के अंतर्गत मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण को रेखाचित्र 13.10 में दर्शाया गया है ।

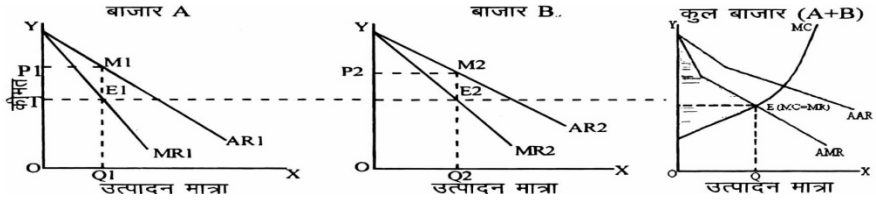

रेखाचित्र 13.10

रेखाचित्र 13.10 में A तथा B दो बाजार लिये गये हैं व उनका योग कुल बाजार हैं । बाजार A में मांग की लोच कम है तथा बाजार B में अधिक है । एकाधिकारी के कुल उत्पादन का साम्य बिंदु E है । इस बिंदु पर AMR = MC हैं । OQ उत्पादन की कुल मात्रा हैं जो दोनों बाजारों के उत्पादन OQ1+ OQ2 का योग है । एकाधिकारी इस कुल उत्पादन को A तथा B बाजारो में इस प्रकार बांटेगा कि प्रत्येक बाजार में सीमांत आगम सीमांत लागत के बराबर हो तथा दोनों बाजारों का सीमांत आगम भी समान हो । यदि संतुलन बिंदु E से एक पड़ी रेखा ET खींची जायें तो यह B तथा A बाजार के सीमांत आगम वक्रों MR2 तथा MR1 को क्रमश: E2 तथा E1 बिंदु पर काटेगी जिन पर दोनों बाजारों की सीमांत आय समान हैं (E1M1 = E2M2) बाजार A की OP1

कीमत बाजार B की OP2 कीमत से अधिक है क्योंकि बाजार A मांग की लोच कम है । दोनों बाजारों में सीमांत आगम समान है अर्थात EM1= E2M2 इस प्रकार विभेदात्मक करने का प्रयास करता है । कीमत विभेद का एक विशिष्ट उदाहरण राशि पतन है जिसमें एकाधिकारी विदेशी बाजार में वस्तु को कम मूल्य पर बेचकर अपने लाभ को अधिकतम करता है ।

बोध प्रश्न - 4

1. कीमत विभेद किसे कहते हैं?
2. कीमत विभेद कब संभव होता हैं?
3. "पूर्णतया भेदपूर्ण " एकाधिकार किसे कहते हैं ?
4. राशि पतन किसे कहते हैं '

13.10 सारांश (Summary)

स्पष्ट है कि एकाधिकार बाजार की स्थिति हैं जिसमें वस्तु का एक विक्रेता होता है । वस्तु की प्रतिस्थानापन्न वस्तु की कीमत अन्य वस्तु की कीमत से न तो प्रभावित होती है न ही प्रभावित होती है । यदपि एकाधिकारी वस्तु का मूल्य व उत्पादन स्वयं निर्धारित करता है किंतु वह दोनों को एक साथ निर्धारित नहीं कर सकता । साथ ही एकाधिकारी का उद्देश्य प्रति इकाई लाभ के अधिकतम न करके कुल लाभ का अधिकतम करना होता है । अपने कुल लाभ को अधिकतम करने के लिए एकाधिकारी कीमत विभेद की नीति भी अपनाता है जिसमें वह अलग-अलग बाजारों में वस्तु के मूल्य अलग-अलग निर्धारित करता है । एकाधिकारी एक काल्पनिक बाजार स्थिति है जो वास्तविक जगत में कम पायी जाती है ।

13.11 शब्दावली (Glossary)

- अनुकुलतम प्रयोग सबसे अच्छा वैकल्पिक ।
- अपूर्ण प्रतियोगिता (Imperfect Compition) पूर्ण प्रतियोगिता के विपरीत स्थिति
- स्थानापन्न वस्तु (Substitute) वस्तु के स्थान पर प्रयोग की जाने वाली-समान प्रकार की वस्तुएं
- स्थिर लागत (Fixed cost) वो लागतें जो उत्पादन के कम, ज्यादा या बंद होने पर भी समान रहती है ।
- आड़ी लोच (Cross elasticity)स्थानापन्न वस्तु की लोच A के मूल्य परिवर्तन का B की मांग पर प्रभाव।
- एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता (Monopolistic Competition) बाजार स्थिति जिसमें कुछ उत्पादक निकट स्थानापन्न वस्तुऐं बेचते हैं व आपस में कड़ी प्रतियोगिता करते हैं । वास्तविकता बाजार में यही स्थिति पायी जाती है ।

13.12 संदर्भ ग्रन्थ (References)

आहूजा ,एच. एल	:	अर्थशास्त्र, कैपीटल बुक हाउस, 26 यू. बी. जवाहर नगर, दिल्ली
सेठ, एम. एल.	:	अर्थशास्त्र के सिद्धान्त
द्विवेदी, डी.एन.	:	Principles & Economics, Vikas Publishing House Pvt. Ltd. New Delhi
सिंह, एस. पी	:	माइक्रो अर्थशास्त्र, एस चंद एंड कंपनी लि. नई दिल्ली
जैन के. पी.	:	अर्थशास्त्र के सिद्धांत

13.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

1. एकाधिकार वह बाजार स्थिति है जिसमें वस्तु का एक ही उत्पादक अथवा विक्रेता होता है ।
2. वास्तविक जगत में बाजार में एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता पायी जाती है ।
3. एकांकी फर्म उद्योग से आशय उद्योग में एक ही फर्म का पाया जाना है ।

4. मांग की आड़ी लोच से तात्पर्य स्थानापन्न वस्तु की मांग से है अर्थात जब तक एक वस्तु के मूल्यों से दूसरी वस्तु की मांग प्रभावित होती है तो उसे मांग की आड़ी लोच कहते हैं ।
5. एकाधिकारी का मुख्य उद्देश्य अपने कुल लाभ को अधिकतम करना होता हैं ।
6. 6. शुद्ध एकाधिकारी लाभ सामान्य लाभ से अधिक होता है । जब औसत लागत कीमत से कम होती है तब एकाधिकारी को शुद्ध एकाधिकारी लाभ प्राप्त होता है ।

बोध प्रश्न - 2

1. एकाधिकारी अपनी वस्तु का मूल्य तथा उत्पादन की मात्रा दोनों को एक साथ निर्धारित नहीं कर सकता ।
2. एकाधिकारी फर्म का मांग वक्र उपर से नीचे दायीं ओर गिरता है ।
3. एकाधिकारी फर्म के संतुलन बिंदु पर सीमांत आय एक दूसरे के बराबर होते हैं ।
4. अति अल्पकाल में एकाधिकारी फर्म के मूल्य निर्धारण में मांग की शक्ति प्रभावी रहती है । 6. यदि वस्तु की मांग की लोच अधिक होती है तो वस्तु का मूल्य कम तथा मांग की लोच कम होती है तो वस्तु का मूल्य अधिक निश्चित किया जाता है ।

बोध प्रश्न -3

1. एकाधिकार साम्य -MR=MC पूर्ण प्रतियोगिता में साम्य -AR=MR=AC=MC
2. I भारी विनियोग की आवश्यकता
   II कानून द्वारा स्थापित एकाधिकार
3. जब उत्पादक वस्तु के विक्रय के लिए अत्यधिक प्रतियोगिता करते हैं व विभिन्न उपायों द्वारा विक्रय वृद्धि का प्रयास करते हैं तो उसे गलाकाट प्रतियोगिता कहते हैं ।
4. गलाकाट प्रतियोगिता से बचने के लिए जब कुछ विक्रेता आपस में संघ बना लेते हैं तथा समान मूल्य नीति अपनाते हैं तो उस संघ को कार्टल कहते हैं ।

बोध प्रश्न - 4

1. जब अलग-अलग बाजारों में वस्तु को अलग-अलग मूल्य पर बेचा जाता है तो उसे कीमत विभेद कहते है ।
2. कीमत भेद के लिए आवश्यक है कि अलग-अलग बाजारों में वस्तु की मांग की लोच भिन्न-भिन्न हो तथा बाजार दूर-दूर स्थित हों ।
3. पूर्णतया भेदपूर्ण एकाधिकार में एकाधिकारी एक ही वस्तु की विभिन्न इकाइयों का एक ही व्यक्ति को अलग-अलग मूल्य पर बेचता है ।
4. जब विक्रेता वस्तु को घरेलू बाजार में अधिक मूल्य पर व विदेशी बाजार में कम मूल्य पर बेचता हैं तो इस स्थिति को राशि पातन कहते हैं ।

13.14 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. उन तत्वों का विवरण दीजिए जो एकाधिकार के अंतर्गत कीमत को प्रभावित करते हैं ।
2. एकाधिकार के अंतर्गत अल्पकाल में मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण को समझाइये ।
3. कीमत विभेदीकरण कें अंतर्गत कीमत तथा उत्पादन निर्धारण की व्याख्या कीजिए ।

4. एकाधिकार में दीर्घकालीन संतुलन का विश्लेषण कीजिए ।

इकाई - 14

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता Monopolistic Competition

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 अपूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता
14.3 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता
14.4 अल्पकाल में एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण
14.5 दीर्घकाल में एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण
14.6 विक्रय लागतें
14.7 पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार तथा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में अन्तर
14.8 सारांश
14.9 शब्दावली
14.10 संदर्भ ग्रन्थ
14.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
14.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

14.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

- अपूर्ण प्रतियोगिता व एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के बारे में जान सकेंगे
- एकाधिकारात्मक प्रतियोगिताकी विशेषताएं समझ सकेंगे
- इसमें अल्पकालीन व दीर्घकालीन मूल्य निर्धारण की विवेचना कर सकेंगे
- विक्रय लागतों के बारे में जान सकेंगे और एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में इनका महत्व जान सकेंगे
- पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार एवं एकाधिकारात्मक प्रतियोगी की जानकारी प्राप्त कर सकेगें

14.1 प्रस्तावना

बाजार में मूल्य निर्धारण के सम्बन्ध में पूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकार दो चरम स्थितियां हैं । वास्तविक जीवन में न तो पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति पायी जाती है न एकाधिकार की । वास्तविक जगत में इन दोनों स्थितियों के मध्य की स्थिति पायी जाती है जिसे एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता कहा जाता है । एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की अवधारणा का प्रतिपादन प्रो. एडवर्ड एच. चैरम्बरलेन ने 1933 में किया था । 1933 से पूर्ण अर्थशास्त्रियो का विश्वास था कि आर्थिक शक्तियाँ .....जाता है । अर्थात् अपूर्ण प्रतियोगिता वह

बाजार स्थिति हैं । जो पूर्ण प्रतियोगिता एवं विशुद्ध एकाधिकार की दोनो चरम स्थितियों के मध्य में स्थित रहती है । वास्तव में अपूर्ण प्रतियोगिता एक बहुत व्यापक शब्द है । इसमें कई प्रकार की बाजार स्थितियाँ सम्मिलित की जा सकती हैं । एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता अपूर्ण प्रतियोगिता का एक प्रकार है । इसके अन्य वर्ग अल्पाधिकार एवं द्वयाधिकार है ।

14.2 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता

यह वह बाजार अवस्था है जिसमें किसी वस्तु के बहुत से विक्रेता होते हैं । व उन सब की वस्तुएं समरूप न हो कर एक दूसरे की वस्तुओं से किसी न किसी प्रकार से भिन्न अवश्य होती है । इसी भिन्नता के कारण ये वस्तुएं एक दूसरे की वस्तुओं के लिए अपूर्ण प्रतिस्थापन वस्तुएं सिद्ध होती है । तथा मानसिक रूप से उपभोक्ता उन्हें एक दूसरे से भिन्न मानतें है । साथ ही प्रत्येक फर्म क आकार बाजार की कुल पूर्ति में तुलनात्मक रूप से इतना छोटा होता है । कि वह फर्म स्वयं के क्रिया किलापो द्वारा अन्य फर्मो को किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं कर पाती है । प्रो. लेफ्टविच ने एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता को इस प्रकार से परिभाषित किया है एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के बाजार में एक विशेष किस्म की वस्तु के अनेक विक्रेता होते है और प्रत्येक विक्रेता की वस्तु किसी न किसी रूप में दूसरे विक्रेता की वस्तु से भिन्न होती है । जब विक्रेताओं की संख्या इतनी अधिक होती है कि विक्रेता के कार्यो का भी उस पर कोई स्पष्ट प्रभाव नहीं पड़ता है तो वह उद्योग एकाधिकारात्मक प्रतिस्पर्धा का उद्योग बन जाता है ।

प्रतिद्वंदियों स्टोनियर एवं हेग के अनुसार "अपूर्ण प्रतियोगिता की दशा में अधिकांश उत्पादकों की वस्तुएं अनेक प्रतिद्वद्वियों की वस्तुओं से बहुत मिलती जुलती है । फलस्वरूप इन उत्पादकों को सदैव यह ध्यान रखना पड़ता है कि प्रतिद्वदियों की क्रियाएं उनके लाभ को कैसे प्रभावित करेंगी? आर्थिक सिद्धान्त में इस तरह की स्थिति का विश्लेषण एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता अथवा समूह सन्तुलन के अन्तर्गत किया जाता है । इनमें से एक वस्तुएं बनाने वाली फर्मो में प्रतियोगिता पूर्ण न होकर तीव्र होती है ।

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में कोई भी फर्म समरूप वस्तु का उत्पादन नहीं करती इसमें उद्योग के स्थान पर समूह शब्द का प्रयोग किया जाता है व पर्याप्त रूप से मिलती जुलती वस्तुओं का उत्पादन करने वाली फर्म होती है ।

14.3.1 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की विशेषताएं

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की मुख्य विशेषताएं भिन्न हैं :-

14.3.2 फर्मो की अधिक संख्या:-

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में बाजार में फर्मो की संख्या अधिक होती है । व फर्मो का आकार छोटा होता है । अर्थात् बाजार की पूर्ति के एक बड़े भाग पर किसी विक्रेता का नियन्त्रण नहीं रहता । प्रत्येक फर्म कुल बाजार के एक बहुत छोटे से अंश को नियन्त्रित करती है इसलिए फर्म की गतिविधियाँ अन्य फर्मो या बाजार को विशेष रूप से प्रभावित नहीं करती ।

14.3.3 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत विभिन्न विक्रेताओं द्वारा निर्मित वस्तुएं समरूप नही होती हैं । वरन एक दूसरें से भिन्न होती है । यह भेद वास्तविक अथवा काल्पनिक

हो सकता है । वस्तु विभेदीकरण के कारण ये वस्तुएं एक दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न न होकर निकट स्थानापन्न होती हैं । वस्तुओं का विभेदीकरण कई प्रकार से किया जा सकता है ।

कच्चे माल की गुणवता, वस्तु के रंग, रूप, सुगन्ध, टिकाऊपन, ट्रेड मार्क आदि में अन्तर कर वस्तु के साथ ग्राहकों को अन्य सेवाऐं प्रदान करके (साख सुविधा, घर पहुँचाने की सुविधा, मुफ्त मरम्मत की सुविधा, एक दूसरे के साथ मुफ्त या अन्य उपहार आदि प्रदान करके) विज्ञापन, प्रचार द्वारा इसे बिक्री प्रोन्नति कहते हैं । यह आजकल विक्रय की महत्वपूर्ण नीति है व इसके अन्य कारण ग्राहक इस फर्म को अन्य फर्मो की वस्तुओं से उत्कृष्ट समझने लगते हैं, इसे गैर मूल्य प्रतियोगिता कहते हैं ।

14.3.4 फर्मो को प्रवेश एवं बहिर्गमन की स्वतंत्रता -

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में किसी फर्म को उद्योग समूह में प्रविष्ट होने अथवा वर्तमान फर्म को उद्योग से बहिर्गमन करने की स्वतंत्रता होती है । क्योंकि इसके अन्तर्गत फर्मो का आकार छोटा होता है उत्पादन विधि सरल होती है । तथा कम पूंजी की फर्म होने के कारण प्रविष्टि बहिर्गमन में विशेष कठिनाई नहीं होती ।

13.4.5 फर्म का लोचदार मांग वक्र -

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में प्रत्येक फर्म वस्तु के कुल उत्पादन के बहुत थोड़े भाग को नियन्त्रित करती है । सभी फर्मो की वस्तुएँ एक -दूसरे के निकट स्थानापन्न होती है अत: एक फर्म मूल्य में कमी करके अपनी वस्तु को बहुत अधिक मात्रा में बेच सकती है बशर्ते की अन्य दूसरी फर्मे मूल्य कम न करें । इसी तरह एक फर्म द्वारा मूल्य वृद्धि करने पर क्रेता दूसरी फर्मो की वस्तुएँ क्रय करने लगते हैं, अत: एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में फर्म का मांग वक्र अधिक लोचदार होता हैं ।

बोध प्रश्न - 1

1. एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की अवधारणा का प्रतिपादन किस अर्थशास्त्री ने किया ?
2. अपूर्ण प्रतियोगिता किसे कहते हैं?
3. वास्तविक जगत में कौन -सी प्रतियोगिता पायी जाती हैं?
4. वस्तु विभेद से क्या तात्पर्य हैं?
5. निकट स्थानापन्न वस्तुओ से आप क्या समझतें हैं ?

14.4 अल्पकाल में एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में भी फर्म द्वारा मूल्य तथा उत्पादन का निर्धारण बाजार की अन्य स्थितियों की भाँति किया जाता है । अल्पकाल में समय इतना कम होता है कि फर्म अपने संयन्त्र के आकार में कोई परिवर्तन नहीं कर सकती । न ही फर्म समूह में प्रवेश कर सकती है । अल्पकाल में फर्म अपनी वस्तु के विज्ञापन, किस्म तथा डिजाइन में मामूली परिवर्तन कर सकती है, अल्पकाल में फर्म अपनी वस्तु की मांग के अनुसार उत्पादन की मात्रा एवं मूल्य का निर्धारण करती है । अल्पकाल में एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में एक फर्म अपना उत्पादन उस

समय तक बढ़ाती है जब तक एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से प्राप्त आगम उसकी लागत के बराबर नहीं हो जाता है । जैसे ही वस्तु की सीमान्त लागत एवं सीमान्त आगम दोनों बराबर होते हैं, फर्म साम्यावस्था के बाद उत्पादन बढ़ाने या घटाने का प्रयास नहीं करती । अल्पकाल में फर्म असामान्य लाभ, सामान्य, लाभ, हानि की स्थिति में हो सकती है । अल्पकाल में यदि बाजार की स्थिति फर्म के अनुकूल है, अर्थात वस्तु का मूल्य वस्तु की औसत लागत से अधिक है तो फर्म असामान्य लाभ कमाती हैं । असामान्य लाभ की स्थिति को रेखाचित्र 14.1 में दर्शाया गया है ।

रेखाचित्र 14.1 में फर्म की सीमान्त लागत (MC) ने सीमान्त आगम (MR) को E बिन्दु पर काटा है अत: E सन्तुलन बिन्दु है । इस साम्य बिन्दु पर फर्म (OQ) मात्रा का उत्पादन एवं विक्रय करती है । (OP) कीमत अथवा (SQ) औसत आगम है । तथा (TQ) अथवा (OR) औसत लागत है । फर्म का प्रति इकाई अतिरिक्त लाभ (RP) अथवा (TS) है कुल असामान्य लाभ (RPST) के बराबर है ।

यदि अल्पकाल में वस्तु का मूल्य इसकी औसत लागत के बराबर हो तो फर्म साम्यावस्था में न लाभ न हानि की स्थिति में रहती है । इस स्थिति में फर्म केवल सामान्य लाभ कमाती है । रेखाचित्र 14.2 में सामान्य लाभ को प्रदर्शित किया गया है ।

रेखाचित्र 14.2 में E साम्य बिन्दु हैं जहाँ MC=MR चित्र बनाना है । इस बिन्दु फर्म वस्तु की OQ मात्रा का उत्पादन व विक्रय करती है । PO या OR वस्तु का मूल्य है यही औसत लागत भी है । अत: फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त हो रहा है ।

यदि अल्पकाल में मूल्य फर्म के प्रतिकूल है तो साम्यावस्था में फर्म की औसत लागत फर्म के औसत आगत मूल्य से अधिक होती है । तथा फर्म को हानि होती है । यह स्थिति रेखाचित्र 14.3 में दर्शायी गयी है । की आशा नही की जाएंगी क्योंकि उद्योग की फर्म समरूप वस्तुओं का उत्पादन नही करती है । प्रत्येक फर्म स्वयं का लाभ अधिकतम करने की स्थिति को ढूंढ लेती है। प्रत्येक फर्म स्वयं चित्र बनाइए एवं पूरा पैरा टाइप कीजिए सीमान्त लागत को अपनी सीमान्त आय के बराबर करती है । लेकिन विभिन्न उत्पादों के द्वारा ली जाने वाली कीमतें एक दूसरे से बहुत ज्यादा विभिन्न नहीं होती है । अल्पकालीन सन्तुलन में हम यह तो आशा कर सकतें हैं कि कीमतें परस्पर समीप हो लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि वे एक-दूसरे के बराबर हों यदपि प्रत्येक उत्पादक को अपनी कीमत निर्धारित करने में स्वयं का कुछ निर्णय दिखाने का अवसर मिलता है। फिर भी उसके द्वारा उत्पादित की जाने वाली वस्तु के निकट के स्थानापन्न पदार्थो के प्रतिबन्धक प्रभाव पड़ते रहते है ।

14.5 दीर्घकाल मे एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण

दीर्घकाल में एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की स्थिति में कार्यशील फर्मो के पास इतना लम्बा समय होता है कि वे उत्पादन के सभी साधनों में इच्छानुसार परिवर्तन कर सकती हैं । अर्थात् कोई भी फर्म उत्पादन के पैमाने घटा-बढ़ा सकती है । दीर्घकाल में वर्तमान फर्मो के द्वारा असामान्य लाभ कमाये जाने की स्थिति में नई फर्मे प्रवेश करेंगी व कुछ फर्मे हानि होने पर उद्योग छोड़कर बाहर चली जाएंगी । इस प्रवेश में बहिर्गमन की प्रक्रिया सम्पन्न हो जाती है ।

अल्पकाल में जो फर्मे असामान्य लाभ कमा रही हैं, दीर्घकाल में फर्मो के प्रवेश के फलस्वरूप सामान्य लाभ ही कमा सकेगी । उसी प्रकार दीर्घ काल में कोई भी फर्म हानि नहीं उठायेगी।

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में दीर्घकाल में भी फर्मे असामान्य लाभ कमाती हैं तो उस समूह में नई फर्मे प्रवेश करेंगी, नई फर्मो के प्रवेश करने से दो प्रभाव होंगे । प्रथम, नई फर्मो के प्रवेश से वर्तमान बाजार अधिक विक्रेताओं में विभाजित हो जाता है । जिससे प्रत्येक फर्म पहले की तुलना में कम मात्रा में वस्तु का विक्रय कर पाती है । फलस्वरूप प्रत्येक फर्म का मांग वक्र नीचे की ओर बाएँ को सरक जाता हैं । द्वितीय, नई फर्मो के प्रवेश करने से साधनों के मूल्य वृद्धि के कारण प्रत्येक फर्म की लागतें बढ़ जाती हैं । व लागत वक्र ऊपर सरक जाते हैं । मांग वक्र के नीचे की ओर सरकने की दोहरी समायोजन प्रक्रिया के कारण असामान्य लाभ समाप्त हो जाते हैं तथा प्रत्येक फर्म केवल सामान्य लाभ ही कमा सकती है । दीर्घकाल में एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में मूल्य तथा उत्पादन तथा निर्धारण 14.4 में दर्शाया गया है ।

रेखाचित्र 14.4 में दीर्घकालीन साम्य बिन्दु E है जहाँ MC=MR है । फर्म वस्तु की QR मात्रा का उत्पादन व विक्रय कर रही है । वस्तु का मूल्य OP व QR है । यही वस्तु की औसत लागत है। औसत लागत औसत आगम (मूल्य) के बराबर होने के परिणामस्वरूप फर्म केवल सामान्य लाभ प्राप्त करेगी ।

दीर्घकाल में कोई भी फर्म हानि नहीं उठा सकती है । क्योंकि हानि की स्थिति में हानि उठाने वाली फर्मे उद्योग छोड़ देगी । उद्योग छोड़ने से एक ओर वस्तु की पूर्ति कम होने से मूल्य बढ़ जायेगा । दूसरी ओर उत्पादन के साधनों की मांग कम होने के कारण उनका मूल्य कम हो जायेगा व लगतें कम हो जायेगी । इस मूल्य बढ़ने तथा लागत कम होने की प्रक्रिया के फलस्वरूप हानि समाप्त हो जाएगी व प्रत्येक फर्म केवल सामान्य लाभ प्राप्त कर सकेगी ।

विक्रय लागतें :-

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में विभिन्न फर्मो द्वारा उत्पादित वस्तुओं में वस्तु विभेद पाया जाता है । व वस्तुएं एक-दूसरे के निकट स्थानापन्न होती हैं । अत: प्रत्येक फर्म अपनी वस्तु की बिक्री बढ़ाने के लिए विज्ञापनों का सहारा लेकर दूसरी फर्मो की वस्तुओं को घटिया व अपनी वस्तुओं को अच्छी बताने का प्रयास करती है । उपभोक्ता के मन में यह बात बैठायी जाती है कि एक फर्म विशेष की वस्तुएँ अन्य फर्मो की वस्तुओं से श्रेष्ठ हैं अत: वे सब बैठायी जाती है कि एक फर्म विशेष की वस्तुएँ अन्य फर्मो की वस्तुओं से श्रेष्ठ है । अत: वे सब लागतें जो किसी वस्तु के मांग वक्र को दाहिनी और ऊपर की तरफ उठाने (मांग वृद्धि) के लिए लगाई जाती हैं, विक्रय लागतें कहलाती हैं । विक्रय लागतों में सभी प्रकार के विज्ञापन व विक्रय कर्ताओं (salesman) के वेतन, विक्रय विभाग सम्बन्धी व्यय, दुकानों की खिड़कियों में (Show Case) किये जाने वाले प्रदर्शन व्यय, नमूना खर्च, फुटकर व थोक विक्रेताओं को दिये गये उपहार आदि सम्मिलित होते हैं। एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में विक्रय लागतें फर्म के लिए मांग सम्बन्धित महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है । इनके द्वारा उपभोक्ताओं का फर्म की वस्तुओं की जानकारी दी जाती है, जिससे दूसरी फर्मो को विक्रय लागतों के सम्बन्ध, में निर्णय लेते समय विक्रय संवर्द्धन की सीमान्त लागत व सीमान्त आगम से कम है तो विक्रय लागतों को उस समय तक बढ़ाते रहना चाहिये जब तक सीमान्त विक्रय लागत सीमान्त आगम के बराबर नहीं हो जाती है ।

बोध प्रश्न - 2

1. क्या अल्पकाल में फर्म अपने आकार में परिवर्तन कर सकती हैं?
2. एकाधिकारात्मक फर्म का साम्य बिन्दु कौन - सा होता हैं?
3. फर्म को असामान्य लाभ कब प्राप्त होता है?
4. सामान्य लाभ से आप क्या समझतें हैं?
5. दीर्घकाल में फर्मो को मात्र सामान्य लाभ क्यों प्राप्त होता हैं?
6. विक्रय लागतों का क्या महत्व हैं ?

14.6 पूर्ण प्रतियोगिता एकाधिकार तथा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे अंतर

पूर्ण प्रतियोगिता	एकाधिकार	एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता
1. असंख्य विक्रेता	एक विक्रेता	बहुत से विक्रेता।
2. समरूप वस्तु का पूर्ण स्थानापन्न	ऐसी वस्तु जिसके निकट स्थानापन्न नही होते है	निकट स्थानापन्न वस्तुओं का उत्पादन
3. सामान्य मूल्य	मूल्य विभेद	समान मूल्य
4. विक्रय लागतों का अभाव	विक्रय लागतों का अभाव	विक्रय लागत महत्वपूर्ण
5. पूर्णतया लोचदार मांग वक्र	बेलोचदार मांग वक्र	अधिक लोचदार मांग वक्र
6. उद्योग की कुल मांग वक्र व पूर्ति द्वारा मूल्य निर्धारण	फर्म द्वारा मूल्य निर्धारण	फर्म द्वारा मूल्य निर्धारण किन्तु अन्य फर्मो से भी प्रभावित
7. फर्मो का स्वतन्त्र प्रवेश व बहिर्गमन	फर्मो में प्रवेश में प्रभावपूर्ण रुकावटें	फर्मो का स्वतन्त्र प्रवेश व बहिर्गमन
8. दीर्घकाल में फर्म को केवल सामान्य लाभ	दीर्घकाल में फर्म को सामान्य लाभ	दीर्घकाल में फर्म को केवल सामान्य लाभ

14.7 सारांश

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता अपूर्ण प्रतियोगिता के विभिन्न उपवर्गो में से केवल एक उपवर्ग है । यह पूर्ण प्रतियोगिता के अधिक निकट पायी जाती है । वास्तविक जगत में यही प्रतियोगिता बाजार में उपस्थित रहती है । जिससे अनेक विक्रेता निकट स्थानापन्न वस्तुओं का विक्रय करते हैं । व आपस में कड़ी प्रतियोगिता करते हैं । इनमें आपस में गैर मूल्य प्रतियोगिता भी पायी जाती है । इस प्रतियोगिता में क्रेताओं को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए विक्रय संवर्धन उपायों का भी सहारा लेते हैं । वास्तविक जगत में एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अनेक उदाहरण हैं जैसे नहाने के साबुन, तेल, प्रसाधन सामग्री, इलेक्ट्रोनिक उत्पादन आदि ।

14.8 शब्दावली

अल्पाधिकारी	Oligopoly	कुछ विक्रेताओं का बाजार
द्वयाधिकारी	Duopoly	दो विक्रेताओं का बाजार
निकट स्थानापन्न	Close Substitute	एक सीमा के बाद वस्तु का

14.9 संदर्भ ग्रंथ

अग्रवाल: अर्थशास्त्र के सिद्धान्त - The Student Book company. जयपुर

इकाई 15

वितरण का सीमांत उत्पादकता सिद्धान्त MARGINAL PRODUCTIVITY THEORY OF DISTRIBUTION

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 उत्पादन के साधन

15.3 सीमान्त उत्पादकता की अवधारणाएं

15.3.1 सीमान्त भौतिक उत्पादकता

15.3.2 सीमान्त आगम उत्पादकता

15.3.3 सीमान्त उत्पादकता का मूल्य

15.4 वितरण का सीतान्त उत्पादकता सिद्धान्त

15.4.1 सिद्धान्त का सामान्य कथन एवं व्याख्या

15.4.2 सिद्धान्त की मान्यताएं

15.4.3 सिद्धान्त की आलोचनाएं

15.5 सारांश

15.6 शब्दावली

15.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

15.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- किसी साधन की सीमान्त उत्पादकता के मापन के सम्बन्ध में कौन-कौन सी अवधारणाएं प्रचलित है यह जान सकेगें
- वितरण की सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त के सामान्य कथन के बारे में समझ सकेंगे
- यह सिद्धान्त उत्पादन के साधनों के पुरस्कार अथवा कीमत निर्धारण की सामान्य व्याख्या किस प्रकार प्रस्तुत करता है यह समझ सकेंगे ।

15.1 प्रस्तावना

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त वितरण का महत्वपूर्ण सिद्धान्त माना गया है । यह सिद्धान्त उत्पादन को उत्पादन के साधनों में विभाजित करने की व्याख्या प्रस्तुत करता हैं हम जानतें है कि उत्पादन की प्रक्रिया में उत्पादन के साधनों (भूमि, पूँजी, श्रम, साहस एवं संगठन) की भागीदारी होती है । ये सभी साधन अपने सहयोग के बदले प्रतिफल की आशा करते हैं ।

संयुक्त उत्पति का इन साधनों (जो इसके उत्पादन में सहयोग करते हैं) के बीच विभाजन एक जटिल समस्या होती है । साधनों के मूल्य निर्धारण या वितरण प्रणाली का देश के उत्पादन, आर्थिक समृद्धि तथा आर्थिक कल्याण पर गहरा प्रभाव पड़ता है । वितरण की समानता, न्यायोचितता तथा उपयुक्तता देश में आर्थिक कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है । वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त संयुक्त उत्पत्ति में इन साधनों की अंश भागिता को निर्धारित कर उनकी कीमत निर्धारित करता है । वितरण जितना न्यायपूर्ण होगा साधन उतना ही संतुष्ट रहेगा वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का विस्तृत विवेचन जे बी. क्लार्क, वालरस, जेवन्स विकस्टीड आदि अर्थशास्त्रियों द्वारा किया गया है । क्लार्क का मानना था कि प्रतियोगी परिस्थितियों में श्रम ही नहीं अपितु उत्पादन के प्रत्येक साधन का पारिश्रमिक कुल उत्पादन में इनके योगदान के समान ही होता है । यदि प्रत्येक साधन का पारिश्रमिक कुल उत्पादन में इनके योगदान के समान ही होता है । यदि प्रत्येक साधन को उसके सीमान्त उत्पादन के आधार पर पारिश्रमिक दिया जावे तो कुल उत्पादन का उत्पादन के साधनों के मध्य पूरा-पूरा बंटवारा हो जाता है । इसे सामान्य तौर पर क्लार्क विक्सटीड का उत्पादन समाप्ति प्रमेय (Product Exhaustion Theocrem) के नाम से जाना जाता हैं हालांकि वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त काफी प्रचलित रहा एवं कुल उत्पादन के न्यायोचित वितरण का ठोस आधार बना । वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की व्याख्या करने से पूर्व हमें उत्पादन के साधन एवं सिद्धान्त में उपयुक्त मुख्य शब्द सीमान्त उत्पादकता का अर्थ भलीभांति समझना उचित होगा ।

15.2 उत्पादन के साधन

प्रत्येक देश में प्रतिवर्ष बहुत सी वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन किया जाता है । उत्पादन की प्रक्रिया में उत्पादन के साधनो का सहयोग आवश्यक होता है । अर्थशास्त्र में भूमि, पूंजी, श्रम एवं साहसी या उद्दाम को उत्पादन के साधन कहते हैं । इनकी सामान्यत: प्रचलित परिभाषाएं निम्न प्रकार हैं :-

1. **भूमि :-** यह प्रकृति से प्राप्त भौतिक संसाधन है इसमें सभी खनिज, ठोस एवं जल संसाधन सम्मिलित है ।
2. **श्रम :-** इसमें मनुष्य द्वारा उत्पादन की प्रक्रिया में किए जाने वाले सभी भौतिक एवं बौद्धिक प्रयास सम्मिलित है ।
3. **पूंजी :-** प्रकृति की देन को वस्तुओं में परिवर्तित करने के प्रयास, में मानव समय पर कुछ पदार्थो को इस प्रकार बदलता-ढालता रहा है कि वस्तु निर्माण कार्य और सहज हो सके । इन्हीं परिवर्तित स्वरूप पदार्थो को प्रदान किया गया साझा नाम पूंजी है ।
4. **साहसी :-** उत्पादन की व्याख्या करने एवं जोखिम उठाने की मानवीय योग्यता विशेष को उद्दाम कहते हैं । उत्पादन की प्रक्रिया में उपरोक्त साधन (भूमि, श्रम, पूंजी एवं साहसी) मिलकर सहयोग करते हैं । इसके प्रतिफल के रूप में भूमि को लगान, श्रम को को मजदूरी, पूंजी को ब्याज तथा साहसी को लाभ प्राप्त होता है । इसके निर्धारण में सबसे बड़ी कठिनाई यह आती है कि कुल उत्पादन की उत्पत्ति में प्रत्येक साधन का योगदान कितना कितना है । वितरण का उत्पादकता सिद्धान्त मुख्य रूप से उत्पादन के प्रत्येक साधन का उसकी सीमान्त उत्पादकता के आधार पर योगदान निर्धारित कर उसकी कीमत निर्धारित करता है ।

15.3 सीमान्त उत्पादकता की अवधारणाएं

वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त के प्रमुख शब्द सीमान्त उत्पादकता के सम्बन्ध में आर्थिक जगत में सामान्यत: तीन अवधारणाएं प्रचलित हैं -

(1) सीमान्त भौतिक उत्पादकता (Marginal Physical Productivity i. e,MPP)

(2) सीमान्त आगम उत्पादकता (Marginal Revenue Productivity i. e,MRP)

(3) सीमान्त उत्पादकता का मूल्य (Value of Marginal Product i. e, VMP)

(4) सीमान्त भौतिक उत्पादकता (Marginal Physical Productivity i. e, MPP)

उत्पादन की प्रक्रिया में उत्पादन के अन्य साधनों को स्थिर रखकर एक साधन की मात्रा में एक इकाई वृद्धि करने से कुल भौतिक उत्पादन में होने वाली वृद्धि उस साधन की सीमान्त भौतिक उत्पादकता कहलाती है । गणितीय है । गणितीय रूप में इसे निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है ।

$$\text{MPP} = \frac{TPP}{\Delta F}$$

यहां पर

MPP : साधन की सीमान्त भौतिक उत्पादकता

TPP : कुल भौतिक उत्पादन में होने वाला परिवर्तन

Δ F - साधन की मात्रा में होने वाला परिवर्तन

एक काल्पनिक उदाहरण की सहायता में इसे निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है ।

उदाहरण -

मान लिजिए 20 श्रमिक पूंजी की 20 इकाईयों का प्रयोग कर 500 पैन का उत्पादन करते हैं । यदि पूंजी की 20 इकाइयों के साथ श्रमिकों की 21 इकाइयों का प्रयोग किया जाता है तो 540 पैन का उत्पादन होता हैं इससे स्पष्ट हो जाता है कि 21 वे श्रमिक का कुल उत्पादन में योगदान 540-500 = 40 पैन का हैं । यह श्रम की भौतिक उत्पादकता (MPP) कहलायेगी । सूत्र का प्रयोग कर MPP की गणना निम्न प्रकार की जायेंगी ।

$$\text{MPP} = \frac{TPP}{\Delta F}$$

यहां पर TPP = 540-500 = 40

L = 21-20 = 1

अत: MPP = $\frac{40}{1} = 40$

परिवर्तनशील अनुपात के नियम (Low of variable Proportion) कारण प्रारम्भ में परिवर्तन शील साधन की सीमान्त भौतिक उत्पादकता बढ़ती है, एक बिन्दु पर अधिकतम हो जाती है । तत्पश्चात गिरने लगती है । दूसरे शब्दों में सीमान्त भौतिक उत्पादकता वक्र (MPP Curve) की आकृति उल्टे U - आकार (Inverted U-Shape) की होती है ।

(II) सीमान्त आगम उत्पादकता (Marginal Revenue Productiviy i. MRP)

उत्पादन के अन्य साधनों को स्थिर रखकर एक साधन की मात्रा में एक इकाई वृद्धि करने से कुल आगम में होने वाली वृद्धि उस साधन की सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) कहलाती हैं। गणितीय रूप में इसे निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता हैं -

$$\text{MPP} = \frac{TPP}{\Delta P}$$

यहाँ पर

MRP - साधन की सीमान्त आगम उत्पादकता

Δ TPR - कुल आगम में होने वाला परिवर्तन

Δ F - साधन की मात्रा में होने वाला परिवर्तन

सीमान्त आगम उत्पादकता को एक दूसरी प्रकार से भी किया जा सकता है । यदि साधन की सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP) को सीमान्त आगम (MR) से गुणा कर दिया जावे तो जो गुणनफल प्राप्त होगा वह उस साधन की सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) होगी । सूत्रानुसार

MRP = MPP + MR

एक काल्पनिक उदाहरण की सहायता से इसे स्पष्ट किया जा सकता है ।

उदाहरण -

मान लिजिये 20 श्रमिक एवं 20 पूंजी की इकाईयों का प्रयोग करके उत्पादित होने वाले 500 पैन बेचने से 2000 रूपये का आगम प्राप्त होता है । तथा यदि श्रमिकों की 21 इकाई एवं पूंजी की 20 इकाइयों का प्रयोग करने से उत्पादित 540 पैन बेचने से 2160 रूपये का आगम प्राप्त होता है तो श्रम की सीमान्त आगम उत्पादकता 160 रूपये होगी । सूत्र का प्रयोग कर सीमान्त आगम उत्पादकता की गणना निम्न प्रकार की जा सकती है । सूत्रानुसार

$$\text{MRP} = \frac{TR}{\Delta F}$$

Δ TR = 2160-2000=160

Δ F = 21-20=1

$$\text{MRP} = \frac{160}{1}$$

= 160 रू

MRP की गणना वैकल्पिक सूत्र का प्रयोग करके भी की जा सकती है ।

वैकल्पिक सूत्र

MRP=MPP+MR

प्रश्नानुसार MPP= 40 है यदि अतिरिक्त पैन की कीमत 4 रूपये है तो MR = 4 होगा तथा MRP = 40 + 4 = 160 रूपये होगी ।

(III)सीमान्त उत्पादकता का मूल्य (Value of Marginal Product i. e, VMP)

सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP) को वस्तु की कीमत से गुणा करने पर जो गुणनफल प्राप्त होता है वह सीमान्त उत्पादकता का मूल्य (VMP) कहलाता है ।

सूत्रानुसार

VMP = MPP X P

यहां

VMP = साधन की सीमान्त उत्पादकता का मूल्य

MPP= सीमान्त भौतिक उत्पादकता

P = वस्तु की कीमत

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत वस्तु की कीमत (P), औसत आगम (AR) तथा सीमान्त आगम (MR) तीनों बराबर होते हैं अर्थात् P = AR = MR ऐसी स्थिति में MRP = VMP होगा । परन्तु अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में वस्तु की कीमत सामान्यत: सीमान्त आगम से अधिक होती है इसलिए P = AR> MR होंगा । जिसके कारण MRP<VMP या VMP>MRP हो जायेगा।

बोध प्रश्न - 1

1. सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP) की अवधारणा को समझाइये ।
2. सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) की अवधारणा की व्याख्या कीजिये ।
3. सीमान्त उत्पादकता का मूल्य (VMP) की अवधारणा को स्पष्ट कीजिये ।
4. एक फर्म में 10 श्रमिक कार्य करे है और यह फर्म प्रतिदिन 20 मेज उत्पादि कर उन्हें 100 रूपये प्रति इकाई की दर से बेच देती है । यदि यह फर्म एक और श्रमिक को काम पर लगाले तो वह 25 मेज उत्पादित कर सकती है और उन्हें उसी कीमत पर बेच सकती हैं । इस जानकारी के आधार पर बताइये कि

क. श्रम की सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP) क्या हैं

ख. श्रम की सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) क्या हैं

ग. श्रम की सीमान्त उत्पादकता का मूल्य (VMP) क्या हैं

15.4 वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धांत

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त वितरण का महत्वपूर्ण सिद्धान्त है । सर्वप्रथम यह सिद्धान्त मजदूरी के निर्धारण की व्याख्या के लिए प्रस्तुत किया गया था । परन्तु बाद में उत्पादन के अन्य साधन (भूमि, पूंजी, आदि) की कीमतों के निर्धारण की व्याख्या भी इसके द्वारा की गई । जे. बी. क्लार्क, जेवन्स, वालरस, मार्शल तथा हिक्स आदि अर्थशास्त्रियों ने इसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया ।

15.4.1 सिद्धान्त का सामान्य कथन एवं व्याख्या

वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का सामान्य कथन यह है कि दीर्घकाल में प्रत्येक उत्पादन साधन की कीमत उस साधन की सीमान्त उत्पादकता के बराबर होती है । मोरिस एवं फिलिप्स के अनुसार "एक प्रतियोगी फर्म अधिकतम लाभ प्राप्ति के लिए परिवर्तनशील साधन की इकाईयों को उस बिन्दु तक रोजगार प्रदान करेगी जिस पर साधन की सीमान्त भौतिक उत्पादकता का मूल्य साधन की कीमत के बराबर हो जायें ।" यह तब ही सम्भव होगा जब फर्म के लाभ को अधिकतम करने वाली किसी साधन की मात्रा निम्नलिखित शर्तो को पूरा करे ।

(1) जब केवल एक ही परिवर्तनशील साधन है तो फर्म अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए साधन को उस मात्रा में रोजगार प्रदान करेगी जिस पर उस समय साधन की सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) तथा उस साधन की कीमत बराबर हो ।

गणितीय रूप में

$Pf = MRP_F$

यहां

Pf = साधन की कीमत

MRP_F = साधन की सीमान्त आगम उत्पादकता

(2) उत्पादन के साधन की सीमान्त उत्पादकता सभी उद्योगों मे बराबर हो । सूत्र के रूप में इसे निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है । X साधन A उद्योग में सीमान्त आगम उत्पादकता = X साधन की B उद्योग में सीमान्त आगम उत्पादकता है ।

(3) जब एक से अधिक परिवर्तनशील साधन हो तो फर्म अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए इन साधनों के उस संयोग को रोजगार प्रदान करेगी जहां पर प्रत्येक साधन की सीमान्त आगम उत्पादकता और उसकी कीमत का अनुपात बराबर हो जायेगा अर्थात् X साधन की सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP_x तथा उसकी कीमत R_x) का अनुपात दूसरे साधन (Y साधन) की सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP_y) तथा उसकी कीमत (P_y) के बराबर होयेगा ।

$$\frac{MRP_x}{P_x} = \frac{MRP_y}{P_y}$$

15.4.2 वितरण सिद्धान्त की मान्यताएँ सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है ।

1. वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है ।
2. साधन बाजार में भी पूर्ण प्रतियोगिता होती है । जिसके कारण एक फर्म साधन की प्रचलित कीमत पर उसकी जितनी चाहे मात्रा को काम पर लगा सकती है ।
3. उत्पादन करने का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है ।
4. साधन की प्रत्येक इकाई समरूप है ।
5. यह सिद्धान्त पूर्ण रोजगार की मान्यता पर आधारित है ।
6. सिद्धान्त में यह मान लिया गया है कि उत्पादन में परिवर्तनशील अनुपातों का नियम क्रियाशील रहता है ।
7. उत्पादन की प्रक्रिया में एक साधन ही परिवर्तनशील होता है अन्य साधनो को स्थिर मान लिया जाता है ।
8. उत्पादन की तकनीकी स्थिर रहती है ।
9. यह सिद्धान्त दीर्घकालीन प्रवृत्ति को बतलाता हैं ।
10. साधन की सीमान्त उत्पादकता को मापा जा सकता है ।

15.4.3 सिद्धान्त की आलोचनाएं

अवास्तविक एवं अव्यावहारिक मान्यताओं पर आधारित होने के कारण इस सिद्धान्त की अनेकों आलोचनाएं हुई जिनमें से कुछ प्रमुख आलोचनाएं निम्न प्रकार हैं -

1. एक सामान्य सिद्धान्त के रूप में यह सिद्धान्त अपना स्थान नहीं बना पाया क्योंकि इस सिद्धान्त में साधन के कीमत निर्धारण में मांग और पूर्ति पक्ष पर समान रूप से ध्यान न देकर केवल मांग पक्ष पर ही जोर दिया गया है ।
2. यह सिद्धान्त दीर्घकालीन दृष्टिकोण रखता है और अल्पकाल में साधनों के कीमत निर्धारण का सही विश्लेषण प्रस्तुत नहीं करता ।
3. पूर्ण प्रतियोगिता एवं पूर्ण रोजगार की धारणा काल्पनिक हैं । वास्तविक जीवन में ये नही पाई जाती है । जबकि इस सिद्धान्त में इन्हें मान लिया गया है ।
4. यदि उत्पादन के क्षेत्र मे उत्पति वृद्धि नियम काम कर रहा हो तो यह सिद्धान्त लागू नही हो पाता । जबकि व्यावहारिकता में उत्पादन की प्रक्रिया में उत्पति वृद्धि नियम भी पाया जाता है ।
5. किसी साधन की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात करना अत्यन्त कठिन होता है । क्योंकि वास्तविकता में किसी वस्तु का उत्पादन विभिन्न साधनों के संयुक्त प्रयत्नों का परिणाम होता है। तथा ऐसी स्थिति में एक साधन की सीमान्त उत्पादकता को पृथक करके ज्ञात करना अत्यन्त कठिन कार्य है ।
6. यह सिद्धान्त दीर्घकालीन स्थिर अर्थव्यवस्था की मान्यता पर निर्भर करता है परन्तु वास्तविक जीवन में गत्यात्मक अवस्था पाई जाती है तथा अल्पकाल का विशेष महत्व होता है ।
7. साधन की प्रत्येक इकाई समरूप होती है । यह मान्यता वास्तविकता से हट कर ली गई मान्यता है । क्योंकि वास्तविकता में तो साधन की प्रत्येक इकाई में असमानता पाई जाती है ।

बोध प्रश्न - 2

1. वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की क्या मान्यताएं हैं ?
2. वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये ।

15.5 सारांश

साधन कीमत निर्धारण में वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का महत्वपूर्ण स्थान है । इस सिद्धान्त के अनुसार साधनो की कीमतें उनकी सीमान्त उत्पादकता के द्वारा निर्धारित होती है तथा साधनो को प्रतिफल उनकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार दिया जाना चाहियें कि यह सामाजिक दृष्टि से उचित तथा नैतिक दृष्टि से वांछनीय भी है कि विभिन्न साधनों को भुगतान उनकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर दिया जाये । सीमान्त उत्पादकता के मापन के सम्बन्ध में तीन अवधारणाएं प्रचलित हैं - 1, सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP) 2- सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) तथा 3. सीमान्त उत्पादकता का मूल्य (VMP) पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में MRP=PP होता है । संतुलन की स्थिति के लिए आवश्यक है कि साधनों की विभिन्न इकाइयों को सभी उद्योगों में एक सा पारिश्रमिक मिले तथा यह उनकी सीमान्त आगम उत्पादकता के बराबर हो । यदि साधन की कीमत उसकी सीमान्त आगम उत्पादकता से कम है तो साधन का शोषण होगा और वह इस उद्योग को छोड़कर दूसरे उद्योग में चला जायेगा । यह क्रम तब तक चलता रहेगा जब तब P =MRP न हो जायें इसके विपरीत यदि साधन की कीमत

उसकी MRP से अधिक हैं तो उत्पादक को हानि होगी और वह साधन की इकाइयों को कम करने लगेगा ये जिससे साधन की सीमान्त आगम उत्पादकता बढ़ जायेगी और यह प्रक्रिया तब तक चलेगी जब तब तक P = MRP ही होगा । यह सिद्धान्त अनेकों अवास्तविक एवं अव्यावहारिक मान्यताओं जैसे पूर्ण प्रतियोगिता, पूर्ण रोजगार, उत्पादन की तकनीकी का स्थिर होना, सीमान्त आगम उत्पादकता का मापन सम्भव होना, परिवर्तनशील अनुपात नियम का क्रियाशील होना आदि मान्यताओं पर टिका हुआ होने के कारण विभिन्न आलोचनाओं का शिकार हुआ, परन्तु फिर भी वर्तमान में यह साधन कीमत निर्धारण में अपना महत्व बनाये हुये है क्योंकि सीमान्त उत्पादकता साधन की कीमत को निर्धारित करने वाला एक महत्वपूर्ण आर्थिक कारण है इसे नकारा नहीं जा सकता है ।

15.6 शब्दावली

उत्पादन समाप्ति प्रमेय (Product Exhaustion Theorm

यह प्रत्येक साधन की प्रत्येक इकाई को उस साधन की सीमान्त उत्पादकता के समान प्रतिफल दिया जाए तो सारा उत्पादन पूरी तरह बट जाता है ।

परिवर्तनशील अनुपात का नियम (Law of Variable Prortions)

जब अन्य साधनों की मात्रा को स्थिर रखकर एक साधन की मात्रा को बढ़ाया जाता है तो परिवर्तनशील साधन की सीमान्त भौतिक उत्पादकता अन्तोगत्वा अवश्य घटती है ।

पूर्ण प्रतियोगिता (Perfect Competition))

बाजार की वह स्थिति जिनमें अनेक क्रेता, अनेक विक्रेता, समरूप वस्तु स्वतंत्र प्रवेश, बाजार का पूर्ण ज्ञान, साधनों में पूर्ण गतिशीलता एवं परिवहन लागतों की अनुपस्थिति पाई जाती है पूर्ण प्रतियोगी कहलाती है । इस बाजार में क्रेता या विक्रेता बाजार कीमत पर नियंत्रण नहीं रख पाता है ।

15.7 संदर्भ ग्रंथ

आहूजा एच. एल. : उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, एस. चांद एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2006

बरला सी. एस, : उच्चतर व्यष्टिगत अर्थशासत्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस जयपुर, 1999

Salvatore D : Mirco Economic Theory and Applications, 4th Edition, 2003

Stoneier A.W.and Hauge D.C : A Text Book of Economic theory, Macmillan, Landon,

15.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्नों - 1

प्रश्न (1) भाग 15.3 देखें ।

प्रश्न (2) भाग 15.3 देखें ।

प्रश्न (3) भाग 15.3 देखें ।

प्रश्न (4 - क) -5

प्रश्न (4 - ख) -125 रूपये

प्रश्न (4 - ग) - 125 रूपये

बोध प्रश्न - 2

प्रश्न (1) उपभोग 15.4.2 देखें ।

प्रश्न (2) भाग 15.4 देंखे ।

इकाई - 16

पूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकार के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण wage Determination Under Perfect Competition And Monopoly

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 मजदूरी निर्धारण

16.2.1 श्रम की मांग

16.2.1 मांग की पूर्ति

16.3 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी का निर्धारण

16.4 एकाधिकार के अन्तर्गत मजदूरी का निर्धारण

16.5 सारांश

16.6 शब्दावली

16.7 संदर्भ ग्रंन्थ

16.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

16.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात आप

- मजदूरी का तात्पर्य समझ सकेंगे
- मौद्रिक एवं वास्तविक मजदूरी में अन्तर समझ सकेंगे
- मजदूरी का पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के अन्तर्गत किस प्रकार निर्धारण किया जाता है उसकी विवेचना कर सकेंगे

16.1 प्रस्तावना

श्रम के प्रयोग के लिए दी गई कीमत मजदूरी कहलाती है । अर्थशास्त्र में श्रम उन सब मानसिक एवं शारिरिक कार्यो के लिए प्रयोग किया जाता है जो धन प्राप्त करने के उद्देश्य से किये जाते हैं । श्रम उत्पादन का एक सक्रिय एवं महत्वपूर्ण साधन किया जाता है । उत्पत्ति के साधन के रूप में श्रम को राष्ट्रीय आय में जो भाग मिलता है वह मजदूरी कहलाती है । दूसरे शब्दो में राष्ट्रीय आय का वह भाग जो श्रम उत्पादन प्रक्रिया में सहयोग के बदले प्राप्त होता है मजदूरी कहलाता है। अर्थशास्त्र में मजदूरी के सम्बन्ध में दो अवधारणाएं प्रचलित हैं

(1) मौद्रिक मजदूरी

(2) वास्तविक मजदूरी

(1) मौदिक मजदूरी

वह मजदूरी जो श्रमिक को द्रव्य या मुद्रा के रूप में प्राप्त होती है मौद्रिक मजदूरी कहलाती है । प्रो. व्हाइट हैड के अनुसार "मौद्रिक मजदूरी एक श्रमिक द्वारा अर्जित मुद्रा की वास्तविक मात्रा हैं" (Money wages refers to the actual money earned by the worker)

अत: यह नकद मजदूरी की वह मात्रा है जो श्रमिक को श्रम के एक निश्चित समय (प्रति घण्टा, प्रतिदिन, प्रतिमाह इत्यादी) में मुद्रा या द्रव्य के रूप में दी जाती है ।

(2) वास्तविक मजदूरी

यह वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा को बताती हैं जो कि एक व्यक्ति अपनी नकद या द्राव्यिक मजदूरी से प्राप्त कर सकता है । दूसरे शब्दों में वास्तविक मजदूरी मौद्रिक मजदूरी की क्रय शक्ति होती है । वास्तविक मजदूरी में मौद्रिक मजदूरी के अतिरिक्त कुछ लाभ तथा सुविधाएं भी शामिल होती हैं जैसे निःशुल्क चिकित्सा सुविधा, सस्ता मकान आदि । वास्तविक मजदूरी के निर्धारण में नकद मजदूरी, कीमत स्तर, कार्य के घण्टे, रोजगार की प्रकृति, सहायक आय (निःशुल्क मकान, भोजन, वर्दी चिकित्सा सुविधाएं आदि) तथा कार्य की दशायें आदि तत्व महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है ।

बोध प्रश्न - 1

1. मजदूरी की परिभाषा बताइए तथा मौद्रिक मजदूरी तथा वास्तविक मजदूरी में अन्तर स्पष्ट कीजिये ।

16.2 मजदूरी का निर्धारण

मजदूरी निर्धारण के सम्बन्ध में समय-समय पर अपने समय की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अर्थशास्त्रियों द्वारा मुख्य रूप से निम्नलिखित सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं :-

1. मजदूरी का जीवन स्तर सिद्धान्त
2. मजदूरी का जीवन निर्वाह सिद्धान्त
3. मजदूरी कोष सिद्धान्त
4. मजदूरी का अवशेष अधिकारी सिद्धान्त
5. मजदूरी का बट्टा सहित सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त
6. मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त
7. मजदूरी का आधुनिक सिद्धान्त

उपरोक्त सिद्धान्तों में से पहले पाँच सिद्धान्तों का अपूर्ण, दोषपूर्ण, तथा अनेक आलोचनाओं के कारण वर्तमान में कोई महत्व नहीं रहा है । मजदूरी के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का एक साधन के सन्दर्भ में विस्तृत विवरण इकाई - 15 में दिया जा चुका हैं। वर्तमान समय में मजदूरी का आधुनिक सिद्धान्त ही सबसे अधिक प्रचलित है तथा मजदूरी निर्धारण में अपना विशेष महत्व रखता है ।

मजदूरी के आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार जिस प्रकार किसी वस्तु का मूल्य निर्धारण उस वस्तु की मांग एवं पूर्ति की शक्तियों के साम्य से होता है, ठीक उसी प्रकार मजदूरी का निर्धारण भी श्रमिकों की मांग एवं पूर्ति की पारस्परिक शक्तियों के संतुलन से होता है । दूसरे शब्दों में एक

उद्योग में मजदूरी का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहां श्रम को कुल मांग वक्र एवं श्रम का कुल पूर्ति वक्र एक दूसरे को काटते हैं । अत: मजदूरी का निर्धारण करने के लिए श्रम की मांग वक्र एक दूसरे को काटते हैं । अत: मजदूरी का निर्धारण करने के लिए श्रम की मांग वक्र एवं पूर्ति तथा इनकी अन्तक्रिया (Interaction) का विवेचन करना आवश्यक है ।

16.2.1 श्रम की मांग

श्रम की मांग उत्पादको द्वारा उत्पादन कार्य के लिए की जाती है क्योंकि श्रम उत्पादन का एक सक्रिय एवं महत्वपूर्ण साधन होता है । श्रम की मांग व्युत्पन्न मांग (Derived Demand) होती है । क्योंकि यह उन वस्तुओं एवं सेवाओं की मांग पर निर्भर करती है जिनके उत्पादन में श्रम का प्रयोग हुआ है । अत: हम कह सकते हैं कि श्रम की मांग मजदूरी की निश्चित दर पर श्रमिकों की वह संख्या है जिन्हें उत्पादक काम पर लगाना चाहता है । उत्पादक श्रम की मांग श्रम की सीमान्त उत्पादकता (Marginal Productivity) को ध्यान में रखकर करता है । कोई उत्पादक सामान्यत: श्रम को उसकी सीमान्त उत्पादकता से अधिक मजदूरी नहीं देना चाहता है । वह हमेशा श्रम को उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर ही मजदूरी अदा करना चाहेगा ।

मजदूरी की दर एवं श्रम की मांग में उल्टा सम्बन्ध (Inverse Relation) पाया जाता है । इसका तात्पर्य यह है कि जब मजदूरी की दर अधिक होगी तो श्रम की मांग कम होगी तथा जब मजदूरी की दर कम होगी तो श्रम की मांग अधिक होगी । श्रम का मांग वक्र चित्र - 16.1 के अनुसार बांये से दांये की ओर उपर से नीचे गिरती रेखा होती है ।

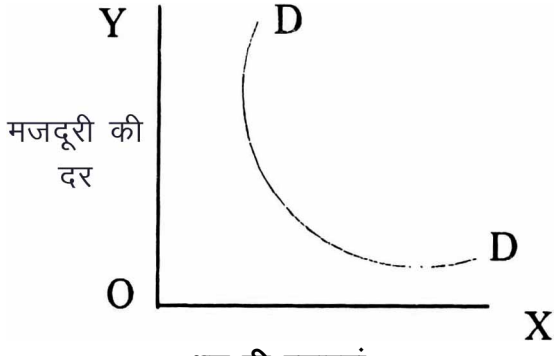

श्रम की इकाइयां

चित्र संख्या 16.1

चित्र संख्या 16.1 में OX अक्ष पर श्रमिकों की संख्या तथा OY अक्ष पर मजदूरी की दर को लिया जाता है । DD श्रम की मांग वक्र है । जो यह बतलाता है कि जैसे-जैसे मजदूरी की दर घटती जाती है श्रम की माँग बढ़ती जाती है । और जैसे-जैसे मजदूरी की दर बढ़ती जाती है श्रम की मांग कम होती जाती है ।

16.2.2 श्रम की पूर्ति

किसी उद्योग के लिए श्रम की पूर्ति का अभिप्राय एक विशेष प्रकार के श्रमिकों की उस संख्या से है जो विभिन्न मजदूरी दरों पर अपनी सेवाओं को अर्पित करने को तत्पर है । यदि मजदूरी की दर एक श्रम की पूर्ति के बीच के सम्बन्ध को देखा जाये तो हम पाते हैं कि मजदूरी

की अधिक दर पर अधिक श्रमिक काम करने को तत्पर होते हैं जबकि मजदूरी की नीची (कम) दर पर कम श्रमिक काम करने के लिये तैयार होते हैं । अत: यह प्रकट होता है कि मजदूरी की दर एवं श्रम की पूर्ति में सीधा सम्बन्ध पाया जाता हैं । यहां यह ध्यान देने की बात है कि श्रमिकों की पूर्ति की नीचली सीमा श्रमिको के जीवन स्तर द्वारा निर्धारित होती है । यदि मजदूरी की दर उनके न्यूनतम जीवन स्तर की लागत से कम है तो श्रमिक कार्य करने के लिए अपनी पूर्ति नहीं करेंगे । अर्थात् न्यूनतम जीवन स्तर द्वारा निर्धारित होती है । यदि मजदूरी की दर उनसे न्यूनतम जीवन स्तर की लागत से कम है तो श्रमिक कार्य करने के लिये अपनी पूर्ति नहीं करेंगे। अर्थात् न्यूनतम जीवन स्तर के लिए आवश्यक मजदूरी की दर से कम मजदूरी की दर पर श्रमिकों एवं मनोवैज्ञानिक तत्व भी होते हैं । अनार्थिक तत्वों में घर के लिए मोह, सामाजिक वातावरण घरेलू वातावरण आदि प्रमुख हैं जबकि मनोवैज्ञानिक तत्वों में कार्य तथा आराम के मध्य समय का विभाजन प्रमुख होता है ।

यदि श्रम की पूर्ति के सम्बन्ध में निर्धारक तीनों तत्वों (आर्थिक, अनार्थिक एवं मनोवैज्ञानिक) को ध्यान में रखकर मजदूरी की दर एवं श्रम की पूर्ति का विश्लेषण किया जायें तो यह ज्ञात होता है कि प्रारम्भ में मजदूरी की वृद्धि से श्रम की पूर्ति बढ़ेगी परन्तु एक सीमा के बाद यानि मजदूरी की दर में और वृद्धि हो गई तो श्रम की पूर्ति कम हो जायेगी । क्योंकि हो सकता है श्रमिक आय प्रभात के कारण कम घण्टे ही कार्य करना चाहे । ऐसी स्थिति में श्रम का पूर्ति वक्र पीछे ओर मुड़ने वाला (Backward Sioping) होगा। इसे चित्र - 2 द्वारा निम्न प्रकार दर्शाया जा सकता है।

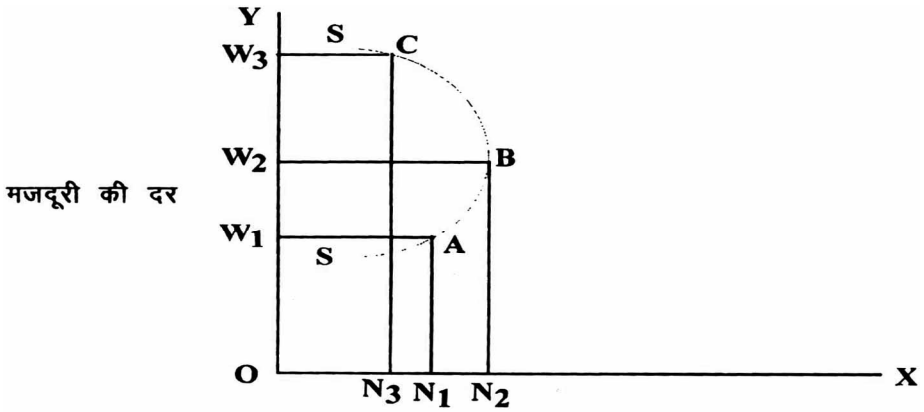

चित्र संख्या 16.2

चित्र संख्या 16.2 में श्रम की पूर्ति तथा मजदूरी की दर के सम्बन्ध को दर्शाया गया है । OX अक्ष पर श्रम की पूर्ति तथा OY अक्ष पर मजदूरी की दर को लिया गया है । SS श्रम का वक्र है। जब मजदूरी की दर OW1 से बढ़कर OW2 हो जाती है तो श्रम की पूर्ति ON1 से बढ़कर ON2हो जाती है परन्तु यदि मजदूरी की दर में और अधिक वृद्धि हो जायें अर्थात् वह OW2 से बढ़कर OW3 हो जाये तो श्रम की पूर्ति ON2 से घटकर ON3 रह जाती है ।

बोध प्रश्न - 2

1. श्रम की मांग एवं मजदूरी की दर के सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिये ।
2. पीछे की ओर मुड़ते हुए श्रम के पूर्ति वक्र पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये ।

16.3 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी का निर्धारण

एक उद्योग के लिए पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में मजदूरी वहाँ पर निर्धारित होती है जहाँ पर श्रम की माँग एवं श्रम की पूर्ति बराबर हो । पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में मजदूरी निर्धारण को चित्र संख्या 16.3 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है -

चित्र संख्या 16.3 में OX अक्ष पर श्रमिकों की संख्या OY अक्ष पर मजदूरी की दर को लिया गया है । एक उद्योग के लिए DD श्रमिकों का माँग वक्र है तथा SS श्रमिकों का पूर्ति वक्र हैं । ये दोनों वक्र एक-दूसरे को K बिन्दु पर काटते हैं अत: K बिन्दु संतुलन का बिन्दु होगा तथा इस स्थिति में मजदूरी की दर OW निर्धारित होगी तथा श्रम की माँग एवं पूर्ति कम मात्रा ONहोगी । यदि मजदूरी की दर OW1 हो जाये तो श्रमिकों की मांग ON2 तथा श्रमिकों की पूर्ति ON1 हो जायेगी । चूँकि इस मजदूरी दर पर श्रमिकों की माँग पूर्ति से N1N2 अधिक है जो मजदूरी की दर बढेगी जब तक कि यह बढ़कर OW न हो जाये इसके विपरीत यदि मजदूरी की दर OW2 निर्धारित हो गयी तो इस मजदूरी की दर पर श्रमिकों की माँग ON3 तथा

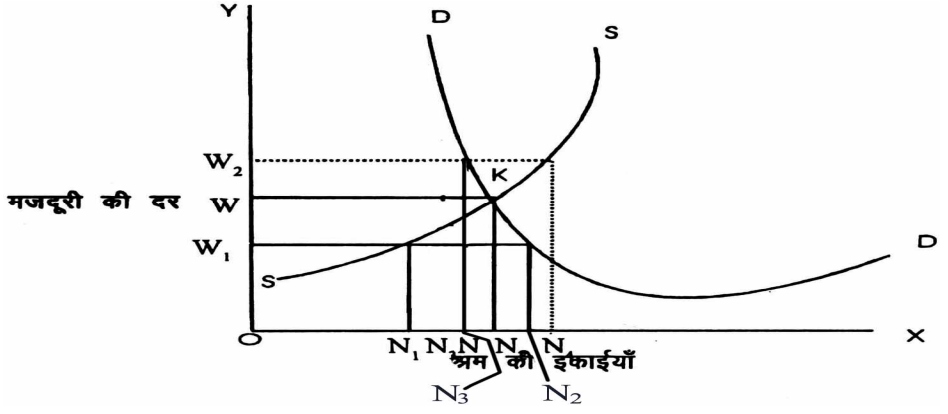

चित्र संख्या 16.3

श्रमिकों की पूर्ति ON4 हो जायेगी । चित्र से स्पष्ट है कि इस मजदूरी की दर पर श्रमिकों की माँग श्रमिकों की पूर्ति से N3N4 कम है । जो मजदूरी की दर को तब तक घटयेगी जब तक कि पुन: मजदूरी की संतुलन की दर OW निर्धारित न हो जायें ।

निष्कर्ष मजदूरी की वह दर निर्धारित होगी जहाँ पर श्रमिकों की मांग तथा श्रमिकों की पूर्ति बराबर होगी । चित्र में OW संतुलन की अवस्था में निर्धारित मजदूरी की दर है तथा ON श्रमिकों की माँग एवं ON श्रमिकों की पूर्ति हैं जो बराबर है ।

पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में जब एक बार उद्योग द्वारा मजदूरी की दर निर्धारित हो जाती है तो प्रत्येक फर्म को इस मजदूरी की दर को स्वीकार करना होता है । एक फर्म के लिए इस बाजार में उद्योग द्वारा निर्धारित मजदूरी की दर पर श्रमिकों की पूर्ति पूर्णतया लोचदार होती है । ऐसी स्थिति में एक फर्म के लिए औसत मजदूरी तथा सीमान्त मजदूरी बराबर होती है । तथा श्रमिकों का पूर्ति वक्र क्षैतिज रेखा होता है । पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म संतुलन की स्थिति में तब होती है जब फर्म की सीमान्त मजदूरी (MW) फर्म के सीमान्त आगम उत्पाद (MRP) के बराबर होगी । एक फर्म के संतुलन की स्थिति का अध्ययन अल्पकाल एवं दीर्घकाल में निम्न प्रकार किया जा सकता है!

(A) अल्पकाल

इस काल मे एक फर्म श्रमिकों के प्रयोग की दृष्टि से तीन स्थितियों में हो सकती है -

1. लाभ की स्थिति
2. सामान्य लाभ की स्थिति
3. हानि की स्थिति

1. लाभ की स्थिति

यदि औसत मजदूरी (AW)औसत आगम उत्पाद(ARP)से कम हो तो फर्म को लाभ प्राप्त होगा। इसे चित्र संख्या 16.4 द्वारा निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है ।

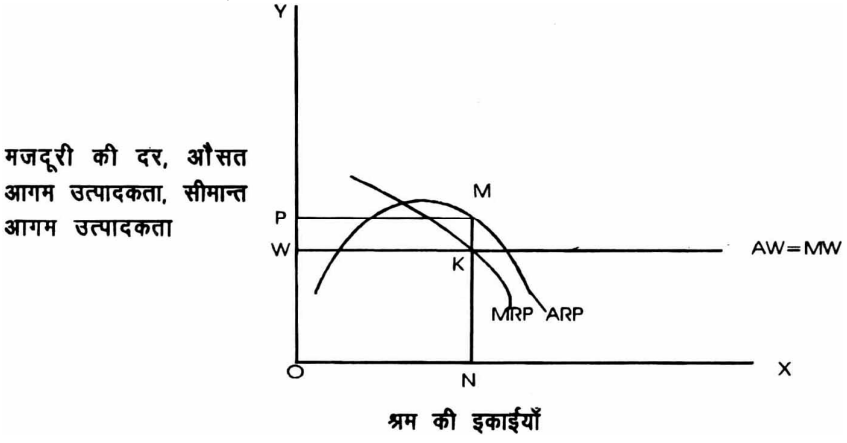

चित्र संख्या 16.4

चित्र संख्या 16.4 में OX अक्ष पर श्रम की इकाइयाँ तथा OYअक्ष पर मजदूरी की दर, औसत आगम उत्पादकता तथा सीमान्त आगम उत्पादकता को लिया जाता है । AW=MW औसत मजदूरी एंव सीमान्त मजदूरी रेखा है । ARP औसत आगम वक्र एवं MRP सीमान्त आगम वक्र हैं । संतुलन की अवस्था वहाँ होगी जहाँ MW = MRP होगा । चित्र में यह स्थिति K बिन्दु पर होगी । अत: K बिन्दु साम्य का बिन्दु होगा तथा इस स्थिति में फर्म OW मजदूरी की दर पर श्रम की ON इकाईयाँ काम में लेगी । तथा श्रम की औसत आगम उत्पादकता OP होगी । चित्र से स्पष्ट है कि इस बिन्दु पर औसत आगम उत्पादकता सीमान्त मजदूरी से अधिक होगा (ARP) अत: फर्म को प्रति इकाई PW लाभ प्राप्त होगा । तथा कुल लाभ PWKM होगा ।

2. सामान्य लाभ की स्थिति

यदि औसत मजदूरी (AW) औसत उत्पादकता (ARP) के बराबर है तो फर्म सामान्य लाभ की स्थिति में होगी । चित्र संख्या व 16.5 द्वारा इसे स्पष्ट किया जा सकता है ।

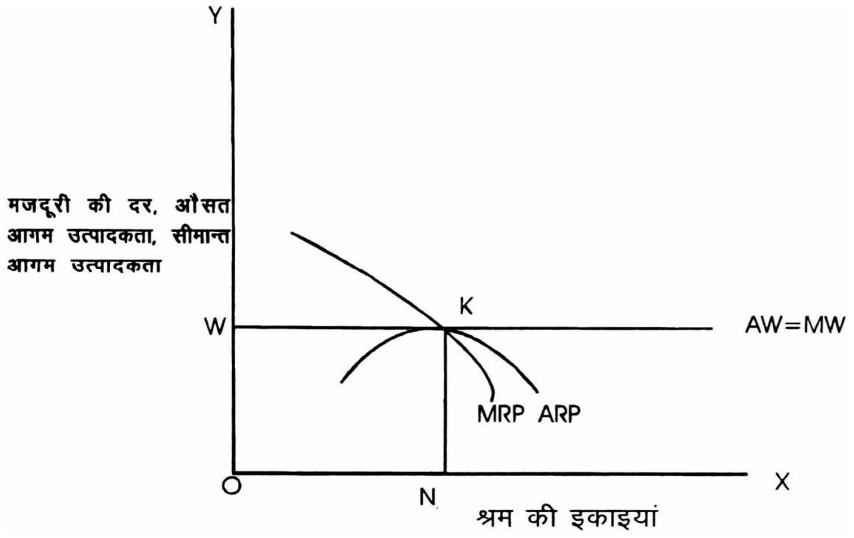

चित्र संख्या 16.5

जैसा कि हम जानते हैं संतुलन की स्थिति वहीं होगी जहाँ MRP = MW होगा । चित्रानुसार यह स्थिति K बिन्दु पर प्राप्त होती है । अत:K बिन्दु साम्यावस्था का बिन्दु होगा साम्य की स्थिति में OW मजदूरी की दर तथा औसत आगम उत्पादकता (ARP) भी OW ही होगी। चूँकि AW=ARP अत: फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त होगा । एवं फर्म श्रम की ON मात्रा प्रयुक्त करेगी ।

3. हानि की स्थिति

यदि औसत मजदूरी (AW) औसत आगम उत्पादकता (ARP) अधिक है तो फर्म हानि की स्थिति में होगी । इसे चित्र संख्या 16.6 द्वारा निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता हैं ।

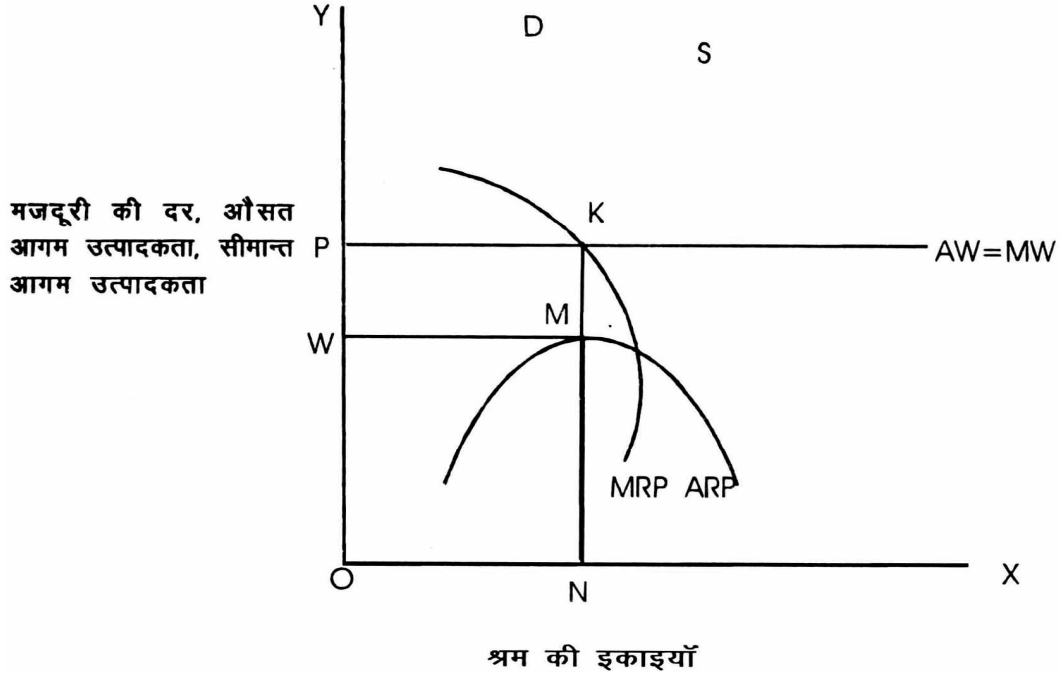

चित्र संख्या 16.6

साम्यावस्था की स्थिति वहाँ प्राप्त होती है जहाँ MW=MRP होगा । चित्र में यह स्थिति K बिन्दु पर प्राप्त होगी । अत: K बिन्दु संतुलन का बिन्दु है । इस बिन्दु पर श्रम की ON इकाईयाँ प्रयुक्त की जायेंगी, औसत मजदूरी की दर (AW)=OW होगी तथा औसत आगम उत्पादकता (ARP)=PO होगी । चूंकि 'ARP<AW है । अत: फर्म को हानि होगी । प्रति इकाई हानि की मात्रा WP होगी तथा कुल हानि WPMK के बराबर होगी ।

(B) दीर्घकाल

दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है । वह न तो लाभ की स्थिति में रह सकती है और न हानि में क्योंकि यदि फर्म लाभ की स्थिति में होगी तो नयी फर्मे लाभ से आकर्षित होकर उद्योग में प्रवेश करेगी । इससे श्रमिकों की माँग बढ़ेगी और मजदूरी की दर बढ़ जायेगी तथा साथ ही वस्तु का उत्पादन भी बढ़ेगा । और इससे उसकी कीमत भी घट जायेगी । कीमत के घटने से ARP कम हो जायेगी । ये दोनों प्रक्रियाएँ तब तक चलती रहेगी जब तक ARP=AW न हो जाये इसी प्रकार यदि फर्म को हानि प्रदत होती है तो फर्म उद्योग को छोड़ देगी । इससे श्रमिकों की माँग घट जायेगी और उनकी मजदूरी AW भी कम हो जायेगी साथ ही वस्तु की कीमत बढ़ जायेगी और ARP बढ़ जायेगा । इन दोनों बातों का परिणाम यह होगा कि अन्तत: ARP तथा AW बराबर हो जायेगें निष्कर्ष रूप में दीर्घकाल में फर्म केवल सामान्य लाभ की स्थिति में ही रहेगी । सामान्य लाभ की इस स्थिति में AW=MW=ARP=MRP होगा । इसे चित्र संख्या16.7 प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है ।

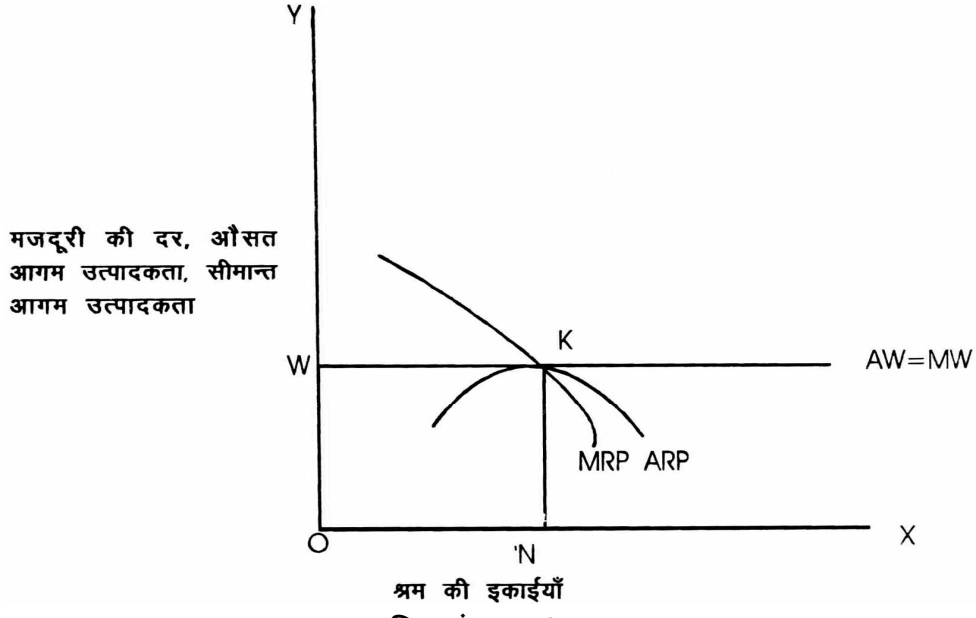

चित्र संख्या 16.7

श्रमिकों के प्रयोग करने की दृष्टि से एक फर्म के साम्य की स्थिति में MRP=MW तथा ARP=AW होना चाहिए । यह स्थिति चित्र में K बिन्दु पर प्राप्त होती हैं अत: K बिन्दु सन्तुलन का बिन्दु होगा । इस स्थिति में मजदूरी की दर OW होगी श्रमिकों की मात्रा ON होगी एवं फर्म सामान्य लाभ की स्थिति में होगा ।

16.4 एकाधिकार के अन्तर्गत मजदूरी का निर्धारण

यहाँ बाजार की उस अवस्था में मजदूरी के निर्धारण का विवेचन किया जा रहा है जब केवल साधन बाजार में क्रय एकाधिकार हो तथा वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति हों । इस अवस्था में केवल एक ही उद्यमी या फर्म है जो श्रमिक को रोजगार प्रदान करती है अर्थात् एक अकेले उत्पादक के समक्ष बड़ी संख्या में श्रमिक है जो असंगठित हैं । ऐसी अवस्था में उत्पादक या फर्म मजदूरों की अधिक माँग करता है तो उसे अधिक मजदूरी देनी पड़ती हैं । परन्तु यदि वह मजदूरों की कम माँग करता है तो कम मजदूरी देनी पड़ती है । इसलिए सीमान्त मजदूरी एवं औसत मजदूरी अलग-अलग होगी । श्रम बाजार में अपूर्णता होने के कारण औसत मजदूरी रेखा (Average wage Line) ऊपर की ओर उठ रही होती है । पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति क्षैतिज नहीं होगी । सीमान्त मजदूरी रेखा (Marginal Warge Line) भी ऊपर की ओर उठती हुई होती है और वह औसत मजदूरी रेखा के ऊपर होती है । एकाधिकार की इस स्थिति में फर्म या उत्पादक के लिए श्रमिकों का माँग वक्र सीमान्त आगम उत्पादकता. वक्र होता है । संतुलन की अवस्था में इस स्थिति के बाजार में साम्य फर्म श्रमिको की वह मात्रा प्रयोग करेगा जहाँ पर कि MRP=MW होता है अर्थात् सीमान्त आगम उत्पादकता तथा सीमान्त मजदूरी बराबर हो । चित्र संख्या 16.8 में द्वारा इसे स्पष्ट किया जा सकता है ।

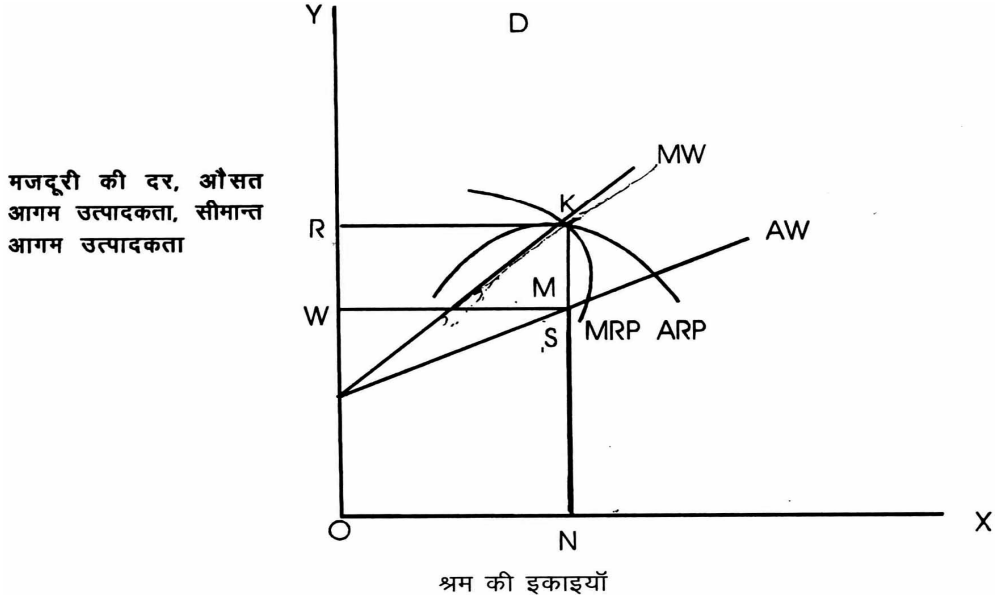

चित्र संख्या 16.8

चित्र संख्या 16.8 में AW औसत मजदूरी वक्र है, MW सीमान्त मजदूरी वक्र है, औसत आगम उत्पादकता वक्र है तथा MRP सीमान्त आगम उत्पादकता वक्र है । संतुलन की अवस्था में श्रम की सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) तथा श्रम की सीमान्त मजदूरी (MW) बराबर होती है । चित्रानुसार यह स्थिति K बिन्दु पर प्राप्त होती है । अत: K बिन्दु संतुलन का बिन्दु होगा । इस बिन्दु पर PN श्रमिकों को रोजगार दिया जायेगा । औसत मजदूरी NS होगी चूंकि औसत मजदूरी सीमान्त आगम उत्पादकता से कम है । अत: श्रम का शोषण होगा । श्रम का शोषण NK-NS=SK होगा ।

बोध प्रश्न - 3

1. पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी के निर्धारण को स्पष्ट कीजिये ।
2. एकाधिकार के अन्तर्गत मजदूरी के निर्धारण का सचित्र वर्णन कीजिये ।

16.5 सारांश

श्रम उत्पादन का सक्रिय एवं महत्वपूर्ण साधन होता है । श्रम के प्रयोग के लिए दी गई कीमत मजदूरी कहलाती है। अर्थशास्त्र में धन प्राप्ति के उद्देश्य से किया गया कोई भी शारीरिक एवं मानसिक कार्य श्रम कहलाता है । मजदूरी के सम्बन्ध में सामान्यत: दो अवधारणाएं मुख्य रूप से प्रचलन में है । एक मौद्रिक मजदूरी एवं दूसरी वास्तविक मजदूरी । वास्तविक मजदूरी में मौद्रिक मजदूरी के साथ अन्य सुविधाओं जैसे निःशुल्क मकान आदि को भी शामिल किया जाता है । मजदूरी के निर्धारण के सम्बन्ध में अनेकों सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये है । मजदूरी निर्धारण का आधुनिक सिद्धान्त ही वर्तमान समय सर्वाधिक प्रासंगिकता रखता हैं इसके अनुसार मजदूरी का निर्धारण श्रमिकों की मांग एवं श्रमिकों की पूर्ति की शक्तियों पर निर्भर रखता है । संतुलन की अवस्था में मजदूरी वहां निर्धारित होती हैं जहां श्रम की मांग एवं श्रम की पूर्ति बराबर होती हैं । मजदूरी का निर्धारण पूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकार की स्थिति में किया जा सकता है । पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में एक उद्योग मजदूरी वहाँ निर्धारित करता है जहाँ पर श्रम की माँग श्रम की पूर्ति के बराबर होती हैं । इस प्रतियोगिता में फर्म उद्योग द्वारा निर्धारित मजदूरी को ग्रहण कर लेती है तथा अल्पकाल में लाभ, सामान्य लाभ एवं हानि में से किसी भी स्थिति में हो सकती है, परन्तु दीर्घकाल में संतुलन की अवस्था में सामान्य लाभ की स्थिति ही पायी जाती है । इस स्थिति में MW=MRP तथा AW=ARP होता हैं । एकाधिकार की विभिन्न स्थितियाँ हो सकती हैं परन्तु सामान्यत: साधन बाजार में क्रय एकाधिकार तथा वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति का अध्ययन अधिक प्रासंगिक लगता है । इस स्थिति में संतुलन वहां होता है जहां श्रम की सीमान्त आगम उत्पादकता श्रम की सीमान्त मजदूरी के बराबर होती है अर्थात MRP=MWहोगा । इस प्रतियोगिता में श्रमिक को मजदूरी उसकी औसत आय उत्पादकता आय उत्पादकता से कम मिलती है तथा श्रम का शोषण होता है ।

16.6 शब्दावली

मोद्रिक मजदूरी = वह मजदूरी जो श्रमिक को मुद्रा के रूप में प्राप्त होती है ।

वास्तविक मजदूरी = वस्तुओं और सेवाओं की वह मात्रा जिन्हें एक व्यक्ति अपनी नकद मजदूरी से प्राप्त कर सकता है ।

अल्पकाल = समय की वह अवधि है जिसमें कम से कम साधन की पूर्ति स्थिर होती है फर्म केवल घटत-बढ़ते जैसे श्रमिकों की संख्या में परिवर्तन करके पूर्ति में परिवर्तन कर सकती हैं

दीर्घकाल = समय की वह अवधि है जिसमें फर्म के संयंत्र सहित सभी साधनों में परिवर्तन किया जा सकता है ।

श्रम की औसत आगम उत्पादकता (ARP) = कुल आगम में श्रम की मात्रा का भाग देने से जो भागफल प्राप्त होता है वह (ARP) कहलाता है ।

श्रम की सीमान्त आगम उत्पादकता (MAP) श्रम की मात्रा में एक इकाई परिवर्तन करने से कुल आगम में होने वाला परिवर्तन श्रम की सीमान्त आगम उत्पादकता कहलाता है । यह श्रम की सीमानत भौतिक उत्पादकता एवं श्रम की सीमान्त आगम का गुणनफल होता है ।

16.7 संन्दर्भ ग्रंथ

आहुजा एच. एल. : उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, एस. चांद एण्ड कम्पनी नई दिल्ली 2008

बरला सी. एस. : उच्चतर व्यष्टिगत अर्थशास्त्र, नेशनल पब्लिशिंग, हाऊस, जयपुर, 1999

Salvatore d : Micro Ecinomic Theory and Applications,4th Edition 2003

Stoneier A.W. and Hauge D.C. A Taxt Book of Economic Theory, Macmillan,Landon,

16.8 बोध प्रश्नो के उत्तर

बोध प्रश्न 1 भाग 16.1 देखें ।

बोध प्रश्न 2 भाग 16.2 देखें ।

बोध प्रश्न 3 भाग 16.3 एवं 16.4 देंखे

इकाई - 17

रिकार्डो का लगान का सिद्धान्त, आधुनिक लगान सिद्धान्त, आभास लगान RECARDIAN AND MODERN THEORY MODERN THEORY OF RENT, QUASIRENT

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 लगान का अर्थ

17.3 रिकार्डो का लगान सिद्धान्त

- 17.3.1 सिद्धान्त की मान्यताएं
- 17.3.2 सिद्धान्त की व्याख्या
- 17.3.3 आलोचनाएं

17.4 आधुनिक लगान सिद्धांन्त

17.5 आभास लगान

17.6 सारांश

17.7 शब्दावली

17.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

17.9 बोध प्रश्नो के उत्तर

17.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप : -

- लगान की अवधारणा को समझ पायेंगे;
- रिकार्डो के लगान के सिद्धान्त एवं आधुनिक लगान सिद्धान्त के अनुसार लगान के निर्धारण की व्याख्या कर सकेंगे ; एवं
- आभास लगान की धारणा एवं इसका निर्धारण कर पायेंगे ।

17.1 प्रस्तावना

लगान के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों द्वारा विभिन्न अवधारणायें प्रतिपादित की गई हैं । क्लासिकल अर्थशास्त्रियों एवं आधुनिक अर्थशास्त्रियों के दृष्टिकोण में इस सम्बन्ध में अन्तर देखने को मिलता है । रिकार्डो का लगान का सिद्धान्त जो भूमि तथा अन्य प्राकृतिक साधनो के प्रयोग की कीमत की समस्या का अध्ययन करता हैं जबकि लगान का आधुनिक सिद्धान्त जिसमें किसी

उत्पादन के साधन की इकाई द्वारा उसके वर्तमान उपयोग अथवा पेशे में काम करते रहने के लिये प्रेरित करने के लिये आवश्यक आय से अतिरिक्त अर्जित आय का वर्णन किया गया है । रिकार्डो के अनुसार लगान भूमि के प्रयोग के लिए दिया गया जाता है अर्थात् लगान का सम्बध केवल भूमि से होता है परन्तु लगान के आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार लगान केवल भूमि को ही प्राप्त नहीं होता अपितु उत्पत्ति के सभी साधनों भूमि, श्रम, पूंजी, संगठन तथा साहसी को प्राप्त हो सकता है । (218)

17.2 लगान का अर्थ

अर्थशास्त्र में लगान (Rent) शब्द का प्रयोग उत्पादन के उन साधनों को दिये जाने वाले भुगतान के लिए किया जाता है जिनकी पूर्ति अपूर्णतया लोचदार होती है इस सम्बन्ध में प्रमुख उदाहरण भूमि का दिया जाता है भूमि प्रकृति द्वारा दिया गया निःशुल्क साधन है । इसलिए लगान का अभिप्राय केवल उस भुगतान से है जो भूमि या अन्य प्रकृतिदत्त उपहारों के प्रयोग के बदले भूस्वामी को दिया जाता हैं रिकार्डो के अनुसार, लगान भूमि की उपज का वह भाग हैं जो भूस्वामियों को भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शक्तियो के प्रयोग के बदले में दिया जाता है । ' श्रीमती जान राबिन्सन ने लगान की आधुनिक व्याख्या प्रस्तुत कर कहा कि लगान कि लगान की धारणा का आशय उस आधिक्य की धारणा से हैं जो उत्पादन के किसी साधन की एक इकाई को उत्पादन में बनाये रखने के लिए आवश्यक न्यूनतम आय से अधिक है ।

लगान शब्द का प्रयोग आर्थिक लगान एवं ठेका लगान के रूप में किया जाता है । रिकार्डो के अनुसार आर्थिक लगान का तात्पर्य राष्ट्रीय आय के उस भाग से है जो भू स्वामी को भूमि के प्रयोग के बदले मिलता है यह अधिसीमान्त एवं सीमान्त भूमि की उपज के बीच का अन्तर होता है । जबकि आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार यह साधन की वर्तमान आय एवं स्थानान्तरण आय के अन्तर के बराबर होता है । ठेका लगान का निर्धारण कृषक एवं भूस्वामी के बीच पारस्परिक समझौते, अनुबन्ध या इकरार के आधार पर तय किया जाता है । ठेका लगान आर्थिक लगान से अधिक कम या बराबर हो सकते हैं क्योंकि ठेका लगान का निर्धारण भूमि की मांग एवं पूर्ति की शक्तियों के आधार पर होता है । सामान्यत: अर्थशास्त्र में लगान से तात्पर्य आर्थिक लगान से ही होता है ।

17.3 रिकार्डो का लगान का सिद्धान्त

रिकार्डो के अनुसार "लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शक्तियों के लिए भूमि के स्वामी को दिया जाता है ।"

17.3.1 सिद्धान्त की मान्यताएं

रिकार्डो ने लगान सिद्धान्त की २यष्ट व्याख्या प्रस्तुत करने हेतु अनेक मान्यताओं को आधार बनाया जो निम्न प्रकार हैं -

1. भूमि की पूर्ति स्थिर होती है ।
2. भूमि में उपजाऊ मौलिक तथा अविनाशी होती हैं तथा यह भूमि के विभिन्न टुकड़ो की अलग- अलग होती है ।

3. भूमि के वैकल्पिक उपयोंग नहीं होते । भूमि का केवल एक ही उपयोग होता है और वह है उस पर खेती करना ।
4. भूमि पर खेती का कार्य भूमि की उपजाऊ शक्ति के क्रम में किया जाता है अधिक उपजाऊ भूमि पर कम उपजाऊ भूमि की अपेक्षा पहले खेती की जाती है ।
5. कृषि क्षेत्र में घटते प्रतिफल का नियम लागू होता है ।
6. वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है ।

17.3.2 सिद्धान्त का व्याख्या

रिकार्डो ने लगान के सिद्धान्त का प्रतिपादन कृषि भूमि के सम्बन्ध में ही किया परन्तु यह सिद्धान्त अन्य प्राकृतिक साधनों के सम्बन्ध में भी लगान रूप से लागू होता है । रिकार्डो के अनुसार भूमि की उर्वरता में अन्तर होता हैं जिसके कारण समान उत्पादन लागत लगाने पर भी श्रेष्ठ (अधिक उपजाऊ) भूमि को निम्न कोटि (कम उपजाऊ) की भूमि तुलना अधिक बचत प्राप्त होती है । इस भेदात्मक बचत को रिकार्डो ने लगान कहा है । लगान का निर्धारण दो प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है -

1. विस्तृत खेती, तथा

2. गहन खेती

1. विस्तृत खेती के अन्तर्गत लगान

विस्तृत खेती वह खेती होती है जिसमें उत्पादन बढ़ाने के लिए भूमि के क्षेत्रफल को बढ़ाकर उत्पादन बढ़ाया जाता है । ऐसी खेती में लगान को निर्धारित करने के लिए रिकार्डो ने एक ऐसे भू भाग की कल्पना की जहां अनेक प्रकार की गुणवता वाले भूखण्ड है । मान लिजिए इनकी चार श्रेणियां है, A,B,C एवं D उपजाऊ शक्ति के अनुसार A श्रेणी का भूखण्ड सबसे श्रेष्ठ हैं उससे कम उपजाऊ भूखण्ड है । C श्रेंणी भूखण्ड की उपजाऊ शक्ति उससे भी कम हैं तथा D श्रेणी का भूख्यण्ड सबसे कम उपजाऊ शक्ति वाला है इसकी उपज का मूल्य उसके आगतों के मूल्य के समान है । अत: इस (Dश्रेणी के) भूखण्ड पर कोई अतिरेक या बचत प्राप्त नहीं होती । इस D श्रेणी के भूखण्ड को सीमान्त भूखण्ड कहा जाता है ।

A, B, C श्रेणी के सभी भूखण्ड ऐसे हैं जिन पर होने वाला उत्पादन का मूल्य उन पर होने वाले आगतों के मूल्य (लागत) से अधिक हैं । ये भूखण्ड अधिसीमान्त भूखण्ड कहलाते हैं । रिकार्डो के अनुसार अधिसीमान्त भूमि एवं सीमान्त भूमि के बीच उत्पादन का अन्तर ही लगान होता है । एक काल्पनिक उदाहरण की सहायता से इसे स्पष्ट किया जा सकता हैं ।

मान लिजिये एक देश में A श्रेणी की भूमि पर प्रति एकड़ उपज 5० क्विंटल, B श्रेणी की भूमि पर प्रति एकड़ उपज 40 क्विंटल C श्रेणी की भूमि पर प्रति एकड़ उपज 30 क्विंटल तथा D श्रेणी की भूमि पर प्रति एकड़ उपज 20 क्विंटल गेहूं उत्पादित होता है । D श्रेणी की भूमि सीमान्त भूमि है । अत: इस पर कोई लगान नहीं होगा । A,B तथा C अधिसीमान्त भूमियाँ हैं इन पर प्राप्त होने वाला उत्पादन अतिरिक जो A श्रेणी की भूमि पर 50-20=30 क्विंटल प्रति एकड़ B श्रेणी की भूमि पर 40-20= 20 क्विंटल प्रति एकड़ तथा C श्रेणी की भूमि पर 30-20 =10 क्विंटल प्रति एकड़ लगान कहलायेगा । इसका कुल योग 30+20+10=60 क्विंटल प्रति एकड़ होगा । चित्र द्वारा इसे निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता हैं ।

चित्र -1

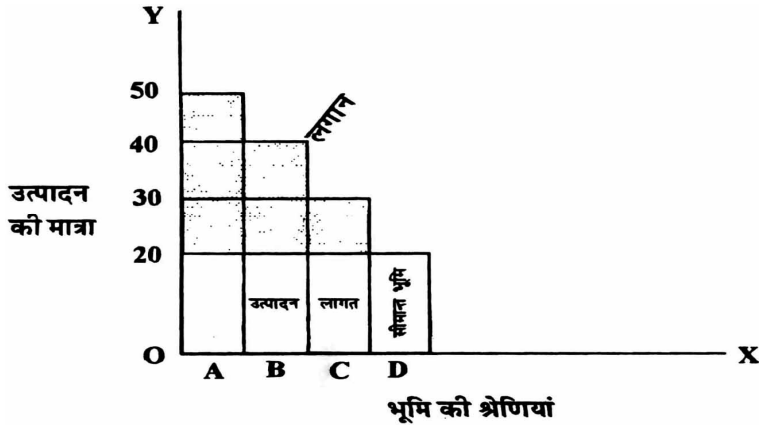

चित्र - 1 में OX अक्ष पर भूमि की श्रेणी तथा OY अक्ष पर उत्पादन की मात्रा को दर्शाया गया है। A, B, C तथा D चार भूमि की श्रेणिया हैं । A,B,C,D के ऊपर बने खानों (Bars) की ऊचाई प्रति एकड़ उत्पादन को दर्शाती है । D श्रेणी की भूमि पर प्रति एकड़ उत्पादन उस पर आने वाली प्रति एकड लागत के बराबर है । अत: यह लगान रहित भूमि है । दूसरे शब्दों में यह सीमान्त भूमि हैं । शेष नही तीनों श्रेणी की भूमियों A, B,C पर प्रति एकड़ उत्पादन उन पर आने वाली प्रति एकड़ लागत से अधिक है । अत: ये तीनों श्रेणी (A, B, C) की भूमियां अधिसीमान्त भूमि हैं । अत: इन पर मिलने वाला प्रति एकड़ उत्पादन अतिरेक लगान होगा । जो चित्रानुसार A श्रेणी की भूमि पर 30 क्विंटल, B श्रेणी की भूमि पर 20 क्विंटल, C श्रेणी की भूमि पर 10 क्विंटल प्रति एकड़ है ।

2. गहन खेती के अन्तर्गत लगान

गहन खेती वह खेती होती हैं जिसमें उत्पादन बढ़ाने के लिये भूमि के निश्चित क्षेत्रफल पर श्रम तथा पूंजी की अधिक इकाईयों का प्रयोग किया जाता है । रिकार्डो के अनुसार चूंकि कृषि में घटते प्रतिफल को नियम (Law of Diminishing Returns) लागू होता है । जिसके कारण गहन खेती के अन्तर्गत भी लगान के निर्धारण को स्पष्ट किया जा सकता है ।

माना एक भूस्वामी भूमि के एक निश्चित क्षेत्रफल के टुकड़े पर श्रम व पूंजी की इकाईयों को उत्पादन बढ़ाने के उद्देश्य से तब तक लगाता जावेगा जब तक कि इन इकाईयों से मिलने वाले सीमान्त उत्पादन की कीमत इन पर होने वाली सीमान्त लागत बराबर न हो जावे । पूंजी और श्रम की जिस इकाई से मिलने वाला सीमान्त उत्पादन तथा उसकी सीमान्त लागत बराबर हो जाती है वह सीमान्त इकाई (Marginal Unit) कहलाती है तथा इस इकाई से पहिले जितनी इकाईयां लगायी गई हैं वे अधिसीमान्त इकाईया (Super Marginal Unit) कहलाती हैं । रिकार्डो के अनुसार गहन खेती के अन्तर्गत इन अधिसीमान्त इकाईयों तथा सीमान्त इकाई के उत्पादन का अन्तर लगान कहलाता है । चित्र -2 इसे निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है ।

चित्र - 2

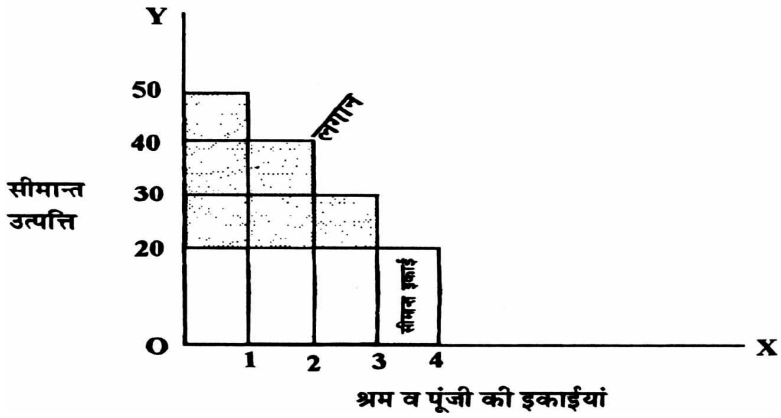

श्रम व पूंजी की इकाईयां

चित्र - 2 में OX अक्ष पर श्रम व पूंजी की इकाईयों को तथा OY अक्ष पर सीमान्त उत्पत्ति को लिया गया है । भूमि के एक निश्चित क्षेत्रफल के टुकड़े पर श्रम व पूंजी की पहली इकाई लगाने से होने वाला उत्पादन 50 क्विंटल है । श्रम व पूंजी की दूसरी इकाई लगाने से दूसरी इकाई का सीमान्त उत्पादन 40 क्विंटल है तथा श्रम व पूंजी की तीसरी इकाई लगाने से तीसरी इकाई का सीमान्त 30 क्विंटल है । जब श्रम व पूंजी की चौथी इकाई लगाई जाती है तो चौथी इकाई का सीमान्त उत्पादन 20 क्विंटल आता है । यदि चौथी इकाई को लगान रहित इकाई माना जावे तो यह सीमान्त इकाई कहलायेगी अर्थात् यह वह इकाई है जिसका सीमान्त उत्पादन एवं सीमान्त लागत बराबर है तो पहली तीन इकाईयां अधिसीमान्त इकाईयां कहलायेगी तथा इन तीनों इकाईयों से प्राप्त होने वाला सीमान्त उत्पादन अतिरेक लगान होगा जैसा कि चित्र में दर्शाया गया है कि प्रथम इकाई से प्राप्त लगान 30 क्विंटल, दूसरी इकाई से प्राप्त लगान 20 क्विंटल तथा तीसरी इकाई से प्राप्त लगान 10 क्विंटल हैं ।

17.3.3 आलोचनाएं

रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की अनेक विशेषता होने के उपरान्त भी अवास्तविक एवं अव्यवहारिक मान्यताओं के कारण कुछ आलोचनाएं हुई जो निम्नलिखित है :-

1. रिकार्डो के अनुसार लगान भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शक्तियों के कारण मिलता है परन्तु वास्तविकता में भूमि उर्वरा शक्ति न तो मौलिक होती है और न ही अविनाशी । वर्तमान समय में इसे तकनीकि का सहारा लेकर परिवर्तित किया जा सकता है ।
2. रिकार्डो का यह मानना है कि सबसे अच्छी भूमि पर सबसे पहले खेती हुई तथा उसके बाद उससे कम अच्छी भूमि पर ऐतिहासिक दृष्टि से सही नहीं लगता ।
3. पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता अवास्तविक हैं ।
4. रिकार्डो ने भूमि के केवल एक उपयोग कृषि को माना जो पूर्णतया अव्यवहारिक है । भूमि के अनेको वैकल्पिक उपयोग होते हैं ।
5. कुछ अर्थशास्त्रियों का मानना है कि लगान के उत्पन्न होने का कारण भूमि का उपजाऊपन न होकर उसकी सीमितता होता है ।

6. वर्तमान समय से लगान रहित भूमि का पाया जाना वास्तविकता से परे की बात लगती है ।

बोध प्रश्न - 1

1. रिकार्डो के अनुसार लगान का अर्थ स्पष्ट कीजिये ।
2. निम्नलिखित को स्पष्ट कीजिये ।
   1. गहन खेती
   2. विस्तृत खेती

17.4 आधुनिक लगान सिद्धान्त

आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार लगान केवल भूमि से ही सम्बन्धित नहीं होता बल्कि प्रत्येक साधन लगान प्राप्त कर सकता है । लगान का निर्धारण साधन की वास्तविक आय एवं स्थानान्तरण आय के अन्तर के द्वारा किया जाता है । सूत्र के रूप में :-

लगान = वास्तविक आय - स्थानान्तरण आय या वैकल्पिक आय

वास्तविक आय एवं स्थानान्तरण आय के बीच अन्तर जितना अधिक होगा उतना ही अधिक होगा । अगर यह अन्तर कम होगा तो लगान भी कम होगा । यदि वास्तविक आय एवं स्थानान्तरण आय बराबर होगी तो लगान शून्य होगा । वास्तविक आय वह आय है जो साधन को वर्तमान में प्राप्त हो रही है जबकि स्थानान्तरण आय वह आय जो साधन की इकाई के सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक प्रयोग से प्राप्त हो सकती है दूसरे शब्दों में यह वह आय हैं जो साधन की एक किसी उद्योग में बनाये रखने के लिये आवश्यक होती है ।

लगान के उत्पन्न होने का कारण उत्पत्ति के साधनों की विशिष्टता होती है अर्थात् लगान साधन की विशिष्टता का परिणाम होता है जो साधन पूर्णतया अविशिष्ट होते हैं उन्हें लगान प्राप्त नहीं होता है । क्योंकि पूर्णतया अविशिष्ट साधन की स्थानान्तरण आय उसकी वास्तविक आय के बराबर होती है । जब साधन पूर्णतया विशिष्ट होता है तो उसकी स्थानान्तरण आय शून्य होती है जिसके कारण उसकी सारी वास्तविक आय ही लगान कहलाती है ।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार जिस प्रकार किसी वस्तु की कीमत का निर्धारण मांग एवं पूर्ति के द्वारा तय किया जाता है लगान को भी उत्पादन के साधन की पूर्ति एवं मांगो के द्वारा तय किया जाता है । उत्पादन के साधन की पूर्ति के सम्बन्ध में तीन परिरिथतिया हो सकती हैं ।

1. जब साधन की पूर्ति पूर्णतया लोचदार हो,
2. जब साधन की पूर्ति पूर्णतया बेलोचदार हो तथा
3. जब साधन की पूर्ति पूर्णतया लोचदार से कम हो ।

लगान का निर्धारण इन तीनों परिस्थितियों में निम्न प्रकार किया जा सकता हैं ।

1. जब साधन की पूर्ति पूर्णतया लोचदार हो

साधन की पूर्ति पूर्णतया लोचदार होती है तो साधन पूर्णतया अविशिष्ट होता है और उसकी वास्तविक आय उसकी स्थानान्तरण आय बराबर होती है । ऐसी स्थिति में लगान शून्य होता है । चित्र -3 द्वारा इसे निम्न प्रकार समझाया जा सकता है ।

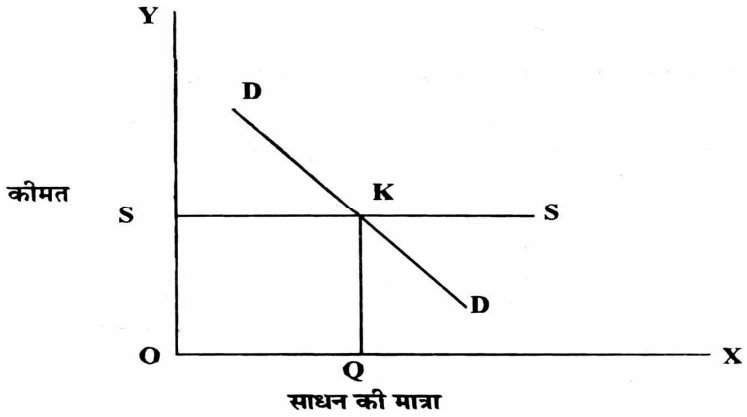

चित्र - 3 में OX अक्ष पर साधन की मात्रा तथा OY अक्ष पर साधन की कीमत को लिया गया है। DD साधन का मांग वक्र है । SS साधन पूर्ति वक्र है । यह X अक्ष के समानान्तर है जो बताता है कि साधन की पूर्ति पूर्णतया लोचदार है । साधन का मांग वक्र DD पूर्ति वक्र SS को K बिन्दु पर काटता हैं । साधन की प्रति इकाई कीमत KQ निर्धारित होती है । कुल आय OQKS होगी जो उसकी स्थानान्तरण आय के बराबर है । अतः लगान शून्य होगा । (223)

2. जब साधन की पूर्ति पूर्णतया बेलोचदार हो

जब साधन की पूर्ति पूर्णतया बेलोचदार हो तो इसका तात्पर्य है कि साधन की पूर्ति स्थिर है । पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति होने पर साधन पूर्णतया विशिष्ट होता है । ऐसी स्थिति में साधन की स्थानान्तरण आय शून्य होती है जिसके कारण वास्तविक आय एवं स्थानान्तरण आय का अन्तर वास्तविक आय के बराबर आयेगा और इसके फलस्वरूप सारी वास्तविक आय लगान होगी । चित्रानुसार इसे निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता हे ।

चित्र - 4

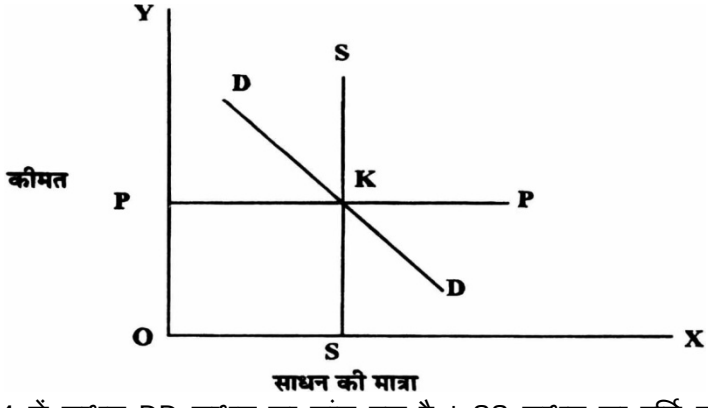

चित्र - 4 में साधन DD साधन का मांग वक्र है । SS साधन का पूर्ति वक्र है । जो OY अक्ष के समान्तर है । K बिन्दु सन्तुलन का बिन्दु है जहां मांग वक्र DD तथा पूर्ति वक्र SS एक दूसरे को काटते हैं । संतुलन की स्थिति में साधन की वास्तविक आय OSKP निर्धारित होती है जबकि इसकी स्थानान्तरण आय शून्य है । अतः कुल वास्तविक आय OSKP लगान होगी ।

3. जब साधन की पूर्ति पूर्णतया लोचदार से कम हो

जब साधन की पूर्ति पूर्णतया बेलोचदार से कम हो तो साधन आशिक रूप से विशिष्ट होता है । ऐसी स्थिति में लगान के निर्धारण को चित्र -5 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है ।

चित्र - 5

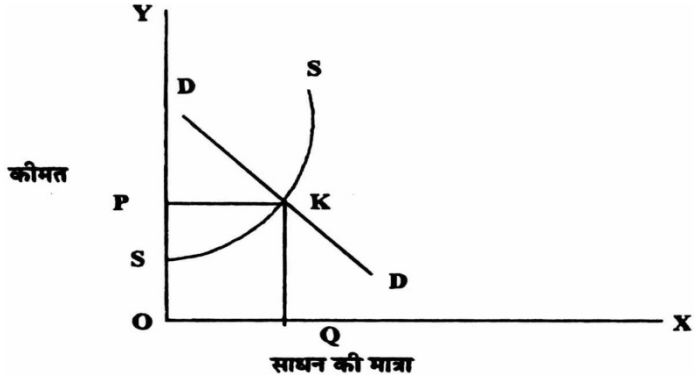

चित्र - 5 में साधन का मांग वक्र है । तथा SS साधन का पूर्ति वक्र हैं । ये दोनों आपस में एक दूसरे को K बिन्दु पर काटते हैं । अत: K बिन्दु सन्तुलन का बिन्दु होगा । इस स्थिति में साधन की वास्तविक आय के OQKP के बराबर होगी जबकि साधन की स्थानान्तरण आय OQKS के बराबर होगी । अत: साधन की OQ मात्रा के लिए इसकी वास्तविक आय OQKP तथा स्थानान्तरण आय OQKS का अन्तर SKP लगान को बतलायेगा ।

बोध प्रश्न - 1

1. वास्तविक आय एवं स्थानान्तरण आय की परिभाषा दीजिए ।
2. विशिष्ट एवं अविशिष्ट साधन में अन्तर बताइये ।
3. लगान के आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार लगान का निर्धारण कैसे किया जाता है।

17.5 आभास लगान

अर्थशास्त्र में आभास लगान की धारणा का प्रयोग मार्शल ने भूमि के अतिरिक्त मनुष्य द्वारा बनाये गये उन साधनों से प्राप्त आय के लिए किया जिनकी पूर्ति अल्पकाल में स्थिर होती है । दीर्घकाल में आभास लगान नहीं मिलता है । आभास लगान कुल आगम एवं कुल परिवर्तनशील लागत के अन्तर के बराबर होता है । सूत्रानुसार : -

TQR = TR-TVC

यहाँ

TQR = कुल आभास लगान

TR = कुल आगम

TVC = कुल परिवर्तनशील लागत या

AQC = AR-AVC

यहाँ

AQC = प्रति इकाई आभासा लगान

AR = औसत आगम

AVC = औसत परिवर्तनशील लागत

चित्र-6 की सहायता से आभास लगान के निर्धारण को स्पष्टत: समझा जा सकता है ।

चित्र - 6

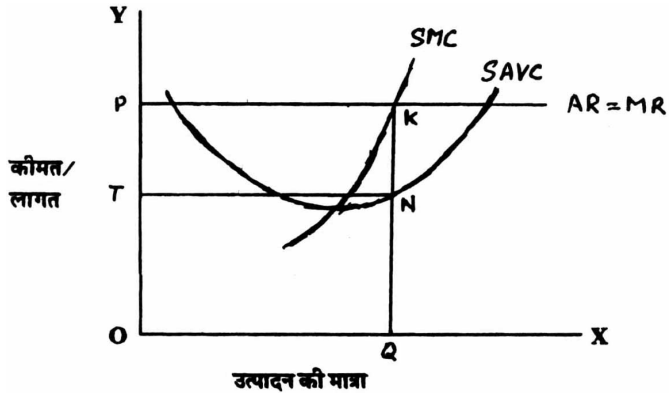

चित्र - 6 में OX अक्ष पर उत्पादन की मात्रा तथा OY अक्ष पर कीमत एवं लागत को लिया गया है । AR=MR औसत आगम एवं सीमान्त आगम वक्र हैं । SAVCअल्पकालीन औसत परिवर्तनशील लागत वक्र है । SMC अल्पकालीन सीमान्त लागत वक्र है । पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म के साम्य की स्थिति वहां होती है जहां MR=MC होता है । चित्र में K बिन्दु संतुलन का बिन्दु होगा । उत्पादन की मात्रा OQ तथा कीमत OP निर्धारित होगी । OQ उत्पादन के स्तर पर प्रति इकाई आगम OK तथा कुल आगम OQKP होगा । OQ उत्पादन के स्तर पर प्रति इकाई अल्पकालीन औसत परिवर्तनशील लागत QN है जबकि अल्पकालीन कुल परिवर्तनशील लागत OQNT है। अत: प्रति इकाई आभास लगान QK-QN=NK होगा । तथा कुल आभास लगान OQKP- OQNT=TNKP होगा ।

बोध प्रश्न - 3

1. आभास लगान की अवधारणा को समझाइये ।

17.6 सारांश

इस इकाई में लगान का अर्थ एवं लगान के निर्धारण के सम्बन्ध में रिकार्डो के सिद्धान्त तथा आधुनिक सिद्धान्त का वर्णन किया गया है । रिकार्डो के अनुसार लगान केवल भूमि पर ही मिलता है तथा यह भूमि की अविनाशी एवं मौलिक शक्तियों के प्रयोग के बदले भू-स्वामी को प्राप्त होता है । लगान अधिसीमान्त एवं सीमान्त भूमि को उपज के बीच का अन्तर होता है जो विस्तृत खेती एवं गहन खेती में समान रूप से लागू होता है । जबकि आधुनिक विचारधारा के अनुसार लगान केवल भूमि को ही प्राप्त नहीं होता अपितू उत्पादन के सभी साधनों को प्राप्त होता हैं तथा यह साधन की वास्तविक आय एवं उसकी स्थानान्तरण आय के अन्तर के बराबर होता है । लगान के आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार लगान साधन की विशिष्टता का परिणाम होता है । इकाई के अंतिम भाग में आभास लगान के अन्तर के बराबर होती है तथा यह विचार अल्पकाल से ही सम्बन्धित है । मार्शल के अनुसार इसका प्रयोग भूमि के अतिरिक्त मनुष्य द्वारा निर्मित उन साधनों से प्राप्त आय के लिए जा सकता है जिनकी पूर्ति अल्पकाल में स्थिर होती है।

17.3 शब्दावली

विस्तृत खेती

वह खेती जिसमें उत्पादन बढ़ाने के लिए क्षेत्रफल को बढ़ाया जाता है ।

गहन खेती

वह खेती जिसमे उत्पादन बढ़ाने के लिए भूमि के एक निश्चित क्षेत्रफल पर श्रम एवं पूंजी की अधिक इकाईयों का प्रयोग किया जाता है ।

स्थानान्तरण आय

वह आय जो साधन की इकाई के सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक प्रयोग से प्राप्त हो सकती है ।

विशिष्ट साधन

वह साधन जिसकी स्थानान्तरण आय शून्य होती है ।

अविशिष्ट साधन

वह साधन जिसकी स्थानान्तरण आय उसकी वास्तविक आय के बराबर होती है ।

17.4 कुछ उपयोगी पुस्तकें :

आहूजा एच. एल. उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, एस. चांद एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली 2006

बरला सी. एस. उच्चतर व्यष्टिगत अर्थशास्त्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, 1999

Salvatore d : Micro Ecinomic Theory and Applications,4th Edition 2003

Stoneier A.W. and Hauge D.C. A taxt Book of Economic Theory, Macmillan,Landon, 1980

17.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न प्रश्न - 1

प्रश्न (1) भाग 17.2 देखें ।

प्रश्न (2) भाग 17.3 देखें ।

बोध प्रश्न -2

प्रश्न (1) भाग 17.4 देखें ।

प्रश्न (2) भाग 17.4 देखें ।

प्रश्न (3) भाग 17.4 देखें ।

बोध प्रश्न - 3

प्रश्न (1) भाग 17.5 देखें ।

इकाई - 18

ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त, तरलता पसन्दगी सिद्धान्त THEAY AND HATERST LIQUIDIT PRELEARCE THEORY OF INTERES

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 ब्याज का क्लासिकल सिद्धान्त

- 18.2.1 पूंजी की मांग
- 18.2.2 पूंजी की पूर्ति
- 18.2.3 ब्याज की दर का निर्धारण
- 18.2.4 आलोचनाएं

18.3 ब्याज का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त

- 18.3.1 मुद्रा की मांग
- 18.3.2 मुद्रा की पूर्ति
- 18.3.3 ब्याज की दर का निर्धारण
- 18.3.4 आलोचनाएं

18.4 सारांश

18.5 शब्दावली

18.6 सन्दर्भ ग्रंथ

18.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

18.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

- ब्याज का अर्थ जान सकेंगे
- क्लासिकल सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है यह समझ सकेगें ब्याज के तरलता पसन्दगी सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर किस प्रकार निर्धारित यह समझ सकेंगे ।

18.1 प्रस्तावना

ब्याज मुद्रा की सेवाओं के लिए दिया जाने वाला भुगतान होता है । एक व्यक्ति जो मुद्रा उधार देता है उसे ऋणदाता(Lander) तथा जो व्यक्ति उधार देता है उसे ऋणी (Borrower) कहा

जाता है । जब ऋणदाता अपनी मुद्रा एक निश्चित समय के लिए किसी को उधार देता है तो उसे उस समय के लिए मुद्रा या तरलता का त्याग करना पड़ता है । इस त्याग के बदले में जो राशि प्राप्त होती है वह ब्याज कहलाती है । दूसरे शब्दों में व्याज एक निश्चित समय के लिए तरलता के परित्याग का पुरस्कार होता है । ब्याज की दर के निर्धारण के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों द्वारा अनेकों सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं । व्याज का क्लासिकल सिद्धान्त तथा ब्याज का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त इस सम्बन्ध में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं ।

18.2 ब्याज का क्लासिकल सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन मिल, मार्शल, पीगू वालरस, नाईट आदि अर्थशास्त्रियों ने किया । सिद्धान्त में ब्याज की दर के निर्धारण में पुंजी की उत्पादकता तथा बचत दोनों तत्वों पर ध्यान दिया गया है । इसलिए इसे ब्याज का वास्तविक सिद्धान्त भी कहा जाता है ।

18.2.1 पूंजी की मांग

पूँजी की माँग पूंजीगत वस्तुओं को क्रय करने के लिए की जाती है । इन पूंजीगत वस्तुओं के उपयोग से उत्पादकता में वृद्धि होती है । पूंजी की इकाइयों में निरन्तर वृद्धि की जायें तो उसकी सीमान्त उत्पादकता पर घटते प्रतिफल का नियम लागू होने के कारण सीमान्त उत्पादकता घटती जाती है । एक उत्पादक पूंजी की मांग उस बिन्दु तक करता है जहां पर ब्याज की दर एवं पूंजी की सीमान्त उत्पादकता बराबर हो । ब्याज की दर के अधिक होने पर पूंजी की मांग कम तथा ब्याज की दर के कम होने पर पूंजी की मांग अधिक होगी । पूंजी की मांग अर्थात् निवेश में तथा ब्याज की दर में विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है । अर्थात् निवेश ब्याज की दर का विपरीत फलन होता है ।

गणितीय रूप में :-

I=F(r)

यहाँ

I = निवेश

r = ब्याज

पूंजी की मांग या निवेश तथा ब्याज की दर के सम्बन्ध को चित्र संख्या व 8.1 के अनुसार निवेश मांग वक्र के द्वारा निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है ।

चित्र- 1

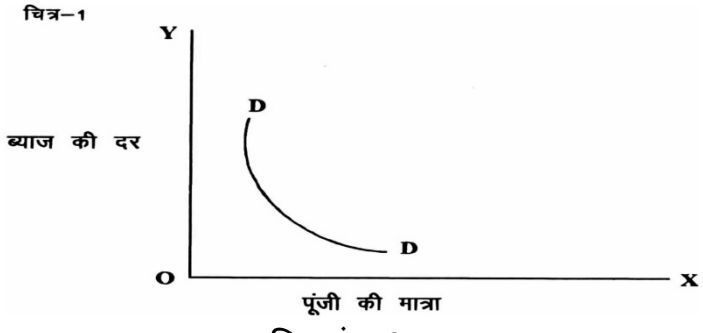

चित्र सं. 18.1

चित्र संख्या 18.1 में OX अक्ष पर पूंजी की मात्रा तथा OY अक्ष पर ब्याज की दर को लिया गया है । DD वक्र पूंजी की मांग मात्रा या निवेश तथा ब्याज के विपरीत सम्बन्ध को प्रकट करता है । यह बतलाता है कि जैसे-जैसे ब्याज की दर बढ़ती जाती है पूंजी की मांग या निवेश घटता जाता है तथा जैसे-जैसे ब्याज की दर घटती जाती है, पूंजी की मांग या निवेश बढ़ता जाता है ।

18.2.2 पूंजी की पूर्ति

पूंजी की पूर्ति बचत पर निर्भर करती है ।बचत ब्याज की दर का प्रत्यक्ष फलन होती है । जिसका तात्पर्य यह है कि जैसे-जैसे ब्याज की दर बढ़ती है बचत भी बढ़ती जाती है और जैसे-जैसे ब्याज की दर घटती जाती है बचत भी कम होती जाती है । गणितीय रूप में बचत एवं ब्याज की दर के फलनात्मक सम्बन्ध को निम्न प्रकार प्रकट किया जा सकता है : -

S=F(r)

यहां

S = बचत

r ब्याज की दर

चूंकि पूंजी की पूर्ति बचत पर निर्भर करती है । इसलिए पूंजी की पूर्ति एवं ब्याज की दर में भी सीधा सम्बन्ध पाया जायेगा और पूंजी का पूर्ति वक्र नीचे से ऊपर की ओर उठता हुआ होगा जो चित्र संख्या 18.2 में दर्शाया गया है ।

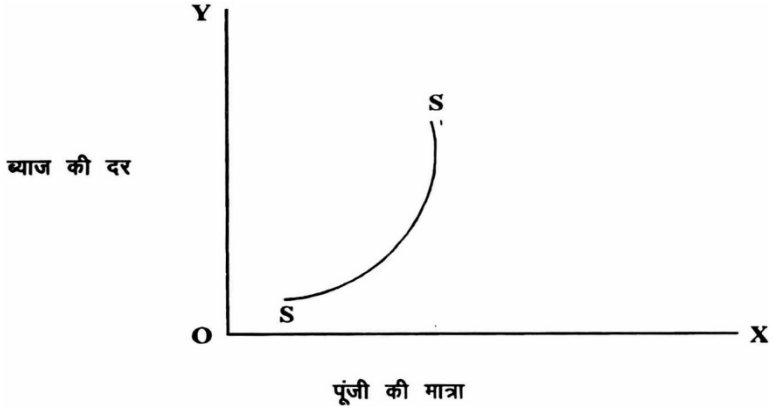

चित्र सं 18.2

चित्र संख्या 18.2 में OX अक्ष पर पूंजी की पूर्ति मात्रा तथा OY अक्ष पर ब्याज की दर को लिया गया है । SS पूंजी का पूर्ति वक्र है जो यह बतलाता है कि जैसे-जैसे ब्याज की दर बढ़ती है पूंजी की पूर्ति मात्रा बढ़ती जाती है । तथा ब्याज की दर के घटने पर पूंजी की पूर्ति भी कम हो जाती है ।

18.2.3 ब्याज की दर का निर्धारण

ब्याज के क्लासिकल सिद्धान्त के अनुसार ब्याज उस बिन्दु पर निर्धारण होता है जहां पूंजी की मांग एवं पूर्ति एक दूसरे के बराबर होती है । यह बिन्दु संतुलन का बिन्दु होगा तथा इस

बिन्दु पर ब्याज की दर, बचत एवं निवेश भी बराबर होगें । चित्र संख्या 18.3 द्वारा इस निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है ।

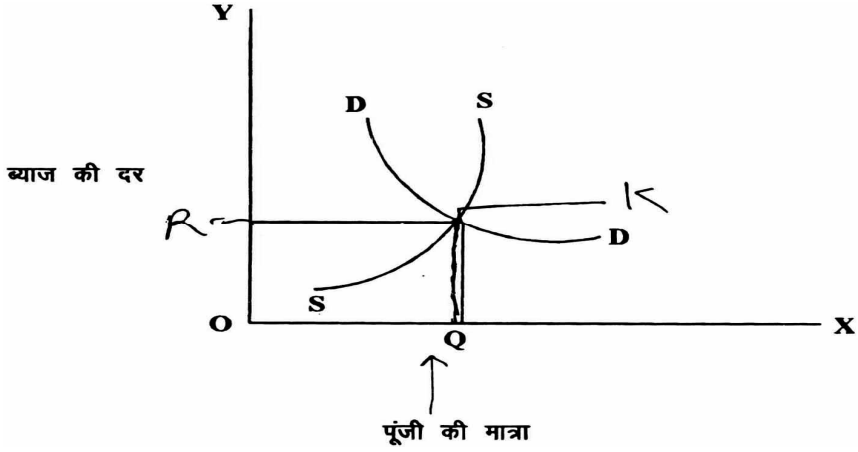

चित्र सं. 18.3

चित्र संख्या 18.3 में OX अक्ष पर पूंजी की मात्रा तथा OY अक्ष पर ब्याज की दर को लिया गया है । DDवक्र विभिन्न ब्याज की दर पर पूंजी की मांग मात्रा या निवेश को बतलाता है जबकि SS वक्र विभिन्न ब्याज की दर पर पूंजी की पूर्ति या बचत को बतलाता है पूंजी का मांग वक्र DD तथा पूंजी का पूर्ति वक्र SS एक दूसरे को K बिन्दु संतुलन का बिन्दु होगा तथा इस बिन्दु पर ब्याज की दर OR निर्धारित होगी ।

18.2.4 आलोचनाएं

ब्याज के क्लासिकल सिद्धान्त की कुछ मुख्य आलोचनाएं निम्न प्रकार हैं :-

1. कीन्स के अनुसार बचत एवं निवेश में संतुलन व्याज की दर से नहीं होता बल्कि यह आय में होने वाले परिवर्तन के कारण होता है ।
2. क्लासिकल अर्थशास्त्रियों का यह विचार कि बचत एवं निवेश दोनों पर ब्याज की दर का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है सही प्रतीत नहीं होता क्योंकि बचत पर ब्याज की अपेक्षा आय का तथा निवेश पर ब्याज की अपेक्षा पूंजी की सीमान्त उत्पादकता का अधिक प्रभाव पड़ता है ।
3. सिद्धान्त पूर्ण रोजगार की मान्यता पर आधारित है जो अवास्तविक है ।
4. सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर बचतों एवं निवेशों से निर्धारित होती है । जबकि वास्तविकता में यह बचतों एवं निवेशों को निर्धारित करती हैं ।
5. सिद्धान्त में उपभोग के लिए की गई मुद्रा की मांग की पूर्ण रूप से उपेक्षा कर दी गई है जो वास्तविकता से परे हैं ।

बोध प्रश्न - 1

1. ब्याज के क्लासिकल सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये ।
2. ब्याज के क्लासिकल सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएं बताईयें ।

18.3 ब्याज का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त

सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रो. जे. एम. कीन्स द्वारा किया गया । इस सिद्धान्त के अनुसार 'ब्याज एक निश्चित समय के लिए तरलता के परित्याग का पुरस्कार है । (Interest is the reward for perting with liquidity for a specified period) ब्याज की दर का निर्धारण मुद्रा की मांग एंव मुद्रा की पूर्ति के द्वारा किया जाता है । मुद्रा की मांग एवं मुद्रा की पूर्ति जहां बराबर होती हैं । वहां व्याज की दर निर्धारित होती है । मुद्रा की मांग एवं मुद्रा की पूर्ति के सम्बन्ध में इस सिद्धान्त में की गई व्याख्या निम्न प्रकार है ।

18.3.1 मुद्रा की मांग

इस सिद्धान्त के अनुसार मुद्रा की मांग तरलता अधिमान के लिए जाती है । दूसरे शब्दों में मुद्रा की मांग का अभिप्राय है कि व्यक्ति मुद्रा की कितनी मात्रा अपने पास नकद या तरल रूप में रखना चाहते हैं । मुद्रा को तरल रूप में रखने के निम्नलिखित तीन कारण हैं :-

1. क्रय-विक्रय उद्देश्य
2. सतर्कता उद्देश्य
3. सट्टा उद्देश्य

1. क्रय-विक्रय उद्देश्य

सामान्यत: परिवारों को दिन-प्रतिदिन के उपयोग के लिए तथा व्यावसायिक फर्मो को कच्चे माल, श्रम आदि पर व्यय करने के लिए अपने पास कुछ मुद्रा तरल रूप में अर्थात् नकद रूप में रखनी पड़ती है । मुद्रा की यह मांग लेन-देन उद्देश्य से की गई मुद्रा कहलाती है । यह मांग आय के स्तर पर निर्भर करती है । गणितीय रूप में इसे निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है ।

$L1 = F(Y)$

यहां

L1 = लेन-देन उद्देश्य से की गई मुद्रा की मांग

Y = आय

2. सतर्कता उद्देश्य

अप्रत्याशित या भावी परिस्थितियों का सामना करने के लिए भी व्यक्ति अपने पास कुछ मुद्रा तरल रूप में रखना पसन्द करते हैं । जिससे आवश्यकता पड़ने पर आकस्मिक खर्चो को पूरा किया जा सके । मुद्रा की यह मांग सतर्कता उद्देश्य से की गई मुद्रा की मांग होती है । यह मांग भी आय का फलन होती है । गणितीय रूप में इस निम्न प्रकार किया जा सकता है :-

$L2 = F(Y)$

यहां

L2 = सतर्कता उद्देश्य से की गई मुद्रा की मांग

Y = आय

3. सट्टा उद्देश्य

सट्टा उद्देश्य से मुद्रा को तरल रूप में रखने की मांग का मुख्य कारण व्यक्तियों में आकस्मिक लाभ कमाने की प्रवृत्ति होती है । सट्टे के उद्देश्य के लिए मुद्रा को तरल रूप में रखने का ब्याज की दर से गहरा सम्बन्ध होता है । यह सम्बन्ध विपरीत दिशा वाला होता है अर्थात् यदि ब्याज की दर कम होगी तो सट्टा उद्देश्य से मुद्रा को तरल रूप में रखने की अधिक प्रवृत्ति होगी और यदि ब्याज की दर अधिक होगी तो सट्टा उद्देश्य से मुद्रा को तरल रूप में रखने की अधिक प्रवृत्ति होगी और यदि ब्याज की दर अधिक होगी तो सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा को तरल रूप में रखने की प्रवृत्ति कम होगी । इसे गणितीय रूप में निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है ।

$L3 = F(r)$

यहाँ

L3 = सट्टा उद्देश्य से की गई मुद्रा की मांग

r = ब्याज की दर

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मुद्रा को तरल रूप में रखने की कुल मांग (MD) लेन-देन उद्देश्य से की गई मुद्रा की मांग (L1) सतर्कता उद्देश्य से की गई मुद्रा की मांग (L2) तथा सट्टा उद्देश्य से की गयी मुद्रा की माँग (L3) का जोड़ होती है ।

गणितीय रूप में

$MD=L1+L2+L3$

जैसा कि हम जानते हैं L1 व L2 आय के फलन हैं जबकि L3 ब्याज की दर का फलन है । अत: MD आय एवं ब्याज की दर का फलन होगा अर्थात्

$MD= F(Y,r)$

यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि लेन-देन उद्देश्य तथा सतर्कता उद्देश्य से की गई मुद्रा की मांग अल्पकाल में स्थिर होती है तथा ब्याज की दर का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है जबकि सट्टा उद्देश्य से मुद्रा की मांग ब्याज की दर पर निर्भर करती है । मुद्रा की तरलता पसन्दगी की कुल मांग एवं ब्याज की दर का रेखाचित्र बनाया जायें तो उसकी आकृति निम्न प्रकार होगी :-

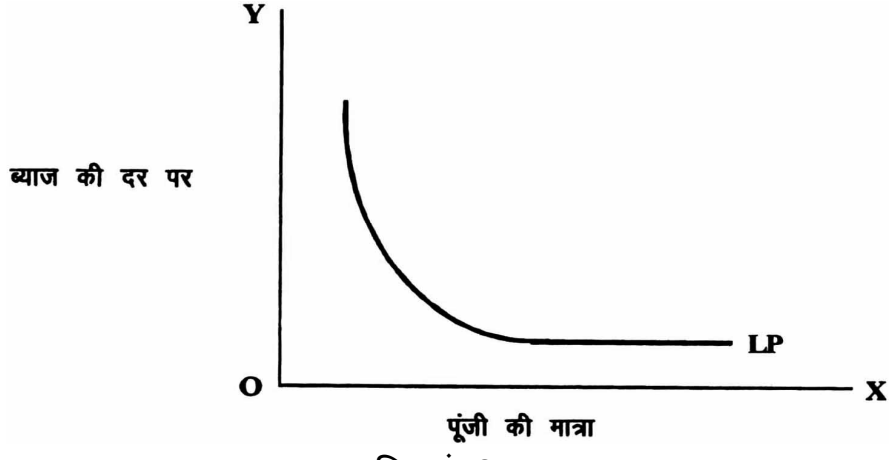

चित्र सं.18.4

चित्र संख्या 18.4 में LP वक्र मुद्रा को तरल रूप में रखने की मांग एवं ब्याज की दर के संबंध को बतलाता है । इसे तरलता पसन्दगी वक्र कहा जाता है । ब्याज की वह दर जिस पर मुद्रा की मांग अनन्त हो जाती है वह तरलता जाल की स्थिति कहलाती है ।

18.3.2 मुद्रा की पूर्ति

किसी समय विशेष में उपलब्ध मुद्रा की कुल मात्रा जिसमें वास्तविक वैधानिक मुद्रा तथा साख मुद्रा दोनों का समावेश हो मुद्रा की पूर्ति होती है । मुद्रा की पूर्ति ब्याज के सन्दर्भ में पूर्णतया बेलोच होती है । मुद्रा की पूर्ति का वक्र चित्र संख्या18.5 में दर्शाया गया हैं ।

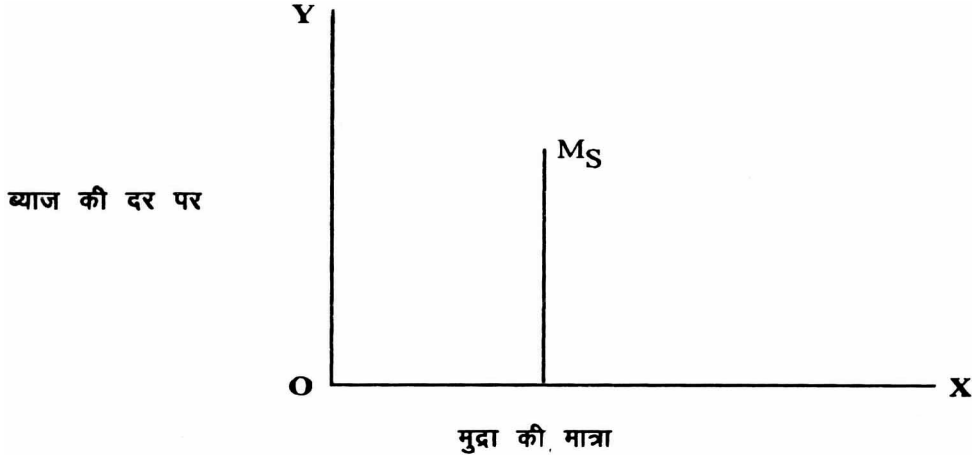

चित्र सं. 18.5

चित्र संख्या 18.5 में MS मुद्रा की पूर्ति वक्र है जो यह बतलाता है कि ब्याज की दर का मुद्रा की पूर्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है ।

18.3.3 ब्याज की दर का निर्धारण

ब्याज के तरलता पसन्दगी सिद्धान्त में ब्याज की दर का निर्धारण वहां पर होता है जहां मुद्रा की मांग (तरलता पसन्दगी) तथा मुद्रा की पूर्ति बराबर हो जाती है अर्थात्

MD = MS

यहाँ

MD = मुद्रा की मांग

MS = मुद्रा की पूर्ति

ब्याज की दर के निर्धारण को चित्र संख्या 18.6 की सहायता से निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है ।

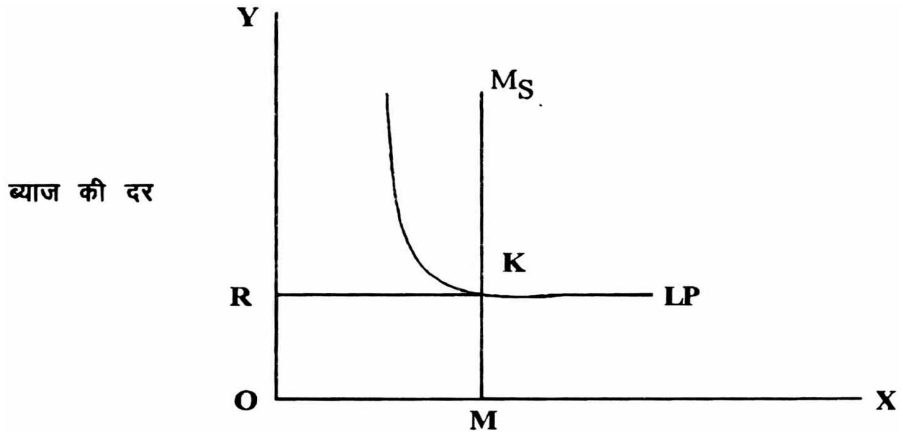

चित्र सं. 18.6

चित्र संख्या 18.6 में OX अक्ष पर मुद्रा की मात्रा तथा OY की मात्रा चित्र संख्या 18.6 अक्ष पर ब्याज की दर को लिया गया है । LP वक्र मुद्रा तरलता पसन्दगी (मुद्रा की मांग) तथा ब्याज के सम्बन्ध को प्रकट करता है जबकि MS वक्र मुद्रा की पूर्ति को सूचित करता है । LP वक्र MS वक्र को K बिन्दु पर काटता है । अत: K बिन्दु संतुलन का बिन्दु होगा तथा इस बिन्दु पर मुद्रा की मांग एवं मुद्रा की पूर्ति बराबर होगी । इस बिन्दु पर ब्याज की दर OR निर्धारित होगी । मुद्रा की मांग एवं पूर्ति में परिवर्तन होने से ब्याज की दर पर पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या निम्न प्रकार की जा सकती है -

1. यदि मुद्रा की मांग में कोई परिवर्तन न हो तथा मुद्रा की पूर्ति बढ़ जाये तो ब्याज की दर कम हो जाती है परन्तु जब ब्याज की दर घट कर इतनी हो जायें कि LP वक्र OX ये अक्ष के समानान्तर हो जायें तो इसका अर्थ यह है कि इससे ब्याज की दर कम होने पर व्यक्ति उधार देने के बजाय अपने पास नकद रखना पसन्द करेंगे । दूसरे शब्दों में ब्याज की वह दर जिस पर मुद्रा की तरलता पसन्दगी मांग अनन्त हो जाती है वह तरलता जाल की स्थिति कहलाती हैं ।
2. यदि मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहे और तरलता अधिमान बढ़ जाये तो ब्याज की दर भी बढ़ जाती है ।

18.3.4 आलोचनाएं

इस सिद्धान्त में भी अनेक विशेषताएं होने पर भी कई कमियां पाई गई जिसके कारण इसकी भी आलोचना की गई । कुछ प्रमुख आलोचनाएं निम्न प्रकार हैं: -

1. इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज तरलता के त्याग का पुरस्कार है न कि बचत का परन्तु बचत के बिना तरलता नहीं आती । अत: ब्याज की दर के निर्धारण में बचत को पूर्णतया महत्व न देना उचित नहीं है !
2. यह सिद्धान्त केवल मौद्रिक तत्वों को प्रमुखता देता है जबकि ब्याज की दर के निर्धारण पर अमौद्रिक तत्वों का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है ।
3. इस सिद्धान्त में पूंजी की उत्पादकता के महत्व की उपेक्षा की गई है जो उचित नहीं है ।

4. यह सिद्धान्त केवल अल्पकाल में पाई जाने वाली ब्याज दर की व्याख्या करता है । दीर्घकाल में ब्याज की दर क्या होगी, इसकी व्याख्या नहीं करता ।
5. सिद्धान्त में मुद्रा की सट्टा मांग ब्याज की दर पर निर्भर करती है । अत: ब्याज की दर पहले ज्ञात होनी चाहिये । ब्याज की दर के अभाव में सट्टा उद्देश्य से मुद्रा की मांग ज्ञात करना कठिन है और सट्टे के लिए मुद्रा की मांग के निर्धारण किये बिना ब्याज निर्धारण संभव नहीं हो सकता अत: सिद्धान्त वृत्ताकार तर्क में डाल देता है जिससे यह कठिन हो जाता है कि कौन किसे निर्धारित करता है और ऐसी स्थिति में ब्याज की दर अनिर्धारणीय हो जाती है ।

उपरोक्त आलोचनाओं के बावजूद भी ब्याज का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त ब्याज के निर्धारण में अपना नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत करने के कारण आर्थिक जगत में विशेष महत्व रखता है ।

बोध प्रश्न - 2

1. ब्याज के तरलता पसन्दगी सिद्धान्त के अनुसार मुद्रा की मांग के प्रमुख उद्देश्यों को स्पष्ट कीजिये ।

2. ब्याज के तरलता पसन्दगी सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर के निर्धारण को स्पष्ट कीजिये ।

3. ब्याज के तरलता पसन्दगी सिद्धान्त की क्या कमियां हैं ?

18.4 सारांश

किसी ऋणी द्वारा ऋण के प्रयोग के बदले ऋणदाता को दिया गया भुगतान ब्याज कहलाता है । ब्याज की दर के निर्धारण के सम्बन्ध में अनेकों सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं । ब्याज का क्लासिकल सिद्धान्त एवं व्याज का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त इनमें महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं । इन दोनों सिद्धान्तों का इस इकाई में विस्तृत विवेचन किया गया है ।

ब्याज के क्लासिकल सिद्धान्त के अनुसार व्याज की दर उस बिन्दु पर निर्धारित होती है वहां पूंजी की मांग तथा पूंजी की पूर्ति के बराबर होती है । दूसरे शब्दों में यह वह स्थिति होती है । जहां निवेश एवं बचत एक-दूसरे के बराबर होते है क्योंकि क्लासिकल सिद्धान्त के अनुसार पूंजी की मांग का मुख्य कारण निवेश होता है । जबकि पूर्ति बचत पर निर्भर करती है । हालांकि यह सिद्धान्त ब्याज का वास्तविक सिद्धान्त माना जाता है । परन्तु मौद्रिक तत्वों की उपेक्षा एवं अन्य कमियों के कारण इसकी अनेकों आलोचनाएं भी हुई । ब्याज की दर के निर्धारण की दिशा में कीन्स का मुद्रा का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त भी अपना विशेष स्थान रखता है । इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है । जहां मुद्रा की मांग या तरलता पसन्दगी तथा मुद्रा की पूर्ति बराबर होती है । इस सिद्धान्त की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें ब्याज को मुद्रा की तरलता के त्याग का पुरस्कार बताया गया है तथा मुद्रा की मांग उसकी तरलता पसन्दगी या नकदी अधिमान के द्वारा प्रकट होती है । सिद्धान्त में मुद्रा की मांग के तीन उद्धेश्य (लेन-देन उद्देश्य सतर्कता उद्देश्य तथा सट्टा उद्देश्य) बतायें गयें हैं तथा इनकी विस्तृत चर्चा की गई हैं । मुद्रा कें मांग पक्ष पर अत्यधिक बल तथा पूर्ति पक्ष को गौण मानने के कारण इस सिद्धान्त की भी आलोचनाएं हुई है परन्तु फिर भी वर्तमान समय में यह अपना विशेष स्थान रखता है ।

18.4 शब्दावली

सट्टा उद्देश्य

भविष्य के सम्बन्ध में बाजार की तुलना में अधिक जानकारी द्वारा लाभ प्राप्त करने का उद्देश्य सट्टा उद्देश्य कहा जाता हैं ।

तरलता पसन्दगी

मुद्रा को नकद या तरल रूप में रखने की मांग तरलता पसन्दगी कहलाती है ।

तरलता जाल की स्थिति

ब्याज की वह दर जिस पर मुद्रा की तरलता पसन्दगी मांग अनन्त हो जाती है वह तरलता जाल की स्थिति कहलाती है ।

18.5 संदर्भ ग्रंथ

आहूजा एच. एल. : उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, एस. चांद एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2008

बरला, सी. एस. : उच्चतर व्यष्टिगत अर्थशास्त्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस जयपुर 1999

Salvatore d : Micro Economic Theory and Applications,4th Edition 2003

Stoneier A.W. and Hauge D.C. A Taxt Book of Economic Theory, Macmillan,Landon,

8.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न प्रश्न - 1

प्रश्न (1) भाग 18.2 देखें ।

प्रश्न (2) भाग 18.2.4 देखें ।

बोध प्रश्न - 2

प्रश्न (1) भाग 18.3.1 दैंखे ।

प्रश्न (2) भाग 18.3 देखें ।

प्रश्न (3) भाग 18.3.4 देखें ।

इकाई - 19

लाभ के सिद्धान्त (Theories ऑफ Profit)

इकाई की रूपरेखा :

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 लाभ का अर्थ एवं परिभाषा

19.3 लाभ का लगान सिद्धान्त

19.4 लाभ का मजदूरी सिद्धान्त

19.5 लाभ का समाजवादी सिद्धान्त

19.6 लाभ का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त

19.7 लाभ का प्रावैगिक सिद्धान्त

19.8 लाभ का जोखिम सिद्धान्त

19.9 लाभ का अनिश्चितता वहन सिद्धान्त

19.10 लाभ का नवप्रवर्तन सिद्धान्त

19.11 लाभ का आधुनिक सिद्धान्त

19.12 लाभ का औचित्य

19.13 बोध सारांश

19.14 प्रश्नों के उत्तर

19.15 सन्दर्भ गन्ध

19.16 शब्दावली

19.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

(i) उत्पादन प्रक्रिया में साहसी को दिये जाने वाले पारिश्रमिक लाभ का अर्थ

(ii) साहसी की उत्पादन प्रक्रिया में होने वाली भूमिका जानकारी प्राप्त कर सकेंगे इसकी विवेचना कर सकेंगे

(iii) वर्तमान में विभिन्न बाजार स्थितियों में लाभ का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है इसकी विवेचना कर सकेगें

19.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आपने उत्पादन के विभिन्न साधनों को दिये जाने वाले पारिश्रमिक जैसे मजदूरी, लगान तथा ब्याज आदि के विभिन्न सिद्धान्तों का अध्ययन किया । उद्यमी भी उत्पादन का एक महत्वपूर्ण साधन है तथा लाभ उद्यमी को उद्यमितापूर्ण कार्यो को करने के लिए प्रोत्साहन के रूप में दिया जाता है । प्रस्तुत इकाई में लाभ का अर्थ एवं परिभाषा, लाभ की

विशेषताएँ आदि समझाने के पश्चात लाभ के विभिन्न सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है यद्यपि लाभ के सम्बन्ध में विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अलग-अलग सिद्धान्त प्रतिपादित किये है तथा कोई भी एक ऐसा सर्वमान्य सिद्धान्त नहीं है जो लाभ के सभी पहलुओं पर प्रकाश डाल सकें । प्रस्तुत इकाई में कुछ प्रमुख सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है ।

19.2 लाभ का अर्थ एवं परिभाषा

लाभ राष्ट्रीय आय का वह भाग है जो साहसी को उत्पादन के साधन के रूप में उसके कार्यो के लिए पुरस्कार स्वरूप मिलता है । दूसरे शब्दों में, "राष्ट्रीय आय का वह अंश जो उत्पादन प्रक्रिया में साहसी को मिलता है, लाभ कहा जाता हैं । "

प्रो० मार्शल के अनुसार, 'लाभ प्रबंध की कमाई है । " जबकि प्रो० हेनरी ग्रेशन के अनुसार, "लाभ को नव प्रवर्तन का पुरस्कार, जोखिमों और अनिश्चितताओं को उठाने का प्रतिफल अथवा बाजार में अपूर्णताओं के परिणाम के रूप में समझा जा सकता है । "

1. **लाभ की विशेषताएँ : -**

लाभ की निम्न विशेषताएँ

(i) लाभ एक अवशेष आय है अर्थात् कुल आय में से उत्पादन के साधनों का पुरस्कार चुकाने के बाद जो शेष भाग शेष भाग साहसी को प्राप्त होता है, वह लाभ है ।

(ii) लाभ की मात्रा में भारी उतार-चढ़ाव होते है, अर्थात् तेजी काल में लाभ बहुत अधिक तथा मंदी काल में हानि भी हो सकती है ।

(iii) लाभ ऋणात्मक भी हो सकता है अर्थात् साहसियों को हानि भी हो सकती है ।

(iv) लाभ अनिश्चित अवशेष होता हैं ।

2. कुल लाभ और शुद्ध लाभ : -

साधारण भाषा में कुल लाभ को ही शुद्ध लाभ कहा जाता है । जबकि अर्थशास्त्र में कुल लाभ एवं शुद्ध लाभ में अन्तर किया जाता है । शुद्ध लाभ का अभिप्राय कुल लाभ के केवल उस अंश से है जो साहसी को केवल उत्पादन प्रक्रिया में जोखिम उठाने, अनिश्चितता वहन करने तथा नव प्रवर्तन के प्रतिफल के रूप में प्राप्त होता है । प्रो० टामस कें अनुसार, "शुद्ध लाभ केवल साहसी के जोखिम उठाने का पुरस्कार है । साहसी का यह कार्य ऐसा है जो केवल वही कर सकता है । "

जबकि कुल आगम में से क्रय किये गये माल की कीमत, उत्पादन साधनों के पुरस्कार (भूमि, पूंजी, श्रम तथा प्रबन्ध) तथा संभावित घिसाई व्यय निकाल देने के बाद जो शेष बचता है, वही कुल लाभ कहलाता है । सूत्र के रूप में :

कुल लाभ = शुद्ध लाभ + साहसी के साधनों का प्रतिफल + आकस्मिक लाभ + एकाधिकारी लाभ + स्पष्ट लागतें ।

शुद्ध लाभ = कुल लाभ - (साहसी के साधनों का प्रतिफल + स्पष्ट लागतें + एकाधिकारी लाभ + आकस्मिक लाभ)

3. सकल लाभ में भिन्नता के कारण :

विभिन्न व्यवसायों में उद्यमी को मिलने वाले कुल लाभ में भिन्नता के निम्न कारण हो सकते हैं

(i) साहसियों की संगठन एवं संचालन योग्यता में अंतर ।

(ii) जोखिम तथा अनिश्त्िताओं में भिन्नता ।

(iii) व्यावसायिक परिस्थितियों में अंतर ।

(iv) प्रतियोगिता में अंतर ।

(v) उत्पादन लागतों में भिन्नता ।

4. लाभ के विभिन्न स्वरूप : -

लाभ के अनेक रूप है जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न हैं :-

(i) **प्रतिस्पर्द्धात्मक लाभ :-** पूर्ण प्रतियोगिता की परिस्थिति में व्यवसायों मे प्राप्त होने वाला लाभ ही प्रतिस्पर्द्धात्मक लाभ कहलाता है । इस अवस्था में सभी क्षेत्रों में लाभ की प्रवृत्ति समान होने की होती है ।

(ii) **एकाधिकारी लाभ :-** यह उस वस्तु के उत्पादकों को मिलता है जो किसी वस्तु के एक मात्र पूर्तिकर्ता है तथा जिनका बाजार की पूर्ति पर पूर्ण नियंत्रण होता है, इसलिए ये वस्तु का मूल्य लागत से अधिक रखते हैं । इसे असमान्य लाभ भी कहते हैं ।

(iii) **सामान्य लाभ :-** यह लाभ का वह निम्नतम स्तर है जो किसी भी साहसी को उद्योग में बनाए रखने के लिए आवश्यक है । सामान्य लाभ कीमत में सम्मिलित होता है ।

(iv) **असामान्य लाभ या अतिरिक्त लाभ :-** सामान्य लाभ से अधिक लाभ होने की अवस्था को असामान्य लाभ कहते हैं । प्रो० नाइट के अनुसार, "सामान्य लाभ ज्ञात जोखिम का तथा असामान्य लाभ अज्ञात जोखिम का परिणाम हैं ।

(v) **आकस्मिक लाभ या अप्रत्याशित लाभ :-** जो किसी उद्योग की विभिन्न फर्मो को बिना किसी आशा के, ऐसी शक्तियों से जो फर्म के नियंत्रण से बाहर हैं, संयोगवश लाभ प्राप्त होता है तो इसे आकस्मिक लाभ कहते हैं जैसे: वृद्धि तेजी अथवा मंदी आदि से उत्पन्न लाभ आकस्मिक लाभ की श्रेणी में आते हैं ।

बोध प्रश्न - 1

प्रश्न -1 लाभ का अर्थ एवं परिभाषा बताइए

प्रश्न -2 कुल लाभ एवं शुद्ध लाभ में क्या अंतर हैं

प्रश्न -3 लाभ के विभिन्न स्वरूप बताइये ।

19.3 लाभ का लगान सिद्धान्त

यह सिद्धान्त अमेरिका के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो० वाकर व उसके सहयोगियों ने दियां उनके अनुसार, "लाभ योग्यता का लगान है ।" उनके अनुसार उद्योगों में सभी साहसी समान योग्यता वाले नहीं होते । अत: अधिक योग्यता वाले साहसी को कम योग्यता वाले साहसी को कम योग्यता वाले साहसियों की तुलना में पुरस्कार स्वरूप जो अतिरिक्त राशि प्राप्त होती हैं, वही लाभ हैं । प्रो० वाकर के शब्दों में, "शुद्ध लाभ कमाने की तरह वह पुरस्कार है जो केवल श्रेष्ठ

उद्यमी को उसकी विशेष योग्यताओं के कारण प्राप्त होता है । " अर्थात् लाभ एक भेदात्मक बचत हैं जो वस्तु की कीमत को निर्धारित नहीं करता ।

1. आलोचनाएँ :-

विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अनेक कारणों से इस सिद्धान्त की आलोचनाएँ की है जो निम्नलिखित हैं:-

(i) यह सिद्धान्त लाभ के कारणों पर प्रकाश नहीं डालता ।

(ii) लाभ निर्धारण में जोखिम तथा अनिश्चितता के तत्वों की उपेक्षा उचित नहीं ।

(iii) लाभ और लगान पृथक-पृथक होते हैं ।

(iv) लाभ भी साहसी के पुरस्कार के रूप में कीमत में सम्मिलित होता है ।

बोध प्रश्न - 2

प्रश्न 1. लाभ के लगान सिद्धान्त के प्रतिपादक कौन थे?

प्रश्न 2. लाभ के लगान सिद्धान्त क्या हैं?

19.4 लाभ का मजदूरी सिद्धान्त

यह सिद्धान्त अमेरिकी अर्थशास्त्री प्रो० टॉजिंग द्वारा प्रतिपादित किया गया । प्रो० टॉजिंग के शब्दों में "लाभ उद्यमकर्ता की वह मजदूरी है जो उसे उसकी विशेष योग्यता तथा बुद्धिमता के बराबर प्राप्त होती है ।" उनके अनुसार उत्पादन के साधन के प्रतिफल के रूप में जिस प्रकार श्रमिक को मजदूरी मिलती है उसी प्रकार साहसी को लाभ प्राप्ति होती हैं इस सिद्धान्त में साहस व श्रम को समानता के स्तर पर रख दिया है

1. आलोचनाएँ -

इस सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएँ निम्न हैं :-

(i) लाभ प्राप्त करने वाले उद्यमी एवं श्रमिक की स्थिति समान नहीं होती ।

(ii) लाभ के कारणो पर प्रकाश नहीं डालता ।

(iii) मजदूरी एवं लाभ भिन्न-भिन्न हैं ।

(iv) यह सिद्धान्त अनुचित एवं अवैज्ञानिक है ।

बोध प्रश्न : 3

प्र.1 लाभ का मजदूरी सिद्धान्त के प्रतिपादक का नाम बताइये ।

प्र.2 लाभ का मजदूरी सिद्धान्त क्या हैं?

19.5 लाभ का समाजवादी सिद्धान्त

यह सिद्धान्त समाजवाद के जनक प्रो० कार्लमार्क्स ने प्रतिपादित किया । इनके अनुसार लाभ श्रमिकों के शोषण के कारण उत्पन्न होता हैं । मार्क्स के अनुसार उद्यमी वस्तु की कीमत का बहुत कम भाग श्रमिकों को देता है तथा बाकी कीमत स्वयं हड़प लेता है । कीमत एवं मजदूरी के इस अन्तर को मार्क्स ने 'अतिरिक्त मूल्य' माना एवं इसे ही लाभ की उत्पत्ति का कारण माना । उनके अनुसार जितना अधिक श्रमिकों का शोषण होगा उतनी ही लाभ की मात्रा अधिक होगी । इसीलिए कार्लमार्क्स ने लाभ को समाप्त करने हेतु कहां ।

1. आलोचना : -

इस सिद्धान्त में अनेक त्रुटियां हैं । जो निम्न हैं:-

(i) उत्पादन प्रक्रिया में साहसी की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है ।

(ii) लाभ साहसी के जोखिम तथा अनिश्चितता वहन करने का प्रतिफल है न कि श्रमिकों के शोषण का ।

(iii) वस्तु की कीमत केवल श्रम यात्रा से निर्धारित नहीं होती वरन् उत्पत्ति के अन्य साधनों जैसे भूमि, एवं प्रबंध आदि द्वारा भी निर्धारित होती हैं ।

बोध प्रश्न : 4

प्र.1 लाभ का समाजवादी सिद्धान्त समझाइये ।

प्र.2 लाभ का समाजवादी सिद्धान्त की आलोचनाएँ बताइये ।

19.6 लाभ का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के प्रतिपादन के श्रेय एँजवर्थ, चैपमेन, स्टिगलर, स्टोनियर तथा हेग आदि सीमान्तवादी अर्थशास्त्रियों को जाता है । इस सिद्धान्त के अन्तर्गत साहसी को भी उत्पति का एक महत्वपूर्ण साधन माना गया है तथा उसे भी अन्य साधनों की भाँति उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर प्रतिफल देने हेतु कहा गया है, जिसे लाभ माना गया है । अर्थात् दीर्घकाल में उद्यमी का पुरस्कार (लाभ) उसकी सीमान्त उत्पादकता के मूल्य के बराबर होता है । जिन उद्योगों में साहसियों की पूर्ति मांग की अपेक्षा कम होगी उनमें उनकी सीमान्त उत्पादकता अधिक होगी फलस्वरूप लाभ भी अधिक होगा । जैसे-जैसे साहसियों की पूर्ति बढ़ेगी, लाभ की मात्रा कम होती जायेगी ।

1. आलोचनाएँ :-

उपरोक्त सिद्धान्त की निम्न आलोचनाएँ हैं :-

(i) यह सिद्धान्त एक पक्षीय हैं, केवल उद्यमी की मांग पक्ष पर ध्यान देता हं, पूर्तिपक्ष पर नहीं।

(ii) उद्यमी की सीमान्त उत्पादकता ज्ञात करना कठिन होता है ।

(iii) यह दीर्घकाल सिद्धान्त है ।

बोध प्रश्न : 5

प्र.1. लाभ का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त समझाइये ।

19.7 लाभ का प्रावैगिक सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रो० जे. वी. क्लार्क ने किया । प्रो० क्लार्क के अनुसार, "लाभ परिवर्तनों का परिणाम है । यह केवल प्रावैगिक अर्थव्यवस्था में ही उत्पन्न होता हैं, स्थिर अर्थव्यवस्था में नहीं । "

क्लार्क के अनुसार प्रावैगिक अर्थव्यवस्था वह अर्थव्यवस्था है जहां जनसंख्या, पूंजी की मात्रा, उपभोक्ताओं की आय, रूचि एवं फैशन, उत्पादन विधियों व तकनीक तथा ओद्योगिक इकाइयों के स्वरूप आदि में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं इन परिवर्तनों के अभाव वाली अर्थव्यवस्था को स्थिर अर्थव्यवस्था कहा जाता है । स्थिर अर्थव्यवस्था में अनिश्चितता व जोखिम

का अभाव होता है इसलिए लाभ उत्पन्न नहीं होता । जबकि प्रावैगिक अर्थव्यवस्था में निरन्तर परिवर्तनों के कारण जोखिम अधिक रहती है जो लाभ को जन्म देती है ।

1. आलोचनाएँ :-

उपरोक्त सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ निम्न हैं :-

(i) यह सिद्धान्त साहसी के कार्यो की उपेक्षा करता है जो उपयुक्त नहीं हैं ।

(ii) प्रो० नाइट के अनुसार लाभ प्रावैगिक परिवर्तनों के कारण नहीं बल्कि अनिश्चितताओं के कारण उत्पन्न होता है ।

बोध प्रश्न : 6

प्र.1 लाभ का प्रावैगिक सिद्धान्त के प्रतिपादक कौन हैं ।

प्र.2 क्लार्क के अनुसार प्रावैगिक अर्थव्यवस्था का अर्थ बताइये ।

19.8 लाभ का जोखिम सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अमेरिका के अर्थशास्त्री हॉले ने 1907 में किया था इसीलिए इसे हॉले का लाभ सिद्धान्त भी कहा जाता है । हॉले के अनुसार प्रत्येक व्यवस्था में कुछ न कुछ जोखिम अवश्य होती है, यदि कोई उद्यमी यह जोखिम उठता है तो उसे लाभ अवश्य प्राप्त होगा । जितनी अधिक जोखिम उठाई जायेगी, लाभ की मात्रा उतनी ही अधिक होगी । प्रो० हॉले के शब्दों में, "किसी उपक्रम में लाभ प्रबन्ध या समन्वय का पुरस्कार नहीं है बल्कि जोखिम या उत्तरदायित्व उठाने का प्रतिफल हैं, जो व्यवसाय को चलाने वाला उठाता हैं । "

व्यवसायों में जोखिम के कारण साहसियों के प्रवेश में बाधा उत्पन्न होती है इसलिए अधिक जोखिमपूर्ण व्यवसायों में साहसियों की पूर्ति कम होती है, इसलिए लाभ की मात्रा कम जोखिमपूर्ण व्यवसायों की तुलना में अधिक होती है ।

1. आलोचनाएँ :-

अन्य सिद्धान्तों की भांति इस सिद्धान्त की भी आलोचनाएँ की गई जो निम्न हैं :-

(i) प्रो० नाइट के अनुसार सभी प्रकार की जोखिमें लाभ को जन्म नहीं देती । कुछ जोखिमें जो पहले से ज्ञात होती हैं, उनके लिए उद्यमी व्यवस्था कर लेता है इसलिए अज्ञात जोखिमें ही लाभ का कारण बनती हैं ।

(ii) प्रो० कारवर के अनुसार लाभ जोखिम वहन का पुरस्कार नहीं बल्कि जोखिम को कम करने की योग्यता का प्रतिफल है । उनके अनुसार जो उद्यमी जोखिम को कम करने में सफल होते हैं, वही लाभ कमाने में सफल होते हैं ।

(iii) उद्यमी व्यवसाय में प्रवेश सदैव जोखिम उठाने के लिए नहीं करता बल्कि कई अन्य कारण भी उसे व्यवसाय में प्रवेश हेतु प्रोत्साहित करते हैं ।

(iv) लाभ केवल जोखिम वहन के कारण ही उत्पन्न नहीं होता बल्कि कई अन्य घटक जैसे उद्यमी की कार्यकुशलता, नवप्रवर्तन एवं एकाधिकारी स्थिति आदि भी लाभ उत्पति का कारण होते हैं जिनकी अवहेलना उचित नहीं है ।

बोध प्रश्न : 7

प्र.1. लाभ के जोखिम सिद्धान्त का प्रतिपादन किसने तथा कब किया?

प्र.2. लाभ के जोखिम सिद्धान्त को समझाइये ।

19.9 लाभ का अनिश्चितता सहन सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रो० नाइट ने 1921 में किया, इसी कारण इस सिद्धान्त को नाइट का लाभ सिद्धान्त भी कहते हैं । प्रो० नाइट के अनुसार, "सभी प्रकार की जोखिमें लाभ को जन्म नहीं देती जो जोखिमें ज्ञात होती हैं, उनसे लाभ उत्पन्न नहीं होता, केवल अज्ञात एवं अनिश्चित जोखिमों के कारण ही लाभ उत्पन्न होता है । अत: लाभ को जोखिमों का पुरस्कार कहने के स्थान पर अनिश्चितताओं का पुरस्कार कहना अधिक उपयुक्त है !"

प्रो० नाइट ने जोखिम और अनिश्चितता में भेद को स्पष्ट करने हेतु जोखिमों को दो भागों में विभाजित किया हैं :-

(i) बीमा योग्य जोखिमें ।

(ii) बीमा अयोग्य जोखिमें ।

(i) **बीमा योग्य जोखिमें :-** ये वे जोखिमें है जिनके उपस्थित होने का अनुमान उद्यमी पहले से ही लगा सकता है । उद्यमी इन जोखिमों की सांख्यिकीय गणना से अनुमान लगाकर बीमा करवा लेता है जैसे : आग, दुर्घटना एवं अन्य प्राकृतिक कारणों से होने वाली हानियों का बीमा करवाया जा सकता है और उद्यमी बीमा की किश्त जमा करवाकर इन जोखिमों से होने वाले नुकसान की चिन्ता से मुक्त हो जाता है । बीमा किश्त की राशि चूंकि लागत का ही एक भाग होती हैं और वस्तु की कीमत मे सम्मिलित हो जाती हैं इसलिए ये जोखिमें कोई अनिश्चितता उत्पन्न नहीं करती और इसीलिए ये लाभ को भी जन्म नहीं देती ।

(ii) **बीमा अयोग्य जोखिमें :-** उद्योग में कुछ ऐसी जोखिमें भी होती हैं जिनका सांख्यिकीय माप संभव नहीं होता और न ही इनका बीमा करवाया जा सकता है, अत: ऐसी जोखिमों का भार उद्यमी को वहन करना ही पड़ता है । ये बीमा अयोग्य जोखिमें ही लाभ की उत्पत्ति का कारण होती हैं । कुछ बीमा अयोग्य जोखिमें निम्न हैं :-

(a) प्रतिस्पर्द्धा सम्बन्धी जोखिमें, जो नये-नये उद्यमियों के प्रवेश के कारण उत्पन्न होती हैं।

(b) सरकार की आर्थिक नीतियों सम्बन्धी जोखिमें, जिनमें निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं ।

(c) यांत्रिकी जोखिमें जो नयी-नयी मशीनों के आविष्कार अथवा तकनीकी में परिवर्तनों के कारण उत्पन्न होती हैं ।

(d) व्यापार चक्र सम्बन्धी जोखिमें, जो बाजार में व्यापक आर्थिक तेजी अथवा मन्दी के कारण होती है।

(e) उपभोक्ताओं की रूचि, फैशन एवं अधिमानों में परिवर्तनों सम्बन्धी जोखिमें ।

प्रो० नाइट के अनुसार चूंकि उद्यमी उपरोक्त बीमा अयोग्य जोखिमों को वहन करता है, इसीलिए वह लाभ का भी हकदार होता है ।

प्रो० नाइट के शब्दों में, "अनिश्चितता सहन करने का पुरस्कार ही लाभ हैं । लाभ की मात्रा अनिश्चितता की मात्रा पर निर्भर करती है और दोनों में घनिष्ठा एवं प्रत्यक्ष सम्बन्ध हैं । किमी व्यवसाय में जितनी अधिक अनिश्चितता होगी, लाभ की दर भी उतनी ही अधिक होगी । "

1. आलोचनाएँ :-

अन्य सिद्धान्तों की भाँति - इस सिद्धान्त की भी कई आलोचनाएँ की गई हैं जैसे :-

(i) लाभ केवल अनिश्चितता के कारण ही उत्पन्न नहीं होता वरन् उद्यमी की कार्यकुशलता एवं अनेक अन्य तत्वो के कारण भी उत्पन्न होता है ।

(ii) उद्यमी के अन्य कार्यो जैसे उद्योगों का कुशल संचालन, नव प्रवर्तनों का प्रयोग, संगठन एवं समन्वय करना आदि की पूर्णतया उपेक्षा कर दी गई है । लाभ केवल अनिश्चितता वहन करने का पुरस्कार ही नहीं बल्कि उपरोक्त सभी कार्यो का सामूहिक प्रतिफल है ।

(iii) नाइट का सिद्धान्त शुद्ध लाभ की व्याख्या नहीं करता वरन् केवल आकस्मिक लाभों की व्याख्या करता हैं ।

(iv) अनिश्चितता उठाने के तत्व को उत्पादन का एक पृथक साधन नहीं माना जा सकता, यह तो उद्यमी के कार्यो की एक विशेषता मात्र है ।

बोध प्रश्न :- 8

प्रश्न 1. लाभ का अनिश्चितता सहन सिद्धान्त किसने तथा कब प्रतिपादित किया?

प्रश्न 2. बीमा योग्य जोखिम तथा बीमा अयोग्य जोखिम में अंतर स्पष्ट कीजिए।

19.10 लाभ का नव प्रवर्तन सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रो० शुम्पीटर ने किया । शुम्पीटर के अनुसार, "लाभ की उत्पत्ति नये-नयें आविष्कारों, अन्वेषणों अथवा नवप्रवर्तनों के कारण होती है । " नव प्रवर्तनों के विभिन्न रूप निम्न हैं :-

(i) नई-नई मशीनों के आविष्कार एवं प्रयोग ।

(ii) कच्चे माल के नये स्रोतों की खोज ।

(iii) नये-नये बाजारों की खोज ।

(iv) विक्रय की नवीन रीतियों की खोज ।

(v) नई-नई वस्तुओं का उत्पादन ।

शुम्पीटर के अनुसार लाभ नव-प्रवर्तनों का कारण एवं परिणाम दोनों है । साहसी लाभ में वृद्धि हेतु नव प्रवर्तनों को अपनाता है एवं नवप्रवर्तन लागत में कमी करके लाभ में वृद्धि करते हैं । प्रारंभ में नव प्रवर्तनों के प्रयोग द्वारा लाभ उत्पन्न होते हैं किन्तु जैसे-जैसे नव प्रवर्तनों का अनुकरण अन्य साहसियों द्वारा किया जाता है वैसे-वैसे नवीनता के अभाव में लाभ कम होने लगते हैं लेकिन उद्यमियों द्वारा नव प्रवर्तनों को अपनाने का क्रम निरन्तर चलता रहता है ।

1. आलोचनाएँ :-

इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ निम्न हैं :-

(i) इसमें उद्यमी के अन्य कार्यो को कोई महत्व नहीं दिया गया है ।

(ii) लाभ सदैव नवप्रवर्तनों के कारण ही नहीं होता बल्कि उद्यमी की अनिश्चितता एवं जोखिम सहन करने की विशेषताओं के कारण उत्पन्न होता हैं ।

(iii) उत्पादन के अन्य साधनों की तरह उद्यमी भी उत्पादन का एक महत्वपूर्ण साधन है जिसकी इस सिद्धान्त में उपेक्षा कर दी गई हैं ।

बोध प्रश्न - 9

प्र.1 लाभ का नवप्रवर्तन सिद्धान्त का प्रतिपादन किसने दिया?

प्र.2 नवप्रवर्तनों के विभिन्न रूप बताइये ।

19.11 लाभ का माँग एवं पूर्ति सिद्धांत

इस सिद्धान्त को लाभ का आधुनिक सिद्धान्त भी कहते हैं । इस सिद्धान्त के समर्थक लाभ को साहसी की कीमत मानते हैं । जिस प्रकार किसी वस्तु की कीमत उसकी माँग व पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियों के साम्य से निर्धारित होती हैं, उसी प्रकार साहसी की कीमत भी माँग व पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियों के साम्य से निर्धारित होती है ।

(i) साहसी की माँग :

साहसी की माँग उसकी सीमान्त आगम उत्पादकता पर निर्भर होती है । साहसी की सीमांत आगम उत्पादकता साहसी की सहायता से प्राप्त कुल उत्पादन मूल्य और उत्पादन मूल्य और उसके अभाव में प्राप्त कुल उत्पादन मूल्य के अंतर के ज्ञात होती है । साहसी की सीमान्त आगम उत्पादकता जितनी अधिक होगी साहसी की मांग भी उतनी ही अधिक होगी । साहसी की मांग को प्रभावित करने वाले अन्य तत्व निम्न हैं :-

(a) औद्योगिक उन्नति ।

(b) उत्पादन का आकार ।

(c) उद्योग की प्रकृति ।

सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में साहसियों का मांग वक्र अन्य वस्तुओं की भाँति ही गिरता हुआ होता है । जैसा कि चित्र 19.1 से स्पष्ट है । जैसे-जैसे साहसियों की संख्या बढ़ती हैं, उनकी सीमान्त आगम उत्पादकता क्रमश: गिरती जाती है ।

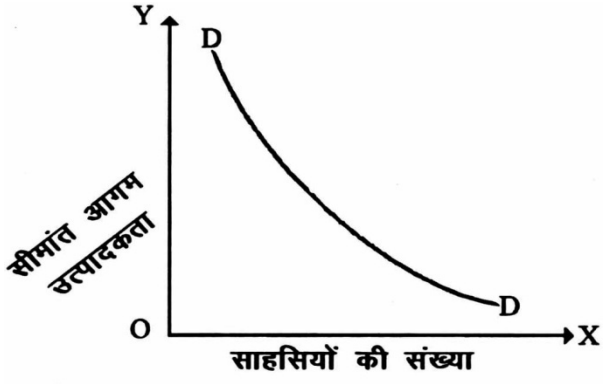

चित्र सं. 19.1

(ii) साहसी की पूर्ति :

किसी भी उद्योग में साहसी की पूर्ति लाभ की दर पर निर्भर करती है । लाभ की दर जितनी अधिक होगी, साहसी की पूर्ति भी अधिक होगी । अर्थात् लाभ की दर एवं साहसी की पूर्ति में प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता हैं । साहसी की पूर्ति को प्रभावित करने वाले अन्य तत्व निम्न हैं :-

(a) देश में साहसियों की संख्या ।

(b) जनसंख्या का आकार ।

(c) पूंजी की मात्रा ।

(d) आय का वितरण आदि ।

अर्थात् जिस देश में साहसियों की संख्या अधिक, बाजार विस्तृत तथा आय मे समानता होगी उनमे साहसियों की पूर्ति अपेक्षाकृत अधिक होगी । सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की दृष्टि से साहसी का पूर्ति वक्र चित्र 19.2 में दिखाया गया है.

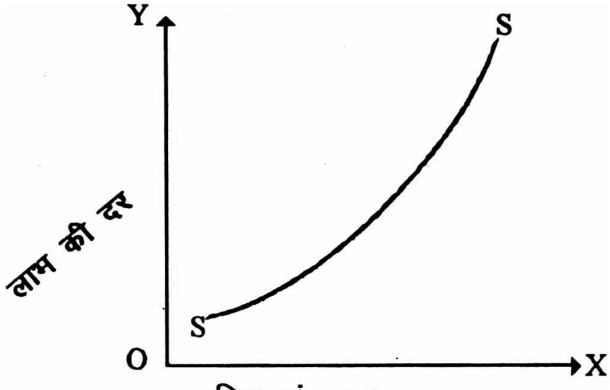

चित्र सं. 19.2
साहसी की पूर्ति

(iii) **साम्य बिन्दु निर्धारण :-** साहसी की माँग एवं पूर्ति के संदर्भ में साम्य बिन्दु निर्धारण निम्नलिखित दो बाजारों में दिया जा रहा है :-

(a) पूर्ण प्रतियोगिता एवं लाभ का निर्धारण ।

(b) अपूर्ण प्रतियोगिता एवं लाभ का निर्धारण ।

(c) पूर्ण प्रतियोगिता और सामान्य लाभ निर्धारण

(a) पूर्ण प्रतियोगिता एवं लाभ का निर्धारण

पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में एक उद्योग में सभी उद्यमी समरूप तथा समान दक्षता के होतें हैं इसलिए दीर्घकाल में उधमी की पूर्ति अनन्त लोचदार होती है और प्रत्येक उद्यमी अपनी स्थानान्तरण आय के बराबर केवल सामान्य लाभ ही अर्जित करता हैं । यदि कोई उद्यमी सामान्य लाभ से कम अर्जित करता है तो वह किसी अन्य उद्योग में सामान्य लाभ अर्जित करने हेतु चला जायेगा । अत: दीर्घकाल में उद्यमता का पूर्ति वक्र X अक्ष के समानान्तर सरल रेखा होगा । इसे रेखाचित्र 19.3 से समझा जा सकता है ।

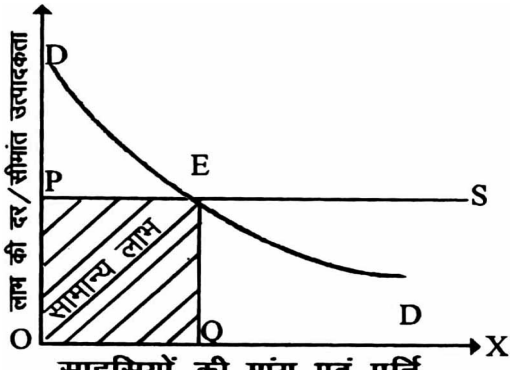

साहसियों की मांग एवं पूर्ति
चित्र सं. 19.3

रेखाचित्र 19.3 में आधार अक्ष (OX) पर साहसी की मांग एवं पूर्ति तथा लम्ब अक्ष पर सीमान्त आगम उत्पादकता एवं लाभ की दर को दर्शाया गया है । E बिन्दु पर साहसी का माँग वक्र एवं पूर्ति वक्र परस्पर काँटते हैं तथा लाभ की सामान्य दर OP निर्धारित होती है । दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में उद्यमी केवल सामान्य लाभ अर्जित करता है क्योंकि साहसियों में पूर्ण गतिशीलता होती है तथा साहसियों के प्रवेश तथा बहिगर्मन पर किसी प्रकार की रूकावट नहीं होगी।

(b) अपूर्ण प्रतियोगिता एवं लाभ का निर्धारण :-

अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत के अंतर्गत उत्पादक का वस्तु की पूर्ति पर पूरा नियंत्रण होता है इसलिए उत्पादक वस्तु की पूर्ति को नियंत्रित कर बाजार की कीमत को प्रभावित कर सकता है । फर्म: औसत लागत से अधिक कीमत पर अपने उत्पाद बेचती हैं फलत: साहसी हमेंशा सामान्य लाभ से अधिक लाभ कमाता है । इस स्थिति को रेखाचित्र 19.4 में दर्शाया गया हैं ।

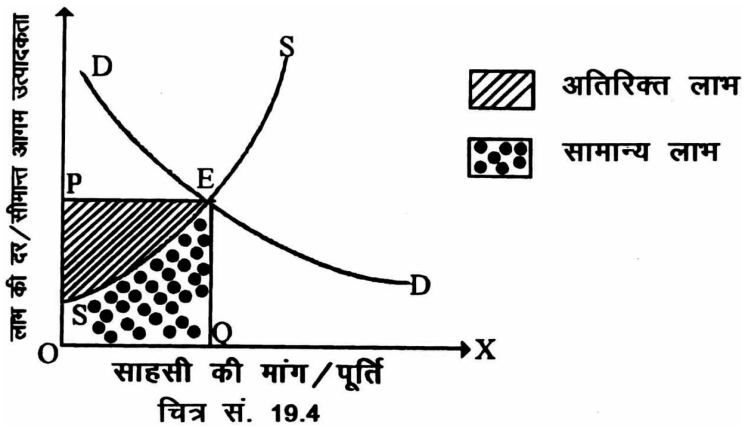

चित्र सं. 19.4

रेखाचित्र में DD तथा SS क्रमश: साहसी का माँग वक्र एवं पूर्ति वक्र है । E बिन्दु पर मांग वक्र एवं पूर्ति वक्र परस्पर काटते हैं । कुल लाभ OQEP है जिसमें OQES सामान्य लाभ है । जबकि PES अतिरिक्त लाभ है ।

कुल लाभ = सामान्य लाभ + अति सामान्य लाभ ।

OQEP = OQES + PES

स्पष्ट है कि अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार में साहसी अतिरिक्त लाभ कमाता है । साहसियों को सामान्य लाभ से अधिक मिलने वाला यह लाभ एक प्रकार से लगान के रूप में प्राप्त होता है।

बोध प्रश्न : 10

निम्न प्रश्नो का उत्तर दीजिए :

प्र.1 साहसी की मांग किन कारकों द्वारा निर्धारित होती हैं ?

प्र.2 साहसी की पूर्ति को प्रभावित करने वाले तत्वों की विवेचना कीजिए ।

प्र.3 पूर्ण प्रतियोगिता एवं अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार में लाभ के निर्धारण की सचित्र व्याख्या कीजिए ।

19.12 लाभ का औचित्य

लाभ किसी अर्थव्यवस्था में आय, उत्पादन तथा रोजगार के स्तर को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है । लाभ ही वह प्रोत्साहन है जो साहसी को व्यवसाय में बनाए रखता है । पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में इसे अच्छा माना जाता है लेकिन समाजवादी, अर्थव्यवस्था में इसे अच्छा नहीं माना जाता

1. पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में लाभ का औचित्य :-

समाजवादी अर्थव्यवस्था को मुख्यतया कल्याणकारी अर्थव्यवस्था के रूप में समझा जाता है । इसलिए इसमें लाभ को उचित नहीं माना जाता । लेकिन फिर भी उत्पादन प्रक्रिया को निरंतर रखने के लिए लाभ को प्रोत्साहन आवश्यक है । अत: निम्न आधारों पर समाजवादी अर्थव्यवस्था में लाभ को उचित माना जाता है

(i) नवप्रवर्तनों को अपनाने के लिए उद्योगों में लाभ का होना आवश्यक हैं, तभी पूंजी की पर्याप्तता रहेगी ।

(ii) समाजवादी अर्थव्यवस्था का मुख्य लक्ष्य सामाजिक कल्याण है, कल्याणकारी योजनाओं को पूरा करने के लिए भी लाभ आवश्यक है ।

(iii) लाभ साहसी की उत्पादकीय एवं प्रबंधकीय योग्यता का परिमापक है अत: लाभ कुशल प्रबंधको को कार्य के प्रतिपादन में दक्षता अपनाने को प्रेरित करता हैं ।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि सभी प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं में लाभ का होना आवश्यक हैं । लाभ आर्थिक प्रगति के लिए आवश्यक है । लाभ के रूप में अर्जित आय का अधिकांश भाग पुन: विनियोजित कर दिया जाता है जिससे आय, उत्पादन तथा रोजगार के स्तर को ऊँचा उठाया जा सके ।

बोध प्रश्न : 11

प्र. 1 लाभ का औचित्य समझाइये ।

प्र. 2 पूंजीवादी तथा समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं में लाभ का औचित्य बताइये ।

19.13 सारांश

चूँकि उत्पादन में, साहसी के अतिरिक्त उत्पादन के अन्य सभी साधनो के मूल्य भुगतान के पश्चात् बची राशि ही लाभ होती है इसलिए लाभ को एक प्रकार की अवशिष्ट आय ही माना जाता है । परन्तु अर्थशास्त्र की दृष्टि से लाभ उत्पादन व्यय का एक अंश भी है क्योंकि उत्पादन प्रक्रिया में साहसी की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । अत: सामान्य लाभ उत्पादन लागत का भाग होता है जबकि अतिरिक्त लाभ नहीं होता । स्पष्ट है कि साहसी उत्पादन प्रक्रिया के दौरान कई कार्य करता है जैसे-नवप्रवर्तन, जोखिम उठाना, अनिश्चितता वहन करना आदि, जिनके प्रतिफल के रूप में उसे लाभ प्राप्त होता है तथा लाभ का निर्धारण उद्यमी की मांग, पूर्ति तथा बाजार स्थिति पर निर्भर होता है ।

19.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

उत्तर (1) देखिये 19.2 एवं 19.2.1

उत्तर (2) देखिये 19.2.4

उत्तर (3) देखिये व 19.2.4

बोध प्रश्न - 2

उत्तर (1) प्रो० वाकर तथा उनके सहयोगी ।

उत्तर (2) लाभ श्रेष्ठ उद्यमियों को उनकी विशेष योग्यताओ के कारण दिया जाने वाला लगानहै

बोध प्रश्न -3

उत्तर (1) प्रो० टॉजिग

उत्तर (2) लाभ का मजदूरी सिद्धान्त के अनुसार जिस प्रकार उत्पादन के साधन के प्रतिफल के रूप में श्रमिक को मजदूरी मिलती है उसी साहसी को भी लाभ दिया जाता है ।

बोध प्रश्न -4

उत्तर (1) लाभ का समाजवादी सिद्धान्त के अनुसार उद्यमी वस्तु की कीमत का बहुत कम भाग श्रमिक को मजदूरी के रूप में देता है तथा शेष भाग स्वयं ले लेता है । कीमत एवं मजदूरी का यह अंतर ही लाभ है ।

उत्तर (2) देखिये 19.5.2

बोध प्रश्न -5

उत्तर (1) इस सिद्धान्त के अनुसार दीर्घकाल में उद्यमी को मिलने वाला लाभ उसकी सीमान्त उत्पादकता के मूल्य के बराबर होता है । अर्थात् लाभ का निर्धारण साहसी की सीमान्त उत्पादकता के द्वारा होता है ।

बोध प्रश्न - 6

उत्तर (1) प्रो० जे. बी. क्लार्क

उत्तर (2) देखिये 19.7

बोध प्रश्न -7

उत्तर (1) अमेरिकन अर्थशास्त्री जे. बी. हॉले ने वर्ष 1907 में किया ।

उत्तर (2) देखिये 19.8

बोध प्रश्न - 8

उत्तर (1) प्रो० नाइट ने वर्ष 1921 में

उत्तर (2) देखिये 19.9

बोध प्रश्न -9

उत्तर (1) प्रो० शम्पीटर

उत्तर (2) देखिये 19.10

बोध प्रश्न - 10

उत्तर (1) देखिये 19.11

उत्तर (2) देखिये 19.11 (ii)

उत्तर (3) देखिये 19.11 (a) तथा (b)

बोध प्रश्न - 11

उत्तर (1) अर्थव्यवस्था में आय, उत्पादन एवं रोजगार के स्तर को बनाए रखने के लिए लाभ की महत्वपूर्ण भूमिका है ।

उत्तर (2) देखिये 19.12.1 तथा 19.12.2

19.15 शब्दावली

उद्यमी	प्रावैगिकी
साहसी	जोखिम
लगान	अनिश्चितता वहन
मजदूरी	नवप्रवर्तन
समाजवादी	समाजवादी
सीमान्त उत्पादकता,	पूंजीवादी
पूर्ण प्रतियोगिता	अपूर्ण प्रतियोगिता

19.16 अभ्यासार्थ प्रश्न

निम्न प्रश्नों के उत्तर 500 शब्दों में दीजिए :-

प्र. 1. लाभ का अर्थ, परिभाषा एवं प्रकार बताते हुए लाभ का आधुनिक सिद्धान्त समझाइये ।

प्र. 2. पूर्ण प्रतियोगिता एवं अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार स्थितियों में लाभ का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है? रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट कीजिए ।

निम्न प्रश्नों के उत्तर 150 शब्दों में दीजिए ।

प्र. 1. लाभ का अनिश्चितता वहन सिद्धान्त विस्तार से समझाइये ।

प्र. 2. लाभ का प्रावैगिक सिद्धान्त तथा जोखिम सिद्धान्त समझाइये ।

19.17 संदर्भ ग्रंथ

1. एच. एल. आहुजा, उच्चतर व्यष्टि अर्थशास्त्र ।
2. एन. डी. माथुर, ओ जी. गुप्ता. व्यष्टि अर्थशास्त्र ।
3. लक्ष्मीनारायण नाथुरामका व्यष्टि अर्थशास्त्र ।
4. Variar ; Intermediate Micro Economics.

इकाई - 20

प्रारम्भिक कल्याणकारी अर्थशास्त्र (Welfare Economics)

इकाई की रूपरेखा :

20.0 उद्देश्य

20.1 प्रस्तावना

20.2 कल्याणवादी अर्थशास्त्र का अर्थ एवं परिभाषा

20.2.1 कल्याण वादी अर्थशास्त्र की विशेषताएं

20.3 कल्याण वादी अर्थशास्त्र के सिद्धान्त

20.3.1 प्राचीन कल्याण वादी अर्थशास्त्र

20.3.2 नवीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र

20.4 सामाजिक कल्याण फलन

20.5 सारांश

20.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

20.7 शब्दावली

20.8 संदर्भ ग्रंथ

20.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात्

(i) अर्थव्यवस्था में संसाधनो का आवंटन किस प्रकार किया जाए ताकि अधिकतम कल्याण की प्राप्ति की हो सके यह समझ सकेंगे ।

(ii) अधिकतम कल्याण के उद्देश्य की प्राप्ति हेतु विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा दिये गये मानदंड जान सकेंगे ।

(iii) सामाजिक कल्याण फलन का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है इससे परिचित हो सकेंगे ।

(iv) प्राचीन कल्याणवादी अर्थशास्त्री कल्याण का आधार किसको मानते थे इसकी बात प्राप्त कर सकेंगे ।

(v) कल्याण के विषय में नवीन कल्याणवादी विचारधारा की विवेचना कर सकेंगें ।

20.1 प्रस्तावना

प्राचीन अर्थशास्त्रियो ने कल्याणकारी अर्थशास्त्र का प्रयोग वास्तविक अर्थशास्त्र के साथ किया था । वास्तविक अर्थशास्त्र में 'क्या हैं और कैसे हैं की व्याख्या की जाती है अर्थात् वास्तविक अर्थशास्त्र में एक अर्थव्यवस्था में संसाधनो का आवंटन कैसे होता है, इस का अध्ययन किया जाता है जबकि कल्याणकारी अर्थशास्त्र में अध्ययन किया जाता है कि संसाधनों का आवंटन कार्यकुशल है या नहीं अथवा अर्थव्यवस्था में संसाधन का आवंटन तथा उपयोग किस प्रकार किया जाए ताकि अधिकतम कल्याण की प्राप्ति हो सके । प्रस्तुत इकाई में कल्याणवादी अर्थशास्त्र का अर्थ एवं परिभाषा समझाने के पश्चात कल्याणवादी अर्थशास्त्र के विभिन्न सिद्धान्तों का विवेचन

किया गया है । कल्याणवादी अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों को मुख्यता दो भागों में वर्गीकृत किया गया हैं : प्राचीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र तथा नवीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र । प्राचीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र के अन्तर्गत वाणिज्यवादी दृष्टिकोण, प्रतिष्ठित दृष्टिकोण तथा नवप्रतिष्ठित दृष्टिकोण को समझाया गया है जबकि नवीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र के अन्तर्गत परेटों, हिक्स तथा काल्डोर, साइटोवस्की आदि अर्थशास्त्रियों के दृष्टिकोण समझाएं गये हैं ।

20.2 कल्याणवादी अर्थशास्त्र का अर्थ एवं परिभाषा

कल्याणवादी अर्थशास्त्र का केन्द्र बिन्दु सामाजिक कल्याण को अधिकतम करना है और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आर्थिक नीतियों के प्रतिपादन, क्रियान्वयन एवं आवश्यक सुधार आदि कल्याणवादी अर्थशास्त्र की विषय सामग्री हैं इस प्रकार कल्याणवादी अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र की वह शाखा है जो वैकल्पिक आर्थिक नीतियों का विश्लेषण सामाजिक वांछनीयता के आधार पर अधिकतम सामाजिक कल्याण के संदर्भ में करती है । प्रो० रेडर के अनुसार "कल्याणवादी अर्थशास्त्र आर्थिक विज्ञान की वहा शाखा हैं जो आर्थिक नीतियो के लिए औचित्यपूर्ण मापदण्डों की स्थापना तथा प्रयोग करने का प्रयत्न करता है ।

प्रो० सिटोवस्की के अनुसार, "कल्याणवादी अर्थशास्त्र आर्थिक सिद्धान्त का वह भाग है जो मुख्यतया नीति से सम्बन्धित होता है !"

प्रो० विलियम जे० बॉमोल के अनुसार, " कल्याणवादी अर्थशास्त्र क्रा ज्यादातर सम्बन्ध उन नीतिगत, विषयों से हैं जो विभिन्न वस्तुओं के बीच इनपूटों के वितरण तथा विभिन्न उपभोक्ताओं के बीच वस्तुओं के वितरण में साधनों के आवंटन से उत्पन्न होते हैं ।

20.2.1 कल्याणवादी अर्थशास्त्र की विशेषताएँ -

विभिन्न परिभाषाओं के विश्लेषण से कल्याणवादी अर्थशास्त्र की निम्न विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं ।

(i) यह आर्थिक विश्लेषण की एक विशिष्ट शाखा है जिसका विकास मुख्य रूप में 1914 से हुआ

(ii) इसका प्रमुख उद्देश्य समाज के भौतिक कल्याण को अधिकतम करना है ।

(iii) इसमें आर्थिक नीतियों के औचित्य का विश्लेषण करते हैं तथा उपयुक्त नीतिपरक सुझाव दिये जाते हैं ।

(iv) यह एक विशुद्ध वास्तविक विज्ञान न होकर आदर्श विज्ञान है जो बताता है कि "क्या है और क्या होना चाहिए ।

(v) यह वर्तमान युग की सर्वाधिक लोकप्रिय शाखा के रूप में विकसित हो रहा है तथा आर्थिक नीतियों के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है ।

20.3.2 कल्याणवादी अर्थशास्त्र के सिद्धान्त :-

कल्याणवादी अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों का प्रतिपादन यद्यपि प्राचीनकाल से शुरू होता है । परन्तु इन्हें वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय प्रो० पीगू तथा प्रो० मार्शल को जाता हैं । इसके पश्चात् इसे और अधिक उपयोगी बनाने का श्रेय नवीन कल्याणवादी अर्थशास्त्रियों पेरेटों, हिक्स,

कातडोर, लिटिल, सेम्यूलसन एवं साइटोवस्की आदि अर्थशास्त्रियों को जाता है । अत: कल्याणवादी अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों का वर्गीकरण दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है :-

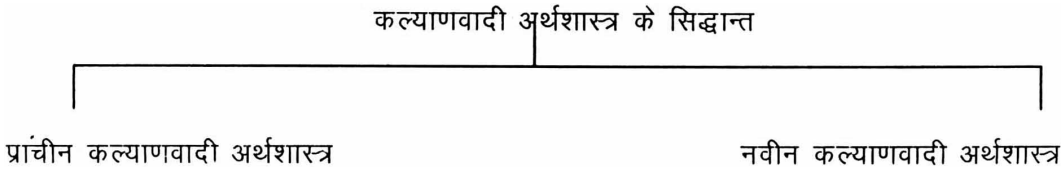

अभ्यास प्रश्न :

निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिए ।

प्र. 1 कल्याणवादी अर्थशास्त्र की विषय सामग्री क्या हैं ?

प्र. 2 कल्याणवादी अर्थशास्त्र किस प्रकार वास्तविक अर्थशास्त्र से भिन्न हैं ?

प्र. 3 कल्याणवादी अर्थशास्त्र की विशेषताऐ बताइये ।

20.3.1 प्राचीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र

वाणिज्यवादी आर्थिक कल्याण में वृद्धि के लिए अधिक से अधिक निर्यात तथा कम से कम आयात करने की सरकारी नीतियों का समर्थन करते थें, ताकि व्यापार आधिक्य से भुगतान में देश को अधिकाधिक सोना चांदी एवं बहुमूल्य धातुएं मिले तथा देश की भौतिक समृद्धि से कल्याण बढ़े ।

इस विचारधारा से शक्तिशाली राष्ट्रों ने पिछड़े एवं गरीब देशों को अधिकाधिक निर्यात कर उनका शोषण किया, इससे एकपक्षीय आर्थिक कल्याण की विचारधारा पनपने लगी जिससे वास्तव में जो कल्याण के अधिकारी थे, वे तो शाषित बन गये तथा शक्तिशाली, राष्ट्रों का ही अधिक आर्थिक कल्याण होने लगा, इससे इसकी आलोचना होने लगी ।

20.3.2 प्रतिष्ठित दृष्टिकोण :-

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों में मुख्य रूप से एडम स्मिथ, रिकॉर्डो तथा माल्थस के नाम लिये जा सकते है जिन्होंने कल्याणवादी दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया । ये सभी अर्थशास्त्री वाणिकवादी दृष्टिकोण से अत्यन्त प्रभावित थे । उन्होंने धन और कल्याण मे सीधा सम्बन्ध स्थापित किया था ।

एडम स्मिथ ने अपनी पुस्तक "Wealth of Nations" में अर्थशास्त्र को धन का विज्ञान कहकर सम्बोधित किया । इनका दृढ़ विचार था कि बिना धन के आर्थिक कल्याण में वृद्धि सम्भव नहीं है। रिकार्डो तथा जें. एस मिल आदि ने भी एडम स्मिथ के विचारों का भारी समर्थन किया । उनकी यह धारणा थी कि देश में जितना अधिक उत्पादन होगा उतना ही धन बढ़ेगा और

अधिक लोगों को रोजगार मिलेगा जिससे राष्ट्र की सम्पन्नता बढ़ेगी और आर्थिक कल्याण में वृद्धि होगी। रिकार्डो ने भी शुद्ध आय को अधिकतम करने पर बल दिया । स्पष्ट है कि ये सभी सिद्धान्त अर्थव्यवस्था में उत्पादन को अधिकतम करके आर्थिक कल्याण में वृद्धि को संभव बनाने से संबन्धित थे ।

20.3.3 नव प्रतिष्ठित सम्प्रदाय में कल्याणवादी अर्थशास्त्र :-

नवप्रतिष्ठित सम्प्रदाय में कल्याणवादी अर्थशास्त्र को दो भागों में बाँटा जा सकता हैं :-

(a) प्रो० मार्शल का दृष्टिकोण ।

(b) प्रो० पीगू का दृष्टिकोण ।

(a) **मार्शल का कल्याणवादी अर्थशास्त्र :-** मार्शल ने प्रतिष्ठित सम्प्रदाय के उन विचारों का विरोध किया जिसमें उन्होंने धन को आर्थिक कल्याण से जोड़ा । उन्होंने धन को गौण तथा मानव को अधिक महत्व देकर कल्याणवादी अर्थशास्त्र को अर्थशास्त्र की एक विशिष्ट शाखा के रूप में प्रतिपादित किया ।

प्रो० मार्शल ने अपनी पुस्तक Industry and Trade में कल्याण की व्याख्या प्रस्तुत की उनके अनुसार आर्थिक कल्याण में वृद्धि कुल बचतों में वृद्धि द्वारा ही संभव है, क्योंकि बचतों के बढ़ने से विनियोग बढ़ते है जिससे रोजगार के अवसर तथा उत्पादन में वृद्धि होती है । उनका तर्क था कि प्रत्येक वस्तु के लिए कुल बचत का निर्माण उपभोक्ता की बचत' तथा 'उत्पादक की बचत' के योग से होता है और जिस उत्पादन मात्रा पर कुल बचत मात्रा अधिकतम होती है, वही समाज को अधिकतम सामाजिक कल्याण की प्राप्ति होती है । जैसा कि निम्न रेखाचित्र से स्पष्ट है :-

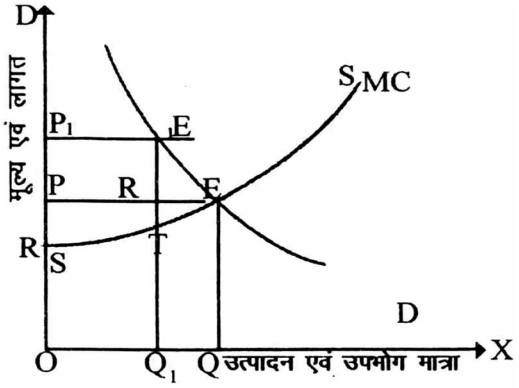

रेखाचित्र – 20.3.1

रेखा चित्र 20.3.1 में DD मांग वक्र तथा SS पूर्ति वक्र अथवा सीमान्त लागत वक्र है । E संतुलन बिन्दु है जहाँ दोनों वक्र परस्पर काटते है जहां वस्तु का मूल्य OP तथा उत्पादन एवं उपभोग मात्रा OQ हैं, जिस पर कुल बचत मात्रा SED है जिसमें से SEP उत्पादक की बचत का क्षेत्र है जबकि PED उपभोक्ता की बचत का क्षेत्र है ।

कुल बचत = उत्पादक की बचत + उपभोक्ता की बचत

SED = SEP + PED

अब यदि किसी कारणवश उत्पादन मात्रा OQ से घटकर OQ1, रह जाती है तो नया संतुलन बिन्दु E1 पर होगा । जहां कीमत OP से बढ़कर OP1, हो जायेगी तथा कुल बचत क्षेत्र

में TEE के बराबर कमी हो जायेगी । उपभोक्ता की बचत PREID उत्पादक की बचत PRST के बराबर होगी जो पूर्व की तुलना में क्रमश: FIRE तथा RET के बराबर कम होगी ।

कुल बचत में कमी = पूर्व में बचत - नई बचत

$TEE_1 = SED - SET_1D$

इस प्रकार रेखाचित्र से स्पष्ट है कि प्रो० मार्शल के अनुसार समाज को अधिकतम कल्याण की प्राप्ति उस स्थिति में होती है जब मांग व पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियों में साम्य स्थापित होता हैं, अर्थात जहां कीमत तथा सीमांत लागत बराबर होते है । यही साम्यावस्था अधिकतम बचत तथा अधिकतम कल्याण की स्थिति का द्योतक है ।

आलोचनाएं - मार्शल के कल्याणवादी अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों की विद्वानों ने कई आलोचनाऐं की हैं जो निम्नलिखित है -

(i) मार्शल की अधिकतम संतुष्टि की धारणा एक मनोवैज्ञानिक विचार है जिसका मापन कठिन है।

(ii) मार्शल के सिद्धान्त को लागू करने के लिए आवश्यक है कि समाज में आय का वितरण समान हो तथा सभी उद्योग लागत समता नियम के अन्तर्गत कार्य कर रहे हों । जबकि ऐसी स्थिति को प्राप्त करना अतयन्त कठिन है ।

(iii) पूर्ण प्रतियोगिता एक काल्पनिक स्थिति है जो व्यवहार में नही पाई जाती ।

(b) **प्रो० पीगू का दृष्टिकोण :-** प्रो० पीगू ने कल्याणवादी अर्थशास्त्र की व्याख्या अपनी पुस्तक कल्याण का अर्थशास्त्र में की है । पीगू ने कल्याण को दो भागों में विभाजित किया हैं - (1) आर्थिक कल्याण (2) गैर आर्थिक कल्याण ।

प्रो० पीगू के शब्दों में, "आर्थिक कल्याण सामाजिक कल्याण का वह भाग है जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मुद्रा के मापदंड से मापा जा सकता है । " प्रो० पीगू ने प्रो० बेंथम के इस दृष्टिकोण को अपनाया है कि समाज का कल्याण व्यक्तियों के कल्याण का योग है और इसे ही सामाजिक कल्याण कहा जायेगा । सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने के लिए पीगू ने निम्न दो कसौटियाँ बताई हैं -

(i) **राष्ट्रीय आय को अधिकतम करना :-** पीगू के अनुसार राष्ट्रीय आय में वृद्धि करने से ही सामाजिक कल्याण में वृद्धि होती है । सामाजिक कल्याण अधिकतम करने के लिए पीगू ने कहा कि अर्थव्यवस्था में सभी उद्योगों में सीमांत व्यक्तिगत शुद्ध उत्पादन एक समान होना चाहिए । यदि ऐसा न हो तो सरकार को कर तथा अनुदान के माध्यम से समानता की स्थिति लानी चाहिए।

(ii) **राष्ट्रीय आय का सही वितरण करना :-** पीगू के अनुसार यदि वास्तविक राष्ट्रीय आय का वितरण धनी वर्ग से निर्धन वर्ग की ओर किया जाए तो इससे सामाजिक कल्याण में वृद्धि होगी । अर्थात सामाजिक कल्याण में वृद्धि के लिए आय की समानता' होनी चाहिए । धनी वर्ग से निर्धन वर्ग की ओर राष्ट्रीय आय के हस्तान्तरण को रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है :-

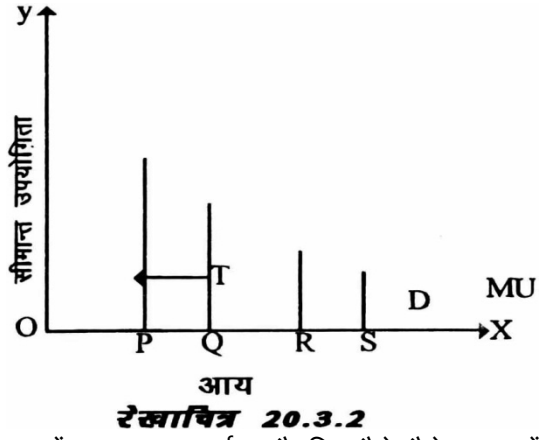

रेखाचित्र 20.3.2

रेखा चित्र 20.3.2 में MU वक्र दर्शाता है कि जैसे-जैसे आय में वृद्धि होती है, वैसे-वैसे मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता घटती जाती है । रेखाचित्र में निर्धन वर्ग की आय OP तथा धनी वर्ग की आय OS है । अब यदि धनी वर्ग से RS आय (कर के रूप में लेकर यदि निर्धन वर्ग को हस्तान्तरित कर दी जाय अनुदान के रूप में) तो निर्धन वर्ग की आय बढ़कर OQ तथा धनी वर्ग की आय OR हो जायेगी । चित्र से स्पष्ट है कि धनी वर्ग के कल्याण में CR के बराबर कमी होगी जबकि निर्धन वर्ग के कल्याण में BQ के बराबर वृद्धि होगी । (BQ>CR) अर्थात् BT शुद्ध कल्याण में वृद्धि होगी । स्पष्ट है कि धनी वर्ग से निर्धन वर्ग की ओर आय का हस्तान्तरण करने से धनी वर्ग को कम हानि होगी । जबकि निर्धन वर्ग को अधिक लाभ होगा ।

प्रो० पीगू कल्याणवादी अर्थशास्त्र निम्न मान्यताओं पर आधारित हैं :-

(i) उपयोगिता (संतुष्टि) मापनीय होती है और इसे मुद्रा के द्वारा मापा जा सकता है ।

(ii) मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता स्थिर रहती है ।

(iii) उपभोक्ता विवेकपूर्ण व्यवहार करता हैं अर्थात् वह अपने सीमित साधनों को सोच समझकर व्यय करता है ।

(iv) विभिन्न व्यक्ति समान वास्तविक आय से समान संतुष्टि प्राप्त करते हैं ।

(v) जैसे-जैसे मौद्रिक आय बढ़ती है, उसकी सीमान्त उपयोगिता क्रमश: घटती जाती है ।

(vi) उपभोक्ता जब अलग-अलग वस्तुओं का उपभोग करता है तो वह उन वस्तुओं से प्राप्त होने वाली उपयोगिता की परस्पर तुलना करता है ।

आलोचनाऐ :-

नव प्रतिष्ठित कल्याणवादी अर्थशास्त्र की निम्न आलोचनाऐं हैं -

(i) उपयोगिता का मापन संभव नहीं हैं ।

(ii) मुद्रा की स्वयं की उपयोगिता में परिवर्तन होते रहते है । अत: मुद्रा के रूप में उपयोगिता का मापन संभव नहीं है ।

(iii) पूर्ण उपयोगिता एक काल्पनिक एवं अवास्तविक दशा है जो व्यवहार में नहीं पाई जाती ।

(iv) आलोचकों के अनुसार आर्थिक समानता से पूंजी निर्माण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है क्योंकि निर्धन वर्ग अपनी बढ़ी हुई आय को स्वयं के उपभोग पर व्यय कर देगा जिससे बचतों के स्तर में गिरावट होंगी जिससे पूंजी निर्माण की दर घटेगी ।

(v) आलोचकों के अनुसार आर्थिक कल्याण में वृद्धि का मुद्दा उत्पादन की कुशलता से जुड़ा हुआ होता है न कि धन के समान वितरण से ।

(vi) प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र में गैर, आर्थिक कल्याण की उपेक्षा कर दी गई है जो कि उचित नहीं है। कल्याण की व्याख्या समग्र रूप में होनी चाहिए ।

अभ्यास प्रश्न - 1

प्र.1. प्रमुख प्राचीन कल्याणवादी अर्थशास्त्रियों के नाम बताइये ।

प्र.2. वाणिज्यिक सम्प्रदाय की कल्याणवादी अर्थशास्त्र की अवधारणा को समझाइये ।

प्र.3. कल्याणवादी अर्थशास्त्र की नवप्रतिष्ठित सम्प्रदाय ने किस प्रकार विवेचना की हैं?

20.4 नवीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र :-

प्राचीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र मे उपयोगिता को मापनीय माना गया था जबकि नवीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र में उपयोगिता के क्रमवाचक दृष्टिकोण के आधार पर विश्लेषण किया गया है । प्रो० परेटो को नवीन कल्याणवादी, अर्थशास्त्र का जनक माना जाता है । इसके अतिरिक्त प्रो० हिक्स, ऐलन, कालडोर साइटोवस्की, लिटिल, वर्गसल तथा सैम्युलसन आदि अर्थशास्त्रियों ने भी नवीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र के विकास में योगदान दिया ।

नवीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र में मुख्यतया निम्न दो विचारधाराओं का सूत्रपात हैं :-

(i) नवीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र जिसके निर्माता, परेंटो कालडोर हिक्स व साइटोवस्की है ।

(ii) सामाजिक कल्याणफलन जिसके निर्माता बर्गसन सेम्युलसन आदि अर्थशास्त्री है ।

20.4.1 पेरेटो का कल्याणबादी अर्थशास्त्र :-

परेटों ने कल्याणवादी अर्थशास्त्र का विश्लेषण उपयोगिता के क्रमवाचक विचार पर आधारित किया। परेटो ने उपभोक्ता के व्यवहार का विश्लेषण उदासीनता वक्रों के आधार पर किया जिसमें उपभोक्ता वस्तुओं के एक संयोग की अपेक्षा दूसरे संयोग से अधिक संतुष्टि का अनुभव करता हैं अथवा कम अथवा दोनों के बीच उदासीन रहता है ।

परेटों के अनुसार समुदाय का कुल कल्याण उस समय इष्टतम होता है जब समुदाय में किसी भी व्यक्ति की आर्थिक स्थिति में किसी अन्य व्यक्ति की आर्थिक स्थिति को विकृत किये बिना सुधार असंभव होता है । परेटो के शब्दों में, "अधिकतम कल्याण की स्थिति वह स्थिति है जहां सब व्यक्तियों के कल्याण में वृद्धि करना असंभव होता है ।

परेटों के कल्याणवादी अर्थशास्त्र की मान्यताऐं :-

पेरेटों ने कल्याणवादी अर्थशास्त्र की व्याख्या करने में निम्न मान्यताऐं मानी :-

(i) उपयोगिता के क्रम वाचक दृष्टिकोण को आधार माना है ।

(ii) कल्याण वस्तुओं एवं सेवाओं की मात्राओं का सीधा फलन है अर्थात् वस्तुओं एवं सेवाओं की मात्रा में वृद्धि होने पर कुल कल्याण में भी वृद्धि होती है ।

(iii) व्यक्तियों के अधिमान दिये हुए होते हैं ।

(iv) साधनों के वितरण की समस्याओं के अन्तर्गत केवल उत्पादन एवं विनिमय की कुशलता कों ही मान्यता दी गई है ।

पेरेटों अनुकूलतम की कसौटियाँ :-

पेरेटों के अनुसार, "अगर कोई परिवर्तन किसी को हानि पहुँचाये बिना कुछ लोगों का श्रेष्ठतर बनता हैं तो वह सुधार है । "

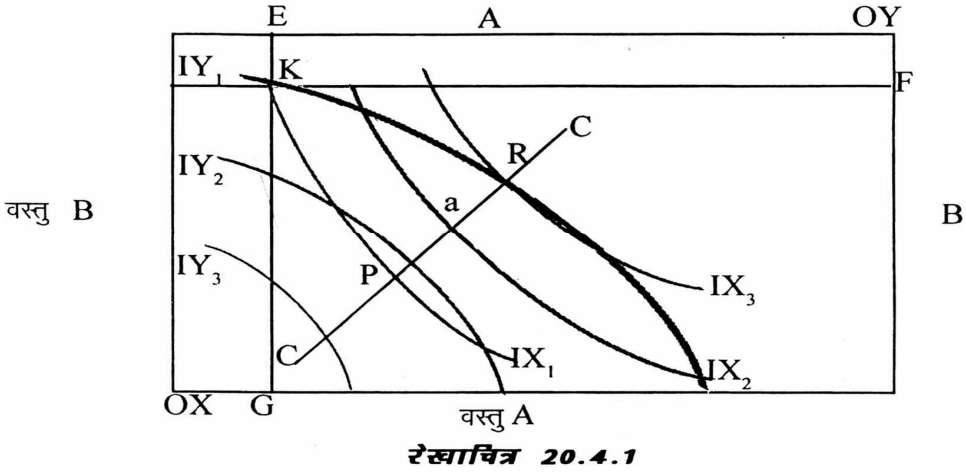

रेखाचित्र 20.4.1

पेरेटों के इस विचार को एजवर्थ बाउले बॉक्स रेखाचित्र द्वारा समझा जा सकता है । माना कि समाज में दो व्यक्ति X तथा Y है जो क्रमश: A तथा B वस्तु का उपभोग करते हैं निम्न रेखाचित्र में X तथा Y व्यक्तियों के मूल बिन्दु क्रमश: OX तथा OY हैं । X व्यक्ति के बढ़ते संतुष्टि अधिमान वक्र IX1, IX2 तथा IX3 है जबकि Y व्यक्ति के बढ़ते संतुष्टि अधिमान वक्र क्रमश: IY1, IY2, IY3 माना कि X तथा Y व्यक्तियों के लिए A तथा B वस्तुओं की वितरण स्थिति K है जिसके अनुसार X व्यक्ति के पास A वस्तु की OG मात्रा तथा B वस्तु की GK मात्रा इसी प्रकार Y व्यक्ति के पास A वस्तु की YE मात्रा तथा B वस्तु की EK मात्रा है । पेरेटो मापदण्ड के अनुसार यदि आप का पुनर्वितरण K बिन्दु से R बिन्दु की ओर होता है तो Y व्यक्ति की संतुष्टि पूर्ववत रहती है जबकि X व्यक्ति के संतुष्टि स्तर में वृद्धि होती हैं क्यों कि Y व्यक्ति तो उसी अधिमान वक्र Y1, पर रहता है जबकि Y व्यक्ति अपेक्षाकृत ऊँचे अनधिमान वक्र IX3 पर पहुँच जाता है । अत: K बिन्दु परेटों के अनुसार सामाजिक अनुकुलतम की स्थिति नहीं है । इसी प्रकार यदि पुनर्वितरण K बिन्दु से P बिन्दु पर होता है तो X व्यक्ति की स्थिति पूर्ववत रहते हुए Y व्यक्ति की स्थिति में सुधार होता है । इस प्रकार दोनों व्यक्तियों के विभिन्न तटस्थता वक्रो के स्पर्श बिन्दु सामान्य अनुकूलतम के बिन्दु होते हैं जो प्रसंविदा वक्र CC द्वारा दर्शाये गये है । प्रसंविदा वक्र पर स्थित P,Q तथा R संयोगों से कौनसा संयोग श्रेष्ठ है यह पेरेटों का सिद्धान्त स्पष्ट नहीं करता ।

परेटों के सिद्धान्त की आलोचनाऐं :-

पेरेटों के अनुकुलतम सिद्धान्तों की कई आधारों पर आलोचनाऐं की गई हैं जो निम्न प्रकार हैं :-

(i) **कल्याण एक सापेक्षिक विचार :-** कल्याण एक सापेक्षिक विचार हैं जो एक दूसरे के कल्याण से प्रभावित होता है और करता है । परेटों की यह मान्यता गलत है कि एक व्यक्ति का कल्याण दूसरे व्यक्तियों के कल्याण में स्वतंत्र है ।

(ii) **नैतिक निर्णय :-** परेटों के अनुकुलतम सिद्धान्त नैतिक निर्णयों से मुक्त नहीं है । इसकी मान्यता है कि "बिना किसी दूसरे को हानि पहुँचाये एक व्यक्ति की स्थिति में सुधार हों । " अधिक अर्थशास्त्रियों सैम्युलसन, बर्गसन आदि का भी यही विचार है कि अर्थपूर्ण कल्याणवाद अर्थशास्त्र के लिए नैतिक निर्णयों को सम्मिलित करना आवश्यक है ।

(iii) **सीमित प्रयोग -** व्यावहारिक जीवन में कुछ आर्थिक नीतियां ऐसी होती है जिनमें कुछ को लाभ मिलता है किन्तु ये दूसरों के लिए हानिकारक होती है । पेरेटों के सिद्धान्त से ऐसी स्थिति में सही मूल्यांकन करना कठिन है ।

(iv) **अनेक अनुकुलतम बिन्दु :-** परेटों के सिद्धान्त में सबसे बड़ा दोष यह है कि परेटों ने एक आदर्श अनुकुलतम बिन्दु की विवेचना नहीं की । उनके अनुसार यदि एक व्यक्ति से आय लेकर दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरित कर दी जाये तो नया अनुकुलतम बिन्दु प्राप्त होगा परन्तु यह नया बिन्दु पहले कीं तुलना में श्रेष्ठ है या खराब यह निर्णय करना कठिन है ।

(v) **अवास्तविक मान्यताऐं -** परेटों का कल्याणवादी अर्थशास्त्र अनेक अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित हैं, इस कारण यह अव्यावहारिक हो जाता है ।

2. कालंडोर -हिक्स का क्षतिपूरक दृष्टिकोण :-

कालडोर हिक्स का क्षतिपूरक सिद्धान्त परेटों की अनुकुलतम अवधारणा पर एक सुधार एवं विस्तार है । यह नवीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र का केन्द्रीय विचार है । इस दृष्टिकोण के अनुसार यदि किसी परिवर्तन के फलस्वरूप समाज में कुछ लोगों की स्थिति में सुधार हो जाता है तथा कुछ लोगों की स्थिति पहले की अपेक्षा बिगड़ जाती है परन्तु आय का पुनर्वितरण करके यदि नुकसान का अनुभव करने वालों की क्षतिपूर्ति कर दी जाती है तथा लाभ प्राप्त करने वाले सुधार का अनुभव करते हैं तो ऐसे परिवर्तन से समाज के आर्थिक कल्याण में वृद्धि होगी ।

कालडोर तथा हिक्स के क्षतिपूरक दृष्टिकोण को रेखाचित्र 20.4.2 द्वारा समझा जा सकता है । इस रेखाचित्र के अनुसार यदि अर्थव्यवस्था C बिन्दु से D बिन्दु की ओर गतिमान होती है B वर्ग के कल्याण में वृद्धि लेकिन A वर्ग के कल्याण में कमी होगी लेकिन B वर्ग के कल्याण में होने वाली वृद्धि A वर्ग के कल्याण में होने वाली कमी की तुलना में अधिक है इसलिए कुल कल्याण में वृद्धि होगीं । C बिन्दु से E; F अथवा G बिन्दु की ओर अर्थव्यवस्था के गतिमान होने से तो A तथा B दोनों वर्गो के कल्याण में वृद्धि होगी जिसका विवरण पेरेटों ने भी किया लेकिन C से D बिन्दु की ओर चलन के सम्बन्ध में परेटों की कसौटी असहाय हो जाती है । इसीलिए कालडोर हिवस का क्षतिपूरक दृष्टिकोण A परेंटों के दृष्टिकोंण पर एक सुधार हैं ।

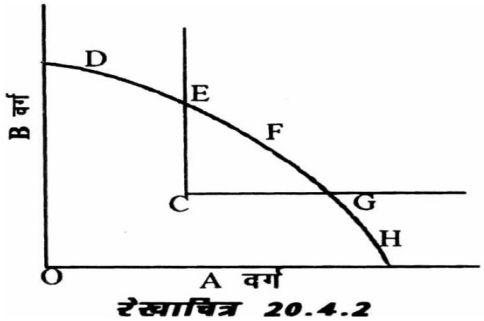

रेखाचित्र 20.4.2

आलोचनाऐं :-

(i) **अव्यावहारिक कसौटी :-** कालडोर हिक्स सिद्धान्त इस छिपी मान्यता पर आधारित है कि धनी एवं निर्धन सभी व्यक्तियों के लिए द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता समान होती है जो पूर्णतया अव्यवहारिक है ।

(ii) **बाह्य प्रभावों की उपेक्षा अनुचित :-** यह सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि किसी व्यक्ति का आर्थिक कल्याण उसकी अपनी आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है तथा अन्य व्यक्तियों की स्थिति से अप्रभावित रहता है जो कि उचित नहीं हैं ।

(iii) **सार्वभौमिक सत्यता का अभाव :-** आलोचकों के अनुसार कालडोर हिक्स कसौटी के अनुसार पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन कुशलता एवं आय-वितरण पर किसी नीति के प्रभावों को अलग-अलग संभव नही होता, यह केवल समाजवादी अर्थव्यवस्था में ही संभव होता है, अत: पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में यह कसौटी लाग नहीं होने से इसमें सार्वभौमिक सत्यता नहीं है ।

(iv) **काल्पनिक कल्याण -** यह सिद्धान्त संभाव्य कल्याण पर आधारित है जबकि वास्तविक कल्याण अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण है अत: यह काल्पनिक सिद्धान्त है ।

(v) **कल्याण की वैज्ञानिक व्याख्या का अभाव :-** क्षतिपूर्ति सिद्धान्त एवं उसकी कसौटी तटस्थता वक्र विश्लेषण पर आधारित है जो कि काल्पनिक मान्यताओं पर आधारित है अत: इस कल्याण की वैज्ञानिक व्यवस्था नहीं कहा जा सकता ।

(vi) **अपर्याप्त :-** इसका प्रयोग केवल दो स्थितियों की तुलना करने के लिए ही किया जा सकता है । जबकि व्यवहार में दो से अधिक स्थितियों की तुलना की आवश्यकता होती है ।

3. साइटोवस्की का दृष्टिकोण :-

साइटोवसकी के अनुसार कालडोर हिक्स कसौटी से परस्पर विरोधी दशाओं का निर्माण भी हो सकता है । उनके अनुसार ऐसा संभव है कि वे लोग जिनको अर्थव्यवस्था के पुर्नग्ठन के कारण हानि होने की आंशका है वे उन लोगो को रिश्वत देकर पुर्नगठन के कार्यो को बंद करवा दे जिनको पुर्नगठन से लाभ होने वाला है । ऐसी स्थिति में कालडोर हिक्स सिद्धान्त के अनुसार कोई लाभ नहीं होगा ।

साइटोवस्की की दोहरी कर कसौटी की व्याख्या निम्न प्रकार से की जा सकती हैं, "कोई परिवर्तन साधन होता है । यदि परिवर्तित स्थिति से लाभान्वित व्यक्ति हानि उठाने वाले व्यक्ति को परिवर्तन स्थिति को स्वीकार करने के लिए प्रेरित करने में समर्थ है तथा साथ ही क्षतिग्रस्त व्यक्ति लाभान्वित व्यक्तियों को मौलिक स्थिति पर बने रहने के लिए प्रेरित करने में असमर्थ हो। " दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि यदि B स्थिति A स्थिति से श्रेष्ठ (बेहतर) है तो उसी मापदण्ड के आधार पर B स्थिति से पुन: A स्थिति पर परिवर्तन श्रेष्ठ नहीं है ।

साइटोवस्की के इस दोहरे मापदण्ड को निम्न रेखाचित्र से समझाया जा सकता है :-

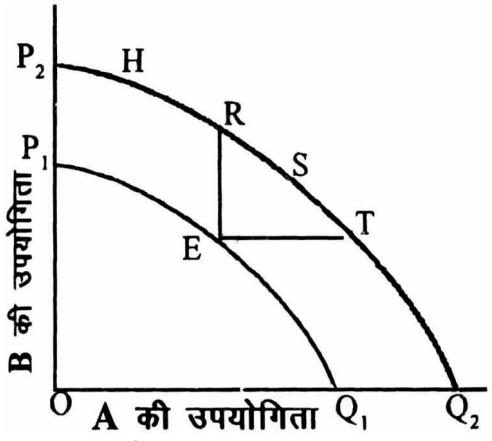

रेखाचित्र में अलग-अलग वर्गो **A** तथा **B** के लिए दो अलग-अलग उत्पादन स्तरों पर उपयोगिता संभावना वक्र **p1Q1** तथा **P2Q2** है । ये दोनों उपयोगिता संभावना वक्र एक दूसरे को काटते नहीं । ऐसी स्थिति में बिन्दु **E** से बिन्दु **H** की ओर चलन कालडोर हिक्स कसौटी के अनुसार एक सुधार है क्योंकि H बिन्दु अपेक्षाकृत ऊँचे उपयोगिता संभावना वक्र **P2Q2** पर स्थित है जो अधिक संतुष्टि को दर्शाता है । इसके विपरीत **H** बिन्दु से **E** बिन्दु पर चलन सुधार नहीं है क्योंकि यह दोनों व्यक्तियों के निम्न कल्याण स्तर को बताता है । इस प्रकार साइटोवस्की के मापदण्ड से दोहरी जाँच पूरी हो जाती है, इस प्रकार साइटोवस्की के अनुसार आय के पुनर्वितरण की संभावना पुनर्गठन से पहले तथा बाद दोनों ही स्थितियों में देखी जानी चाहिए और यदि सभी वर्ग पुनर्वितरण के फलस्वरूप अच्छी स्थिति में आ जाये तो यही माना जायेगा कि पुनर्वितरण के फलस्वरूप कल्याण में वृद्धि हुई है ।

आलोचनाऐं -

(i) **सार्वभौमिक सत्यता का अभाव :-** कालडोर हिक्स कसौटी केवल उत्पादन कुशलता को ही कल्याण का आधार मानती है जबकि वितरण की समस्याओ पर कोई प्रकाश नही डालती इसलिए यह सभी परिस्थितियों में लागू नहीं होती ।

(ii) **व्यवहारिक कसौटी :-** यह कसौटी इस छिपी मान्यता पर आधारित है कि धनी एवं निर्धन सभी व्यक्तियों के लिए द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता समान होती है जबकि व्यवहार में ऐसा नहीं पाया जाता ।

(iii) **ब्राह्य प्रभावों की उपेक्षा अनुचित :-** यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित हैं एक व्यक्ति का आर्थिक कल्याण उसकी अपनी आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है तथा दूसरे व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति से अप्रभावित रहता है जो उचित नहीं है ।

(iv) **काल्पनिक कल्याण :-** यह सिद्धान्त काल्पनिक कल्याण की मान्यता पर आधारित है जबकि वास्तविक कल्याण अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण हैं ।

(v) **कल्याण की अवैज्ञानिक व्याख्या :-** काल्पनिक एवं अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित होने के कारण इस सिद्धान्त के द्वारा कल्याण की वैज्ञानिक व्याख्या नहीं की जा सकती ।

(vi) **अपर्याप्त सिद्धान्त : -** इस कसौटी के प्रयोग से केवल कल्याण की दो स्थितियों की परस्पर तुलना की जा सकती है दो से अधिक स्थितियों की तुलना हेतु इस कसौटी का प्रयोग नहीं किया जा सकता।

अभ्यास प्रश्न - 2

निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिए :-

प्र. 1. नवीन कल्याणवादी अर्थशास्त्र का जनक किसे कहा गया हैं ?

प्र. 2. प्रमुख नवीन कल्याणवादी अर्थशास्त्रियों के नाम बताइये ?

प्र. 3. काल्डोर का क्षतिपूरक सिद्धान्त किस प्रकार परेटो की अवधारणा पर एक सुधार हैं ? समझाइये ।

20.4 सामाजिक कल्याण प्रश्न :-

सामाजिक कल्याण फलन का प्रतिपादन प्रो० बगर्सन ने सर्वप्रथम अपने लेख **"A Reformulation of certain aspects of Welfare Economics**" में किया । सामाजिक कल्याण फलन उन सभी तत्वों / चरों को बताता है जिन पर समाज के सभी व्यक्तियों के सभी व्यक्तियों का कल्याण निर्भर करता है ।

परम्परागत अर्थशास्त्रियों ने राष्ट्रीय आय के वितरण को आर्थिक कल्याण का आधार माना जबकि नव परम्परागत अर्थशास्त्रियों ने उत्पादन की मात्रा एवं कुशलता को कल्याण का आधार मानों इन सिद्धान्तों की अपर्याप्तता के कारण प्रो० बर्गसन सेम्युलसन आदि अर्थशास्त्रियों ने सामाजिक कल्याण की व्याख्या करने के लिए इसमें इसकों प्रभावित करने वाले, कई घटकों को शामिल किया तथा जो सिद्धान्त प्रतिपादित किया उसे सामाजिक कल्याण फलन के नाम से जाना जाता है

प्रो० बर्गसन के अनुसार, सामाजिक कल्याण समाज के प्रत्येक सदस्य द्वारा उपभोग की जाने वाली वस्तुओं एवं सेवाओं की मात्रा पर प्रत्येक व्यक्ति द्वारा की गई सेवाओं पर आय के वितरण कें ढंग पर, उपभोक्ताओं की सार्वभौमिकता आदि कई तत्वों पर निर्भर करता है । इसे निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता हैं :-

w=f(a,b,c,d,.....n)

जहाँ **W**= सामाजिक कल्याण

f = फलन

a,b,c,d,.....n,= वे तत्व जिन पर कल्याण निर्भर करता है ।

20.5 सामाजिक कल्याण फलन की विशेषताएं :-

सामाजिक कल्याण फलन, "अत्यधिक सामान्य स्वभाव वाला" है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति का कल्याण वस्तुओं एवं सेवाओं के स्वयं के उपभोग पर नहीं बल्कि अन्य व्यक्तियों के उपभोग के स्तर, समाज में आय के वितरण के प्रति दृष्टिकोण आदि कई घटकों पर निर्भर करता है ।

20.5.2 सामाजिक कल्याण फलन की मान्यताऐं :-

प्रो० बर्गसन तथा सेम्युलसन ने अपने सामाजिक कल्याण फलन को निम्न मान्यताओं पर आधारित माना

(i) यह उपयोगिता के क्रमवाचक दृष्टिकोण पर आधारित है ।

(ii) यह कल्याण के आन्तरिक एवं बाहय घटकों से प्रभावित होता है ।

(iii) यह उपयोगिता के अर्न्तवैयक्तिक तुलनाओं की आज्ञा देता है और नैतिक निर्णयों का समावेश करता हैं ।

(iv) इनमें उन सभी तत्वों एवं चरो का समावेश किया जाता है । जिन पर समाज के सभी व्यक्तियों का कल्याण निर्भर करता है ।

सामाजिक कल्याण फलन को निम्न रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है । माना कि समाज में दो व्यक्ति **A** तथा **B** है जिनके लिए उपयोगिता के विभिन्न संयोगों को तटस्थता मानचित्र के रूप में सामाजिक कल्याण वक्र क्रमश: **W1, W2, W3,** और **W4** को दर्शाया गया है । मूल बिन्दु से ऊपर सामाजिक कल्याण वक्र नीचे वाले कल्याण वक्र की तुलना में अधिक कल्याण को दर्शाता है :-

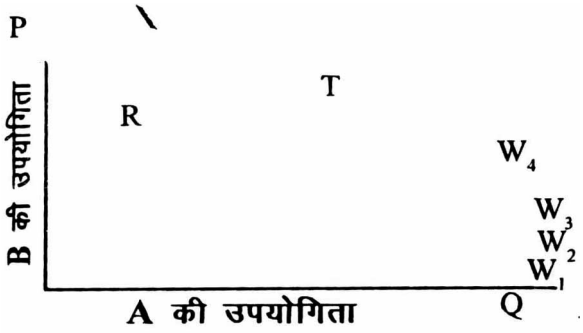

रेखाचित्र 20.5.1

PQ उपयोगिता सीमा रेखा है जो उपयोगिता संयोगों के उन स्तरों को बताती है जो दिये हुए संसाधनों से भौतिक रूप में प्राप्त किये जा सकते है । बिन्दु **R** से **S** तथा **S** से **T** की ओर चलन निश्चित रूप सेकल्याण का सूचक है क्योंकि ये अपेक्षाकृत ऊँचे अनधिमान वक्र पर स्थित है । **T** बिन्दु सर्वोत्तम प्राप्य कल्याण बिन्दु है । क्योंकि इसी बिन्दु पर उपयोगिता सीमा रेखा **PQ** सामाजिक कल्याण रेखा **W4** पर स्पर्श रेखा है ।

20.5.3 आलोचनाऐं :-

(i) प्रो० बोमोल के अनुसार सामाजिक कल्याण फलन उन निर्देशो को नहीं बताता जिससे कल्याण के लिए मूल्यगत निर्णय लिये जा सके ।

(ii) प्रो० ऐरो के अनुसार बहुमत निर्णय के आधार पर निर्मित यह फलन सामान्यत: विरोधात्मक परिणाम देता है ।

(iii) यद्यपि सामाजिक कल्याण फलन सामाजिक कल्याण का व्याख्या का एक सैद्धान्तिक उपकरण है परन्तु उसके गणितीय स्वरूप को कोई व्यावहारिक महत्व नहीं हैं ।

20.5.4 केनेथ जे ऐरो का असंभवता प्रमेय :-

नोबेल पुरस्कार विजेता केनोथ जे. ऐसे ने अपने 'असंभवता प्रमेय' में यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि लोकतांत्रिक मज के आधार पर सामाजिक कल्याण फलन निकालना संभव नहीं है

। उनके अनुसार वैयक्तिक वरीयता को सूचित करने वाले सामाजिक कल्याण फलन में निम्न चार शर्ते पूरी होना आवश्यक हैं :-

(i) सामाजिक कल्याण सम्बन्धी चुनाव सकर्मक रूपी होने चाहिए अर्थात् यदि A को B बेहतर तथा B को C से बेहतर विकल्प माना है तो A को C से बेहतर विकल्प मानना चाहिए ।

(ii) सामाजिक कल्याण सम्बन्धी चुनाव वैयक्तिक वरीयता के परिवर्तनों के विपरीत दिशा में नहीं जाने चाहिए ।

(iii) सामाजिक कल्याण के चुनाव के सम्बन्ध में समाज के बाहर या अन्दर किसी एक व्यक्ति द्वारा आदेश नहीं दिये जाने चाहिए ।

(iv) सामाजिक कल्याण सम्बन्धी चुनाव निरर्थक विकल्पों से स्वतंत्र रहना चाहिए ।

केनथ जे. एरो ने अपने असंभवता प्रमेय में यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि उपरोक्त चार शर्तो में से कम से कम एक शर्त को तोड़े बिना लोकतांत्रिक मत द्वारा सामाजिक कल्याण फलन निकालना संभव नहीं है ।

20.5.5 द्वितीय सर्वश्रेष्ठ का सामान्य सिद्धान्त :-

कल्याणवादी अर्थशास्त्र से सम्बन्धित इस सिद्धान्त का प्रतिपादन लिप्से एवं लंकास्टर ने 1956 में प्रकाशित अपने लेख में किया था इस सिद्धान्त के अनुसार पेरेटों अनुष्ठतम की सब शर्ते पूरी नहीं होने पर ज्यादा से ज्यादा शर्ते पूरी कर लेने मात्र से सामाजिक कल्याण में वृद्धि की अनिवार्यत: सर्वश्रेष्ठ स्थिति नहीं बन जाती । लिप्से तथा लंकारटरइ का द्वितीय सर्वश्रेष्ठ का सामान्य सिद्धान्त निम्न रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट हैं -

रेखाचित्र 20.5.2

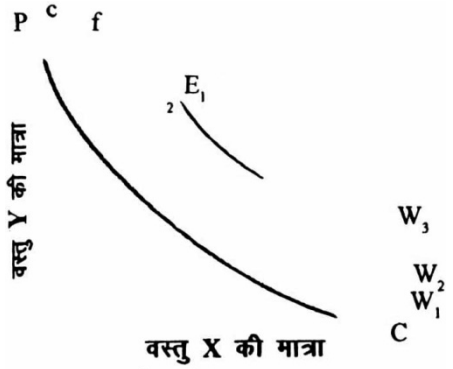

चित्र में **W1, W2, W3**, किसी समाज के लिए वस्तु **X** तथा वस्तु **Y** के बढ़ते संतुष्टि अधिमान वक्र है । इसमें पेरेटो अनकुलतम बिन्दु **PQ** उत्पादन संभाव्यता वक्र के **E** बिन्दु पर हैं यदि कुछ संस्थागत प्रतिबंधो के कारण **CC** रेखा के दाँयीं और से संयोग प्राप्त होना संभव नहीं हो तो उत्पादन संभावना वक्र के **F** तथा **G** बिन्दुओं के स्थान पर सामाजिक तटस्थता वक्र **W2** के **E2** बिन्दु पर द्वितीय सर्वश्रेष्ठ कल्याण की स्थिति प्राप्त होगी । यद्यपि **F** तथा **G** बिन्दुओं पर पेरेटो अनुकुलतम एक शर्त तो पूरी होती है किन्तु यह **E2** की तुलना में निचले सामाजिक तटस्थता वक्र **W1** पर स्थित हैं । अत: **E2** बिन्दु द्वितीय सर्वश्रेष्ठ कल्याण की स्थिति का द्योतक बन जाता है ।

अभ्यास प्रश्न :-

निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिए

प्र. 1 सामाजिक कल्याण फलन के प्रतिपादक कौन थे ?

प्र. 2. सामाजिक कल्याण फलन को परिभाषित कीजिए ।

प्र. 3. द्‌वितीय सर्वश्रेष्ठ का सामान्य सिद्धान्त किसने तथा कब प्रतिपादित किया ?

प्र. 4. केनेथ जे. ऐरों के अनुसार सामाजिक कल्याण फलन की शर्तें क्या हैं ?

20.6 सारांश :

उपरोक्त इकाई के अध्ययन से स्पष्ट है कि वर्तमान में कल्याणवादी, अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र का केन्द्रीय बिन्दु है विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अधिकतम कल्याण प्राप्ति हेतु विभिन्न कसौटियों / मानदंडों का निर्धारण किया हैं जो समस्त नीति निर्धारण हेतु अत्यन्त उपयोगी साबित हुए है । यद्‌यपि कल्याणवादी अर्थशास्त्र काफी भावनात्मक हैं, फिर भी वर्तमान में अधिकतम सामाजिक कल्याण के उद्देश्य की प्राप्ति हेतु आर्थिक नीतियों के प्रतिपादन, क्रियान्वयन, मूल्यांकन एवं सुधार हेतु कल्याण के अर्थशास्त्र के उपयोगिता निरंतर बढ़ती जा रही है ।

20.7 आभ्यास प्रश्नों के उत्तर :

20.2

उत्तर (1) कल्याणवादी अर्थशास्त्र के अन्तर्गत सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने के लिए आर्थिक नीतियों के प्रतिपादन, क्रियान्वयन, मूल्यांकन एवं आवश्यक सुधार आदि का अध्ययन किया जाता है ।

उत्तर (2) वास्तविक अर्थशास्त्र में 'क्या है' और 'कैसे हैं ।' की व्याख्या की जाती है जबकि कल्याणवादी अर्थशास्त्र में 'क्या' और कैसे होना चाहिए का अध्ययन किया जाता है ।

उत्तर (3) देखिये 20.2.1

20.3

उत्तर (1) एडमस्मिथ रिकोर्डो, माल्थस, मार्शल तथा पीगू आदि ।

उत्तर (2) वाणिज्यवादी अर्थशास्त्री आयात कम तथा निर्यात अधिक करने की नीति अपनाकर व्यापार आधिक्य से देश के कल्याण में वृद्धि के पक्षधर थे ।

उत्तर (3) देखिये 20.3.3

20.4

उत्तर (1) प्रो० परेटों

उत्तर (2) सामाजिक कल्याण फलन उन सभी तत्वों / चरों को बताता है । टिनम पर समाज के सभी व्यक्तियों का कल्याण निर्भर करता है ।

उत्तर (3) लिप्से तथा लंकास्टर ने वर्ष 1956 में ।

उत्तर (4) देखिये 20.5.4

बोध प्रश्न

I निम्न प्रश्नों के उत्तर 150 शब्दों में दीजिए ।

प्र. 1. पीगू के कल्याणवादी अर्थशास्त्र की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए ।

प्र. 2. परेटों के कल्याणवादी अर्थशास्त्र की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए ।

प्र. 3. सामाजिक कल्याण फलन की अवधारणा को विस्तार से समझाइये ।

I निम्न प्रश्नों के उत्तर 150 शब्दों में दीजिए ।

प्र. 1. कल्याणवादी अर्थशास्त्र की परिभाषा देते हुए इसकी विशेषताऐं समझाइये ।

प्र. 2. मार्शल का कल्याणवादी दृष्टिकोण समझाइये ।

प्र. 3. टिप्पणियां लिखिये :

(i) साइटोवस्की का दोहरा मापदण्ड ।

(ii) हिक्स तथा कालडोर का क्षतिपूरक दृष्टिकोण ।

(iii) वाणिज्यवाद में कल्याणवादी अर्थशास्त्र ।

20.8 शब्दावली :

सामाजिक कल्याण	उपयोगिता
कल्याणवादी अर्थशास्त्र	पूंजी निर्माण
उपभोक्ता की बचत	क्रमवाचक धारण
उत्पादक की बचत	अनधिमान वक्र
व्यापार आधिक्य	उपयोगिता संभावना वक्र
पूर्ण प्रतियोगिता	क्षतिपूरक दृष्टिकोण
आर्थिक कल्याण	सामाजिक कल्याण फलन
गैर आर्थिक कल्याण	असंभवता प्रमेय

20.9 प्रासंगिक पठनीय ग्रंथ :

ISBN-13/978-81-8496-217-8